

उपाध्याय
श्री कस्तूरचन्द जी महाराज
एवं
प्रवर्तक
श्री हीरालाल जी महाराज
के
सुदीर्घ चरित्र पर्याय
तथा
विशिष्ट सेवाओंके उपलक्ष में
बहुमानार्थ समायोजित

मुनिन्दय अभिनन्दन ग्रन्थ



मालवरत्न स्थविरपद-विभूषित पूज्य गुरुदेव
उपाध्याय श्री कस्तूरचन्द जी महाराज
एवं
जैनागम तत्त्वविशारद, प्रवचन-प्रभाकर
प्रवर्तक श्री हीरालाल जी महाराज
के
सुदीर्घ-चारित्र-पर्याय एवं संघ-सेवाओं के उपलक्ष में
बहुमानार्थ समायोजित

मु नि द्व य अ भि न न्द न ग्र न्थ



प्रकाशक
श्री रमेश जैन साहित्य प्रकाशन समिति
गांधी कालोनी जावरा, (म० प्र०)

प्रेरक मण्डल

राष्ट्रसंत आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषिजी
मेवाड़भूषण श्री प्रतापमलजी म०
व्याख्यान वाचस्पति धर्मविभूषण कविरत्न श्री केवलमुनिजी
ओजस्वीवक्ता तपस्वीमुनि श्री लाभचन्दजी म०
अवधानी कवि श्री अशोकमुनिजी
मधुरव्याख्यानी श्री इश्वर मुनिजी

प्रधान सम्पादक

श्री रमेशमुनिजी (सिद्धान्त आचार्य, साहित्यरत्न)

सम्पादक मण्डल

मधुरवक्ता श्री मूलचन्दजी म०
प्रवर्तक श्री उदय मुनिजी सि० आ०
श्री राजेन्द्र मुनिजी, शास्त्री
श्री सुरेश मुनिजी, शास्त्री
सफलवक्ता श्री अजीत मुनिजी 'निर्मल'
डॉ० नरेन्द्र भानावल एम०ए०, पी-एच०डी० (राजस्थान विश्वविद्यालय)

प्रबन्ध सम्पादक

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

संयोजक मण्डल

तपस्वी मुनि श्री दीपचन्दजी
श्री नरेन्द्र मुनिजी 'विशारद'
कवि श्री विजयमुनि 'विशारद'
श्री कान्ति मुनिजी 'विशारद'
श्री सुजानमलजी मेहता
श्री फकीरचन्दजी मेहता

प्रकाशक

श्री रमेश जैन साहित्य प्रकाशन समिति
गांधी कालोनी, जावरा (म० प्र०)

प्रकाशन वर्ष

वि० सं० २०३४ कार्तिक पूर्णिमा
ई० सन् १९७७ नवम्बर

मुद्रण

श्रीचन्द सुराना के लिए
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स
दरेसी २, आगरा-२८२००४

मूल्य

₹ 4) चौस रुपये

मंगलाचरण

(१)

जहा से तिमिरविद्धंसे, उच्चिचट्टंते दिवायरे ।
जलंते इव तेएण, एवं हवइ बहुस्सुए ॥

(२)

जहा से उडुवई चंदे, नक्खत्तपरिवारिए ।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥

(३)

जहा से सयंभूरमणे, उदही अक्खओदए ।
नानारयणपडिपुण्णे, एवं हवई बहुस्सुए ॥

प्रकाशकीय

विगत समय से हमारी संस्था ने लगभग बीस पुस्तकें प्रकाशित करने का गौरव प्राप्त किया है। जैसा कि—

मुनि श्री प्रताप अभिनन्दन ग्रन्थ
भगवान महावीर के पावन प्रसंग
जैन दिवाकर संस्मरणों के आईने में
चित्तन के आलोक में
प्रताप कथा कौमुदी, भाग १ से ६ तक
आचार्य श्री खूबचन्द जी महाराज व्यक्तित्व एवं कृतित्व
तपोधनी श्री बसन्तमुनि जी महाराज जीवन-दर्शन
बिखरे मोती-निखरे हीरे (मुक्तक)

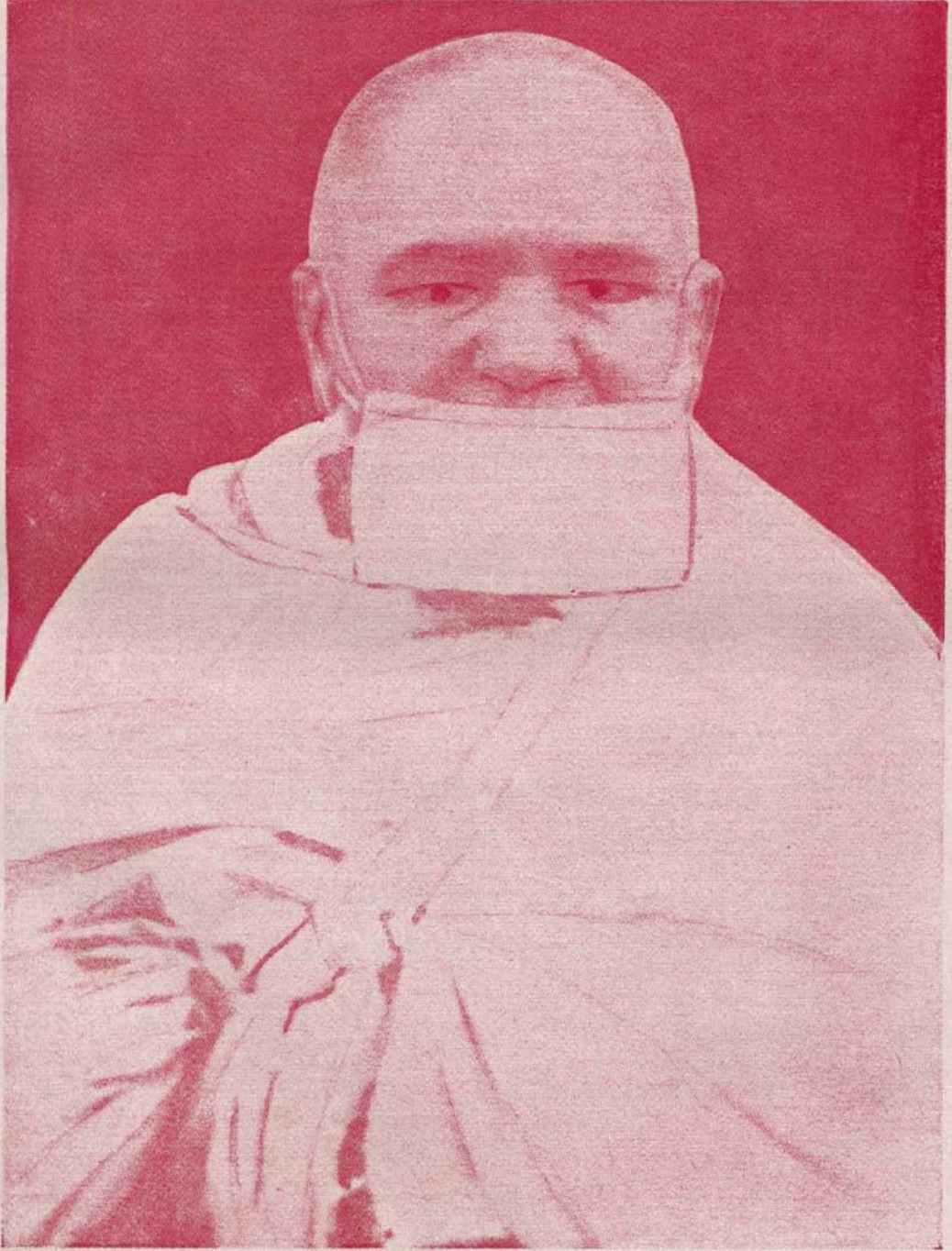
इस प्रकार सरल-सुबोध सुन्दर अनेक कृतियाँ पाठकों के कर-कमलों में पहुँच चुकी है। जिनकी विद्वद् वर्ग ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की एवं सुज्ञजनों के अभिमत भी प्राप्त हुए हैं। यह सब श्रेय मेवाड़भूषण श्री प्रतापमलजी महाराज के शिष्यरत्न सुलेखक श्री रमेश मुनि जी महाराज को है, युगानुकूल जिनकी लेखनी साहित्योद्धान में सतत प्रगतिशील रही एवं ज्ञान की अभिवृद्धि में भी पूर्णतः सहयोगी रही है।

इस समय मुनिद्वय (उपा. श्री कस्तूरचन्द जी महाराज, प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज) संयुक्त अभिनन्दन ग्रन्थ का भव्य प्रकाशन करते हुए हमें अत्यधिक गौरवानुभूति हो रही है।

ऐतिहासिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं देशीय रचनाओं से यह ग्रन्थ काफी महत्त्वपूर्ण बना है, एतदर्थ पठनीय एवं दर्शनीय माना जायेगा।

सभी सहयोगियों का हम आभार मानते हैं। आशा है पाठक वृन्द इस ग्रन्थ से लाभान्वित होंगे।

—श्री रमेश जैन साहित्य प्रकाशन समिति
गांधी कालोनी, जावरा (M. P.)



वादीमान-मर्दक स्वनामधन्य दादा गुरु
श्री नन्दलाल जी महाराज

उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज के
कर-कमलों में

स म र्प ण

(१)

दिव्य तेजवंत सूर्य तिमिर-हर्ता, जग मंगलदाई है ।
शतशः वन्दन बहुश्रुत मुनि को, ज्ञान ज्योति प्रगटाई है ॥

(२)

निर्मल निशाकर नक्षत्रलोक में, दिव्य सुशोभित होता है ।
त्यो मुनि-मण्डल में बहुश्रुत मुनि, स्व-पर मल को धोता है ॥

(३)

सुदर्शन है जम्बू तरु प्यारा, सीता सरिता में अति श्रेष्ठ ।
मुनियों में है करुणा-सागर, स्थविर गुरु तेजस्वी ज्येष्ठ ॥

(४)

ज्यों पर्वत में है सुमेरु, भव्य उच्च अति औषध ईश ।
“एवं हवइ बहुस्सुए” स्पष्ट बताया है जगदीश ॥

(५)

अक्षय रत्नों का स्वामी है, स्वयंभूरमण महासागर ।
वन्दन शतशः बहुश्रुत मुनि को, महाव्रतधारी रत्नाकर ॥

चरण चंचरीक
—मुनि रमेश (सि. आ.)



प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज
के कर-कमलों में

स म र्प ण

(१)

आगमज्ञाता महा मनस्वी, गुण - रत्नों के आगर हो ।
दीप्तिमान शासन के तारे, दया - मया के सागर हो ॥

(२)

श्रमणसंघ के महा प्रवर्तक, तेजस्वी हो सूर्य समान ।
बहुश्रुत स्वामी वचन-विशारद, महाव्रती हो धर्म-निधान ॥

(३)

कभी सम्मान की जिन्हें तृषा नहीं, विरोध में भी होता हर्ष ।
जिनकी भावपूर्ण सेवा से, होता जन-जन मन उत्कर्ष ॥

(४)

बहुमानार्थ समर्पित करते, ग्रन्थप्रिय जो अभिनन्दन ।
चारित्र-आत्मा के चरणों में, कोटि कोटि होवे वन्दन ॥

(५)

अभिवृद्धि जिनशासन की जो, करते मुनिवर जिन शृंगार ।
त्रिकाल वन्दना धर्मदेव को, करते अर्पित लघु उपहार ॥

चरण चंचरिक
—सुनि रमेश (सि. आ.)





आशीर्वचन



मुझे यह जानकर अत्यधिक आल्हाद हुआ है कि हमारे श्रमण संघ के दो वरिष्ठ श्रमण रत्नों के बहुमानार्थ अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पण करने की योजना बनी है।

ज्योतिर्विद स्थविररत्न उपाध्याय श्री कस्तूरचन्द जी महाराज ने श्रमणसंघ में ज्ञान-साधना और सेवा की जो पवित्र धारा प्रवाहित की है, वह चिरस्मरणीय रहेगी। उनका निर्मल पवित्र मानस सदा सबके लिए मंगलमय बना हुआ है।

प्रवर्तक श्री हीरालाल जी महाराज एक महान् धर्म-प्रचारक के रूप में प्रसिद्ध हैं। देश-प्रदेश में जैनधर्म के शुभ संस्कारों का बीजारोपण करने में उन्हें ऐतिहासिक सफलता मिली है।

मैं इन दोनों श्रमण रत्नों के सुदीर्घ चरित्र पर्याय की मंगलकामना करता हुआ उनके प्रति बहुमान ज्ञापित करता हूँ और चाहता हूँ—

नाणेण, दंसेणण, चरित्तेण,
बड्ढमाणो भवाहि य !

—आचार्य आनन्द ऋषि



संसारसागर

इस अनुसन्धान के युग में मानव समाज पूर्णतः भटक चुका है। 'बाह्याडम्बर में अपने सुख-सुविधा के सुनहरे स्वप्न संजोने की भूल कर रहा है। वस्तुतः कुटिया से लेकर महलों में रहने वाले नर-नारियों का उभय-पक्षी जीवन आज अशांत, उद्विग्न एवं विनाश के कगार पर खड़ा तूफान है, यही कारण है कि—प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में आज एक आंधी है, कसक है, टीस है, कचोट है, राग-द्वेष और क्लेश है। यह सुख का राजमार्ग नहीं, अपितु विनाश एवं ह्रास की ओर बढ़ते चरण हैं।

विज्ञान आज चन्द्रलोक एवं मंगल-बुध ग्रहों के गवाक्ष में पहुँचने का जोर-शोर से प्रयत्न कर रहा है। परन्तु इस धवल धरातल पर स्वर्गीय सुषमा के बदले अणु-शस्त्रों का एवं विपैले—गैस यन्त्रों का निर्माण करके सचमुच ही नरक जैसा वीभत्स एवं घिनौना दृश्य उपस्थित किया है। एक क्षण की भी गारण्टी (Guranty) नहीं, कि—अमुक देश और राष्ट्र निर्भय एवं सुरक्षित हैं? पता नहीं, किस समय में प्रलय मच जाय? फिर प्रगतिवाद का शंखनाद करना क्या हास्यास्पद बात नहीं है? मेरी दृष्टि से विज्ञान की यह सफलता नहीं, अपितु बहुत बड़ी पराजय है। क्योंकि सूर्य प्रकाश की तरह प्रत्यक्ष है कि—आज वैज्ञानिक शक्तियों का उपयोग सर्जनात्मक कार्यों में न होकर विध्वंसात्मक परियोजनाओं में हो रहा है। वस्तुतः जीवन व्यवहार में और साहित्यालोक में धर्म और विज्ञान का समन्वय होना अत्यावश्यक है।

इसके समाधानार्थ यदि हम भारतीय ऋषि मुनियों की गरिमा-मंडित जीवन गाथाएँ पढ़ें और सुनें। जैसा कि कहा है—

संसारसागरस्यान्तं, गंतुमिच्छति चेद्यदि ।

चरित्रं महतां पीतं, कृत्वा गच्छंतु भावुकाः ॥

—इस अपार संसार समुद्र से पार होने की यदि इच्छा है तो महान् पुरुषों के चरित्र रूपी नौका का आधार लेना चाहिए।

अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि—इस समय जैन समाज में प्रमुख सन्त शिरोमणि, प्रख्याति प्राप्त, समत्व योगी, समन्वय सिद्धान्त के प्रबल पक्षधर, करुणा-सागर, मालव के महान् सन्त रत्न ज्योतिर्विद श्रद्धेय उपाध्याय गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द्र जी महाराज एवं सिद्धान्तप्रिय, जैनागम-तत्व विशारद, प्रवचन विशारद श्रमण संघीय प्रवर्तक श्री हीरालाल जी महाराज साहब के इस समय साधनामय जीवन के क्रमशः ७० और ५५ वर्ष सम्पन्न होने जा रहे हैं।

इन द्वय महा मुनि का मंगलमय जीवन का सम्पूर्ण समय स्व तथा पर कल्याण में जनोपकार में एवं भूले-भटके राहगीरों के लिए मार्गदर्शक के रूप में बीत रहा है। वस्तुतः यह जैन समाज के लिए गौरव का प्रतीक है।

यद्यपि मेरे लिए, इनका शैशव काल एवं पूर्व मुनि जीवन केवल श्रुति का विषय रहा है तथापि आपश्ची के संयमी जीवन के लगभग दो दशकाधिक वर्ष मेरे अनुभव के विषय रहे हैं। मेरी स्थूल बुद्धि ने इन पच्चीस वर्षों में इन महान् मुनियों को बहुत ही सन्निकटता से देखा एवं परखा

है। पर्युपासना, तत्त्व-चर्चा एवं व्याख्यानश्रवण करने का कई बार स्वर्णिम अवसर मुझे मिला है। यथा प्रजा मुनि द्वय के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ समझा है, जो कुछ पाया है, उन्हीं निष्कर्षों की संकलित चन्द्र प्रशस्तियों की पंक्तियाँ यहाँ दी गई हैं। जिनको इस अभिनन्दन ग्रन्थ की एक-एक पंक्ति बताने में सक्षम है।

साधक के पार्थिव देह का चित्रण प्रस्तुत करना इस साधन-सम्पन्न युग में कोई कठिन कार्य नहीं रहा। क्योंकि—बाह्यदेह की तस्वीर साकार-सीमित एवं पौद्गलिक है। किन्तु साधक का आन्तरिक जीवन रूपातीत, असीम एवं जन-जन जीवन तक व्याप्त रहता है। उस रूपातीत जीवन के विमल व्यक्तित्व को जनता के समक्ष रखना सचमुच ही दुरूहता युक्त कार्य रहा है। कहा भी है—“चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः।” अर्थात् महा मनस्वियों का प्रभाव स्थूल बुद्धि वालों के चिन्तन में कैसे आ सकता है? फिर भी जो कुछ भी इस ग्रंथ में लिखा गया है। उसमें श्रद्धा और भक्ति की प्रमुखता रही है। यह ग्रंथ मुख्यतः छह खण्डों में विभक्त है।

प्रथम खण्ड

व्यक्तित्व दर्शन एवं जीवन दर्शन :

इसमें ज्योतिर्विद स्थविरपद विभूषित श्रद्धेय श्री कस्तूरचन्द्र जी महाराज के व्यापक व्यक्तित्व का दर्शन विभिन्न मनीषी लेखकों द्वारा कराया गया है।

जैनागम तत्त्व विशारद प्रवर्तक श्री हीरालाल जी महाराज के बहु आयामी जीवन के विविध पक्षों को उजागर करने वाले अनेक लेख इसी खण्ड के दूसरे भाग में हैं।

द्वितीय खण्ड

इस खण्ड में अनेक आदरणीय मुनियों, महासतियों, विद्वानों, राजनेताओं, श्री संघों एवं भक्त श्रावकों द्वारा मुनिद्वय के प्रति व्यक्त शुभकामना एवं श्रद्धा-उद्गार संकलित है।

तृतीय खण्ड

मातृभूमि मालव के धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक गौरव की उज्ज्वल गाथा है।

चतुर्थ खण्ड

धर्म-दर्शन संस्कृति एवं इतिहास आदि विषयों से सम्बन्धित विद्वद वर्ग के अनेक तात्त्विक महत्वपूर्ण लेख संकलित किये हैं।

पंचम खण्ड

इसमें जैन ज्योतिष सम्बन्धी लेख हैं

छठा खण्ड

इसमें उपाध्याय श्री कस्तूरचन्द्र जी म० के अज्ञानवर्ती संत-सतियों का सचित्र परिचय है।

अभिनन्दन ग्रंथ सुसाहित्य भण्डार की अनुपम थाती है। अमुक-अमुक युग में जो-जो यशस्वी-तेजस्वी-विरल विभूतियाँ हुईं अथवा विद्यमान हैं, उनका आद्योपान्त जीवन-दर्शन अभिनन्दन ग्रंथों में लिखा रहता है। उस जीवन वृत्त से प्रेरणा पाकर असंख्य भूली-भटकी एवं भोग-विलासी जनता को पुनः संभलाने का, सावधान होने का स्वर्णिमावसर मिलता है।

लाइट (Light) स्तम्भ की भाँति अभिनन्दन ग्रंथ मार्ग दर्शक एवं प्रेरणा का पुंज माना है। यह साधक वृन्द नहीं चाहते हैं कि—युगानुकूल वर्तमान कालीन समाज हमारे साधक जीवन का एवं साहित्यिक सेवाओं का गुणगान करें, हमारी जीवनियाँ लिपिबद्ध करें एवं हमें भावी पीढ़ी

याद करें, किन्तु विवेकानुगामी प्रबुद्ध एवं अध्ययनशील समाज स्वयं उनका सम्मान करने के लिए सौ-सौ हाथ आगे बढ़ाता है। अपने गुरु जनों के प्रति श्रद्धानत होकर अपनी समुज्ज्वल संस्कृति को अक्षुण्ण रखने में अपने को भाग्यशाली मानता है।

वि.सं. १९७४ में हमारा वर्षावास जालना (महाराष्ट्र) था। उन दिनों मुझे अपने अन्तेवासी श्री सुरेश मुनि जी शास्त्री, श्री नरेन्द्र मुनि जी, कवि श्री विजय मुनि जी, तपस्वी श्री अभयमुनि जी एवं तरुण तपस्वी श्री प्रकाश मुनि जी से प्रेरणा मिलती रही कि—“मुनि श्री प्रताप अभिनन्दन ग्रंथ” एवं ‘भगवान महावीर के पावन प्रसंग’ का प्रकाशन एवं विमोचन कार्य शानदार ढंग से पूर्ण हो चुका है। अब आप मुनि द्वय (उपाध्याय श्री कस्तूरचन्द जी महाराज एवं प्रवर्तक श्री हीरालाल जी महाराज) के अभिनन्दन ग्रंथ का लेखन कार्य का सूत्रपात करें। इस समय परिस्थितियाँ आपके अनुकूल हैं। सफलता अच्छी मिलेगी।

यद्यपि मुनियों का परामर्श समयोचित था, फिर भी मैं उसे सुनकर उपेक्षा करता रहा। कारण कि—अभिनन्दन ग्रंथ जैसा कार्य कोई सरल नहीं था। उस समय मेरे पास तत्सम्बन्धी सामग्री का भी काफी अभाव था और दोनों महामुनि श्री काफी दूर विराज रहे थे, उनसे कुछ जानकारी करें तो कैसे करें? इस कारण साथी मुनियों की बात टालता रहा।

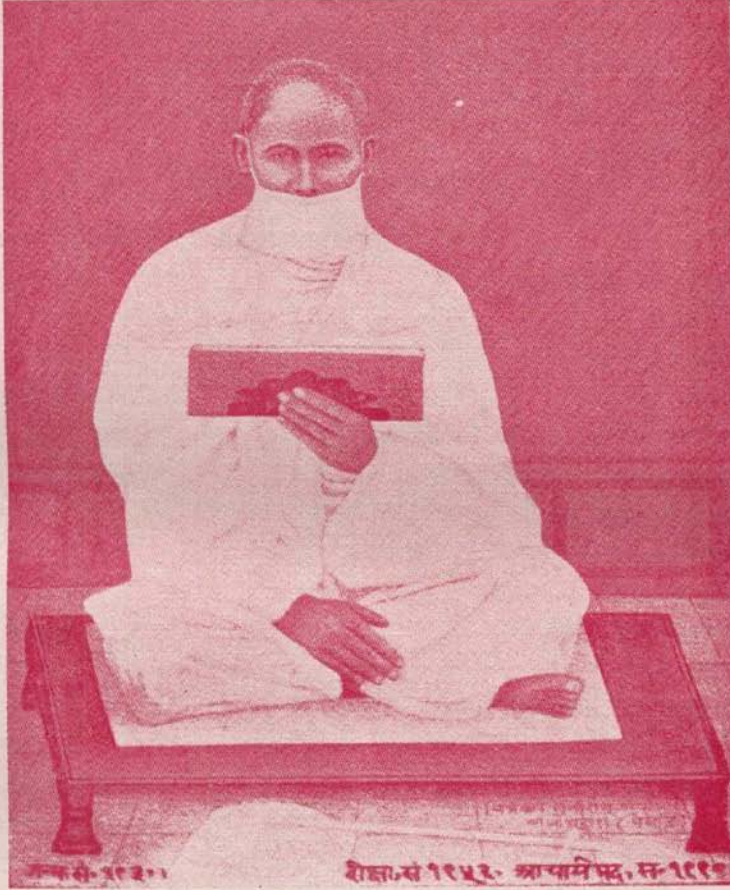
वर्षावास पूरा हुआ और आन्ध्र-प्रदेश की ओर गुरु प्रवर श्री प्रतापमल जी महाराज आदि मुनि मण्डल के चरण बढ़े। मार्ग बीच में भी मुनियों की वही धुन मेरे कानों में गूँजती रही बस, एक दिन मेरा अन्तर्मन बोल उठा—पुरुषार्थी के लिए क्या कठिन है, प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी अनुकूल होंगी। गुरुदेव का शुभाशीर्वाद प्राप्त कर मैंने इस महत् कार्य का सूत्रपात कर दिया।

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि—बहुत ही शान्त वातावरण की भोद में मुनियों का यह महान संकल्प पूरा हुआ है। इस मंगल कार्य की सफलता में कई पवित्र-आत्माओं का सराहनीय सहयोग रहा है। प्रेरक मण्डल का भी मैं आभारी हूँ, साथ ही साथ सम्पादक मण्डल में कार्यरत स्नेही साथी सफल वक्ता श्री अजीत मुनि जी महाराज का सर्वाधिक सहयोग रहा है। जिनकी ओर से साहित्यिक सामग्री समय-समय पर मुझे मिलती रही है। आदेशानुसार पूरे उत्साह के साथ उन्होंने उत्तर-दायित्व निभाया है। शुद्ध प्रेस लिपिकार श्री नरेन्द्र मुनि जी एवं कवि श्री विजय मुनि जी की सेवाओं का मूल्य मेरी लेखनी आँक नहीं सकती है। इन होनहार मुनियों का सहयोग मेरी प्रत्येक कृति में सराहनीय रहा है। तभी मैं चन्द कृतियाँ आपके (पाठक) समक्ष रख पाया हूँ।

अन्य जितने भी विद्वद् मुनि—महासती की ओर से, श्री संघों की एवं विद्वानों की ओर से लेख, कविताएँ-संस्मरण एवं श्रद्धा भक्ति भरे उद्गार प्राप्त हुए और ग्रंथ को अति सुन्दर पठनीय बनाने में सहयोग दिया है साथ ही साहित्यसेवी श्रीचन्द जी सुराणा ‘सरस’ का सेवाकार्य भी स्मरणीय है। जिनकी देख-रेख में ग्रंथ निखरा है। इन सभी प्रबुद्ध जीवी वर्ग को हृदय से मैं साधु-वाद देता हूँ।

किसी भी महापुरुष के जीवन का सर्वांश रूप से दर्शन कर लेना सहज नहीं है। उनके ऊर्ध्वमुखी जीवन को देखने के लिए दृष्टि की भी उतनी ही व्यापकता अपेक्षित है। मुझे यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं कि—इस ग्रंथ की पूर्णता में अपनी नन्हीं बुद्धि से नहीं कर पाया हूँ। मैं जानता हूँ कि—किसी भी साधक के जीवन का अध्याय ‘इति’ रहित है, और उसमें केवल ‘अथ’ ही होता है।

—मुनि रमेश



जैनाचार्य, आदर्श त्यागी
पूज्य श्री स्वूचन्द जी महाराज

अनुक्रमिका

प्रथम खण्ड : व्यक्तित्व दर्शन

□ मालवर्त्न उपाध्याय श्री कस्तूरचन्द्रजी महाराज		
करुणा के अमर देवता	—रमेशमुनि सि० आ०	१
चातुर्मासि सूची		३०
गुरुदेव श्री के प्रेरक-प्रसंग	—श्री कान्ति मुनि	३१
गुरुदेव श्री के वचनमृत बिन्दु	—मुनि सुरेश, शास्त्री	४०
अभिनन्दन पुष्प	—प्रवर्तक श्री अम्बालाल जी महाराज	४४
श्रमण संघ की विरल विभूति	—उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी	४६
भक्ति के चार शब्द	—श्री इन्दर मुनि जी	४७
ताजा संस्मरण—	मनोहर श्री मस्तराम जी महाराज	४७
उदार हृदयी के चरणों में	—कविरत्न श्री केवल मुनि	४८
विलक्षण प्रतिभा के धनी	—श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री	४९
महामालव के महान् रत्न	—मुनि बसन्त	५१
हिमालय से भी महान्	—श्री लाभचन्द्र जी महाराज	५२
ज्ञान-गरिमा मंडित—	—श्री ईश्वर मुनि	५३
कोरे कागज पर ज्ञान के हस्ताक्षर	—श्री कान्ति मुनि	५५
करुणा-कृपा के कुबेर	—श्री प्रदीप मुनि	५७
हार्दिक अभिनन्दन	—श्री राजेन्द्र मुनि	५८
विनम्र पुष्पांजलि	—मुनि हस्तीमल जी	५९
विनम्र भावांजलि	—शंकरराव तानपुरे	६०
एक शब्द चित्र	—मधुबाला बाफना एम० ए०	६२
करुणा सागर के चरणों में	—चन्द्रशेखर कटारिया	६५
मालव की एक विरल विभूति	—प्रवर्तक श्री उदयचन्द्र जी महाराज	६६
त्याग और करुणा की अक्षय दीपशिखा	—मनोहर लाल श्रीमाल	६८
अभिनन्दन-उद्गार—	मदनलाल जैन	७१
कोटि-कोटि हृदयगत प्रणाम	—अभय कुमार भटेवरा एम० काँम०	७२
अभिनन्दन की पंखुड़ियाँ	—मुनि पीयूष	७४
सन्त संस्कृति के पावन प्रतीक	—महासती सुशीला कुमारी	७५
यशःप्रशस्ति पत्र	—अमृत महोत्सव समिति, रतलाम	७६
प्रशस्ति पत्र	—जैन नवयुवक मंडल, रतलाम	७८

अभिनन्दन पत्र	—सन्तवृन्द	७६
पुरातन पीढी के आदर्श सन्त	—मालवकेशरी सौभाग्यमल जी महाराज	८१
वन्दनीय व्यक्तित्व	—प्रवर्तक हीरालाल जी महाराज	८२
□ जैनागम तत्त्व विशारद प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज		
जीवन-दर्शन	—प्रियदर्शी सुरेश मुनि, शास्त्री	८३
नक्षत्रों की भाषा	—मदनमोहन जैन	१००
वचन और विचार	—मुनि नरेन्द्र 'विशारद'	१०३
संस्मरणों के प्रकाश में	—मुनि विजय 'विशारद'	११५
आशीर्चन	—गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी महाराज	११६
भावांजलि	—मालवकेशरी सौभाग्यमल जी महाराज	१२०
हीरा चमकता रहे	—प्रवर्तक अम्बालाल जी महाराज	१२०
मेरी दृष्टि में	—उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी महाराज	१२१
मेरे परम सहयोगी	—श्री प्रतापमल जी महाराज	१२२
प्रवर्तक श्री हीरालाल जी महाराज	—श्री मनोहरलाल जी महाराज	१२२
श्रद्धार्चन—		
मैंने देखा	—कविरत्न श्री केवल मुनि	१२३
स्नेह की जीती जागती प्रतिमा	—श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री	१२३
सिद्धान्तप्रिय सन्त	—श्री ईश्वर मुनि	१२५
हार्दिक अभिनन्दन	—श्री कान्ति मुनि	१२६
अभिनन्दन—	वीरपुत्र श्री सोहन मुनि	१२६
पथ-प्रदर्शक-प्रवर्तक	—मुनि श्री उदयचन्द्र जी महाराज	१२७
मेरे श्रद्धा केन्द्र	—तपोधनी वसन्त मुनि जी	१२६
जैन जगत की विमल विभूति	—मदनलाल जैन	१३०
अभिनन्दन पत्र	—श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ बेंगलौर	१३२
अभिनन्दन पत्र	—श्री व० स्था० जैन श्रावक संघ, बेंगलौर	१३३

द्वितीय खण्ड : मुनिद्वय का संयुक्त अभिनन्दन

शुभ कामना सन्देश :

—श्रीमती प्रतिभा पाटील (भू० पू० सा० मंत्री, महाराष्ट्र)	१५३
—श्री मधुकर राव चौधरी (भू० पू० वि० मंत्री, महाराष्ट्र)	१३५
—श्री कृ० भ० पाटील (भू० पू० आरोग्य मंत्री, महाराष्ट्र)	१३५
—श्री सुगनमल जी भंडारी (इन्दौर)	१३६
—सन्तोष चन्द्र चपलोत	१३६
श्री फकीरचन्द जी मेहता	१३७

श्रीसंघों द्वारा शुभकामाएँ

—श्वे० स्था० जैन संघ सिकन्दराबाद	१३७
श्वे० स्था० जैन श्रावक संघ, रायचूर	१३८
—स्थानकवासी जैन संघ, जालना	१३८
—श्री स्था० जैन संघ, जलगाँव	१३८
—श्री स्था० जैन संघ, भुसावल	१३८
—श्री स्था० जैन संघ, जामनेर	१३८

	—श्री जैन संघ, खंडवा	१३८
	—श्री स्था० जैन संघ, बुरहानपुर	१३८
—श्री चांदमल जी मारू, श्री अ०भा० श्वे० स्था० जैन श्रावक संघ, मदसौर		१३९
—श्री मोतीलाल जी पटवारी, श्वे० स्था० जैन श्रावक संघ, चित्तोडगढ़		१४०
	—श्री सुजानमलजी सेठिया, उज्जैन	१४२
	—श्री जैन दिवाकर मित्र मंडल, व्यावर	१४३
	—सुजानमलजी चाणोदिया, बाबूलालजी बोथरा, रतलाम	१४४
दो पूज्य विभूतियाँ	—उपाध्याय फूलचन्द जी महाराज 'श्रमण'	१४५
पयस्विनी भूमि तू धन्य है	—भगवती मुनि 'निर्मल'	१४८
दो कविताएँ	—श्री शिरोमणिचन्द्र जैन	१५०
अभिनन्दन श्लोकाः	—बाबूरामजी शास्त्री, उज्जैन	१५१
वन्दनांजलि	—उच्छवलाल मेहता	१५२
करुणा के सागर	—निर्मलकुमार लोढा	१५२
अभिनन्दनीय प्रयास	—श्री व० स्था० जैन संघ, भुसावल	१५३
	—सूरजमलजी सिसोदिया, जैन संघ, कोटा	१५३
अमूल्य निधि	—सुजानमल मेहता, श्री व० स्था० श्रावक संघ, जावरा	१५४
भावांजलि	—श्री व० स्था० जैन संघ, बाशी	१५४
	—नेमीचन्द्र बोथरा, श्री व० स्था० जैन श्रा० संघ, धूलिया,	१५५
शतशत प्रणाम	—माणकचन्द्र जैन, श्री व० स्था० जैन संघ, सवाईमाधोपुर	१५६
हादिक अभिनन्दन	—श्री व० स्था० जैन श्रावक संघ रूपनगर	१५६
स्मृति के कुछ मधुर क्षण	—आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषिजी महाराज	१५७
संत जीवन	—कविवर श्री अशोक मुनिजी	१५८
मेरे परम तारक	—मुनि प्रताप	१६०
विरल व्यक्तित्व	—श्री मूल मुनि	१६१
अभिनन्दनीय समर्पण	—श्री मूल मुनि	१६२
भावांजलि	—श्री विमल मुनिजी	१६३
तीन गुण	—साध्वी कमलावती	१६५
एक सच्चा हीरा	” ”	१६६
अभिनन्दन :	डा० रघुवीर सिंह	१६७
	—यशपाल जैन	१६७
	—निर्मलकुमार लोढा,	१६८
	—पूनमचन्द जैन, कोटा	१६८
श्रद्धा के दो पुष्प	—डा० ज्योति प्रसाद जैन	१६९
	—साध्वी मदनकुंवर जी (बम्बई)	१६९
मुनि मणिमाला के दो रत्न	—ताराचन्द भंडारी	१७०
पद्य विभाग		
शुभकामनाएँ एवं आशीर्षचन	मरुधरकेशरी प्रवर्तक श्री मिश्रीमल जी महाराज	१७१
अभिनन्दन एकादशी	—कविरत्न चन्दन मुनि (पंजाबी)	१७२
श्रद्धा सुमनांजलि	—कविरत्न चन्दनमुनि (पंजाबी)	१७३
भारत की सम्पदा	—गणेश मुनि शास्त्री	१७४

प्र० श्री हीरालालजी महाराज की जीवन रेखाएँ	—गणेश मुनि शास्त्री	१७५
गुरु कस्तूर गुण पञ्चीसी	—श्री रमेश मुनि सिद्धान्ताचार्य	१७६
श्रद्धा सुमन	—श्री रंग मुनि	१७७
शासन के सम्राट	—श्री सुरेश मुनि	१८०
जय ज्योतिर्धर की	—अजीत मुनिजी 'निर्मल'	१८१
यशमलयाद्रि सम महके महा	—एक श्रद्धालु भक्त	१८२
मंगलकामना	—चन्दन मुनि	१८४
शत-शत वन्दन	—बालकवि सुभाष मुनि	१८५
अभिनन्दन हम करते हैं	" "	१८७
कस्तूर गुण ज्ञान	—मुनि विजय 'विशारद'	१८८
हीरक चालीसा	" "	१८९
वन्दन !	—रतन मुनि	१९३
महिमा महके	—तपस्वी अभय मुनि	१९४
श्रमण संघ की थाती है	—श्री जिनेन्द्र मुनि काव्यतीर्थ	१९५
चरण वन्दना	" "	१९६
वन्दना	—महासती मधुवाला	१९७
मुनिद्वय अभिनन्दनम्	—कांतिलाल बाफना, हस्तीमल बोहरा	१९९
दो काव्य	—राजेन्द्र मुनि शास्त्री	१९९
गुरुगुण गान	—कवि अभयकुमार 'योधेय'	२००
करते श्रद्धा अपित	—सती ज्ञानवती जी	२०१
अभिनन्दन शतशतवार	—महासती प्रीतिसुधाजी	२०१
मालवदत्त श्री कस्तूर	—कवि प्रियंकर	२०२
गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी महाराज के प्रति	—विमलकुमार रांका	२०३
प्रवर्तक श्री हीरालाल जी महाराज के प्रति	—दौलतसिंह तलेसरा	२०४
समर्पण	" "	२०५
	—श्री राजमल जी मेहता	२०६
	—शांतिलाल मेहता	२०६

तृतीय खण्ड : मालवा : ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक गरिमा

मालव इतिहास : एक विहंगावलोकन	—विद्यावारिधि डा० ज्योतिप्रसाद जैन	२०७
मालवा : एक भौगोलिक परिवेश	—डा० बसन्त सिंह	२११
प्राचीन भारतीय मूर्तिकला को मालवा की देन	—डा० भगवतीलाल राजपुरोहित	२१९
मालव संस्कृति को जैनधर्म की देन	—डा० बसन्तीलाल बंग	२३२
मालवा में जैनधर्म : ऐतिहासिक विकास	—डॉ० तेजसिंह गौड़	२४०
साहित्य एवं कला की पुण्य भूमि : मालवा	—रमेश मुनि, सिद्धान्ताचार्य	२५८
मालव-संस्कृति में धार्मिकता के स्वर	—प्रो० श्रीचन्द जैन (उज्जैन)	२६१
मालवा के श्वेताम्बर जैन भाषा कवि	—साहित्य वाचस्पति श्री अगरचन्द नाहटा	२६९
भगवान महावीर और मालवपति दशार्णभद्र —	—मुनि भास्कर	२७९

चतुर्थ खण्ड : धर्म, दर्शन एवं संस्कृति

सम्यक्ज्ञान : एक समीक्षात्मक विश्लेषण—	—मुनि रमेश, सिद्धान्ताचार्य	२८३
भारतीय तत्त्व चिन्तन में जड़-चेतन का सम्बन्ध	—मुनि समदर्शी, प्रभाकर	२९०

जैन दर्शन में जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना के तत्त्व

—डा० नरेन्द्र भानावत एम. ए. पी-एच डी. ३०१

जैन धर्म के आधार भूत तत्त्व : एक दिग्दर्शन

—श्री भगवती मुनि 'निर्मल' ३०८

जैन दर्शन में भावना त्रिषयक चिन्तन

३१४

—डा० (श्रीमती) शान्ता भानावत एम. ए. पी-एच. डी.

जैन धर्म में आचार

—श्री रिषभदास रांका ३२२

निक्षेपवाद : एक अन्वीक्षण

श्री रमेश मुनि शास्त्री ३२८

जैन दर्शन में नैतिकता की सापेक्षता और निरपेक्षता

३३२

—डा० सागरमल जैन एम. ए. पी-एच. डी.

अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान : स्याद्वाद

—श्री अजीत मुनिजी 'निर्मल' ३४१

अनेकान्त दर्शन

—प्राचार्य उ० भा० कोठारी ३४४

प्राकृत भाषा के ध्वनि परिवर्तनों की भाषा वैज्ञानिक व्याख्या

३४८

—डा० देवेन्द्र कुमार जैन

आदर्श गृहस्थ बनाम श्रावक धर्म

—कुमारी राजल बोथरा ३५५

भगवान अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता

—श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री ३५८

हमारे ज्योतिर्धर आचार्य

श्री प्रतापमल जी महाराज (मेवाडभूषण) ३६३

गुरु-परम्परा की गौरव गाथा

—श्री प्रकाश मुनि ३७३

पंचम खण्ड : जैन ज्योतिष

जैन ज्योतिष साहित्य : एक दृष्टि

—डा० तेजसिंह गौड़ एम. ए. पी-एच. डी. ३८१

जैन ज्योतिष एवं ज्योतिषशास्त्री

—लक्ष्मीचन्द जैन ३९२

षष्ठ खण्ड

उपाध्याय श्री कस्तूरचन्द जी महाराज के आज्ञानुवर्ती संत सती गण का सचित्र परिचय

अभिनन्दन-ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोगी

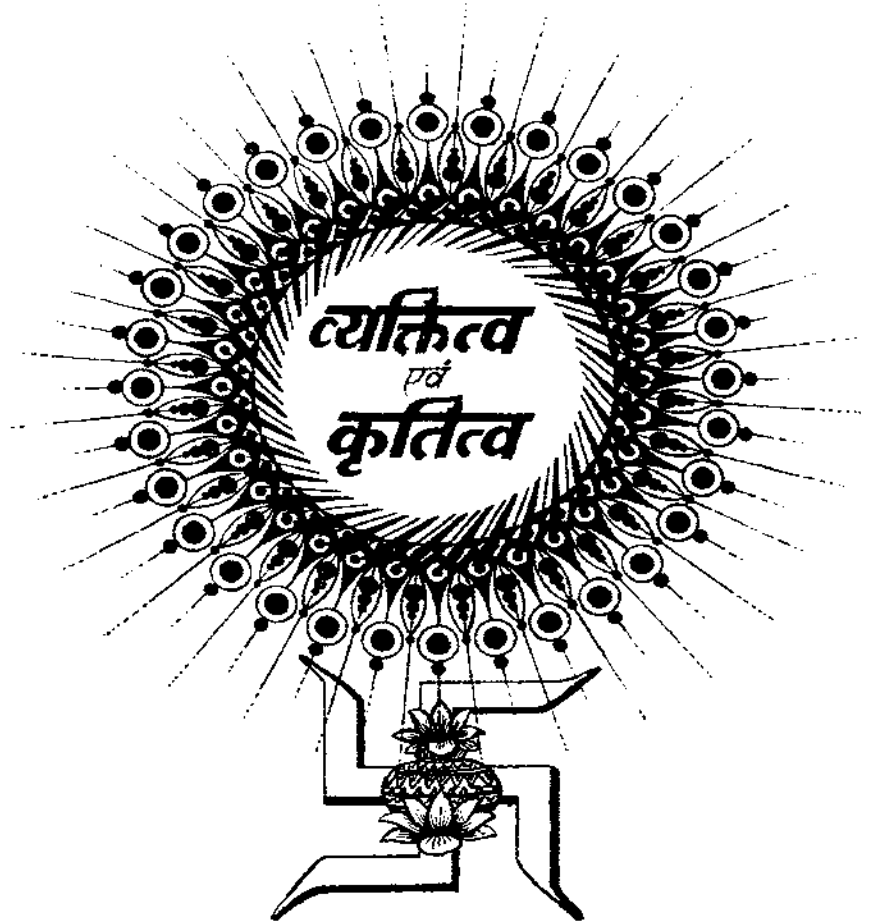
२५११)	तरुण तपस्वी श्री लाभचन्दजी महाराज की प्रेरणा से	
२१११)	श्रीमान् भेरूलाल जी साहब रांका	सिकन्द्राबाद
२१११)	श्रीमान् राजमल जी लखीचन्द जी ललवानी	जामनेर
११११)	श्रीमान् शेरमल जी बोरा	सिकन्द्राबाद
११११)	„ मुन्नालाल जी किशोरकुमार सांखला	„
११११)	„ अभयराज जी सम्पतराजजी सांखला	„
११११)	„ मांगीलाल जी शांतिलाल जी श्रीश्रीमाल	भोजपल्ली
११११)	„ चन्दूलाल रजुलाल शाह	सिकन्द्राबाद
१००१)	„ दिनेशभाई बेंकर	„
५०१)	„ उत्तमचन्द जी मकाणा	„
११११)	„ संचालाल जी बाफना	धुलिया
११११)	„ पन्नालाल जी जांघड़ा	जालना
११११)	श्री वर्धमान स्था. जैन श्रावक संघ	भुसावल
११११)	श्रीमान् सुगनचन्द जी भण्डारी	इन्दौर
११११)	श्री वर्धमान स्था. जैन श्रावक संघ	जावरा
५०१)	महासति श्री मदनकुंवरजी की प्रेरणा से	
५०१)	श्री उदयराज जी निर्मलकुमार जी रेदासणी	बीबी
५०१)	श्रीमान् पांचुलाल जी संतोषकुमार जी चपलोट	उज्जैन
२५१)	„ स्वरूपचन्द जी पन्नालाल जी ललवानी	कलमसरा
२५१)	„ सूरजमल जी जैन, सूरज सेव भण्डार	इन्दौर

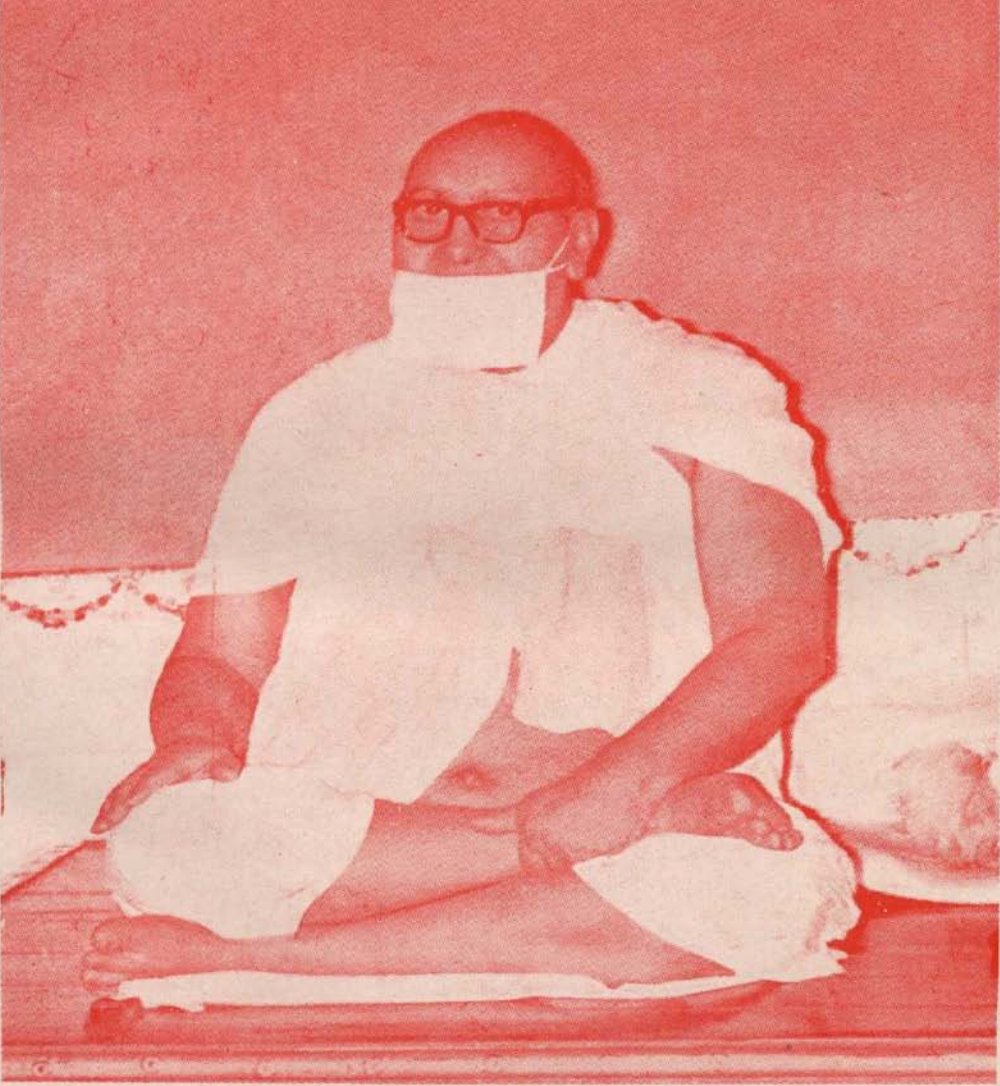


प्रथम खंड I

ज्योतिर्विद् मालवरत्न

उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी म० का

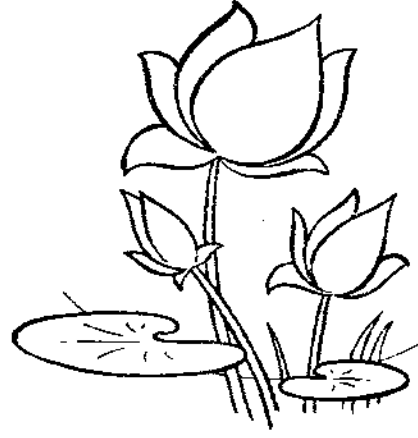




ज्योतिर्विद् मालवरत्न उपाध्याय श्री कस्तूरचन्द जी महाराज

□ श्री रमेश मुनि

[साहित्यरत्न, सिद्धान्ताचार्य]



करुणा के अमर देवता

मालवरत्न पूज्यगुरुदेव
उपाध्याय

श्री कस्तूरचन्द जी
महाराज



भारतवर्ष का लोक-जीवन वैदिक एवं श्रमण संस्कृति से सदैव प्रभावित रहा है। आज भी हमारा देश, जो जगद्गुरु कहलाता है, वह अपनी-अपनी शैली से शाश्वत धर्म का पोषण करने वाली इन दोनों संस्कृतियों का ही प्रताप है। शाश्वत धर्म के दो पहलू हैं— एक शुभ में प्रवृत्ति और दूसरा अशुभ से निवृत्ति। वैदिक संस्कृति शुभ में प्रवृत्ति की प्रधानता पर खड़ी हुई है तो श्रमण संस्कृति अशुभ से निवृत्ति पर विशेष जोर देती है। वैदिक संस्कृति का आधार वेद तथा तत्सम्बन्धित उनका अनुसरण करने वाले आचार्यों के ब्राह्मण, स्मृति आदि ग्रन्थ हैं। श्रमण-संस्कृति का आधार निर्ग्रन्थ गुरुओं के प्रवचन हैं। वेदों की माता गायत्री है, जिससे बुद्धि में सत्प्रेरणा माँगी जाती है और प्रवचनों की माता समिति-गुप्ति है। जिससे मन, वचन और काया के समस्त व्यवहारों पर अनुशासन किया जाता है। वैदिक संस्कृति सम्पूर्ण निवृत्ति का निषेध करती रहती है। जिससे मानव में मानवता बनी रहे और श्रमण संस्कृति अन्धाधुन्ध प्रवृत्ति पर अंकुश रखती है, जिससे मानव दानव बनने से बचता रहे।

मतलब यह है कि—दोनों ही संस्कृतियाँ अपनी-अपनी स्वतन्त्र पद्धति से मानव को देवत्व की ओर ले जाकर परमात्मा के स्वरूप में मिलाने का प्रयत्न करती हैं। दोनों ही संस्कृतियों का ध्येय मोक्ष है और साधना धर्म है। अन्तर इतना है कि—वैदिक संस्कृति विचार प्रदान तो श्रमण संस्कृति आचार प्रदान रही है। वैदिक संस्कृति के संरक्षक प्रायः ब्राह्मण रहे तो श्रमण संस्कृति के संरक्षक प्रायः श्रमण संत रहे हैं। दोनों संस्कृतियों का विशाल साहित्य भण्डार है।

प्रस्तुत में हम श्रमण संस्कृति के एक ऐसे ही संरक्षक श्रमण का जीवन परिचय, व्यक्तित्व का प्रभावक रूप और कृतित्व की अमर रेखाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं जिनसे मानव जगत को सदा मार्गदर्शन मिलता रहा है, दानवीय वृत्तियों की ऊष्मा से संतुष्ट मानवता को सत्य, शील, संतोष, क्षमा, धैर्य की शीतल छाया में आश्रय मिलता रहा है। जिन्होंने संसार को प्रकाश, उल्लास और विश्वास का आलम्बन दिया है।

आकर्षण का केन्द्र

मँझला कद, गौर वर्ण, भरा-पूरा वदन, उन्नत ललाट, चमकते चेहरे पर सदा बिखरती-खिलती रहने वाली मुस्कान, मुख से निस्सृत होने वाली अमृत-सी मीठी वाणी, सतत, शान्ति बरसाने वाले युगल नेत्र, भयभीतों को अभय वरदान से पूरित करने वाले कर कमल, सबने मिलाकर ऐसे अनूठे अनुपम व्यक्तित्व का निर्माण किया है, जो चुम्बक की तरह आगन्तुक अतिथि को पहले ही क्षण अपनी ओर खींच लेता है। जिन्हें हम स्थविरपद-विभूषित, मालवरत्न, परमश्रद्धेय, ज्योतिषाचार्य, कर्णा सागर, प्रातः स्मरणीय गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी महाराज के नाम से पहचानते हैं। उनके व्यक्तित्व में एक अनोखा आकर्षण है सरलता, ऋजुता, उदारता, हृदय की पवित्रता, माधुर्यता एवं दयालुता उनके जीवन की परम निधि है, परम धरोहर है।

जावरा निवासी ओसवाल वंशीय चपलोत गोत्रीय स्व० श्रीमान् रतीचन्द जी अपनी धर्मप्रिया फूलीदेवी के साथ दाम्पत्य जीवन बिता रहे थे। वि० सं० १९४९ जेठ-वदी १३ रविवार की शुभ घड़ी पल में माता फूली ने हमारे चरित्रनायक को जन्म दिया। कस्तूरचन्द के नाम से जिनकी प्रख्याति हुई। जिस प्रकार कस्तूरी की महक से सारा वातावरण महक उठता है, उसी प्रकार कस्तूरचन्द के जन्म पर सारे चपलोत परिवार में खुशियों की खुशबू महक उठी। लालन-पालन सुखपूर्वक होने लगा।

श्रीमान् रतीचन्द जी एक अच्छे व्यवसायी सद्गृहस्थ थे। कुछ समय तक नबाब के मोदी खाने में कार्य करते रहे, फिर भाग्य ने करवट ली तो अफीम के व्यापार विनिमय में काफी धनराशि उपार्जन की। सं० १९५६ के वर्ष में देशवासी दुष्काल की भयंकर चपेट में घिर चुके थे। अन्न-जल के अभाव में हजारों मानव, पशु एवं पक्षी काल के विकराल गाल में समा गये। उस समय दीर्घदृष्टा रतीचन्द जी ने धन-धान्य से मानवों की सेवा करके एक आदर्श श्रावक-जीवन का परिचय दिया।

प्रकृति की ओर से एक के बाद एक आघात

धीरे-धीरे प्रकृति में शान्त सुषमा का निर्माण हो रहा था कि—वि० सं० १९६० के वर्ष में शस्य-श्यामला मालव घरा को प्लेग की महामारी ने झकझोर दिया। कई परिवारों के नामोनिशान मिट गये, कई गाँव खेड़े उजड़ गये, कई बहन-बेटियों का सिन्दूर लुट गया, राजमहलों से झोपड़ियों तक करुण क्रन्दन की ध्वनियाँ सुनाई दे रही थीं। इस महामारी से हमारे चरित्रनायक का परिवार भी बच नहीं सका। प्रथम दिवस में आप श्री के बड़े पिता श्री माणकचन्द जी साहब, जन्मदात्री माता फूली एवं छोटी बहन बाला का निधन हुआ। दूसरे आक्रमण में आप श्री के पिता रतीचन्द जी, लघुभ्राता भागीरथ एवं छोटी बहन लक्ष्मी जाती रही। तीसरे आक्रमण में आपके ज्येष्ठ भ्राता कालुलालजी का प्राणान्त हुआ और चौथे आक्रमण में काल क्रूर ने आपके ज्येष्ठ भ्राता भेरूलाल जी को अपना निशाना बनाया। तदनुसार हमारे चरित्रनायक के जंघा पर भी गाँठ उभर आयी थी। परन्तु ऐसा कहा जाता है—“रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि” इस प्रकार हमारे चरित्रनायक बाल-बाल बच गये।

माता-पिता के वरद-हस्त उठ जाने पर उन सन्तानों पर क्या-क्या गुजरती है ? यह भुक्तभोगी सन्तान ही जान सकती है। बड़े भाई केशरीमल और कस्तूरचन्द जी अभी-अभी काफी लघु वय में से गुजर रहे थे। फिर भी प्रकृति की ओर से आये हुए वज्र से कठोर आघात सहने पड़े। पर न हतोत्साही बने और न अपने लक्ष्य से डिगे। आवश्यक पढ़ाई-लिखाई करने के पश्चात् व्यापारी कार्यों में जुट गये। ठीक तरह से कमाई करने लगे।

श्री खूबचन्द जी महाराज के प्रथम दर्शन

पं० प्रवर श्री खूबचन्द जी महाराज एक शान्तमूर्ति, आदर्श त्यागी, आश्रमों के ज्ञाता, महान् तेजस्वी मुनि थे। उनकी सौम्य और शान्त मुद्रा बड़े-बड़े विद्वानों को एवं प्रतिवादियों को एकक्षण में स्तब्ध कर देती थी। अपने आचार-विचार व्यवहार में जितने आप कठोर थे उतने ही दूसरों के लिए मृदु भी थे। सीमित वस्त्र अल्प उपधि के द्वारा वे अपने संयम-पथ पर गतिशील रहे। एतदर्थ समाज में उनका अच्छा प्रभाव था। विरोधी पक्ष भी उनके आचार-विचार की भूरि-भूरि प्रशंसा किये बिना नहीं रहता था। जिस ओर भी आप चल पड़ते, लोग स्वागत में पलक-पांवड़े बिछा देते थे। आत्मभाव में लीन रहने वाले ये प्रतिभा-सम्पन्न साधक सं० १९६२ का वर्षावास जब जावरा करने के लिए पधारे तो घर-घर और गली-गली में हर्ष का वातावरण छा गया। दर्शनों के लिए नर-नारी इस प्रकार दौड़ पड़े—

घाये धाम काम सब त्यागे ।

मनहूँ रंक निधि लूटन लागे ॥

मुनि श्री के मंगल उपदेश में अनुपम जादू था। एक बार व्याख्यान सुनने के बाद दूसरी बार श्रोता अपने आप चले आते थे। एक दिन श्रीमान् चम्पालालजी चौरङ्गिया बोले—“कस्तूरचन्द ! क्या कारण है कि तुम गुरुदेव के व्याख्यान में नहीं आते हो ? क्या तुम मन्दिरमार्गी हो इसलिए ? मेरी बात मानकर एक बार तो व्याख्यान में अवश्य चलो। मेरा विश्वास है वाणी श्रवण कर तुम्हारा मन हर्ष-विभोर हुए बिना नहीं रहेगा।

वैराग्य का उद्भव

श्री कस्तूरचन्द जी मित्र की बात मानकर व्याख्यान श्रवणार्थ स्थानक में उपस्थित हुए। काफी आनन्द आया, अब बिना कहे नियमित रूप से आप आने लगे। एक दिन श्री खूबचन्द जी महाराज ने “नस्थि कालस्स अणागमो” अर्थात् प्रतिपल काल का आक्रमण चालू है। इस विषय पर सचोट उपदेश फरमाया। वस इस उपदेश का निमित्त मिलते ही कस्तूरचन्द जी के अन्तर्मानस में वैराग्य के अंकुर पल्लवित हो उठे। अहो ! गुरुदेव ने आज ठीक ही कहा है—“काल का कोई विश्वास नहीं है।” मेरे देखते-देखते क्रूर काल ने मेरे परिवार के आठ सदस्यों का अपहरण कर लिया। जिनका न कोई पता है और न उनकी पहुँच है। वास्तव में कालरूपी पिशाच पर विजय तभी सम्भव हो सकती है जब मैं संयम को ग्रहण करूँ।

मन ही मन ध्रुव निश्चय करके एक दिन सेवा में उपस्थित होकर बोले—“पूज्यवर ! कुछ वर्षों से मेरे परिवार का झुकाव मंदिरमार्गी सम्प्रदाय की ओर रहा है। किन्तु आपकी असरकारक वाणी ने मेरे अन्तर्मानस को जगा दिया है। मेरी भावना हुजूर के चरणकमल में दीक्षित बनने की है। आप मुझे अपना शिष्य बनावें, यह हुजूर की बहुत बड़ी कृपा होगी।”

प्रत्युत्तर में महाराज श्री ने फरमाया—“देवानुप्रिय ! संयम के प्रति तुम्हारी रुचि जगी है, तुम स्व-पर कल्याणार्थ संयमी मार्ग की ओर आगे बढ़ना चाहते हो। यह बहुत खुशी की बात है। शुभ विचारों से प्रदीप्त यह दीपक उत्तरोत्तर ज्योतिर्मान हो। हम सन्तों का काम भी वैरागी मुमुक्षुओं को आगे बढ़ाने का है। पर दीक्षा के लिए पारिवारिक अनुमति की अपेक्षा है। आज्ञा प्राप्त हुए बिना हम किसी भी स्थिति में दीक्षा नहीं दे सकते हैं।”

कस्तूरचन्द—“भगवन्त ! आज्ञा का प्रश्न कैसे हल होगा ? मेरे बड़े भाई केशरी मलजी प्रकृति के बड़े विचित्र हैं। व्यसनों में उलझे हुए हैं। वे धर्म के नाम से चिढ़ते हैं। वे दीक्षा क्या जानें ? फिर लिखकर कैसे देंगे ?”

“देवानुप्रिय ! कोई भी कार्य असम्भव नहीं है। प्रयत्नशील बने रहो, एक दिन अवश्य सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी।”

सफलता का सूर्योदय

गुरुदेव से मांगलिक श्रवण कर आप अपने घर पर आये। आज्ञा कैसे प्राप्त होगी? दिमाग में यही उलझन थी। कहते हैं कि—पुण्यात्मा के लिए कभी-कभी दुरूह कार्य भी सुलभ बन जाता है। आपके लिए भी वैसा ही हुआ। आपके जीजा जी अमीचन्द जी को मालूम हुआ कि—कस्तूरचन्द जी की भावना दीक्षा लेने की है पर आज्ञा के बिना कार्य रुका हुआ है। तत्काल आपने केशरीमलजी को समझा-बुझाकर आज्ञा-पत्र लिखाकर महाराज श्री के कर-कमलों में भेंट किया और बोले कि—अब आप कहीं पर भी श्री कस्तूरचन्द जी को दीक्षा दे सकते हैं। इस पर जावरा श्री संघ में एक नई स्फुरण अंगड़ाई लेने लगी। दीक्षोत्सव जावरा श्री संघ के आँगन में हो, ऐसा महाराज श्री के सान्निध्य में सभी ने नम्र निवेदन भी किया, किन्तु गुरु जी श्री जवाहरलाल जी महाराज, कविवर्य श्री हीरालाल जी महाराज, पं० प्रवर श्री नन्दलाल जी महाराज, आदि मुनि मण्डल रामपुरा विराजमान हैं। उन्हीं के नेतृत्व में यह दीक्षोत्सव होना उचित रहेगा। पं० श्री खूबचन्द जी महाराज की ओर से संघ को परामर्श मिला।

अभिनिक्रमण महोत्सव

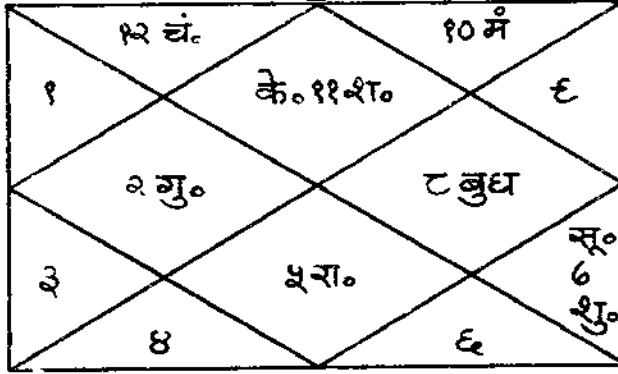
तब शास्त्रज्ञ सुश्रावक श्री मगनीराम जी एवं भाई श्री केशरीमल जी अपने लघु भ्राता वैराग्यानंदी श्री कस्तूरचन्द जी को साथ लेकर रामपुरा विराजित सन्तों की सेवा में पहुँचे। विधिवत्, वन्दना कर बोले—महाराज श्री! कस्तूरचन्द जी की भावना पं० रत्न श्री खूबचन्द जी महाराज के चरण-कमल में दीक्षा लेने की है। हमने बहुत समझाया पर यह अपने विचारों पर अटल है। सहर्ष हमारी ओर से दीक्षा की अनुमति है। अब आप इसे ज्ञान-ध्यान सिखाकर जल्दी से जल्दी दीक्षा प्रदान करें।

तदनुसार आवश्यक ज्ञान प्रारम्भ किया गया। बुद्धि की प्रखरता के कारण अतिशीघ्र साधु प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल, तैंतीस बोल, पाँच समिति, तीन गुप्ति, आदि अनेक थोकड़े एवं भक्तामर स्तोत्र भी कण्ठस्थ कर लिए। ज्ञान-ध्यान एवं जप-तप के प्रति वैरागी भाई की अधिक रुचि को देखकर रामपुरा के श्रावक काफी प्रभावित हुए। तब रामपुरा श्री संघ ने मुनि मण्डल के सान्निध्य में नम्र निवेदन किया कि—“वैरागी भाई की योग्यता बड़ी ही सराहनीय है। दीक्षा का यह अपूर्व लाभ हमारे संघ को ही मिलना चाहिए। ऐसी हमारी सविनय प्रार्थना है।”

संघ के अत्याग्रह पर धार्मिक महोत्सव वहीं होने का निश्चय हुआ। बस घर-घर में खुशी की लहर उमड़ पड़ी। भारी हर्षोल्लास के क्षणों में संघ द्वारा दीक्षा सम्बन्धी पूर्ण तैयारियाँ सम्पन्न हुईं। बाहरी एवं स्थानीय हजारों मानव-मेदिनी के समक्ष वि० सं० १९६२ वीर सं० २४३२ कार्तिक शुक्ला १३ गुरुवार के मंगल मुहूर्त में आम्र तरु तले गुरु प्रवर श्री नन्दलाल जी महाराज के मुखारविन्द से दीक्षा विधि सम्पन्न

हुई। पं० रत्न श्री खूबचन्द जी महाराज के प्रथम शिष्य बनने का आप श्री (श्री कस्तूर चन्दजी महाराज) को सौभाग्य प्राप्त हुआ।

श्री कस्तूरचन्द जी महाराज की दीक्षा कुण्डली



दीक्षा का प्रारम्भिक काल

“पढमं नाणं तओ बया” इस शास्त्रीय वाक्यानुसार अध्ययन (ज्ञान) संयम का प्राण है। ज्ञान के अभाव में संयम-साधना नहीं हो सकती। इसलिए गुरुदेव श्री जवाहर लाल जी महाराज की प्रेरणा पाकर नवदीक्षित मुनि श्री कस्तूरचन्द जी महाराज आगम-ज्ञान की ओर प्रवृत्त हुए। ग्रहण शक्ति और बुद्धि की पटुता के कारण आपने थोड़े ही समय में सम्पूर्ण दशवैकालिक सूत्र एवं कुछ उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन कंठस्थ किये और अनुत्तरोववाई व निरियावलि का सूत्र की वाचना पूर्ण की। अध्ययन के साथ-साथ गुरुदेवों की सेवा-भक्ति एवं विनय वैयावृत्य में भी प्रगति करने लगे।

रामपुरा का यशस्वी वर्षावास पूर्ण हुआ कि—वहाँ से मुनिवृन्द छोटे-छोटे गाँव नगरों को धर्मोद्योत करते हुए सिंगोली आये। आशातीत धर्म-प्रभावना कर धारणी गाँव को पावन किया। यहाँ नवदीक्षित मुनि श्री कस्तूरचन्द जी महाराज का प्रथम केश-लुंचन सम्पन्न हुआ। यात्रा आगे बढ़ी, कई ग्रामवासियों को धर्मालोक से आलोकित करते हुए मांडलगढ़ पधारे। यहाँ श्री शीतलदास जी महाराज के सम्प्रदाय के पूज्य श्री प्रतापमल जी महाराज से स्नेह मिलन कर बिगोद आये। बिगोद गाँव में नव-दीक्षित मुनि श्री (कस्तूरचन्द जी महाराज) ने प्रथम धर्मोपदेश फरमाया। फलस्वरूप काफ़ी त्याग-प्रत्याख्यान हुए। अब कदम चित्तौड़गढ़ की ओर बढ़े। जहाँ जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज विराज रहे थे। यहाँ से सन्त-मण्डली ने निम्वाहेड़ा नगर को पावन किया। यहाँ दोनों महामनस्वी (पं० श्री चौथमल जी महाराज एवं पं० श्री खूबचन्द जी महाराज) ने मिलकर “तप-महात्म्य” पर एक संयुक्त काव्य की सुन्दरतम् रचना कर काव्य साहित्य को उपहार प्रदान किया। वर्षावास सन्निकट था। अतएव मुनिवृन्द अपने-अपने स्वीकृत चौमासी-गाँवों की ओर चल पड़े। तदनुसार हमारे

चरित्रनायक श्री का प्रथम चातुर्मास दादा गुरुदेव श्री नन्दलाल जी महाराज के पावन चरणों में “बड़ी सादड़ी” हुआ ।

प्रगति की ओर बढ़ते चरण

ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसे हमारे चरित्रनायक श्री जी के विगत सभी चातुर्मास शानदार रहे हैं । उन सभी चातुर्मासिक झलकियों का यहाँ वर्णन किया जाय तो स्वतन्त्र रूप से एक विशालकाय ग्रन्थ तैयार हो सकता है । पर पाठकवृन्द को मुझे यहीं नहीं उलझाना है, आगे ले जाकर चरित्रनायक के गरिमा-महिमावंत ज्योतिर्मय जीवन की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ । इसीलिए कुछेक चातुर्मासी कल्पों का दिग्दर्शन ही अत्युत्तम रहेगा ।

“काले कालं समायरे” इस शास्त्रीय सूक्तनुसार नवदीक्षित मुनि को काफी सावधानी रखनी पड़ती है । उभयकालषडावश्यक पर अनुचिन्तन, उभयकाल निश्चित उपकरणों की प्रतिलेखना, गुरुदेवों की परिचर्या, बैयावृत्य, नित्य नवीन ज्ञानोपाजन में तत्परता, कंठस्थ ज्ञान की पुनरावृत्ति यथासमय स्वाध्याय ध्यान, बिना आज्ञा कहीं जाना नहीं एवं बिना आज्ञा कुछ भी गृहस्थों के यहाँ से लाना नहीं । उपरोक्त दैनिक-चर्याओं को आत्मसात् करने में नवदीक्षित मुनि श्री काफी कुशल कोविद रहे हैं । अल्प आयु होने पर भी कुछ ही महीनों में आपने आशातीत योग्यता, गुरु वत्सल्यता, लोक-प्रियता एवं अध्ययन-अध्यापन के प्रति अच्छी रुचि का परिचय दिया । आचार-विचार व्यवहार सम्बन्धी बातें जानकर ही आप नहीं रहे, अपितु साधवाचार की तीक्ष्ण धार पर मुस्कराते मन आप आगे बढ़ने में रहे हैं ।

भगवान महावीर की वाणी में—

आणाणिद्देसकरे, गुरुणमुववायकारए ।
इगियागारसंपण्णे, से विणीए त्ति वुच्चई ॥

—उत्त० ११२

वही साधक विनीत कहलाता है—जो गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला हो, गुरु महाराज के निकट रहता हो एवं गुरुदेव के संकेतों को कार्यान्वित करने में सदा तत्पर रहता हो । और भी कहा है—

वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं ।
पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहई ॥

—उत्त० १११४

जो सदा गुरुकुल में रहने वाला हो, समाधिभाव में रहने वाला हो, उपघान तप करने वाला एवं प्रिय करने और प्रिय बोलने वाला हो, वही शिक्षा प्राप्त करने में योग्य होता है ।

तदनुसार दादा गुरुजी श्री नन्दलाल जी महाराज की पावन सेवा में रहकर प्रथम वर्षावास में आगम सम्बन्धी अच्छा अध्ययन पूरा किया। अनेक गूढ़ातिगूढ़ तात्विक रहस्यों की शुद्ध धारणा की। निःसंकोच स्थानीय श्रावकों से भी तत्त्व-ज्ञान सोखकर अपने ज्ञान भण्डार को परिपुष्ट करने में आप पीछे नहीं रहे। कई वैरागियों को ज्ञान-दान देकर उन्हें धर्म पथ में सुदृढ़ता प्रदान की।

आकृतिगुणान् कथयति

जीवन के पारखी गुरुदेव श्री नन्दलाल जी महाराज तत्क्षण जान गये कि यह मुनि (श्री कस्तूरचन्द जी महाराज) यदि इस तरह ज्ञान ग्रहण करने में उद्यमशील रहा तो मेरा पक्का विश्वास है कि—कुछ ही वर्षों में सुयोग्य बनकर स्वतन्त्र विचरण करेगा। डिब्बों की अपेक्षा इंजन बनने वालों की सदा कमी रही है। अर्थात् निभने वालों की अपेक्षा इंजन के समान निभाने वाले साधु बहुत कम हुआ करते हैं। पर इस मुनि के जीवन में निभने-निभाने की सुन्दर कला के साथ-साथ धीरता-गम्भीरता एवं सहिष्णुता भी कूट-कूट कर भरी हुई है।

युगल भ्राता जोड़ी का उदय

इन्हीं दिनों हमारे चरित्रनायक श्री जी के ज्येष्ठ भ्राता श्री केशरीमल जी का सुप्त मन भी वैराग्य में तत्पर हो उठा। एक दिन केशरीमल जी ताश खेल रहे थे। जावरा निवासी मान्यवर गुलाबचन्द जी कांठेड़ ने जोशीला ठपका देते हुए कहा—अरे केशरीमल ! तुम्हें जरा भी शर्म नहीं। अमूल्य समय व्यर्थ के व्यसनों में पूरा कर रहे हो ? कस्तूरचन्द जी को धन्यवाद ! वे ज्ञान-ध्यान को बढ़ाते हुए मुनि जीवन बिता रहे हैं।

बस, केशरीमल जी बड़ी सादड़ी गुरुदेव के कल्याणकारी सान्निध्य में पहुँचकर बोले—“गुरु भगवंत ! जैसे आपने मेरे छोटे भाई को पूज्यनीय बनाया है। मुझ अपावन को भी अपना शिष्य बनावें। मैं दीक्षा लेने के लिए हजूर के मंगल द्वार पर हाजिर हुआ हूँ।”

यथावसर बड़ी सादड़ी के भव्य प्रांगण में वि० सं० १९६३ कार्तिक शुक्ला १२ के शुभ मुहूर्त में भारी उत्सव के साथ श्री केशरीमल जी चपलोट की दीक्षा विधि सम्पन्न हुई। आपको भी भावी आचार्य श्री खूबचन्द जी महाराज के नेश्राय में घोषित किये गये। अब युगल भ्राताओं (कस्तूरचन्द जी महाराज, केशरीमल जी महाराज) की जोड़ी सूर्य-चन्द्र की तरह दमकने लगी।

विहार यात्रा के संस्मरण

तदनन्तर गुरु जी जवाहरलाल जी महाराज, कवि श्री हीरालाल जी महाराज, गुरुदेव श्री नन्दलाल जी महाराज, प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमल जी महाराज एवं पं० श्री देवीलाल जी महाराज आदि महामना मुनियों की पर्युपासना करते हुए हमारे चरित्र-

नायक श्री की विहार यात्रा मध्यप्रदेश एवं राजस्थान के छोटे-छोटे सैकड़ों गाँव-नगरों में होती रही। विहार यात्रा के अन्तर्गत अनेक वरिष्ठ आचार्यों एवं मुनियों के (पूज्य श्री लाल जी महाराज, पूज्य श्री नन्दलाल जी महाराज, पं० श्री दौलत ऋषि जी महाराज, पं० श्री अमी ऋषि जी महाराज, प्र० कवि श्री मगनलाल जी महाराज, धोर तपस्वी श्री केशरीमल जी महाराज के पावन दर्शन का सौभाग्य एवं तत्वचर्चा श्रवण करने का मौका मिला। हजारों श्रमणोपासक वर्ग से परिचय बढ़ा। विभिन्न गाँव, नगरों के रीति-रिवाजों से अवगत भी हुए। इससे लाभ यह हुआ कि—चरित्रनायक के ज्ञान-दर्शन चरित्र में उत्तरोत्तर प्रौढ़ता, अनुभव में विशालता एवं मनोवृत्ति में उदारता-धीरता का अधिक संचार हुआ।

विहार यात्रा के बीच कई बार आपके समक्ष कष्टप्रद परिषह भी उभरे हैं। फिर भी आप तिलमिलाये नहीं, अपितु साधना जीवन में निमग्न रहे। मानव जहाँ कष्टों की आग से डरता है, भागने की कोशिश करता है, वहाँ महामनस्वी सन्त उससे खेलते हैं। कष्टों की ज्वाला में उनके व्यक्तित्व को निखार मिलता है। एक शायर ने कहा है—

रंग लाती है हीना, पत्थर पर घिस जाने के बाद।
सुखं रू होता है, इन्सा आफतें आने के बाद ॥

आपत्ति आयी है, उससे डरेंगे तो वह आपके सिर पर सवार हो जायेगी। डरिए नहीं, डट करके मुकाबला कीजिए। उससे हाथ से हाथ मिलाइये। आसानी से आप उस पर विजय पा सकेंगे। आगमवाणी भी यही बता रही है—“एस वीरे पसंसिए, जे ण निवज्जइ” जो साधक उपसर्गों और परिषहों से विचलित नहीं होता है, वही वीर प्रशंसा का पात्र है। हाँ तो विपत्तियों का सामना करने में चरित्रनायक सदा ही अवसरवादी रहे हैं।

“विहार चरिया मुणीणं पसत्था” तदनुसार अब आपने अपने आराध्य पूज्य गुरुदेव श्री खूबचन्द जी महाराज की सेवा में रहकर उत्तर भारत की ओर कदम बढ़ायें। सं० १९६७ का वर्षावास आगरा शहर में सम्पन्न किया। काफी धर्मोद्योत के साथ-साथ हजारों जीवों को अभयदान मिला। तदनन्तर दिल्ली संघ के अत्याग्रह पर दिल्ली को पावन किया। यहाँ पर भी आशातीत जप-तप की आराधना सम्पन्न कर बड़ोत, अम्बाला, पटियाला, लुधियाना, अमृतसर, रावलपिंडी, पसरूर, लाहौर, जम्मू आदि पंजाब प्रान्त के अनेक गाँव-नगरों की विहार यात्रा तय की। सर्वत्र संघ प्रभावना में चार चाँद लगे। यात्रा से आपकी अनुभूतियाँ अधिक सुदृढ़ बनीं एवं ज्ञानकोष में भी अभिवृद्धि हुई।

सरल स्वभावी श्री सादीराम जी महाराज, सरल स्वभावी पंजाबी श्री जवाहर लाल जी महाराज, आचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज, पं० श्री आत्माराम जी महाराज, पूज्य श्री मन्नालाल जी महाराज, गणीप्रवर श्री उदयसागर जी महाराज,

पं० महान् कवि श्री माधो मुनि जी महाराज, पं० श्री शिवदयाल जी महाराज एवं प्रख्याति प्राप्त विदुषी महासति श्री पारवती जी महाराज आदि अनेक त्यागी आत्माओं के पावन-दर्शन, मिलन, प्रवचन श्रवण एवं सस्नेह ज्ञान-दान का आदान-प्रदान हुआ। जहाँ-जहाँ आपके चरण-कमल पहुँचे वहाँ चतुर्विध संघ में स्नेह संगठन की अच्छी प्रतिष्ठा हुई। सत्प्रेरक मुनियों के पावन सांनिध्य में जावरा निवासी रतनबाई कटारिया की भगवती दीक्षा प्रख्याति प्राप्त विदुषी महासति श्री चन्दाजी के नेश्राय में हुई। देश भक्त लाला लाजपतराय ने भी मुनियों के पवित्र दर्शन किये एवं पारस्परिक वार्तालाप के अन्तर्गत मुनियों की ओर से उन्हें समयोचित मार्ग-दर्शन भी मिला।

हम पहले ही बता चुके हैं कि—चरित्रनायक श्री जी की मनोवृत्ति सदैव गुण-ग्राही रही है। भले बालक हो कि वृद्ध, जैन हो जैनेत्तर, साधु हों किंवा श्रावक, जहाँ भी अच्छाई दृष्टिगोचर हुई कि—सहर्ष आप उसे स्वीकार करने में हिचकिचाते नहीं हैं। उनका जीवन प्रारम्भ से ही मधुर के समान रहा है जो काँटों को छोड़कर मधुरस पीता रहता है, उनकी वृत्तियाँ ईश्वर के समान हैं जो कड़वी खाद से भी मधुरता खींचकर जीवन को माधुर्य से परिपूर्ण करती रही है।

पंजाब की विहार यात्रा के दौरान पं० रत्न श्री शिवदयाल जी महाराज साहब से व्यवहार सूत्र का अध्ययन कर आपने ज्ञान-गरिमा की अभिवृद्धि की तथा लोक संघर्ष तो अनेक प्रकार के नये अनुभव भी अर्जित किये। इस प्रकार पंजाब प्रान्त में धर्मोद्योत करते हुए पुनः जयपुर शहर में मुनियों का पदार्पण हुआ। उन दिनों वहाँ आचार्य श्री विनयचन्द्र जी महाराज, श्री शोभालाल जी महाराज एवं वयोवृद्ध महासति श्री जड़ाव कुँवर जी महाराज विराजमान थे। पारस्परिक मुनि वृन्द में बहुत ही मधुर व्यवहार-शास्त्रीय अध्ययन-अध्यापन-ज्ञान-दान का खुलकर आदान-प्रदान भी हुआ।

कोटा चातुर्मास

अब आपकी प्रवचन शैली काफी प्रभावशील बन चुकी थी। प्रत्येक प्रवचन में आगमिक अनुभव की गहरी झलकियाँ आने लगीं। जहाँ अनभिज्ञ मानव-आगम वाणी को नीरस मानकर आँख चुराता है, दूर भागने की कोशिश करता है, वहाँ आपके आगमिक व्याख्यान इतने रुचिपूर्ण ढंग से होने लगे कि—घंटों तक श्रोता सुनते हुए अधाते नहीं हैं। शास्त्रीय प्रवचन (वाचना) इतनी मधुर एवं सुरुचिपूर्ण कि—श्रोता झूम-झूम कर आनन्द विभोर होकर बोल उठते कि—ऐसा वैज्ञानिक विवेचन हमने अपने कानों से पहली बार ही सुना है।

सुहृद् योग्यता प्राप्त करने के लिए आपको काफी वर्षों तक महामना कई मुनियों की पर्युपासना में तन्मय होना पड़ा है। सं० १९७० का प्रथम स्वतंत्र वर्षावास (चातुर्मास) आपका कोटा हुआ। इस वर्षावास में पूरा उत्तरदायित्व आप पर ही था। जनता में दान-शील-तप-भाव की आसानीत प्रभावना हुई। कई नर-नारी जो कभी

धर्म-स्थान की ओर देखते ही नहीं थे, कभी सामायिक की आराधना करते ही न थे, उन्हें बलवती प्रेरणा प्रदान की। सामायिक के सही स्वरूप को विभिन्न तरीकों से समझाकर मंगलमय धर्म मार्ग की ओर प्रवृत्त किये।

आगम पठन-पाठन एवं समझाने के सरल-सुबोध ढंग को प्रत्यक्ष देखकर वहाँ विराजित वयोवृद्धा महासति श्री सूरज कुंवर जी महाराज एवं गुलाब कुंवर जी महाराज आदि सतियाँ काफी प्रभावित हुईं। फलस्वरूप हस्तलिखित १८ शास्त्र हमारे चरित्रनायक को समर्पित कर बोलीं—“पूज्यवर! आगमों के प्रति आपकी रुचि देखकर हम आपको अमूल्य आगम रत्न भेंट करते हैं। आप ज्ञान भण्डार की सुरक्षा करें।” इस प्रकार यह चातुर्मास धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा बड़ा ही शानदार ढंग से सम्पन्न हुआ।

साधना के प्रारम्भिक जीवन से चरित्रनायक श्री जी की सुनहरी डायरी गुरु-भक्ति श्रद्धा से ओत-प्रोत रही है। यही कारण था कि—आप भले कहीं पर भी वर्षावास करते पर चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् अपने आराध्य गुरुदेव के पावन सान्निध्य में दर्शनार्थ पहुँच ही जाते थे। इस परम्परा का बहुत ही पवित्र-भावना से पालन कर गुरु वात्सल्य के प्रिय पात्र बने एवं शास्त्रीय निम्नवाणी आपने साकार बनाई—

आयारमट्ठा विणयं पउंजे सुस्सूसमाणो परिगिज्झवक्कं ।
जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो, गुरुं तु णासाययई स पुज्जो ॥

—दश० अ० ६/उ० ३

जो साधक आचार प्राप्ति के लिए गुरुदेव की विनय-भक्ति एवं आज्ञा की परिपालना करता हुआ विचरण करता है वह पूज्य होता है।

अजमेर चातुर्मास

कोटा एवं रामपुरा के भव्य चातुर्मास पूर्ण कर चरित्रनायक जी अपने गुरुदेव के साथ अजमेर पधारे। अजमेर राजस्थान का एक प्रमुख नगर है। जैन समाज का जहाँ काफी प्रभुत्व रहा है। जैनधर्म के प्रति जिनकी स्तुत्य श्रद्धा-भक्ति रही है। अजमेर संघ के अत्याग्रह पर भावी आचार्य प्रवर श्री खूबचन्द जी महाराज एवं श्रद्धेय गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी महाराज का सं० १९७२ का चातुर्मास वहाँ हुआ। व्याख्यान में जनता की सराहनीय उपस्थिति रहती एवं दोपहर में चरित्रनायक श्री जी स्वयं भगवती सूत्र का प्रवचन करते थे। कई मुमुक्षु जिनवाणी से लाभान्वित हुए। कार्तिक मास में मन्दसौर संघ की ओर से सूचना मिली कि—“गुरुजी जवाहर लाल जी महाराज का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिरता जा रहा है। अतिशीघ्र आजीवन अनशन (संथारा) करने वाले हैं।” बस अजमेर से श्रद्धेय श्री खूबचन्द जी महाराज का, पालनपुर से दिवाकर जी महाराज का, सीतामउ से गुरुदेव श्री नन्दलाल जी महाराज का एवं रतलाम से पं० रत्न श्री देवीलाल जी महाराज का विहार मन्दसौर की ओर हुआ।

कुछ सन्त पहुँच गये। उधर संधारा सीझने की घड़ियाँ नजदीक आ रही थीं। एक दिन मन्दसौर निवासी जीतमल जी लोढ़ा को स्वप्न दर्शन हुआ कि—“गुरुजी जवाहरलाल जी महाराज का कार्तिक शुक्ला ६ के दिन, १२ बजकर १५ मिनट पर स्वर्गवास होगा और तीसरे स्वर्ग में पधारेंगे।” विद्युत् की भाँति ये समाचार सारे शहर में फैल गये। दर्शनार्थ जन-प्रवाह नदी पूर की तरह उमड़ने लगा। सभी उस दिन की प्रतीक्षा में आँखें बिलछाये बैठे थे। वही दिन आया। प्रातःकाल में छोटे मन्नालाल जी महाराज ने गुरुजी से पूछा—

“भगवन् ! कुछ ज्ञान का आभास हुआ है।”

हाँ मुने ! ‘क्षयोपशम परमाणे’ अर्थात् कुछ अंश मात्रा में अवधिज्ञान का आभास हुआ है। बस लोढ़ा जी के स्वप्नानुसार उसी समय आप श्री का स्वर्गवास हुआ। इससे पूर्ण विश्वास किया जाता है कि—वह दिव्य आत्मा तीसरे देवलोक में अवश्य पहुँची है।

उपर्युक्त चमत्कारी समाचार कान्फ्रेन्स के मुख्य पत्र “जैन-प्रकाश” के अंक में अच्छे ढंग से प्रकाशित भी हो चुके थे।

तत्पश्चात् चरित्रनायक श्री अपने शिष्य गुलाबचन्द जी महाराज के साथ अजमेर से विहार कर काफी महीनों के बाद पाली पहुँचे। जहाँ गुरुदेव श्री नन्दलाल जी महाराज, श्रद्धेय श्री खूबचन्द जी महाराज ठाणा २६ विराज रहे थे। यहाँ आशातीत धर्म-प्रभावना करके जोधपुर संघ के अत्याग्रह पर जोधपुर पधारे। जहाँ प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर जी महाराज जैन धर्म की अद्वितीय प्रभावना कर रहे थे। यहाँ पारस्परिक संत-मण्डली में काफी विचार-विमर्श हुआ। जहाँ तक पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज के सम्प्रदाय के भावी आचार्य पद की घोषणा न करें, वहाँ तक अर्थात् स्वल्प समय के लिए आचार्य पदोचित समस्त उत्तरदायित्व गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी महाराज के जिम्मे किया गया। मुमुक्षु मूलचन्द जी कोठारी की भगवती दीक्षा इन्हीं दिनों जोधपुर की विशाल जन-सभा के समक्ष सम्पन्न कर सभी सन्त अपने-अपने वर्षावास के नियुक्त स्थानों पर पहुँचे।

आचार्य पद की घोषणा

सं० १९७३ का चातुर्मास चरित्रनायक श्री जी ने पालनपुर का चातुर्मास पूरा कर पुनः ब्यावर पधारे। यहाँ प्र० श्री चौधमल जी महाराज गुरु श्री नन्दलाल जी महाराज, श्री खूबचन्द जी महाराज, पं० श्री देवीलाल जी महाराज आदि वरिष्ठ मुनियों का स्नेह मिलन हुआ। समाज हितार्थ आचार्य देव श्री हुक्मीचन्द जी महाराज के पंचम पट्टधर आगमोदधि शांत-दांत-स्वभावी श्रद्धेय श्री मन्ना लाल जी महाराज को “आचार्य-पद” समर्पित किया गया। इस घोषणा से सर्वत्र अच्छी प्रतिक्रिया हुई। सभी ने इस घोषणा का मुग्ध कंठ से अभिनन्दन किया।

साहसिक जीवन की बातें

सं० १९७४ का वर्षावास कवि श्री हीरालाल जी महाराज गुरुदेव श्री नन्दलाल जी महाराज एवं चरित्रनायक श्री का वर्षावास किशनगढ़ था। परन्तु प्लेग बीमारी के प्रचण्ड प्रकोप के कारण संघ के अत्याग्रह पर मुनियों को अजमेर आना पड़ा। यहाँ कुछ दिनों के पश्चात् कवि श्री हीरालाल जी महाराज की शारीरिक स्थिति दिनोंदिन बिगड़ती गई। अन्ततः संधारा स्वीकार किया गया। अनशन की सूचना पाकर दर्शनार्थ नर-नारियों का भारी प्रवाह उमड़ता रहा। अजमेर एवं किशनगढ़ द्वारा यह निर्वाणोत्सव मनाया गया। शोभा यात्रा में आबाल वृद्ध हजारों सम्मिलित थे।

तत्पश्चात् चरित्रनायक श्री अपने दो साथी मुनियों के साथ धर्म-प्रचार करते हुए सं० १९७५ का वर्षावास करने के लिए कोटा पधार रहे थे। सदैव आपका मनोबल उत्साहवर्द्धक रहा है। कौसी भी परिस्थिति उभरने पर आप कभी गड़बड़ाते नहीं, अपितु उभरी हुई समस्याओं का समाधान खोजने में जुट जाते हैं। एक ऐसा ही प्रसंग मार्ग के बीच उभर आया था—साथी मुनि श्री भेरूलाल जी महाराज को तेज ज्वर ने आ घेरा। गाँव में जैन परिवार का एक भी घर नहीं था। एक टूटे-फूटे मकान में मुनि-वृन्द रात्रि विश्राम ले रहे थे। अनायास रात्रि में आँधी, तूफान और प्रचण्ड जल-वृष्टि शुरू हो गयी। सारा मकान चूने लगा। तब पूरे साहस के साथ चरित्रनायक श्री जी एवं श्री कजोड़ीमल जी महाराज दोनों मुनि मिलकर बीमार मुनि की सुरक्षा के लिए रातभर एक मोटी चादर तानकर खड़े रहे। अन्ततोगत्वा आँधी, तूफान, वर्षा शान्त हुई और मुनियों ने कदम आगे बढ़ाए। परन्तु बीमारी ने पीछा नहीं छोड़ा। मुनि जी आगे बढ़ने में असमर्थता प्रगट कर चुके थे। फिर भी आप श्री अधीर नहीं हुए। उन दोनों मुनियों को मंडाना गाँव छोड़कर आप अकेले तीनों मुनियों के उपकरणों को लेकर १६ मील का उग्र विहार कर कोटा पहुँचे। वहाँ महासती जी की सेवा में उन उपकरणों को रखकर पुनः उग्र विहार करके मंडाना आए। फिर धीरे-धीरे कोटा पधारे। जिस-जिस ने ये समाचार सुने, वे श्री चरित्रनायक कस्तूरचन्द जी महाराज के इस अदम्य साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा किए बिना नहीं रह सके। कहा भी है—

आँधी आती कभी - कभी तूफान भयानक आते हैं।

जिससे विचलित होते प्राणी, तन धर-धर धरति हैं ॥

घिर-घिर कर घन गरज विज्जु-असि पल-पल पर चमकाते हैं।

पर साहसी पथिक निज मन में, जरा नहीं घबराते हैं ॥

परोपकाराय सतां विभूतयः

भौतिकता के स्थान पर आध्यात्मिकता एवं धार्मिक जागृति का शंखनाद करते हुए आप श्री ने अपने साथी मुनियों के साथ रामपुरा, जावरा, जयपुर, मंदसौर, रतलाम, उज्जैन क्षेत्रों में चिरस्मरणीय ऋचातुर्मास पूर्ण किये। धर्मपुरी उज्जैन में तपोधनी

श्री छद्वालाल जी महाराज ने ४२ दिन का दीर्घ तप आप श्री के सुखद सान्निध्य में ही सम्पन्न किया था। इसी प्रकार सराहनीय जप-तप की गंगा प्रवाहमान रही। सैकड़ों-हजारों जीवों को अभयदान मिला। कई स्थानों पर विघटनात्मक तत्व सक्रिय थे, तोड़-फोड़ में लगे हुए थे। पर, आप श्री की जादूभरी वाणी एवं मधुर स्वभाव के कारण वहाँ स्नेह-संगठन की प्रतिष्ठा हुई। कई व्यसनी मानव व्यसनातीत बने। इस क्रमानुसार जिनवाणी का उद्घोष करते हुए एकदा चरित्रनायक श्री का उज्जैन से इन्दौर पदार्पण हुआ। कहा है—“सर्वेसि पाणाणं, सर्वेसि भूयाणं, सर्वेसि जीवाणं, सर्वेसि सत्ताणं, अणुवीड भिक्खू, धम्ममाइक्खिज्जा” (आचारांग सूत्र)।

श्रमण एवं श्रमणी वर्ग आहार-पानी आदि समस्त अभिलाषाओं का परित्याग करके केवल धर्म और परमार्थ की दृष्टि से ही उन भव्य जीवों को प्रतिबोधित करें। श्रमण-जीवन की यही बहुत बड़ी विशेषता है। उनका समूचा जीवन परोपकार के लिए सतत गतिशील रहता है। विश्व के सर्वोदय में वे अपना भी सर्वोदय मानते हैं। विश्वबन्धुत्व की मंगल भावना का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार हो, जन-जीवन में सम्यक् बोध का विस्तार हो, इस मंतव्य को साकार करने के लिए जैन भिक्षु-भिक्षुणी वर्ग ग्रामानुग्राम परिभ्रमण किया करते हैं। सज्जनात्माओं का एक स्थान पर स्नेह-मिलन होना स्व-पर के लिए सुख-शान्ति का द्योतक माना है। तदनुसार इन्दौर में चरित्रनायक श्री, पं० श्री शंकरलाल जी महाराज, छोटे नन्दलाल जी महाराज, चौथ ऋषि जी महाराज एवं धूलचन्द जी महाराज आदि अनेक मुनियों का समागम हुआ। संयुक्त प्रभावशाली प्रवचनों का तत्कालीन जनता पर गहरा असर हुआ। कई बड़े-बड़े अधिकारी भी आकर्षित हुए। जीवदया का सुन्दर कार्यक्रम बना और तीन रियासतों (इन्दौर-उज्जैन-धार) के अधिकारियों की ओर से अमुक सीमा तक हिंसा बन्दी की घोषणा तत्काल करदी गई।

चरित्रनायक श्री जी के ज्ञान-गर्भित प्रवचनों से प्रभावित होकर इन्दौर के महामन्त्री हीराचन्द जी कोठारी एवं इन्दौर नरेश तुकोजी राव ने दर्शन किये। काफी समय तक “जीव-दया” विषय पर वार्तालाप हुए। श्रमणोचित कठोरतम आचार से तुकोजी राव काफी प्रभावित भी हुए। गुरुदेव के मुखारविन्द से कुछ नियम भी ग्रहण किये।

इस प्रकार अहिंसा, अनेकांत एवं अपरिग्रह की त्रिवेणी प्रवाहित करते हुए एकदा चरित्रनायक का नाथद्वारा में पदार्पण हुआ। यहाँ पर स्थानीय समाज दो टुकड़ों में विभाजित था। फूट के कटु प्रभाव से सामाजिक वातावरण कलुषित दृष्टिगोचर हुआ। विद्वेषपूर्ण विघटनात्मक वातावरण को देखकर आपको संतोष नहीं हुआ, तब आपने अपने ओजस्वी प्रवचनों में फूट से होने वाली हानि पर प्रकाश डालते हुए कहा कि—“जहाँ फूट का बाजार गरम रहता है, वहाँ झूठ-लूट-माथाकूट एवं राग-द्वेष की अभिवृद्धि सम्भव है। वहाँ सत्य हकीकत पर पर्दा डाला जाता और मिथ्या-प्रलाप का नारा

बुलन्द होता है। इसलिए व्यक्तिगत हितों को तिलांजलि देकर सभी को दीर्घदृष्टि पूर्वक सामाजिक हित सोचना चाहिए और पारस्परिक ऐक्यता का निर्माण हो। यही मेरी आन्तरिक प्रबल इच्छा है।”

तत्कालीन समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ा और सभी ने पुरानी बातों को ताक में रखकर गुरुदेव के कहे अनुसार फूट को एक मत से विदाई दी और ऐक्यता भाव का निर्माण किया। इस संगठन से नाथद्वारा के सकल जन-जन में खुशियों का सागर लहराने लगा। घर-घर में श्री कस्तूरचन्द जी महाराज के गुण-गान होने लगे।

रामपुरा वर्षावास

अपवित्रः पवित्रो वा दुस्थितो सुस्थितोऽपि वा ।

यः स्मरेत् परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥

जिन मुमुक्षु महर्षियों ने आत्म-हित के पथ का अन्वेषण किया है, उन्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन की प्रशान्त छाया का ही अन्त में आश्रय लेना पड़ा है। ऐसे ही महर्षियों ने निर्ग्रन्थ-प्रवचन की यथार्थता हित करता और शान्ति सन्तोष प्रदायकता का गहरा अनुभव करने के बाद जो उद्गार निकाले हैं, वे वास्तव में उचित ही हैं। मानव समाज चाहे तो उनके अनुभवों का लाभ उठाकर अपना पथ प्रशस्त बना सकती है।

इसी प्रकार उज्जैन के आस-पास के क्षेत्रों में निर्ग्रन्थ-प्रवचनों का प्रचार-प्रसार करते हुए चरित्रनायक जी जावरा शहर की ओर आ रहे थे। मार्ग में एक छोटे गाँव में रात्रि विश्राम ले रहे थे। उस गाँव में ज्वर का दौर-दौरा था। एक ज्वर से पीड़ित पटेल आकर बोला—

“महाराज ! मुझे कुछ मंत्र सुनाइये। मैं बुखार से पीड़ित हूँ।”

तब महाराज श्री ने प्रसिद्धवक्ता श्री चौथमल जी महाराज द्वारा रचित “साता कीजो जी श्री शान्तिनाथ प्रभु शिवसुख दीजो जी” यह स्तवन और मांगलिक सूत्र श्रवण कराया। कुछ ही समय में ज्वर उतर गया। जहाँ एक स्वस्थ हुआ उसने दूसरे के कानों तक बात पहुँचाई। दूसरे ने तीसरे के कानों पर, इस प्रकार धीरे-धीरे बात सभी घरों में फैल गई। अब तो इतनी धूम मच गई कि—महाराज श्री ! जिस मार्ग से विहार कर रहे थे, उस मार्ग पर सैकड़ों नर-नारियों की भीड़ जमा हो गई। वस्तुतः विहार में काफी विलम्ब भी हुआ।

“गुरुजी ! प्रचण्ड बुखार ने छः महीने का खाया-पिया निकाल दिया है। मुझे भी मन्त्र सुना दीजिए। मैं अच्छा हो जाऊँगा।”

दयालु देव दया दृष्टिपूर्वक स्तवन एवं मांगलिक सुनाते रहे। मांगलिक सुनकर जो-जो स्वस्थ हुए, वे गुरुदेव के चरणों में लोट-पोट होकर बोले—“गुरुजी ! आपने हमें अच्छा कर दिया।”

भाई ! मैंने कुछ नहीं किया है। मेरा तथा प्रभु-स्तवन का निमित्त पाकर, तुम्हारे भाग्य में आराम होने का था। उन्हें सुख-शान्ति का सन्देश देकर गुरुदेव के चरण आगे बढे। “इदं शरीरं व्याधि-मन्दिरम्” तदनुसार स्वयं चरित्रनायक जी को मार्ग के बीच में बुखार एवं मोतीजरा हो गया। फिर भी साथी मुनियों की वैयावृत्य में लगे रहे। उधर आचार्य देव श्री मन्नालाल जी महाराज का चातुर्मास रामपुरा स्वीकृत हो चुका था। रामपुरा का श्री संघ चरित्रनायक श्री के चातुर्मास के लिए भी लालायित था। संघ के कुछ अग्रगण्य गुरुदेव की सेवा में उपस्थित होकर बोले—“हुजूर ! आप भी इस चातुर्मास का रामपुरा श्री संघ को लाभ प्रदान करें। ताकि आचार्य श्री की सेवा में आप रह सकेंगे। हमें सेवा का लाभ मिलेगा। ऐसा अवसर बहुत ही कम मिला करता है।” प्रत्युत्तर में गुरुदेव ने फरमाया—“इससे बढ़कर और खुशी क्या होगी ? आचार्य प्रवर की पावन सेवा में शास्त्र-पठन-पाठन ज्ञान-ध्यान का अपूर्व लाभ निहित है। आचार्य देव की सेवा का लाभ बहुत कम मिला करता है। सुखे-समाधे रामपुरा आचार्यदेव की सेवा में रहने के भाव हैं।”

इस आश्वासन पर रामपुरा की भक्त-मंडली में हर्षोल्लास का पारावार उमड़ पड़ा। सभी यही मान रहे थे—“अधिकस्य अधिकं फलम्” चातुर्मास का शुभारम्भ हुआ। आचार्य प्रवर एवं चरित्रनायक श्री के प्रभावशाली प्रवचन शुरू हुए, प्यासे चातक की भाँति भव्य-मण्डली लाभान्वित होने लगी। निवृत्तिपुरी के संदेशवाहक महामहिम आचार्य देव के अगाध आगमिक अनुभव एवं ज्ञान गंगा में डुबकियाँ लगाकर भव्य प्राणी नोनिहाल हो रहे थे। दर्शनार्थियों के निरन्तर आगमन से ऐसा भास रहा था, मानो रामपुरा-रामेश्वर तीर्थ बन गया था।

“रमए पडिए सासं हयं भद् व वाहए”

—उत्त० १।३७

विनीत-बुद्धिमान शिष्यों को शिक्षा देते हुए ज्ञानी गुरु उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं, जिस प्रकार भद्र अश्व पर सवारी करते घुड़सवार।

तदनुसार आचार्य प्रवर श्री मन्नालाल जी महाराज, चरित्रनायक जी के सेवा भक्ति, विनयशीलता, व्यवहार पटुता, अनुशासनप्रियता, मधुर भाषण आदि व्यवहारों पर चारों ही मास अत्यधिक प्रसन्नचित्त रहे। ज्ञान ग्रहण करने की रुचि को देखकर आचार्य देव मन ही मन जान गये कि—कस्तूर मुनिजी को जितना भी आगम ज्ञान दिया जाय, उतना ही इस विनयशील पात्र में सुरक्षित रहेगा। इस प्रकार आचार्य प्रवर ने द्वादशांगी मंजूषा का अमूल्य ज्ञान भण्डार खोलते हुए फरमाया था कि—

सुस्सुसइ पडिपुच्छइ सुणइ गिण्हाइ ईहए वावि ।

तत्तो अपोहए वा धारेइ करेइ वा कम्मं ॥

—नदीसुत्र गाथा ६५

सुनने की इच्छा करता है, पूछता है, उत्तर को सुनता है, ग्रहण करता है, तर्क-वितर्क से ग्रहण किये हुए अर्थ को तोलता है, तोलकर निश्चय करता है, निश्चय अर्थ को धारण करता है, अन्ततः उसके अनुसार आचरण करता है। आगे और फरमाया कि—

विणएण णरो गंधेण चंदणं सोमयाइ रयणियरो ।

महुररसेण अभयं, जणपियत्तं लहइ भुवणे ॥

—धर्मरत्न प्रकाश

जैसे सुगंध के कारण चंदन, सौम्यता के कारण चन्द्रमा और मधुरता के कारण अमृत जगत्प्रिय है, ऐसे ही विनयग्रहण के कारण साधक लोगों में प्रिय बन जाता है।

आचार्य भगवंत की महान् कृपामयी उदारता को देखकर चरित्रनायक भी ज्ञान-खजाना बटोरने में पीछे नहीं रहे। अवकाश के अनुसार पृच्छा करते रहे। जम्बू-द्वीप प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति एवं भगवती सूत्र का सांगोपांग अध्ययन आचार्य देव के सान्निध्य में सम्पन्न किया। विविध नई धारणाओं का निश्चय किया। फलस्वरूप चरित्रनायक जी का ज्ञान कोष सुदृढ़ ठोस एवं तेजस्वी बना।

इस प्रकार यह वर्षावास तप-जप, अध्ययन-अध्यापन के रूप में बहुत ही सफल रहा। चतुर्विध संघ में अद्वितीय प्रभावना हुई। विदाई प्रदान करते हुए आचार्य प्रवर ने कहा था—

“आगमवलिया समणा निग्गंथा”

—व्यवहार सूत्र १०

अर्थात्—“श्रमण निर्ग्रन्थों का बल आगम (शास्त्र) ही है। इसीलिए ज्ञान-वृद्धि में अप्रमत्त रहे।”

श्रमण-जीवन में समत्वयोग का आदर्श

आचार्य देव से आज्ञा प्राप्त कर चरित्रनायक श्री जी ने कुछ मुनियों के साथ विहार करते हुए बड़ी सादड़ी का चातुर्मास पूरा किया। तत्पश्चात् कपासन पधारे। उन दिनों कपासन का श्री संघ दो दलों में बँटा हुआ था। महेश्वरी एवं विप्र समाज में भी काफी विद्वेष चल रहा था, फूट के कारण पारस्परिक निंदा-बुराई एवं मिथ्यालोचना का बाजार अत्यधिक गरम था। महाराज श्री को जब आभ्यन्तर बीमारी का पता चला तो आपका मृदुमन स्नेह-संगठन की स्रोतस्विनी प्रवाहित करने में जुट गया। मधुर व्याख्यानों द्वारा दोनों पक्षों को समझा-बुझाकर संगठनात्मक अभिनव वातावरण तैयार किया। इसी प्रकार महेश्वरी एवं विप्रसमाज में भी पारस्परिक क्षमा-याचना करवाकर बन्धुत्व भाव का सर्जन किया।

एकदा आप श्री बूंदी की ओर पधार रहे थे। संत जीवन परिषदों के कगार पर खड़ा है। पता नहीं किस समय में कठिनाइयाँ उभर आयें। पर संत-आत्मा गड़बड़ाती

नहीं। अपितु समस्व योग में रमनशील रहते हैं। यहाँ ऐसे ही प्रसंग अंकित किये जाते हैं—

सूर्यास्त का समय अति निकट था। एक छोटा-सा गाँव न मंदिर का पता था, न धर्मशाला ही थी। आखिर एक किसान के टूटे-फूटे मकान के बरामदे में ठहर गये। कुछ समय के बाद वही किसान आ गया जिसका कि—मकान था। वह आते ही बोल पड़ा—“क्यों ठहरे यहाँ किसने कहा? इसी वक्त खाली करो।”

महाराज बोले—“भाई! हम साधु हैं। दूर से चलकर आये हैं। रात में हम चलते नहीं हैं। सुबह होते ही आगे चले जायेंगे।”

नहीं, यह नहीं चलने का, मैं अपने मकान के बरामदे में सोने नहीं दूँगा। क्योंकि—“तुम जैन लोगों के गुरु रात में रोटी नहीं खाते हो और मैं आने वाले राहगीरों को भूखे नहीं सोने देता हूँ। हाँ, खाने के लिए मंजूरी देते हो तो यहाँ ठहरो। वरना नहीं।”

भाई! तुम्हारी मनुहार की आदत है, परन्तु हम अपने प्रण को भंग कैसे करें? तुम ही कहो—क्या प्रण भंग करना अच्छा है?

नहीं महाराज! प्रण तो भंग नहीं होना चाहिए! पर मेरा भी प्रण है—“मैं किसी को भूखे नहीं सोने देता हूँ।”

आखिर में उसने गली निकाली कि—सुबह मेरे यहाँ से धोवन पानी और राबड़ी लेकर ही आपको जाना होगा। संतों को भक्त की बात माननी पड़ी।

चरित्रनायक श्री जी एवं संतों के चरण बूंदी की ओर आगे बढ़े तो फिर कठिनाई का सामना करना पड़ा—“कुछ बन्दूक एवं तलवार धारी पुलिस जवान मार्ग रोककर खड़े हो गये। हम तुम्हें आगे नहीं जाने देंगे। पता नहीं, तुम कौन हो? कहाँ जा रहे हो? किसलिए बूंदी जा रहे हो?”

महाराज बोले—“भाई! हम जैन साधु हैं। धर्म प्रचार के लिए जा रहे हैं।”

नहीं, हम आपको आगे नहीं जाने देंगे। क्योंकि शहर में रेसीडेन्ट (लार्ड) साहब आने वाले हैं। इसीलिए साधु-संन्यासी-अभ्यागतों के लिए रोक लगी हुई है। वे कोई भी बूंदी नहीं जा सकते हैं। आप भी साधु-संन्यासी की कोटि में हैं, इसीलिए अपना भला चाहते हो तो वापस घूम जाओ।”

महाराज श्री ने काफी देर तक उन्हें समझाया, तब कहीं जाकर उन्हें विश्वास हुआ—वास्तव में ये साधु सरकार के प्रति वफादार हैं। इनका जीवन बड़ा पवित्र है। बोले—अच्छा, आप जाइये, पर बस्ती में इधर-उधर ज्यादा घूमें-फिरें नहीं। आप पर आपत्ति आयेगी, और हमारी भी मौत हो जायेगी।

मुनियों ने नगर प्रवेश किया। एक दिन वही अधिकारी मुनियों के सामने हाथ जोड़कर खड़े थे। जिन कर्मचारियों ने मुनियों को रोकने की धृष्टता की थी, वे सभी इस

दृश्य को देखकर विस्मय में डूब गये । रेसीडेन्ट के चले जाने के बाद कर्मचारी बोले—
हम आपको समझ नहीं पाए कि—आप इतने बड़े महात्मा हैं ? हमें क्षमा करें ।

गुरु नन्द का स्वर्गारोहण

संपत्ती विणीयस्स य ।”

—द० ६।२।२२

विनीत सम्पत्ति का पात्र कहा है । तदनुसार दादा गुरुदेव श्री नन्दलाल जी महाराज के कृपा पात्र शिष्य-प्रशिष्यों में से चरित्रनायक श्री जी का स्थान अग्रगण्य था । आपके जीवन विकास में दादा गुरुजी का बहुत बड़ा योगदान रहा है । “आणातवो आणाइ संजमो तह य दाणमाणाए” (संबोध सत्तरि) अर्थात्—आज्ञा में तप है, आज्ञा में संयम है और आज्ञा में ही दान-मान है । जो गुरुजनों की आज्ञाओं का यथोचित पालन करता है, उनके निकट सम्पर्क में रहता है एवं उनके हर संकेत चेष्टाओं को कार्यान्वित करने में तत्पर है, वह सत्पात्र विनीत शिष्य कहलाता है । दादा गुरु जी की सेवा के लिए जब-जब चरित्रनायक श्री को याद किया तब-तब आपने अपना अहोभाग्य समझा । और गुरु सेवा को प्रमुखता देकर अति शीघ्र काफी लम्बी सफर तय करते हुए सेवा में पहुँचे ।

यह बात सं० १९६३ रतलाम वर्षावास की है । उन दिनों घर्मदास मित्र मण्डल में तपोधनी श्री भगवानदास जी महाराज विराज रहे थे । पहले व्याख्यान तपस्वी महाराज फरमाते थे, तत्पश्चात् चरित्रनायक श्री जी रोचक शैली में विविध आगमिक अनुभूतियाँ एवं लौकिक दृष्टान्तों सहित फरमाते थे । व्याख्यानों में अनीखा आकर्षण था, श्रोताओं की उपस्थिति उत्तरोत्तर वृद्धि पर थी । धार्मिक अनुष्ठानों की नर-नारियों में प्रतिस्पर्धा लगी हुई थी । इस प्रकार चतुर्विध संघ में शांत-स्वच्छ वातावरण परिब्याप्त था ।

सावन शुक्ला तीज के दिन दादा गुरुजी श्री नन्दलालजी महाराज संतों को शास्त्राभ्यास करवा कर शौचादिकार्यों से निवृत्त होकर पधारे । कुछ ही क्षण बीते होंगे कि आप श्री का जी मचलने लगा, बबराहट बढ़ने लगी । तत्क्षण आप जान गये कि—अब यह शरीर धोखा देने वाला है, इस शरीर की अवधि पूरी होने जा रही है । ऐसे समय में इस आगम-वाणी को नहीं भूलना चाहिए ।

“लाभंतरे जीविय बूहइत्ता, पच्छा परिणाय मलावधंसी ।”

—उत्त० ४।७

रत्नत्रयादि का जब तक लाभ हो, तब तक जीवन की वृद्धि करें । बाद में समाधिपूर्वक शरीर का परित्याग करें ।

जीवियं नाभिकंखिज्जा, मरणं नोविपत्थए ।

दुहओ वि न सज्जेज्जा, जीविए मरणे तहा ॥

—आचारांग सूत्र १।१।१४

साधक न जीने की और न मरने की कामना करे। अपितु वह जीवन और मरण दोनों में ही समभाव रखे।

तदनुसार समस्त ममत्व भावों से मुक्त होकर महाराज श्री ने आत्म-भाव में रमन करते हुए आवाज दी—“कस्तूरा ! कस्तूरा ! जल्दी आओ मुझे संथारा करना है, अब अधिक समय तक यह शरीर रहने वाला नहीं है। श्री कस्तूरचन्द जी महाराज, पं० श्री मनोहर लाल जी महाराज आदि संत सेवा में पहुँचे। शरीर की गम्भीर हालत देखकर संथारा करवा दिया गया। चरित्रनायक श्री जी स्तवन-स्वाध्याय सुनाने में जुटे रहे। अति शीघ्र संथारे की सूचना सारे शहर में फैल गयी। दर्शनार्थियों का प्रवाह नदी पूर की तरह उमड़ पड़ा। नीम चौक तीर्थस्थल-सा रमणीय प्रतिभासित होने लगा। लगभग सवा चार बजे वह तेजस्वी दिव्यात्मा “नमोऽस्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं” का उच्चारण करती हुई स्वर्ग की ओर जाती रही। शव यात्रा समारोह का दृश्य बड़ा ही हृदय द्रावक था। जिसमें सभी सम्प्रदाय के हजारों नर-नारियों द्वारा उस दिवंगत दिव्यात्मा को श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं।

पाली चातुर्मास

पाली संघ के अत्याग्रह पर संघ हितार्थ एवं रत्नत्रय की अभिवृद्धि की दृष्टि से चरित्रनायक श्री जी ने सं० २००० का चातुर्मास पाली बिताना उचित समझा। पाली क्षेत्र मरुदेश का प्रतिष्ठा सम्पन्न क्षेत्र रहा है। जहाँ जैन समाज के धर्मनिष्ठ सैकड़ों घर हैं। जिन शासन की उन्नति में जिनका सराहनीय योगदान इतिहास प्रसिद्ध है। अपेक्षाकृत उदारता में भी अग्रगण्य रहा है। यही कारण है कि—आज भी पाली श्री संघ प्रगतिशील संघों से पीछे नहीं, अपितु दो कदम आगे है।

अपने साथी मुनि श्री भेरूलाल जी महाराज, तपस्वी श्री मयाचन्द जी महाराज, श्री दीपचन्द जी महाराज के साथ पदार्पण किया। व्याख्यान के सुन्दर आयोजन होने लगे। जनता में प्रेरणा अंगड़ाइयाँ लेने लगी। तपस्वी श्री मयाचन्द जी महाराज ने ३३ दिन की तपाराधना पूरी की तो स्थानीय श्रावक-श्राविका वर्ग में भी यथाशक्ति धार्मिक अनुष्ठानों की साधना में पीछे नहीं रहे। एक दिन गुरुदेव श्री को भावी विघ्न सम्बन्धी कुछ आभास हुआ, तब स्थानीय संघ के प्रमुख वर्ग को सावधान करते हुए—चरित्र-नायक ने कहा था—“सामूहिक रूप से आयम्बिल तप करने से आने वाली विघ्न-घटा विलीन होते देर नहीं लगती है। द्वारामती का अकाट्य उदाहरण सामने रखा।” बस, गुरुदेव श्री से इस प्रासंगिक प्रेरणा को पाकर स्थानीय नर-नारियों में ढाई हजार आयम्बिल तप हुए, दो सौ मूकप्राणियों को अभय दिलाया एवं अन्य काफी सुकृत के कार्य पूरे हुए।

देखते-देखते विघ्न की प्रचण्ड घड़ियाँ निकट आईं। अतिवृष्टि के कारण विकराल रूप धारण कर नदी आ धमकी। सभी का जीवन मुट्टी में था। पर महामनीषी की सद् कृपा से किसी की विशेष हानी नहीं हुई। सभी जान-माल से सुरक्षित रहे। विघ्न

अन्त में काल के गाल में समा गया। सारी जनता बोल पड़ी—“गुरुदेव के मार्ग-दर्शन से हम बच गये ! हम बच गये ।”

एक मधुर स्मृति

सं २००४ का वर्षावास कोटा (राजस्थान) में था। धार्मिक प्रवृत्तियाँ प्रगतिशील थीं। उन दिनों वहाँ कोटा सम्प्रदाय के त० श्री मांगीलालजी महाराज साहब वहाँ विराज रहे थे। वे शारीरिक अंगोंपांग से लाचार थे। चरित्रनायक श्री की सेवा में प्रार्थना की कि—अब मेरा जीवन स्वल्प काल का है, मैं आँखों से एवं पैरों से लाचार हूँ। फिर भी किसी गृहस्थ से सेवा करवाना नहीं चाहता हूँ। आप मुझे संयम का साथ दें। ताकि मेरा संयमी जीवन निर्मल रह सके। इस प्रकार उद्गारों को व्यक्त करके एक महीने की तपस्या का प्रत्याख्यान करके संयम में विचरण करने लगे।

प्रत्युत्तर में श्रद्धेय गुरुदेव ने कहा—तपस्वी जी ! सेवा करना तो मुनियों का परम धर्म है। आप निश्चित-निश्चल होकर तपाराधना में रत रहें। मैं तथा मेरे साथी मुनि सेवा के लिए तैयार हैं। भगवान महावीर के इस सिद्धान्त को कैसे भूल सकते हैं—

“गिलाणस्स अगिलाए वेयावच्चकरणयाए अब्भुठ्ठेयव्वं भवई ।”

—स्थानांग सूत्र ८

रोगी की सेवा करने के लिए सदा अग्लान भाव से तैयार रहना चाहिए। और भी कहा है—

“समाहिकारएणं तमेव समाहिं पडिलव्वभई ।”

—भगवती सूत्र

अर्थात्—जो दूसरों के सुख एवं कल्याण का प्रयत्न करता है वह स्वयं भी सुख एवं कल्याण को प्राप्त होता है। वस्तुतः चरित्रनायक श्री ने बहुत ही स्नेह सौजन्यता के साथ निष्ठापूर्वक उन महातपस्वी की वैयावृत्य सेवा-सुश्रुषा की। अन्त में, उनसठवें दिन उस तपोधनी का स्वर्गवास हो गया। समय गुजर गया। पर बात रह गई।

इसी चातुर्मास के अन्तर्गत एक दिन कोटा निवासी एक हस्तरेखाविज्ञ विद्वान् आकर बोला—

“क्यों महाराज ! हस्तरेखा एवं ज्योतिष सम्बन्धी कुछ ज्ञान-विज्ञान का जान-पना है ?”

“बड़ा बड़ाई ना करे, बड़ा न बोले बोल”—इस विचारधारानुसार गुरुदेव ने आगन्तुक विप्रवर से सरल मुद्रा में कहा—

“पण्डित जी ! काम चलाऊ अर्थात् सिन्धु में से बिन्दु के समान समझ लीजिए ।”

जैसा चाहिए वैसा संतोष नहीं होने से पंडित वहाँ से चलता बना और कुछ दूरी पर बैठे हुए मुनियों के पास जाकर धीरे से बोला—

“आपके बड़े मुनि महाराज कम पढ़े-लिखे मालूम होते हैं ?”

प्रत्युत्तर में साथी मुनियों ने कहा—पंडित जी ! आपका अनुभव बिलकुल गलत है। क्या आप नहीं जानते हैं—“हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल” भरा हुआ घड़ा कभी शब्द नहीं करता है—“सम्पूर्ण कुम्भो न करोति शब्दम्।” तदनुसार हमारे बड़े महाराज (श्री कस्तूर चंदजी महाराज) जैन आगमों में ज्योतिष एवं सामुद्रिक ज्ञान में काफी पढ़ेंचे हुए हैं। अति ही अनुभवशील हैं। हमारे सम्प्रदाय में ज्योतिष एवं हस्त-रेखा में आपका मुख्य स्थान रहा है। विद्वान अपने मुँह से अपनी बड़ाई कदापि नहीं करते हैं ?”

तो मैं कुछ हस्त-रेखा के चित्र साथ लाया हूँ। इनके सामने रखूँ। ये चिह्नें तो नहीं ? पंडित ने मुनियों से पूछा।

ऐसी बात नहीं ! ये महा-मनस्वी धीर-वीर-गम्भीर-गुण से ओत-प्रोत हैं। प्रश्न-कर्ताओं का समाधान करना इन्हें अभीष्ट है। हस्तचित्र अवश्य सामने रखो। आपको भी जानकारी नहीं मिलेगी। मुनियों ने कहा।

वह अपने जेब में से विभिन्न हस्त रेखाओं से मंडित कुछ हस्त-चित्र निकाल कर गुरु प्रवर चरित्रनायक श्री के सामने रखकर बोला—“मुनि जी ! आपके साथी मुनियों से मालूम हुआ कि—आप महान् ज्ञानी, ध्यानी-योगी हैं, मैंने आपको पहचाना नहीं। मेरा अनुमान गलत रहा। मुझे माफ करिए। देखिए यह हस्त-रेखा वाला इन्सान आपकी ज्ञान दृष्टि में कैसा हो सकता है ? आप अपना अभिमत अभिव्यक्त करें।”

इस हस्त-रेखा चित्र को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि यह मानव राजा होना चाहिए। साथ ही साथ हिंसक भी होना चाहिए। रहस्योद्घाटन करते हुए गुरु भगवंत ने कहा।

गुरु प्रवर द्वारा प्रकथित सम्यक् समाधान पर वह पंडित आश्चर्यान्वित हुआ। क्योंकि—महाराज श्री का अनुभव बावन तोला पाव रत्ती सही था। मतलब यह कि वह हस्त-चित्र इंग्लैण्ड निवासी चर्चिल का था। वह शासक भी था और हिंसक प्रवृत्ति में अगुआ भी।

दूसरा हस्त-चित्र सामने रखकर पुनः पंडित बोला—

“मुनिजी ! आपकी दृष्टि में यह इन्सान कैसा होना चाहिए ?”

अच्छी तरह से रेखाचित्र को देखकर गुरु भगवंत ने पंडित से कहा—“इन रेखा चित्रों के आकार-प्रकार को देखते हुए ऐसा लगता है कि—यह इन्सान भी शासक होना चाहिए साथ ही साथ दयालु एवं अहिंसक भी।

पंडित मुँह तले अंगुली दबाकर बोला—‘मुनिजी। आपका इतना विशाल अध्ययन है कि—सीधे मूल पर ही चोट करता है।’

“कैसे पंडित जी ?” चरित्रनायक जी ने पूछा ।

महाराज श्री ! यह हस्त-चित्र महात्मा गांधी का है । जो शासक और अहिंसक भी । इसीलिए मैंने ऐसा कहा कि—आपका ज्ञान सीधे मूल पर ही चोट करता है और भी अनेक हस्त-चित्रों के रहस्योद्घाटन किये ।

आगन्तुक महाशय बाग-बाग होकर गुरु भगवंत के पवित्र पाद पद्मों में मस्तक झुकाकर घर की ओर गया । उसके बाद वह अवकाशानुसार सत्संगति का लाभ लेने में नहीं चूकता था ।

स्वप्न साकार होकर रहा

श्रद्धेय गुरुदेव श्री कस्तूर चन्दजी एवं अलवर से वर्षावास पूर्ण करके पधारे हुए आप श्री के गुरुभ्राता पं० श्री केशरीमल जी महाराज आदि मुनियों का स्नेह मिलन सुहावनी नगरी जयपुर में हुआ । यह घटना सं० २००६ की है । वार्तालाप के अन्तर्गत पं० प्रवर श्री केशरीमलजी महाराज ने एक स्वप्न का रहस्योद्घाटन करते हुए उपस्थित मुनियों से कहा कि “एकदा रात्रि में श्री राधाकिशन जी मुनि ने आकर मुझे चेताया कि— सं० २००७ कार्तिक शुक्ला ५ के दिन जयपुर में आपका आयुष्य पूर्ण होगा, इसलिए सावधान रहें ।”

श्रोता मुनियों ने इस स्वप्न के रहस्य को मजाक में टाल दिया । पर समय कहाँ टलता है ? क्षण-क्षण में देहधारी मौत के निकट पहुँच रहा है । फिर भी भोला प्राणी अपने को निर्भय मान बैठा है । कैसी विडम्बना ? इसीलिए आचारांग सूत्र में कहा है—“**नित्य कालस्स अणागमो ।**” अर्थात् काल के आक्रमण से एक क्षण भी खाली नहीं है ।

चरित्रनायक श्री सं० २००७ का वर्षावास मन्दसौर में और पं० रत्न श्री केशरी-मल जी महाराज जयपुर में बीत रहे थे । अनेकानेक धार्मिक प्रवृत्तियाँ चालू थीं । कार्तिक शुक्ला ५ का दिन आया । ऐसे महाराज श्री सावधान तो थे ही, उस दिन उपवास के साथ-साथ साथी मुनियों के समक्ष अतीत जीवन की आलोचना भी की । नित्य नियमानुसार दुपहर के समय शास्त्र स्वाध्याय भी पूरी की । साथी मुनिवृन्द एवं श्रावक वृन्द सभी सावधान थे कि कहीं अप्रिय घटना न बन जाय, पर कुछ हुआ नहीं, सभी ने खुशियाँ मनाईं । महाराज श्री को अच्छी हालत में छोड़कर सभी श्रावक अपने-अपने घरों की ओर लौटे । भवितव्यता को कौन टाल सकता है ? महाराज श्री मुख प्रक्षालन कर रहे थे कि—अचानक काल के एक बार ने काम तमाम कर दिया । वह दिव्यात्मा स्वर्ग की लम्बी राह पर चलती बनी । इसीलिए सत्य ही कहा है—

जं कल्लं कायव्वं णरेण अज्जेव तं वरं काउं ।

मच्चू अकलुणहिअओ न हु दीसइ आवयंतोवि ॥

—बृहत्कल्पभाष्य ४६७४

जो कर्त्तव्य कल करना है, वह आज ही कर लेना अच्छा है। मृत्यु अत्यन्त निर्दय है, यह कब आकर दबोच ले, मालूम नहीं। क्योंकि वह आता हुआ दिखाई नहीं पड़ता।

दिवंगत-आत्मा के ये समाचार जब हमारे चरित्रनायक श्री जी को मिले तो आप श्री को भारी आघात पहुँचा। वज्रवत् इस आघात को भी सहन करना पड़ा। अन्ततः स्वप्न के रहस्य को स्वीकार करना ही पड़ा। श्रद्धेय पं० श्री केशरीमल जी महाराज चरित्रनायक श्री के बड़े भाई थे। पर दीक्षापर्याय में छोटे थे। दोनों मुनि-वृन्द ने आचार्य प्रवर श्री खूबचन्द जी महाराज के शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त किया। पं० श्री केशरीमल जी महाराज की प्रज्ञा अति तीक्ष्ण थी, द्रव्यानुयोग में आपकी पकड़ बेजोड़ थी। फलतः आपको छोटे-मोटे पाँच सौ थोकड़े कण्ठस्थ थे। द्रव्यानुयोग में आप जैसे जानपने वाले मुनि आज विरले ही मिल पायेंगे। अथक परिश्रम करके शोधपूर्ण ढंग से आपने जीव विज्ञान के ५६३ भेदों पर एक मौलिक संग्रह प्रगट किया है, जो आज भी मौजूद है एवं मुमुक्षुओं के लिए अत्युपयोगी है। चर्चावार्ता में भी आप पीछे नहीं रहते थे। एतदर्थ वादीगण आपके नाम से भय खाते थे।

मृगसर सुदी ६ रविवार के दिन कोटा में दिवंगत प्रवक्ता जैन दिवाकर परम-श्रद्धेय श्री चौथमल जी महाराज एवं जयपुर में स्वर्गस्थ पं० रत्न श्री केशरीमल जी महाराज दोनों महा-मनीषी आत्माओं के प्रति श्रद्धांजलियों का विराट् आयोजन कुछ समय के पश्चात् व्यावर में आ० श्री आनन्द ऋषि जी महाराज मालवरत्न श्री कस्तूर-चन्द जी महाराज, उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज, उ० श्री प्यारचन्द जी महाराज, सहमन्त्री श्री सहस्रमल जी महाराज, स्थविर श्री पन्नालाल जी महाराज, पं० रत्न श्री हजारीमल जी महाराज, वयोवृद्ध श्री फतेहचन्द जी महाराज, वयोवृद्ध श्री भूरालाल जी महाराज, पं० रत्न श्री प्रतापमल जी महाराज, प्र० श्री हीरालाल जी महाराज आदि लगभग १०० साधु-साध्वी एवं हजारों श्रावक-श्राविका समूह की उपस्थिति में चतुर्विध संघ द्वारा किया गया। हजारों श्रद्धाशील आत्माओं की ओर से श्रद्धा-पुष्प समर्पण कर उन युगल आत्माओं के लिए चिर शान्ति की कामना की गई।

व्यक्तित्व-दर्शन

आपके गाम्भीर्य एवं प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व की छाप बम्बई, गुजरात, मध्यप्रदेश, मारवाड़, मेवाड़ एवं पंजाब के क्षेत्रों में प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। बहुत से भावुक गृहस्थ तो आज भी आपके नाम की माला रटते हुए बोलते हैं—जब कभी कोई उलझन भरी समस्या हमारे सिर पर मँडराने लगती है। तब गुरुदेव द्वारा प्रदत्त प्रसाद रूपी भजन-स्तवन का स्मरण करते हैं।

फलस्वरूप उन्हें जब सफलता मिल जाती है तो वे बोल पड़ते हैं—यह सद्कृपा मालवरत्न पूज्य गुरुदेव की हुई है। जिनके प्रताप से हम संकट से मुक्त हो गये। एक अति-निकट कालीन प्रसंग है—

सिकन्द्राबाद चातुर्मास काल में अपने साथी मुनियों के साथ हम परीक्षोपयोगी अध्ययन के लिए पारस्परिक कुछ वार्तालाप कर रहे थे। दर्शन के लिए स्थानीय संघ के ख्यातिप्राप्त अध्यक्ष महोदय श्रीमान् भेरूलाल जी रांका नजदीक आये कि—हमने अपनी चालू वार्ता को वहीं विश्राम देकर उनसे बातचीत शुरू की। विचार-विमर्श के दौरान रांका जी बोले—“महाराज ! नित नई-नई समस्याएँ खड़ी हो रही हैं। व्यापारियों का जीवन मुट्टी में है। कल क्या होगा ? कोई बता नहीं सकता है। क्या करना ? कैसे करना ? कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है। गुरुदेव की कृपा से अभी तो अर्थात् कुछ समय पहले आयी हुई विपत्ति तो टल गई। वरन् मुझे काफी हानि उठानी पड़ती।”

यह कैसे ?—मैंने (रमेश मुनि) से पूछा।

अनायास एक दिन सरकार की ओर से झड़ती (चेकिंग) आ गई। देखते-देखते अधिकारीगण दुकान एवं घर में घुस आये। हम सभी घबराये। अब क्या होगा ? लोग तमाशा देख रहे थे। मन ही मन मैंने मालवरत्न पूज्य गुरुदेव द्वारा दिया गया प्रसाद रूपी भजन-स्तवन का स्मरण किया।

वायु वेग से जैसे घटा बिखर जाती है। उसी प्रकार अदृश्य रूप में भजन का प्रभाव उन पर ऐसा पड़ा कि—“वे सभी अधिकारी बोल पड़े—समय काफी हो चला है, फिर कभी देखा जायेगा, आज इनको न छेड़ें।” इस तरह एक-एक करके सभी बाहर निकल आये। कुछ भी हानि नहीं हुई। माल बाल-बाल बच गया।

इसी प्रकार निरन्तर आर्थिक सामाजिक—देहिक एवं सामाजिक समस्याओं में उलझकर अनेकों नर-नारी आपके सुखद सान्निध्य में आशा लेकर आया करते हैं, पर आप श्री न उनसे ऊबते हैं, न उन्हें ठुकराते और न उन्हें चमत्कार का पाखण्ड दिखाते हैं। अपितु एक वास्तविक तथ्य का दिग्दर्शन कराते हुए, अशुभ कर्मों की परतें कैसे दूर हों उसके लिए भजन-स्तवन रूपी उपचार अवश्य बताते हैं, वस्तुतः कई श्रद्धाशील आत्माओं की मनोकामना सफल भी होती है।

चरित्रनायक श्री का अन्तर्हृदय रूपी सागर करुणारूपी सुधारस से आप्लावित है। मेरी समझ में इसीलिए समाज ने “करुणा सागर” की उपमा से गुरुदेव को उपमित किया है। कोई भी कंसी भी, संवेदनाशील देहधारी प्राणी जब आपके समक्ष आकर अपनी करुण कहानी सुनाता है तो आपका मृदु मन द्रवित हो उठता है—कवि तुलसीदास की भाषा में—

संत हृदय नवनीत समाना, कहा कवि ने पर कहे नहीं जाना।

निज परिताप द्रवइ नवनीता, पर दुःख द्रवइ सो संत पुनीता ॥

उस समस्या को सुलझाने में आप जुट जाते हैं। यथा प्रयास दुख निवारण की बातें सोचते हैं। जब किसी श्रावक या संघ की तरफ से उस वेदनाग्रस्त को आश्वासन मिल जाता है तभी करुणा सागर जी को संतोष होता है। “उदारचरितानां तु वसुधैव

कुटुम्बकम्” उदार मनीषीगण के लिए सारा संसार ही अपना है। तदनुसार इस करुणा दृष्टि के पात्र केवल जैन ही नहीं, अपितु कई दुखी-दर्दी, नंगे-भूखे, एवं अनाश्रित जैनतर मानव भी आपके शीतल नेतृत्व को प्राप्त कर सुख-शांति का अनुभव करते हैं एवं उनके साथ भी वही वात्सल्यभाव का बरताव जो एक जैन के साथ होता है। सर्वत्र—“सर्वे भवन्तु सुखिनो, सर्वे भद्राणि पश्यतु।” मंगलमय इस शुभ भावना के अनुरूप आपके संकेतों पर प्रति वर्ष हजारों रूपयों की साधर्मी-सहायता अनेक प्रांतों में पहुँचाई जाती है। आपका प्रकथन है कि—मुझे नाम नहीं काम चाहिए। इस साधर्मी सहायता कोष को लम्बे समय तक टिकाये रखने के लिए भगवान महावीर की २५००वीं शताब्दी के सन्दर्भ में गुरुदेव के असरकारक उपदेश को कार्यान्वित कर रतलाम श्री संघ ने तत्काल “साधर्मी सहायता” नामक एक फंड की प्रस्थापना करके उसमें स्थायित्व ले आये। ताकि यथाशक्ति यह संस्थासाधर्मी सेवा से परिपुष्ट होती रहे और उत्तरोत्तर विकास भी करती रहे।

शान्ति के महान संदेशवाहक

“शान्तिमिच्छन्ति साधवः” चरित्रनायक श्री का यह आध्यात्मिक जीवन एवं उपदेश सदैव स्व-पर के लिए स्नेह-शांति-संगठन का महान् प्रतीक रहा है। जहाँ भी आपके चरण-सरोज पहुँचे हैं, वहाँ अशान्ति-अनेक्यता एवं असहयोग के कारणों की परिसमाप्ति करके शान्ति-संगठन-स्नेह की पवित्र त्रिवेणी बहाई है। सुई का कार्यक्षेत्र दो वस्त्र खण्डों को जोड़कर अखण्ड बनाने का है उसी प्रकार बिछुड़े हुए दो भाइयों को मिलाने में, रोते हुए राहगीरों को हँसाने में एवं अनाश्रितों को आश्रय देने में आपकी मनोवृत्ति निरन्तर विराट-विशाल रही है। आपश्री के वरदहस्त इन शुभ कार्यों में हमेशा आगे रहते हैं। इतना ही नहीं फूट-कूट की विकट परिस्थितियों के बीच भी आपके मुख रूपी हिमाचल से निःसृत वाणी पीयूष बरसाती रहती है। सामाजिक बिखराव आपको कतई पसन्द नहीं है। वस्तुतः परिवार एवं संघ समाज में संगठनात्मक स्वच्छ-शांत वातावरण आपको अभीष्ट है। यही कारण है कि—कोई भी श्रमण जब आपके सान्निध्य में सेवार्थ उपस्थित होता है तो सर्वप्रथम आप अपने निकट बुलाकर अति शांत-शीतलस्मित मुद्रा में यही फरमाते हैं कि “सभी संतों के साथ हिलमिलकर रहना चाहिए, बलेश-कदाग्रह व बराबरी करने के लिए नहीं, प्रकृति सम्बन्धी कदाच मेल नहीं मिलने पर भी उनके साथ उलझना अपराध है। अगर कोई ऐसी-बैसी बात हो तो सीधे मुझे कहो। “साधु सोहंता अमृतवाणी” तदनुसार भिक्षु-भिक्षणी वर्ग को चाहिए कि उन्हें व्याख्यान में भी खण्डनात्मक शैली का नहीं मण्डनात्मक शैली का सहारा लेना चाहिए। ताकि लोकप्रियता में अभिवृद्धि होवे। मतलब यह है कि—शांत वातावरण को अशांत बनाना अमृत में जहर मिलाने जैसा है। फलस्वरूप श्रमण का आभूषण शांत भाव में रमण करना है। क्योंकि उपशांत भाव वाला साधक आराधना का पात्र माना है। कहा है—

जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा ।

—बृहत्कल्प १।३५

कोई भी दर्शनार्थी मानव जब आपके सम्पर्क में आते हैं तो उन्हें भी आप शिक्षा के तौर पर दो शब्द यही फरमाते हैं—“विग्रह में विकास नहीं विनाश है। इसीलिए भाई-भाई को और पड़ोसी-पड़ोसी को मिलजुल कर रहना चाहिए। अनुकूल या प्रतिकूल कोई भी समस्या उलझने पर भी उसे प्रेमपूर्वक सुलझाना बुद्धिमत्ता है। इस प्रकार डंके की चोट हम कह सकते हैं—भगवान महावीर के निम्न उपदेश को आपने आत्मसात् करने में कोई भी कमी नहीं रखी है।

बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गाम गए नगरे व संजए ।
संति मग्ग च बूहए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

—उ० अ ११।३६

साधक ! तू भले गाँव-नगर-पुर-पाटन अथवा और कहीं तू विचरे पर शांति मार्ग का ही उपदेश देने में तत्पर रहना ।

आगमों के महान् ज्ञाता

इस समय चरित्रनायक श्री स्थानकवासी जैन समाज में जाति स्थविर—श्रुत स्थविर एवं पर्यायस्थविर की दृष्टि से प्रमुख स्थान पर आसीन है। द्रव्यानुयोग-गणितानुयोग-कथानुयोग-चरितानुयोग से परिपुष्ट सुदृढ़ आपका आगमिक ज्ञान एवं अनुभव का एक विशाल कोष है। आप जब सरल-सुबोध मालवी भाषा में आगम वाणी पर व्याख्यान फरमाते हैं तब श्रोतावृन्द आनन्द विभोर होकर भक्ति रस में इतने ओत-प्रोत हो जाते हैं। मानो जिस प्रसंग का प्रतिपादन किया जा रहा है—साक्षात् उस दृश्य को सामने देख रहे हों अनुभूतियों का अद्वितीय भण्डार आप अपने विराट् मस्तिष्क में संजोये हुए श्रमण संस्कृति को गौरवान्वित कर रहे हैं। मेरी दृष्टि में जिनकी तुलना में बड़े-बड़े विद्वान्-मनीषी, टीकाकार-भाष्यकार भी पीछे रह जायेंगे। आगम वाङ्मय के प्रति आपकी अटूट श्रद्धा है और उसी श्रद्धा से प्रेरित होकर प्रत्येक साधु-साध्वी को रुचि के अनुसार भर-भर मुट्ठी लुटाया भी करते हैं।

अभी-अभी खम्भात सम्प्रदाय के श्रद्धेय श्री कान्ति ऋषिजी महाराज के शिष्यरत्न सिद्धान्ताचार्य श्री नवीन ऋषि जी महाराज लगभग दो वर्षों तक अध्ययनार्थ आपके सान्निध्य में रहे, काफी आगमों की वाचना एवं धारणा पूरी की, अब अपने गुरुदेव के समीप पहुँचे हैं।

आपका सुदृढ़ ऐसा अभिमत है—निर्ग्रथों का ही उपदेश सफल और हितकारक हो सकता है। वह सुमेरु की तरह अटल, हिमाचल की तरह संताप निवारक, शांति प्रदायक अडोल, सूर्य की तरह तेजस्वी और अज्ञानान्धकार का हरण करने वाला, चन्द्रमा की तरह पीयूष वर्षा करने वाला और आल्हादक, सुरतरु की तरह सकल

संकल्पों का पूरक, विद्युत की तरह प्रकाशमान और आकाश की भांति अनादि-अनंत और असीम है। यह किसी देश-विशेष या काल-विशेष की सीमाओं में आबद्ध नहीं है। पुरुष हो या स्त्री, पशु हो या पक्षी सभी प्राणियों के लिए यह सदैव समान है। संक्षेप में, कहें तो यह कह सकते हैं कि—“निर्ग्रंथों का प्रवचन (आगम) सार्वजनिक, सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक है।

“से कोविए जिणवयणेणं पच्छा, सूरौदए पासति चक्खुणेणं”

—सूत्रकृतांग सूत्र

मानव चाहे जितना विद्वान् हो, पर जिनवाणी की अपेक्षा रहती है। जैसे आँखें होने पर भी देहधारी के लिए सूर्य प्रकाश की अपेक्षा रहती है। आगे आप और फरमाया करते हैं—

तम्हा सुयमहिट्ठज्जा, उत्तमट्ठगवेसए ।
जेणप्पाणं परं चेव, सिद्धि सम्पाउणेज्जासि ॥

—उत्त० ११।३२

भोक्षाभिलाषी मुमुक्षुओं को चाहिए कि—उस आगम ज्ञान को सम्यक् प्रकार से समझें और पढ़ें, जो निश्चयमेव अपनी और दूसरों की आत्मा को अपवर्ग में पहुँचाने वाला है।

ज्योतिष ज्ञान की दृष्टि से समाज में आपका बहुमुखी व्यक्तित्व रहा है। “ज्योतिषाचार्य” के नाम से सकल समाज आपको जानती है। यदा-कदा कई पंडित जानकारी के लिए एवं चर्चा के लिए आपके समीप आया करते हैं। पूर्णतः सभी संतुष्ट होकर लौटते हैं। कभी-कभी तो आप भविष्य की घटना का रहस्योद्घाटन करते हुए सभी को विस्मय में डुबो देते हैं।

एकदा कुछ मुनिवृन्द आपके समीप आगम वाचना कर रहे थे। चर्चा के अन्तर्गत गुरुदेव ने कहा—“संतो ! कुछ ही समय के बाद इन्दौर निवासी सुगनमलजी भंडारी दर्शनार्थ आने वाले हैं। वे कुछ उलझन में भी हैं।”

गुरुदेव के इस कथन पर सभी मुनि विस्मय में डूब रहे थे। इतने में तो भण्डारी जी की कार आ खटकी। वन्दन-नमन एवं उलझन सम्बन्धी वार्तालाप करके वे वापस लौट गये। पर संतों के लिए विचारणीय बात यह थी कि—“गुरुदेव को पहले कैसे मालूम हुआ कि—भण्डारी जी आज आने वाले हैं।”

पावन तीर्थ का प्रतीक : रतलाम

एक स्थान पर बैठना आपको कतई पसन्द नहीं है। किन्तु शारीरिक अस्वस्थता के कारण आप लगभग आठ-नौ वर्षों से रतलाम नीम चौक धर्म स्थानक में विराज रहे हैं। इस कारण रतलाम पावन तीर्थ सा बना हुआ है। तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश-महाराष्ट्र-गुजरात-पंजाब-मारवाड़-मेवाड़ एवं मालवा आदि प्रांतों के दर्शनार्थियों का

आवागमन चालू रहता है। प्रतिवर्ष अनेक साधु-साध्वी वर्ग भी आपके दर्शनार्थ रतलाम आया करते हैं। चातुर्मास के दिनों में अतिथियों का विशेष आवागमन रहता है। वस्तुतः नीम चौक की रौनक देखते ही बनती है। कुछ वर्षों पहले चतुर्विध संघ ने आपके ही सुखद सान्निध्य में “श्री मज्जैनाचार्य परमश्रद्धेय श्री मन्नालाल जी महाराज शताब्दी महोत्सव” इसी रतलाम की रम्यस्थली पर शानदार ढंग से एक विशाल आयोजन के रूप में मनाया था। तब स्थानीय एवं बाहर के संघों द्वारा चरित्रनायक श्री का “अमृत महोत्सव” भी आयोजित किया गया। उसी संदर्भ में त्यागी वर्ग (साधु-साध्वी) की ओर से चरित्रनायक श्री को “शासन सम्राट्” की पदवी से विभूषित किया गया। इस प्रकार काफी वर्षों से स्थानीय श्री संघ पूरी आत्मीयता के साथ अतिथि सेवा करता हुआ जिन शासन की प्रभावना में चार चाँद लगा रहा है।

बीच में स्वास्थ्य की सुघरती हुई हालत को देखकर आप श्री ने विहार भी कर दिया था। कहते हैं कि—“भगवान-भक्त के वश में होते हैं।” तदनुसार महान् तपोधनी श्री भेरूलाल जी महाराज एवं स्थानीय श्री संघ के अत्याग्रह पर पुनः नीम चौक घर्म स्थानक में आपश्री का पदार्पण हुआ। इस पर रतलाम श्री संघ के आबाल-वृद्ध सभी सदस्य फूले नहीं समाये। गुरुदेव का वहाँ विराजना अमृत वृष्टि-सा सिद्ध हो रहा है। कई भव्यात्माएँ ज्ञान-ध्यान से, दर्शन-प्रवचन से एवं व्याख्यान वाणी के अनुपम लाभ से लाभान्वित हो रही हैं। इसीलिए कहा है—

भारत के ओ संत तुम्हारा जीवन है जग में आदर्श।

पापी पावन हुए तुम्हारे-चरण मणि का पाकर स्पर्श ॥

व्यक्तित्व में एक अनोखा आकर्षण, सरलता-ऋजुता उदारता, हृदय की पवित्रता-माधुर्यता एवं दयालुता जिनके जीवन की परम निधि है। परम धरोहर है। उस असीम गरिमा-महिमा सम्पन्न मालव रत्न स्थविर पद विभूषित परम श्रद्धेय प्रातःस्मरणीय करुणा सागर ज्योतिषाचार्य गुरु भगवंत श्री कस्तूरचन्द जी महाराज के पावन चरण कमलों में श्रद्धा भक्ति समन्वित पुष्प अर्पण करता हुआ क्षण-क्षण, पल-पल, उस आराध्यदेव से सुदीर्घ जीवन की शुभकामना करता हुआ मैं अपनी लेखनी को विश्राम देता हूँ :

तुम सलामत रहो वर्ष हजार।

हर वर्ष के दिन हों पचास हजार ॥

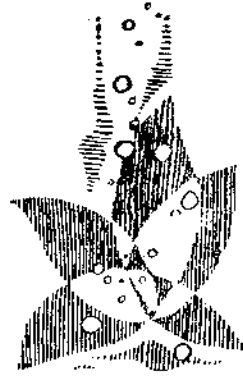


**उपाध्याय मालवरत्न श्री कस्तूरचन्द जी महाराज के
अथ प्रभृति चातुर्मास सूची**

वि० संवत्	संख्या	गाँव का नाम	वि० संवत्	संख्या	गाँव का नाम
१९६३	१	बड़ीसादड़ी	१९६६	३७	जयपुर
१९६४	२	निम्बाहेड़ा	२०००	३८	पाली
१९६५	३	रतलाम	२००१	३९	अजमेर
१९६६	४	मन्दसौर	२००२	४०	उदयपुर
१९६७	५	आगरा	२००३	४१	जयपुर
१९६८	६	रावलपिण्डी	२००४	४२	कोटा
१९६९	७	दिल्ली	२००५	४३	इन्दौर
१९७०	८	कोटा	२००६	४४	अजमेर
१९७१	९	रामपुरा	२००७	४५	मन्दसौर
१९७२	१०	अजमेर	२००८	४६	इन्दौर
१९७३	११	पालनपुर	२००९	४७	उज्जैन
१९७४	१२	किशनगढ़	२०१०	४८	बम्बई
१९७५	१३	कोटा	२०११	४९	भिलवाड़ा
१९७६	१४	रामपुरा	२०१२	५०	दिल्ली
१९७७	१५	जावरा	२०१३	५१	अजमेर
१९७८	१६	जयपुर	२०१४	५२	जावरा
१९७९	१७	मन्दसौर	२०१५	५३	जोधपुर
१९८०	१८	रतलाम	२०१६	५४	खम्भात
१९८१	१९	रामपुरा	२०१७	५५	मन्दसौर
१९८२	२०	उज्जैन	२०१८	५६	इन्दौर
१९८३	२१	इन्दौर	२०१९	५७	अजमेर
१९८४	२२	जयपुर	२०२०	५८	व्यावर
१९८५	२३	उज्जैन	२०२१	५९	मदनगंज
१९८६	२४	रामपुरा	२०२२	६०	मन्दसौर
१९८७	२५	बड़ीसादड़ी	२०२३	६१	जावरा
१९८८	२६	उदयपुर	२०२४	६२	उज्जैन
१९८९	२७	रतलाम	२०२५	६३	रतलाम
१९९०	२८	उज्जैन	२०२६	६४	रतलाम
१९९१	२९	सोजत	२०२७	६५	रतलाम
१९९२	३०	व्यावर	२०२८	६६	रतलाम
१९९३	३१	रतलाम	२०२९	६७	रतलाम
१९९४	३२	इन्दौर	२०३०	६८	रतलाम
१९९५	३३	रतलाम	२०३१	६९	रतलाम
१९९६	३४	व्यावर	२०३२	७०	रतलाम
१९९७	३५	इन्दौर	२०३३	७१	रतलाम
१९९८	३६	दिल्ली	२०३४	७२	रतलाम

□ श्री कान्ति मुनि 'विशारद'

[सेवाङ्गभूषण श्री प्रतापमल जी महाराज
के शिष्य]



1 प्रेरणा-पूरक

एक मुनि थे, जिनकी सुमधुर ख्याति थी श्री पुनमचन्द जी महाराज के नाम से। सद्भावनापूर्वक कोई भी बड़े-बुजुर्ग संत पढ़ाते-सिखाते याद करवाते एवं अन्य आवश्यक तात्विक जानकारी करवाते तो श्री पुनमचन्द जी महाराज उनसे छुटकारा पाने के लिए तपाक से कह दिया करते थे—क्या करूँ? ज्ञानावरण कर्म का ऐसा उदय भाव है कि—मैं कितनी भी मेहनत करूँ फिर भी न मुझे ज्ञान चढ़ता है और न मुझे तत्त्व की बातें याद रहती हैं। इस कारण ज्ञानाभ्यास के लिए रटनपट्टी करना, परिश्रम करना कोई प्रयोजन नहीं रखता है। केवल नवकार महामंत्र की माला फेरता रहूँगा तो भी मेरी नैया पार हो जायेगी। फिर व्यर्थ की माथा-पच्ची करके नींद हराम क्यों करूँ? इस प्रकार विचार व्यक्त करते हुए अपनी कमजोरी को ढँके जा रहे थे।

“हतोत्साह होकर मुनि श्री पुनमचन्द जी महाराज ज्ञानाभ्यास में जैसा चाहिए वैसा उद्यम नहीं कर रहे हैं।” यह व्यवहार हमारे चरित्रनायक श्री को अच्छा नहीं लगा। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव देखते हुए साधक के जीवन में थोड़ा-बहुत ज्ञान-ध्यान एवं आवश्यक जानकारी तो होनी ही चाहिए।

गुरु देव श्री के



मुनि श्री पुनमचन्द जी को अपने पास बुलाया, गुरु भगवंत ने पूछा—“मैंने सुना है कि—आपने ज्ञानाभ्यास का क्रम बिल्कुल बन्द जैसा कर दिया है। ऐसा क्यों? क्या ज्ञान में उद्यम करना बुरा है?”

ऐसा नहीं महाराज ! मैं क्या करूँ ? मेरी बुद्धि इतनी मोटी है कि—मुझे ज्ञान की एक बात याद नहीं रहती है। मुनि श्री पुनमचन्द जी ने कहा।

ऐसी बात नहीं मुनि जी ! क्या आप नहीं जानते हैं ? “करत-करत अभ्यास के जड़ मति होत सुजान,” मेरे पास बैठीए। ज्ञान कैसे नहीं आता है ? अवश्य आएगा, अवश्य याद रहेगा। सच्चे मन से किया हुआ उद्यम कभी भी व्यर्थ नहीं जाता है।

चरित्रनायक श्री की बलवती प्रेरणा ने ऐसी चेतना फूँकी कि—उन्हें तेरह शास्त्रों का अध्ययन पूरा करवा कर—यह बता दिया कि—मन्दबुद्धि विद्यार्थी भी विद्वानों की संगति पाकर विद्वान बन सकता है। अन्य मुनियों के लिए भारी विस्मय का विषय बन गया था कि—श्री कस्तूरचन्द जी महाराज ने श्री पुनमचन्द जी महाराज को कैसे विद्वान बना दिया ?

2 हीरा मुख से न कहे लाख हमारा मोल

गुरु भगवंत श्री का सं० २००४ का वर्षावास कोटा (राजस्थान) में था। प्रवचन पीयूष का मंद-सुगंध शीतल स्रोत जन-जीवन की मानस स्थली को सरसब्ज बना रहा था। फलस्वरूप स्थानीय श्रावक-श्राविका समाज में धर्म-ध्यान एवं जप-तप की अनूठी प्रभावना होने लगी। धर्म-चर्चार्थ कई जैन-जैनेतर मानव गुरु प्रवर के सान्निध्य में उपस्थित हुआ करते थे। कोटा निवासी एक हस्त-रेखा विज्ञ विद्वान आकर बोला—

“क्यों महाराज ! हस्त-रेखा एवं ज्योतिष सम्बन्धी कुछ ज्ञान-विज्ञान का जानपना है ?”

“बड़ा बड़ाई न करे, बड़ा न बोले बोल”—इस विचारधारानुसार गुरुदेव ने आगंतुक विप्रवर से सरल मुद्रा में कहा—“पंडित जी ! काम चलाऊ। अर्थात् सिन्धु में से बूंद के समान समझ लीजिए।”

जैसा चाहिए वैसा संतोष नहीं होने से पंडित वहाँ से चलता बना और कुछ दूरी पर बैठे हुए मुनियों के पास जाकर धीरे से बोला—“आपके बड़े मुनि महाराज कम पढ़े-लिखे मालूम होते हैं ?”

प्रत्युत्तर में साथी मुनियों ने कहा—“पंडित जी ! आपका अनुभव बिल्कुल गलत है। क्या आप नहीं जानते हैं ? भरा हुआ घड़ा कभी शब्द नहीं करता है—“सम्पूर्ण कुम्भो न करोति शब्दम्।” तदनुसार हमारे बड़े महाराज (श्री कस्तूर चन्द जी महाराज) श्री जैन आगमों में ज्योतिष एवं सामुद्रिक ज्ञान में काफी पहुँचे हुए हैं।

अति ही अनुभवशील हैं। हमारे सम्प्रदाय में ज्योतिष एवं हस्तरेखा में आपका मुख्य स्थान रहा है। विद्वान् अपने मुँह से अपनी बढ़ाई कदापि नहीं करते हैं।”

“तो मैं कुछ हस्तरेखा के चित्र साथ लाया हूँ। इनके सामने रखूँ? ये चिढ़ेंगे तो नहीं?” उस पंडित ने साथी मुनियों से पूछा।

“ऐसी बात नहीं! ये महा-मनस्वी धोर-वीर-गंभीर गुण से ओत-प्रोत हैं। प्रश्न-कर्ताओं का समाधान करना इन्हें अभीष्ट है। हस्त-चित्र अवश्य सामने रखो। आपको भी नई जानकारी मिलेगी।” मुनि ने कहा।

वह अपने जेब में से विभिन्न हस्त रेखाओं से मंडित कुछ हस्त-चित्र निकाल कर गुरु प्रवर के सामने रखकर बोला—“मुनि जी! आपके साथी मुनियों से मालूम हुआ कि आप महान ज्ञानी, ध्यानी योगी हैं, मैंने आपको पहचाना नहीं। मेरा अनुमान गलत रहा। देखिए यह हस्त रेखा चित्र वाला इन्सान आपकी ज्ञान दृष्टि में कैसा हो सकता है? आप अपना अभिमत अभिव्यक्त करें।”

इस हस्त रेखा चित्र को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि—“यह मानव राजा होना चाहिए। साथ ही साथ क्रूर वृत्ति भी होना चाहिए। रहस्योद्घाटन करते हुए गुरु भगवंत ने कहा।

गुरु प्रवर द्वारा प्रकथित सम्यक् समाधान पर वह पंडित आश्चर्यान्वित हुआ। क्योंकि—महाराज श्री का अनुभव बावन तोला पात्र रत्ती सही था। मतलब यह कि वह हस्त चित्र इंग्लैण्ड निवासी चर्चिल का था। वह शासक भी था और क्रूर प्रवृत्ति (युद्धप्रिय) में अगुआ भी।

दूसरा हस्त चित्र सामने रखकर पुनः पंडित बोला—

“मुनि जी! आपकी दृष्टि में यह इन्सान कैसा होना चाहिए?”

अच्छी तरह से रेखा चित्र को देखकर गुरु भगवंत ने पंडित से कहा—

“इन रेखा चित्रों के आकार-प्रकार को देखते हुए ऐसा लगता है कि—यह इन्सान भी शासक होना चाहिए, साथ ही साथ दयालु एवं अहिंसक भी।

पंडित मुँह तले अंगुली दबाकर बोले—“मुनि जी! आपका इतना विशाल अध्ययन है कि सीधे मूल पर ही चोट करता है।”

“कैसे पंडित जी?” गुरुदेव ने पूछा।

महाराज श्री! यह हस्त चित्र महात्मा गाँधी का है। जो शासक और अहिंसक भी है। इसलिए मैंने कहा कि—आपका ज्ञान सीधे मूल पर ही चोट करता है और भी अनेक हस्तचित्रों के रहस्योद्घाटन किये।

आगन्तुक महाशय बाग-बाग होकर गुरु भगवंत के पवित्र पाद पद्मों में मस्तक झुकाकर घर की ओर गया। उसके बाद वह अवकाशानुसार सत्संगति का लाभ लेने में नहीं चूकता था।

□

3 प्रश्न, तर्क की कसौटी पर

आगम वाचनार्थ कुछ मुनिवृन्द गुरुदेव के कल्याणकारी सान्निध्य में उपस्थित होकर बोले—“हम स्थानांग सूत्र की प्रारम्भिक वाचना एवं धारणा गुरु भगवंत के मुखारविन्द से करना चाहते हैं। अतएव हम आपके अनुग्रह की प्रतीक्षा में हैं।”

प्रत्युत्तर में महाराज श्री ने फरमाया कि—“संतो ! अभी अहमदाबाद से दो प्रश्न आये हैं। इन दोनों प्रश्नों के उत्तर लिखवाकर फिर मैं आप लोगों को स्थानांग सूत्र के विषय में कुछ समझाऊँगा। वहाँ तक समय की प्रतीक्षा करें।”

मुनियों की जिज्ञासा आगे बढ़ी। विनयपूर्वक पूछ बैठे—“भगवंत ! क्या प्रश्न आये हैं ? यदि हमारे जानने योग्य हों तो हमें भी बताने का अनुग्रह करें। ताकि-हमारे ज्ञान अभिवृद्धि में सहायक बन सकें।

संयती राजा और जयघोष-विजयघोष मुनि किस तीर्थंकर के शासन में हुए हैं ?” प्रश्न दोहराते हुए गुरुदेव ने कहा।

“भगवन्त ने क्या समाधान लिखाया ?” मुनियों ने पूछा।

समाधानोद्घाटन करते हुए गुरु भगवंत ने कहा—“संयती राजा और जयघोष-विजयघोष ये सभी भगवान महावीर के शासन में हुए हैं। विषय को स्पष्ट करते हुए महाराज श्री ने आगे कहा कि भगवान ऋषभदेव और भगवान महावीर के समय में ही पाँच महाव्रत थे। भगवान ऋषभदेव का समय काफी लम्बा हो चुका है। इसलिए राजा संयती और जयघोष-विजयघोष भगवान महावीर के शासन में हुए हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के २५वें अध्ययन की २३-२४-२५-२६ गाथाओं में अहिंसा-सत्य अचौर्यशील एवं अपरिग्रह व्रती का अलग-अलग वर्णन किया गया है। अठारहवें अध्ययन में १२ चक्रवर्तियों के नामोल्लेख हैं। उनसे पता चलता है कि संयति राजा काफी बाद में हुआ है। वह समय महावीर का ही ठीक लगता है क्योंकि भगवान महावीर के समय में मुनि के लिए पाँच महाव्रत थे।”

वन्दन कर मुनिवृन्द आगम-वाचना में दत्त-चित्त हो गये। □

4 चर्चा और समाधान

सं० २०३१ की घटना है। गुरु भगवंत के सुखद सान्निध्य में कुछ मुनिवृन्द शास्त्रीय-अध्ययन में तल्लीन थे। रुक-रुक कर बीच में समाधान की खोज में मुनियों की ओर से प्रश्न चालू थे। समाधान के अन्तर्गत महाराज श्री ने एक आगम पाठ का रहस्योद्घाटन करते हुए फरमाया कि—लगभग सात-आठ शताब्दी पूर्व आचार्यों द्वारा समवायांग सूत्र के मूल पाठ में ‘सय’ शब्द अधिक लिख गया है। वस्तुतः आज दिन तक उस शब्द का न मंदिरमार्गी टीकाकार आचार्यों ने और न स्थानकवासी

आचार्यों ने (आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज और आचार्य श्री घासीलाल जी महाराज) परिष्कार किया और न तत्सम्बन्धी इन आचार्यों ने चिंतन-मनन-मन्थन भी किया कि—‘सय’ शब्द आवश्यक है, कि—अनावश्यक ? सभी साधक उसी ‘सय’ शब्द का प्रयोग करते आये हैं ।

“किस स्थान पर ‘सय’ शब्द अधिक लिखा गया है ? भगवन्त को कैसे मालूम हुआ कि—यह ‘सय’ शब्द अनावश्यक है ?” मुनियों ने पूछा ।

प्रत्युत्तर में गुरु भगवंत ने कहा—मैं न संस्कृत का विद्वान् हूँ और न टीकाकार ही, किन्तु पूज्य श्री मन्नालाल जी, महाराज गुरुदेव श्री नन्दलालजी महाराज, पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज की कृपा का सुफल है कि—प्रारंभ से ही आगमों के प्रति मेरी अधिक रुचि रही है । इसलिए महामनस्वियों से मैंने आगमों की धारणा तर्क की कसौटी पर कस कर की है । हाँ, तो उस अधिक लिखे गये शब्द की चर्चा चल रही है । समवा-यांग सूत्र में जहाँ कि विजय राजधानी का वर्णन चलता है । भौगोलिक दृष्टि से उस राजधानी की लम्बाई-चौड़ाई १२ हजार योजन की है । जैसे “द्वादस सहस्साणं” परन्तु पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा ‘सय’ शब्द अधिक लिखा गया प्रतीत होता है । इसीलिए “द्वादस सय सहस्साणं” अब मूल पाठ ऐसा मिल रहा है ।

“सय शब्द अधिक लिखा गया है । यह कैसे माना जाय ?” मुनियों ने फिर जिज्ञासा प्रगट की ।

समाधान के तौर पर महाराज श्री ने अपना वक्तव्य चालू रखा—“जीवाभिगम सूत्र में उस विजय राजधानी का सर्वांगी वर्णन है । वहाँ मूलपाठ “द्वादस सहस्साणं” अर्थात् विजय राजधानी १२ हजार योजन की है । इस कारण ‘सय’ शब्द अनावश्यक है । अतः उस शब्द का संशोधन होना चाहिए ।”

“अंग और उपांग के मूल पाठों के अक्षरावलियों का हेर-फेर करना, क्या—“पयहीणं” नामक ज्ञानातिचार नहीं लगता है ? इस प्रकार जब चाहे तब मूल पाठों का परिवर्तन करने पर क्या आगमों की प्रमाणिकता पर आंच नहीं आयेगी ?” करबद्ध मुनियों ने पूछा ।

संतो ! छद्मस्थ आचार्यों द्वारा यदा-कदा न्यूनाधिक लिखा जा सकता है । गलतियों का परिष्कार करना दोष नहीं, दोष है सही शब्दों का, और सही भावों पर पर्दा डाल कर अपने विचारों को ठूसना और विपरीत भाव-भाषा को सामने रखना । ●

समन्वय के सन्दर्भ में

5

“काव्य सेवा विनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।” अर्थात् विद्वानों का समय तत्त्व चिंतन एवं धर्मगोष्ठी में बीतता है । तदनुसार एकदा शान्त स्वच्छ वातावरण के समय ज्योतिष-सम्बन्धी चर्चा करते हुए सानुनयपूर्वक मुनियों ने पूछा—

“भगवंत ! ज्योतिष जगत् की यह चिर मान्यता रही है कि—“रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु” इस प्रकार नौ ग्रह मानते हैं और ग्रह-गोचर दशा के अनुसार ही प्राणी सुखी किंवा दुखी होते हैं। दूसरी ओर डंके की चोट जैन दर्शन (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम गोत्र और अन्तराय कर्म) आठ कर्मों की अभिव्यक्ति करता हुआ, स्पष्टतः कहता है कि—यह शुभाशुभ कर्मों का ही फल है कि सभी प्राणी समान नहीं होते हैं। कोई कम आयु वाले, कोई दीर्घ आयु वाले, कोई रोगी, कोई निरोगी, कोई कुरूप, कोई सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई प्रभावशाली, कोई निर्धनी, कोई धनी, कोई हीन कुल वाले, कोई उच्च कुल वाले, कोई विद्वान, कोई अनपढ़। तो फरमावें कि—“क्या ग्रह प्रभाव को सही मानना कि—कर्म प्रभाव को ?”

समन्वयात्मक ढंग से गुरु प्रवर ने समझाया कि—नौ ग्रह भी कर्मों से मुक्त नहीं हैं। समस्त ग्रह एवं उपग्रह कर्माधीन हैं। कर्मानुसार ये ग्रह अपना प्रभाव दिखाते हैं। फलतः ग्रहों के स्वभाव में और कर्मों के स्वभाव में काफ़ी साम्यता रही हुई है। निम्न प्रकार से समन्वय कर सकते हैं :

रवि ग्रह	—	ज्ञानावरण कर्म
सोम ग्रह	—	दर्शनावरण कर्म
मंगल ग्रह	—	वेदनीय कर्म
बुध ग्रह	—	मोहनीय कर्म
गुरु ग्रह	—	आयुष्य कर्म
शुक्र ग्रह	—	नाम कर्म
शनि ग्रह	—	गोत्र कर्म
राहु-केतु	—	अन्तराय कर्म

सविस्तार वक्तव्य को जारी रखते हुए आगे गुरुदेव ने कहा कि—जब ज्ञानावरण कर्म का प्रबल उदय रहता है, तब ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है। जिसको ज्योतिष में नीच का सूर्य या सूर्य की बिगड़ी हुई दशा मानी जाती है। ऊँच का सूर्य अगर है तो ज्ञान प्राप्ति में सहायक होता है। इसी प्रकार दर्शनावरण कर्म और सोम ग्रह का खासा सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। मंगल ग्रह और वेदनीय कर्म का सम्बन्ध, बुधग्रह और मोहनीय कर्म का सम्बन्ध, गुरु को देखकर आयुष्य कर्म का निर्णय किया जा सकता है, गुरु यदि बलवान है तो आयुष्य कर्म सशक्त रहेगा और गुरु नीच का है तो रोग ग्रस्त जीवन रहेगा, शुक्र ग्रह का शुभाशुभ नाम कर्म से सम्बन्ध है। शुक्र ग्रह यदि उच्च का होकर पड़ा है तो सुख्याति और नीच का होकर पड़ा है तो कुख्याति, शनिग्रह और गोत्र का खासा सम्बन्ध है। इसी प्रकार राहु और केतु दोनों ग्रह अधिक रूप से विघ्न बाधक माने हैं, अन्तराय कर्म का स्वभाव भी बाधक स्वरूप ही माना है।

इस प्रकार समन्वय के सन्दर्भ में गुरुदेव ने अपने मौलिक उद्गार व्यक्त करके एक नई अनुभूति का रहस्योद्घाटन किया। □

व्यक्तित्व की प्रतिमा 6

वि० सं० २०१० के दिनों में सहविहारी कुछ मुनियों के साथ ग्रामानुग्राम सद्बोध प्रदान करते हुए पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी महाराज का अहमदाबाद (गुजरात) नगर में पदार्पण हुआ। महाराज श्री का सरल एवं मधुर व्यक्तित्व प्रत्येक भक्त के लिए सुख-शान्ति का केन्द्र रहा है। यही कारण है कि—दिन पर्यन्त आपके कल्याणकारी कदमों में दर्शनार्थियों का स्नेह मिलन जुड़ा रहता है। भले मारवाड़ी-गुजराती-पंजाबी हो और भले ही मन्दिरमार्गी या स्थानकवासी कोई भी हो। सश्रद्धा सभी आपकी पयु-पासना में तल्लीन रहते हैं।

“संत मिलन सम सुख जग नाही” के अनुसार सद्भावनापूर्वक महाराज श्री वहाँ विराजित दरियापुर सम्प्रदाय के आचार्य प्रवर श्री ईश्वर लाल जी महाराज के दर्शनार्थ पहुँचे। पारस्परिक वार्तालाप के अन्तर्गत आचार्य श्री ने फरमाया कि—मैंने सुना है आप (श्री कस्तूरचन्द जी महाराज) आगमज्ञान में काफी मर्मज्ञ एवं ज्योतिष ज्ञान में निष्णात हैं। मुझे भी कुछ ज्योतिष के विषय में पूछना है। यथा अवसर……। इतने में एक भाई कुछ प्रश्न लेकर समाधान की खोज में वहाँ उपस्थित होकर बोला—

“आचार्य देव ! मुझे कुछ प्रश्न पूछना है। आज्ञा हो तो पूछूँ।”

आचार्य महाराज ने गुरुदेव को आदेश दिया कि इस भाई के प्रश्न का समुचित समाधान करें। तब गुरुदेव आचार्य देव के आदेश को शिरोधार्य कर आगन्तुक भाई से बोले—“बोली भाई तुम्हारे प्रश्न क्या हैं ?”

“मत्थेणं वंदामि।” जैन एवं वैदिक दर्शनों में ८४ लाख जीवा योनि की संख्या मानी गई है। वैदिक धर्म में मुझे सविस्तार इस राशि का विशद वर्णन कहीं नहीं मिला। जैन सिद्धान्तों में हो तो आप मुझे समझाने की कृपा करें। किस दृष्टि से ८४ लाख जीवायोनि का मेल मिलाया गया है? यह मैं जानना चाहता हूँ। इस प्रकार उस प्रश्नकर्ता ने अपने भाव सामने रखे।

समाधान के तौर पर गुरु प्रवर ने फरमाया कि—सविस्तार जैन दर्शन में ८४ लाख जीवायोनि का वर्णन मिलता है। वह इस प्रकार है—सुनिये, जिसकी जितनी लाख जातियाँ हैं, उसका मूल आधा-सैंकड़ा ग्रहण करना चाहिए। उसके बाद पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस, आठ स्पर्श और पाँच संस्थान इस प्रकार अलग-अलग गुना करने से चौरासी लाख जीवायोनि का हिसाब ठीक मिल जाता है। जैसे—

काली मिट्टी के मूल भेद	३५०
नीली मिट्टी के मूल भेद	३५०
लाल मिट्टी के मूल भेद	३५०
पीली मिट्टी के मूल भेद	३५०
श्वेत मिट्टी के मूल भेद	३५०

१७५० भेद हुए।

गंध के दो भेद सुगन्ध और दुर्गन्ध $१७५० \times २ = ३५००$ भेद हुए ।

रस पाँच—तीखा, कड़वा, कषायला, खट्टा, मीठा ऊपर की संख्या के साथ गुना करने से १७५०० भेद हुए ।

स्पर्श आठ—कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष इनका ऊपर की संख्या के साथ गुना करने से १४०००० भेद हुए ।

संस्थान पाँच—परिमण्डल सं०, वर्तुलाकार सं०, त्रिकोण, चतुष्कोण और आयात, इन पाँचों का ऊपर की संख्या के साथ गुना करने पर ७००००० पृथ्वीकाय के भेद हुए ।

इसी प्रकार अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, वेइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, नर्क-देव एवं मनुष्य के विषय में समझ ले । उचित समाधान मिल जायेगा । इस प्रकार निम्न आँकड़े के अनुसार बराबर संख्या आयेगी—

पृथ्वीकाय के	सात लाख भेद
अपकाय के	सात लाख भेद
तेउकाय के	सात लाख भेद
वायुकाय के	सात लाख भेद
प्रत्येक वनस्पतिकाय के	दस लाख भेद
साधारण वनस्पतिकाय के	चौदह लाख भेद
वेइन्द्रिय के	दो लाख भेद
त्रीन्द्रिय के	दो लाख भेद
चौरिन्द्रिय के	दो लाख भेद
पंचेन्द्रिय के	चार लाख भेद
नरक के	चार लाख भेद
देव के	चार लाख भेद
मनुष्य के	चौदह लाख भेद

दूसरे प्रश्न को उद्घाटित करते हुए उस प्रश्नकर्ता ने गुरुदेव से पूछा—“प्रतिक्रमण सूत्र में १८२४१२० भेद मिच्छामि दुक्कडं के विषय में आता है । जिस आँकड़े के अनुसार यह संख्या मानी गई है ?”

समाधान करते हुए गुरुदेव ने कहा कि—जीव तत्व के ५६३ भेदों के साथ—
“अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उह्विया, ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ बवरोविया” इन दस शब्दों के साथ गुना करने से ५६३० भेद हुए ।

इस संख्या को राग और द्वेष से द्विगुणित करने से ११२६० भेद हुए। तत्पश्चात् त्रियोग (मन, वचन, काया) से त्रिगुणित करने से ३३७८० भेद हुए, तीन करण (कृत-कारित-अनुमत) के साथ त्रिगुणित करने से १०१३४० भेद हुए। तीन काल (भूत-भविष्य-वर्तमान) के साथ त्रिगुणित करने से ३०४०२० भेद हुए, अब अर्हंत, सिद्ध, साधु-देव-गुरु और आत्मा इस प्रकार छः गुणित करने से १८२४१२० भेद होते हैं।

यथोचित सरल-सुबोध-समाधान सुनकर वह प्रश्नकर्ता काफी प्रभावित हुआ। करबद्ध होकर बोला—“गुरुदेव ! कष्ट के लिए क्षमा चाहता हूँ।” मैं बहुत स्थानों पर गया, पर मुझे सन्तोषप्रद समाधान नहीं मिला। आपने बहुत ही सीधी-सादी सरल भाषा में एवं आँकड़े के माध्यम से समाधान कर दिया। मैं बहुत जल्दी समझ गया। मांगलिक श्रवण कर अपने घर की ओर चला गया।

□



□ मुनि सुरेश, शास्त्री

[मेवाड़ भूषण श्री प्रतापमल जी महाराज
के प्रशिष्य]



गुरुदेव श्री के वचनामृत-बिन्दु

[श्री कस्तूरचन्द जी म० के
प्रवचनों से संकलित]

मानव धर्म

“मानव समाज का व्यावहारिक धर्म क्या है?” मैंने पूछा।

प्रत्युत्तर में गुरुदेव ने कहा—“जब से मैं समझने लगा हूँ, तभी से इस आचार और विचार का दृढ़ हिमायती रहा हूँ। भले किसी भी जाति, कुल, वंश परम्परा से सम्बन्धित हो, भले वह गाँव का निवासी हो कि—नगर का वैष्णव हो कि जैन। मानवता के नाते यथाशक्ति शारीरिक-आर्थिक एवं वाचिक सहयोग देकर उन्हें ऊँचा उठाना चाहिए। ऐसा करना मानव धर्म और आर्य संस्कृति की रक्षा के साथ उन महा मनस्वी महावीर, राम और कृष्ण के उपदेशों की आंशिक रूप से परिपालना भी।”

वेदानुभूति

मैंने बहुतों के मुँह से सुना है—“वे सभी आपको करुणा-सागर कहकर पुकारते हैं। तो क्या सभी के प्रति आपकी सहानुभूति है?” मैंने पूछा।

रोग और शोक से कराहते हुए एवं आँसू बहाते हुए नर-नारियों को और छटपटाते हुए पशु-पक्षियों को जब मैं अपनी इस चरम चक्षुओं से देखता हूँ, तब मेरा अन्तर्मानस

दुखित एवं विह्वल हुए बिना नहीं रहता है। उस समय मेरे रोम-रोम में एक नई हलचल मच जाती है। कारण यह है कि—मेरी आत्मा विंगत अनेक भवों में चतुर्गति संसार में अगणित बार दारुण दुःखानुभूतियाँ कर भुक्तभोगी बन चुकी है। वे अनुभूतियाँ इन व्यथित और पीड़ित आत्माओं की उठती हुई चीत्कारों से पुनः आज ताजी हो जाती हैं। फलस्वरूप पर-वेदानुभूति को मैं स्व-वेदानुभूति मानता हूँ।

वृत्ति और प्रवृत्ति

“साधुओं की वृत्ति-प्रवृत्ति किस ढंग की होनी चाहिए ?” मैंने पूछा।

कतिपय साधु-संन्यासियों की वृत्ति और प्रवृत्ति क्लेश कामी हुआ करती है। “फूट डालो, राज करो” यह नीति उन्हें इष्ट और प्रिय लगती है। इस विचार-धारानुसार जहाँ भी वे पहुँच जाते हैं, वहाँ पारस्परिक स्थानीय संगठन में फूट के बीजारोपण करने में और शान्त वातावरण को कड़ुआ बनाने में चूकते नहीं हैं।

पर मेरी विचारधारा उक्त धारा से बिलकुल मेल नहीं खाती है। मुझे अच्छी तरह याद है, जहाँ-जहाँ मेरे चातुर्मास हुए हैं एवं जहाँ-जहाँ मेरा विचरण हुआ है। मैंने बिखराव के स्थान पर समाज-संघ में सहभाव की स्थापना की है। बिखरे हुये दो दिलों को मिलाने में मैंने अपना गौरव समझा है। मैंने अपने अनुयायी संतों को भी यही कहा है—क्लेश और द्वेषात्मक वातावरण को बढ़ावा नहीं देते हुए समाज में स्नेह संगठन और सहानुभूति की स्थापना करें।

“आपको अधिक प्रिय कौन लगते हैं ?” मैंने पूछा।

प्रत्युत्तर में गुरुदेव ने बहुत ही मीठ वाणी में समाधान किया—“**खामेमि सब्बे जीवा, सब्बे जीवा खमंतु मे**” आगम के इन महान् वाक्यों को केवल मैंने पढ़े ही नहीं हैं अपितु मैंने अपने साधक जीवन में इन्हें उतारा भी है। अर्थात्—समष्टि के समस्त प्राणी-भूत और जीव सत्त्वों पर मेरी समदृष्टि रही है। सभी के साथ मैत्री-भाव का समान व्यवहार करने का मैं पूरा ध्यान रखता हूँ। फिर भी वे नर-नारी मुझे अधिक प्रिय लगते हैं, जो नियमित रूप से धर्माराधना में रत रहते हुए दीन-दुःखियों की करुण पुकार को सुनते, समझते एवं यथाशक्ति सहयोग देकर उन्हें ऊपर उठाते हैं।

आडम्बर और सिद्धान्त

“सभी के लिए महत्त्वपूर्ण क्या है ? आडम्बर कि—सिद्धान्तों की परिपालना ?” मैंने पूछा।

कई बार स्वयं मैंने अनुभव किया है। अपने-अपने देव-गुरु-धर्म के नाम पर सैकड़ों-हजारों नर-नारी एकत्रित होकर जन्म तिथियाँ और स्वर्ग तिथियाँ विराट् आडम्बरों के साथ मनाते हैं। कहीं-कहीं देव-गुरु के नाम पर बड़े-बड़े मेले भरे जाते हैं, कहीं-कहीं गुरु की मूर्तियों के अनावरण महोत्सव मनाये जाते हैं। ये सब क्या हैं ?

सही अर्थों में भक्ति नहीं भक्ति का एक विकृत रूप है। मन और इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने का एक मन-मोहक रंग-विरंगी चहल-पहल का दृश्यमात्र।

मैं पूछता हूँ—जिसके नाम पर तुम भारी आडम्बर कर रहे हो, उनके बताये हुए सिद्धान्तों पर चलने के लिए क्या तुम तैयार हो? मानव समाज के पास इसका कोई उत्तर नहीं है। व्यर्थ की आडम्बर प्रवृत्ति ने आज मानव के जीवन को आचरणहीन बना दिया है। इसलिए आज मानव की बुद्धि जड़ होती जा रही है।

विषमता का समाधान क्या है ?

“क्या कारण है? दिनोंदिन मानव समाज में इतनी विषमता क्यों पनपती है?” मैंने पूछा।

महाराज श्री ने कहा—“मैंने कइयों के मुँह से कहते हुए सुना है—फलांचन्द जी ने अपनी पुत्री के लग्नोत्सव में हजारों रुपयों का दहेज दिया और खिलाने-पिलाने में अंधाधुंध खर्चा भी किया। सारे गाँव में उसकी प्रशंसा हुई। अब मुझे भी अपनी पुत्री का विवाह उससे सवाया करके दिखाना है। ताकि दुनिया उसे भूल जाय और मेरे कार्यों को याद करे।”

इस प्रकार आज मानव में प्रतिस्पर्धा का बाजार गर्म है। सभी होड़ा होड़ा की बाढ़ में बह रहे हैं। विवाह में बेसुमार दहेज लिया जाता एवं दिया जाता है। जबकि—सगा पहले से ही श्रीमंत है। फिर भी भरे हुए को जबरन धन-माल भरा जाता है। यह समाज की कैसी गलत प्रथा है? इस कुप्रथा का परिहार आज अनिवार्य हो चुका है। विषमता का बीजारोपण इसी तरह तो होता है। अगर समाज के साधारण परिवार के सुयोग्य-सुशिक्षित-सुशील लड़के को पुत्री और पैसा दिया जाय तो वह लड़का जीवन पर्यन्त एहसान मानना नहीं भूलेगा। इस प्रकार आसानी से समाजवाद का फैलाव हो सकता है।

पर समाज का धनी वर्ग ऐसा करता कहाँ है? गरीब लड़के उनकी नजरों में आते ही नहीं हैं।

संत की परिभाषा

“संत जीवन की पहचान क्या है?” मैंने पूछा।

संत का अंतरंग जीवन और बहिरंग जीवन समता समानता की धुरी पर टिका हुआ है। उसके भीतरी जीवन से सरलता, सौहार्दता एवं सहानुभूति के मंद-सुगंध-शीतल-स्रोत प्रस्फुरित होते हैं, तो बाह्य जीवन से कोमलता-कामनीयता बरसा करती है। कथनी-करणी, वृत्ति और प्रवृत्ति में कोई अन्तर नहीं रहता है। जिसकी कथनी और करणी में आकाश-पाताल का व्यवधान है। वह संत कैसा? संत के चेहरे पर सौम्यता और मुख से सदा अमृत बरसता है। मैंने स्वयं ने देखा है—पूज्य श्री

खूबचन्द जी महाराज एवं जैन दिवाकर जी महाराज के सामने कभी-कभी उग्र वातावरण उभर आता था। फिर भी उन महा मनस्वियों के चेहरों पर समता और मुख से अमृत ही बरसता रहता था।

सुना पर समझा नहीं

“मानव समाज इतना सुनता है, फिर भी उनके जीवन में परिवर्तन क्यों नहीं आता ?” मैंने पूछा।

समाधान के परिक्षेप में गुरुदेव ने कहा—“सुनाना बुरा नहीं, इसी तरह सुनना भी बुरा नहीं। फिर भी मानव के जीवन में परिवर्तन क्यों नहीं आया ? यह तर्क आज काफी चर्चीला बन चुका है। कारण यह है कि—सम्यक् प्रकार से अभी तक उन्होंने धर्म के मर्म को समझा नहीं है। हेय-श्रेय-उपादेय क्या है ? आज के श्रोता इनसे अनभिज्ञ रहे हैं। इसलिए भौतिक धन-सम्पत्ति में आसक्त एवं उनके प्रति प्रगाढ़ ममत्व बुद्धि रही हुई है। जब तक श्रोता यह न समझ ले कि—भौतिक सुख-सुविधा नश्वर मात्र है। मैं इनका नहीं, ये मेरे नहीं। केवल जीवन निर्वाह का व्यावहारिक साधन मात्र है। मुझे बंधन में उलझाये रखने वाला एक जाल है। तब तक विचारों में न परिवर्तन आ सकता है और न विचारों का परिस्कार ही हो सकता है।”

सुनना और सुनाना बुरा नहीं

आज सभी देख रहे हैं, चारों ओर व्याख्यान देने वाले संतों की एवं संसारी वक्ताओं की कोई कमी नहीं है। फिर भी जैसा चाहिए वैसा सामाजिक सुधार क्यों नहीं हो रहा है ?

प्रत्युत्तर में गुरुदेव ने कहा—‘सामाजिक सुधार क्यों नहीं हो रहा है ?’ यह बात दूसरी है। पर सुनने और सुनाने की प्रथा बुरी नहीं, अच्छी है। सुनते रहेंगे तो अवश्य एक दिन धर्म के मर्म को समझेंगे। स्व-पर का हिताहित एवं पुण्य-पाप क्या है, इन्हें जानने की कोशिश करेंगे और कभी न कभी अपनी गलत आदतों को, राहों को एवं रूढ़ियों को बदल भी देंगे। शास्त्र में कहा—“सोच्च जाणइ कल्याणं, सोच्चा जाणइ पावणं” अर्थात् सुनकर ही कल्याण और अकल्याण मार्ग का ज्ञान होता है।

इसी प्रकार सुनाना भी बुरा नहीं, एक अच्छी धार्मिक प्रवृत्ति है। संत और समाज को एक स्थान पर बिठाने का एक सुन्दरतम माध्यम है। इस माध्यम का बहुत बड़ा लाभ यह है कि संत और समाज दोनों का सम्पर्क चालू रहता है और विचारों का आदान-प्रदान भी। अगर इस प्रवृत्ति को निरर्थक मानकर अंत करने पर दोनों पक्षधर स्वच्छन्दी बन जायेंगे। समाज के प्रति संत और संत के प्रति समाज बिलकुल उपेक्षित हो जायेंगे। इसलिए धर्मोपदेश की प्रथा अत्यधिक इस युग में उपयोगी है।



अभिनन्दन-पुष्प

□ मेवाड़संघ शिरोमणि प्रवर्तक श्री अम्बालाल जी महाराज

श्रीमद् आचारांग सूत्र का एक वाक्य है—‘धम्म विड उज्जु’ अर्थात् जो सद्धर्म का विज्ञाता है, वह ऋजु स्वभावी होता है।

ऋजुता अर्थात् कापट्य ग्रन्थि का भेदन हो जाना जीवन की एक महत्त्वपूर्ण सफलता मानी गयी है।

संयमी जीवन का यह आधारभूत सत्य आज हमारे साधु समाज में किस तरह जो रहा है, यह सब यहाँ स्पष्ट करना अभी आवश्यक नहीं है।

ग्रन्थि रहित सरल जीवन के आज दर्शन कठिन हैं किन्तु मालवरत्न, परम श्रद्धेय श्री कस्तूरचन्द जी महाराज का भव्य-व्यक्तित्व जब तक उपस्थित है, भद्रता की वास्तविकता का संदर्शन मिलता रहेगा।

श्री कस्तूर चन्द जी महाराज का संयमी जीवन सत्तर वर्ष की यात्रा कर आगे बढ़ रहा है।

जिस वर्ष मेरा जन्म हुआ उस वर्ष आप संयम के पथ पर आये। बीस वर्ष बाद मैं भी उस पथ का राही बना तब से अब तक यह सह-यात्रा चल रही है। शारीरिक दृष्टि से दूरस्थ होकर भी एक ही संघ के अंग होने से आत्मिक सम्पर्क तो सदा ही रहा, आज भी है।

इस आत्मिक सम्पर्क के सन्दर्भ में मेरे अनुभव ने आपको एक भद्र मुनिराज के रूप में स्वीकार किया और मैं यह समझता हूँ कि—मेरी यह स्वीकृति कतई अनुचित नहीं है।

सुदीर्घ संयमी जीवन की यात्रा के अनेक घटनाक्रम समाज के सामने हैं किन्तु आपको कहीं भी उलझते नहीं पाया।

सरलता की साक्षात् मूर्ति श्री कस्तूरचन्द जी महाराज के पास शुद्ध अनुभवों का एक विशुद्ध खजाना है। विशुद्ध शब्द का प्रयोग मैं इसलिए कर रहा हूँ कि—वहाँ मिलावट की कोई संभावना नहीं है।

महिमा मण्डित श्री नन्दलाल जी महाराज, पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज, शास्त्रज्ञ श्री देवीलाल जी महाराज, पूज्य श्री मन्नालाल जी महाराज, पंडित कवि श्री हीरालाल

जी महाराज, जैन दिवाकरजी महाराज आदि सत्पुरुषों की तो आपने साक्षात् सेवा की है और तत्कालीन, अनेक सम्प्रदायों के आचार्यों, प्रधान मुनिराजों का यदा-कदा सम्पर्क पाया है, इन सब प्रसंगों से अनुभवों का जो बेजोड़ खजाना इनकी स्मृति में उपस्थित है वह जैन समाज के इतिहास की धरोहर है, मेरा इनके विद्वान् शिष्यों से आग्रह है कि—उन मूल्यवान् याददास्तों को समय रहते लिपि क्षेत्र से ले आएँ।

मालव रत्न श्री कस्तूर चंद जी महाराज की मैं एक विशेष गुण के लिए बड़ी ख्याति सुनता हूँ, वह है—“सेवा”।

शासन को समर्पित जीवन का सेवा ही आदर्श होता है। अग्लान भाव से रग्न, बाल, वृद्ध आदि मुनिराजों की एक रस हो सेवा करना वह विशेषता है, जिसने आज उन्हें मुनि-मन-प्रिय बना दिया है।

शान्त स्वभावी, मिलनसार और प्रसन्नवदन श्री कस्तूरचंद जी महाराज बड़े मधुर भाषी और निभाउ स्वभाव के हैं, यही कारण है कि आज दिवाकर गच्छ इनके अनुशासन को शक्त्या नहीं, भक्त्या स्वीकार करता है।

आज जब मैंने यह सुना कि—उन महापुरुष का सार्वजनिक अभिनन्दन किया जाने वाला है तो मेरा मन पुलकित हो उठा। इसलिए नहीं कि—हम उनका अभिनन्दन कर उन्हें ऊँचा उठायें बल्कि खुशी इस बात की हुई कि हम अपने उत्तरदायित्व को कुछ तो समझ पायें। यदि हम ऐसे सुयोग्य अग्रज मुनिराज का अभिनन्दन नहीं करते हैं तो हम एक ऐसा अवसर खोते हैं जो कुछ वर्षों बाद चाह कर भी किसी भी स्थिति में प्राप्त नहीं कर सकते।

अभिनन्दन के शुभावसर पर दीर्घ जीवन की मंगलकामना के साथ हार्दिक अभिनन्दन।

□



श्रमण संघ की विरल विभूति :

उपाध्याय कस्तूरचंदजी महाराज

□ राजस्थान केसरी अध्यात्मयोगी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी

श्रमण संघ की विरल विभूति स्थविर पदालंकृत श्री कस्तूरचंद जी महाराज का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है, यह जानकर मेरा हृदय आनंद विभोर हो उठा, क्योंकि वे एक ऐसे विशिष्ट शिष्य संत हैं जिनके चरणारविन्दों में श्रद्धा के सुमन समर्पित करने का मुझे सुअवसर प्राप्त हो रहा है।

कस्तूरचंदजी महाराज के दर्शनों का सौभाग्य मुझे एक बार नहीं, अनेक बार प्राप्त हुआ है। जहाँ तक मेरी स्मृति है मैंने उनके दर्शन सर्वप्रथम मेदपाठ की राजधानी उदयपुर में किये। उसके पश्चात् ब्यावर, सेंधडा, सादड़ी, सोजन और जयपुर में किये। जब भी मैंने उनके दर्शन किये, मुझे उनके सन्निकट बैठने का अवसर प्राप्त हुआ, तब मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मैं एक सुगुणों की सुन्दर वाटिका में बैठा हुआ हूँ, जहाँ पर रंग-विरंगे सुगन्धित सुमन खिल रहे हैं, महक रहे हैं और अपनी मधुर सुगन्ध से जनमन को आकर्षित कर रहे हैं। कस्तूरचंद जी महाराज जहाँ आगम साहित्य के, स्तोक साहित्य के, गंभीर विद्वान हैं वहाँ वे ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित हैं। ज्योतिष के सम्बन्ध में उनकी सूक्ष्म जानकारी है। जम्बूदीप प्रज्ञप्ति, चंद्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति का उन्होंने अनेक बार परिशीलन किया है जिसके फलस्वरूप ग्रह-नक्षत्र, तारागण, नदी पर्वत आदि का उन्हें गहरा परिज्ञान है। जब भी उनके पास बैठिए, तब भी वह ज्ञान का खजाना खोल देंगे, जिज्ञासु जितना भी चाहें, उसमें से ग्रहण कर लें, और वे राजा कर्ण की तरह दान देने में आनन्द का अनुभव करते हैं।

उनके जीवन की महत्वपूर्ण विशेषता है—वे स्वभाव से सरल हैं, नम्र हैं, दयालु हैं। वे परोपकार परायण वृत्ति के हैं। किसी भी दीन दरिद्र को देखकर उनका हृदय मोम की तरह पिघल जाता है और जब तक उसे सहयोग न दिला देते हैं तब तक उन्हें शान्ति नहीं होती है।

श्रद्धेय कस्तूरचंदजी महाराज संगठन के महान् प्रेमी रहे हैं, श्रमण संघ के निर्माण में उनका अपूर्व योगदान रहा है। संगठन के लिए समय-समय पर उन्होंने अपने विचारों को बदलकर एकता के लिए प्रयास किया है जिसके फलस्वरूप श्रमणसंघ एक बना रहा।

मैं उस महान संत की विशेषताओं पर क्या प्रकाश डालूँ? क्योंकि उनका जीवन आदि से अन्त तक मिथी के समान मधुर रहा है, इलाइची के समान सुगन्धित रहा है और नवनीत के समान कोमल रहा है। मेरी यही हार्दिक मंगल कामना और भावना है कि ये संत प्रवर दीर्घकाल तक समाज को अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य की निर्मल ज्योति प्रदान करता रहे। शायर के शब्दों में—

तुम सलामत रहो वर्ष हजार,
हर वर्ष के दिन हों पचास हजार।

भक्ति के चार शब्द

□ श्री इन्दर मुनि जी महाराज (बड़े)

मालव रत्न उपाध्याय पदालंकृत श्रद्धेय श्री कस्तूरचन्द जी महाराज इन दिनों स्थानकवासी जैन समाज में वयोवृद्ध संत शिरोमणि पद पर आसीन हैं। विगत दसकों में आपने कई जैनाचार्यों की सेवा करके अनुभव ज्ञान का अमूल्य कोष प्राप्त किया है।

मुझे कई बार आपकी सेवा करने का लाभ मिला है। मैंने काफी निकटता से आपके उभय जीवन को देखा है। सदैव आप संकीर्ण विचारों से दूर रहे हैं, कौन अपना कौन पराया? यह भेद नीति आपके पास नहीं है। यही कारण है कि—सभी सन्त आपको “गुरु भगवंत” कहकर पुकारते हैं। आप देह से जितने स्थूल हैं, गुणों में भी आप उसी तरह महान् हैं।

जैन समाज आपको अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट कर रही है। यह गौरव की बात है। मैं भी आपका अभिनन्दन करता हूँ।

स्मृति-पटल पर ताजा संस्मरण

□ मनोहर मस्तराम जी महाराज

वि० सं० १९५७ का चातुर्मास पूर्ण कर आचार्य श्री मन्नालाल जी महाराज उदयपुर के उपनगरों में धर्म-प्रचार कर रहे थे। मैं श्री आपकी सेवा में वैराग्यावस्था में धार्मिक अभ्यास कर रहा था। इन्हीं दिनों में पं० श्री कस्तूरचन्द जी महाराज बड़ी सादड़ी (मेवाड़) का चातुर्मास पूर्ण करके उदयपुर आचार्य श्री की सेवा में पधारे। मैंने भी उस समय आपके प्रथम बार दर्शन किए। आपका चेहरा विशाल, भव्य ललाट, भव्यनेत्र, भरा हुआ गज गति सुन्दर आकृति को देखकर मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। आपके दर्शन से मेरे वैराग्य में अत्यधिक वृद्धि हुई। आगे चलकर आप श्री ने मेरी जन्म भूमि गोगुन्दा (बड़ागाँव) फरसकर दीक्षा की आज्ञा भी प्राप्त कराई। ये आपका मेरे पर अत्यन्त उपकार है। आपके साथ अनेक चातुर्मास हुए। उसमें मुझे आपने अनेक शास्त्रों का अभ्यास कराया, शास्त्रों की गम्भीर धारणा भी करवाई। आपके धैर्यता, गम्भीरता, साहसिकता आदि अनेक गुणों ने मेरे पर अत्यन्त उपकार किया है। एक किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

धीरता, गम्भीरता, होय उसी में होय।

टाटी ऊपर तीन खण्ड, सुण्या न देख्या कोय ॥

चारों ही संघों में आपका व्यवहार बहुत सुन्दर है। इस समय आपको उपाध्याय पद पर अलंकृत किए हैं। ये बहुत ही सुन्दर और उपयुक्त है। आपके पास अनुभव का भण्डार सुरक्षित है। आपका संयमी जीवन चिरायु हो, ताकि चिरकाल तक समाज ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य से लाभान्वित हो सके, यही हार्दिक शुभकामना है।

उदार हृदयी के चरणों में

□ केवल मुनि

कवि बंशी मुनि दिल्ली में बीमार थे, उन दिनों उपाध्याय मालव रत्न श्री कस्तूरचन्द जी महाराज का वर्षावास दिल्ली में था। तब आपकी सेवा करने का, दर्शन करने का एवं आपको निकटता से देखने का मुझे प्रथम अवसर प्राप्त हुआ था।

यों तो आपके तेजोमय संयमी जीवन में अगणित विशेषताएँ रही हुई हैं। परन्तु कुछ विशेषताएँ महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं।

आपके पास हस्तलिखित साहित्य का खासा भंडार था। जो कुछ वर्षों पहले जयपुर के ज्ञान भण्डार को उपहार के रूप में उदारतापूर्वक आपने प्रदान किया है। व्याख्यानोपयोगी रचनाएँ भी आपके पास बहुत हैं। उन्हें आप उदारतापूर्वक दिखाने में एवं लिखाने में सदैव तत्पर रहते हैं। इतना ही नहीं आपकी यह आंतरिक इच्छा रही है कि—संग्रहीत भजन, कविता, लावणिएँ, श्लोक एवं अन्य रचनाएँ अधिकाधिक साधु-साध्वी एवं प्रबुद्ध वर्ग के हाथों में पहुँचे उतना ही अच्छा है। अतएव आपका उपयोगी संग्रह-सामग्री कूप का जल नहीं सरिता का जल है।

साधर्मी सहायता पहुँचाना यह दूसरी विशेषता है। आपके प्रभावशाली प्रवचनों के प्रभाव से समाज के कई गुप्तदानी हजारों रुपयों की सहायता सैकड़ों भाई-बाइयों को पहुँचाने में आज भी सक्रिय हैं। यह मालव रत्न श्री जी के उदारता का ही प्रभाव है।

उनके बहत्तर वर्षीय संयमी जीवन का समाज—संघ द्वारा जो अभिनन्दन किया जा रहा है। इस शुभावसर पर उनके उक्त गुणों का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए मुझे भी प्रसन्नता हो रही है।



विलक्षण प्रतिभा के धनी :

श्री कस्तूरचन्द जी महाराज

□ देवेन्द्र मुनि शास्त्री

परमादरणीय मालवरत्न उपाध्यायप्रवर स्थविर पदालंकृत श्री कस्तूरचन्द जी महाराज स्थानकवासी जैन समाज के एक वरिष्ठ सन्त रत्न हैं। उनमें विलक्षण प्रतिभा, प्रत्युत्पन्नमतिव, दूरगामी दृष्टि और त्वरित निर्णय करने की शक्ति के कारण वे जन-जन के आदर पात्र बन गये हैं। कस्तूरी की मीठी और मधुर महक से जनता जनार्दन का हृदय आह्लादित हो जाता है वैसे ही आपश्री के सद्गुणों की मधुर सौरभ से मुग्ध ही नहीं किन्तु जैन समाज अपने आपको धन्य अनुभव कर रहा है।

जैन आगम साहित्य में स्थविर को भगवान की उपमा प्रदान की गई है। 'थेरा भगवन्तो' कहकर उसकी गौरव-गाथा के गीत गाये गये हैं। वह स्वयं ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य में स्थिर होता है और जो भी उसके सम्पर्क में आता है, उसे भी वह स्थिर करता है। इसीलिए आगमों में स्थविरों से पढ़ने का वर्णन मिलता है जिससे साधना के क्षेत्र में कभी भी विचलित नहीं हो सके। परम श्रद्धेय श्री कस्तूरचन्द जी महाराज स्थविर ही नहीं, महास्थविर हैं—वे ज्ञानस्थविर हैं। जब भी कोई साधक उनके पास बैठता है, तब वे ज्ञान की चर्चा करते हैं। उसे जैनधर्म का महत्व बताते हैं।

मैंने आपश्री के दर्शन कब किये यह निश्चित तिथि बताना सम्भव नहीं है, पर जहाँ तक मेरी स्मृति है, मैंने आपके दर्शन गृहस्थाश्रम में बहुत ही छोटी उम्र में उदयपुर में किये थे। मेरी पूजनीया मातेश्वरी तीजबाई जो उस समय वैराग्य अवस्था में थी, जिनका वर्तमान में नाम महासती प्रभावतीजी है, उनके साथ आपके दर्शनार्थ गया था। माताजी को स्तोक साहित्य का बहुत ही गहरा अध्ययन था। उस समय उन्हें लगभग ढाई सौ-तीन सौ थोकड़े आते थे। अतः आपश्री ने माताजी से अनेक प्रश्न किये और उनसे सही उत्तर सुनकर आपश्री ने आशीर्वाद भी प्रदान किया कि तुम दीक्षा लेकर खूब ही धर्म का उद्योत करोगी। माताजी महाराज ने आपसे ज्योतिषचक्र व खण्डा-जोजन आदि थोकड़ों के रहस्यों को भी समझा।

माताजी ने परम विदुषी साध्वीरत्न श्री सोहन कुँवर जी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की और मैंने महास्थविर श्री ताराचन्दजी महाराज व राजस्थान केसरी, अध्यात्मयोगी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के पश्चात् जब मैंने आपके दर्शन किये तब आपने मुझे बालक होने के नाते से अनेक शिक्षाप्रद चित्र दिये, जो आज भी मेरे पास सुरक्षित हैं।

सादड़ी-सोजत और अजमेर शिखर सम्मेलन में भी आपके दर्शनों का सौभाग्य मिला। पर सम्मेलन के भीड़-भड़के पूर्ण वातावरण में आपसे कोई विशेष चर्चा आदि नहीं हो सकी।

विक्रम सं० १९१२-१३ में हम सद्गुरुदेव के साथ जयपुर सकारण ठहरे हुए थे। उस समय आपश्री देहली चातुर्मास करने के बाद वहाँ पर पधारे थे। वार्तालाप के प्रसंग में आपश्री ने जो ज्ञान का निर्झर प्रवाहित किया उसे सुनकर मैं विस्मित हो गया।

रात्रि के नीरव अन्धकार में आपश्री ने मुझे कहा—‘देख देवेन्द्र ! इस तारे का नाम ध्रुव है। इस तारे का नाम अमुक है। अमुक तारे के उदय होने पर देश में सुकाल होता है और अमुक तारे के उदय से दुष्काल और विप्लव होता है।’ मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि महाराजश्री को एक नहीं सैकड़ों-हजारों तारों के सम्बन्ध में जानकारी है। वे मानों इस विषय के मास्टर हैं। इसीलिए श्रमण संघ ने आपको उपाध्याय पद से अलंकृत किया है।

परम्परा की दृष्टि से भी आपश्री पूज्यश्री जीवराजजी महाराज की परम्परा के हैं। इसलिए एक-दूसरे के प्रति स्नेह होना स्वाभाविक है।

आपश्री की मुझ पर असीम कृपा रही है। आपश्री का आशीर्वाद मुझे मिला है जिससे मैं ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य में निरन्तर प्रगति कर रहा हूँ। आपश्री दीर्घकाल तक स्वस्थ रहकर हम सभी को मार्गदर्शन देते रहें और हम आपके आशीर्वाद से ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य में आगे बढ़ते रहें—यही मेरी आपके चरणों में श्रद्धा स्निग्ध सुवासित सुमन समर्पित हैं।



महामालव के महान् रत्न

□ तपोधनी श्री बसंत मुनिजी महाराज

कर्मवीरों एवं धर्मवीरों को जन्म देने में मालव भूमि भी पीछे नहीं रही है। समय-समय पर अनेकों नर-रत्नों को जन्म दिया है। जहाँ अनेकों कर्मवीर विक्रम-राजा भोज जैसे हुए हैं वहाँ बड़े-बड़े महान् त्यागी-ऋषि-मुनि भी हुए हैं।

मेरा परम सौभाग्य है कि एक ऐसे ही महामना मालवरत्न का अभिनन्दन करने एवं उनके पावन पाद-पद्मों में अपने श्रद्धास्पद दो शब्द-सुमन अर्पित करने का जो सुअवसर प्राप्त हो रहा है, मुझे उसके प्रति परम हार्दिक हर्ष है जिसका वर्णन मैं कर नहीं सकूँ।

मालवरत्न, करुणासागर, ज्योतिर्विद गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज के प्रति मेरी अटूट श्रद्धा एवं निश्चल भक्ति है। क्योंकि मेरी दीक्षा आप ही के सान्निध्य में हुई। अतः आप मेरे दीक्षा दाता हैं।

आपका जन्म मध्यप्रदेश के 'जावरा' नगर में हुआ। आप पिता रत्तिचन्दजी एवं माता फूलीबाई के लाल हैं। आपके जीवन में रहे हुए गुणों की तारीफ अवर्णनीय है।

निःस्वार्थ प्रेम-दया-क्षमा-उदारता-गांभीर्यता-सहिष्णुता एवं मिलनसारिता आपके जीवन के परम-पावन अंग हैं।

आज आप हमारे श्रमण संघ के एक ज्योतिर्धर चमकते-दमकते-ज्ञान रत्नाकर हैं। आप द्वारा चतुर्विध संघ प्रतिदिन-प्रतिपल ज्ञान प्राप्त कर रहा है।

आपकी सेवा का मुझे अधिक लाभ नहीं मिला है, फिर भी मैं आपकी सरल प्रकृति एवं उदात्त विचारों से प्रभावित हूँ। आप चिरायु रहें यही मेरी शुभ कामना है। मैं अपने इन दो शब्दों एवं शुभाकांक्षा द्वारा गुरुदेव का अभिनन्दन करता हूँ।

१०-६-७६

मुनि बसंत
जालना (महाराष्ट्र)



हिमालय से भी महान्

□ श्री लाभचन्दजी महाराज

परम श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव उपाध्याय श्री कस्तूरचंदजी महाराज के प्रति मैं क्या लिखूँ। जो भी लिखना है, मानो सूर्य को दीपक बताने जैसा है।

आपके जीवन में सरलता, सौम्यता, वात्सल्यता, करुणा एवं दीन-दुखियों के प्रति सहानुभूति आदि अनेकों दैविक गुण कूट-कूट कर भरे हुए हैं। जिनका वर्णन यह लेखनी पूर्ण रूप से चित्रित नहीं कर पाती है।

आप ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान हैं। क्षमा गुण आपके जीवन के कण-कण में ओत-प्रोत है। आप जैसे महामनस्वियों के विषय में यदा-कदा जब मैं सोचता हूँ तो मुझे लगता है कि आपका जीवन तो हिमालय से भी महान् है, श्रेष्ठ है, विविध गुण-गरिमा-महिमा से युक्त है। सभी पर्वतों में हिमालय का महत्व अत्यधिक इसीलिए माना है कि वह विशालता का एवं समोज्ज्वलता का प्रतीक रहा है। इसी प्रकार आज श्रमण वर्ग में पूज्य गुरुदेव सभी दृष्टियों से महान् हैं, पूजनीय हैं एवं अर्चनीय हैं। आप वयःस्थविर, दीक्षास्थविर एवं आगमस्थविर हैं। आपको पितामह के रूप में पुकारा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

ऐसे महान् सन्त शासन सम्राट् आपश्री के चरण-कमलों में श्रद्धा भक्ति पूर्वक वन्दनांजलियाँ समर्पण करता हुआ यह शुभ कामना करता हूँ कि पूज्य गुरुदेव से सदा-सर्वदा मार्ग-दर्शन मिलता रहे। फलस्वरूप समाज प्रति-पल प्रगति की ओर बढ़ता रहे।



ज्ञान-गरिमा मंडित उपाध्याय श्री कस्तूरचंदजी महाराज

□ श्री ईश्वर मुनिजी महाराज

श्रमण संस्कृति के प्रतीक परम पूज्य ज्योतिषाचार्य, मालवरत्न, शासन-सम्राट उपाध्याय श्री कस्तूरचंदजी महाराज साहब जैन समाज के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। आपका जन्म विक्रम सम्वत् १९४९ ज्येष्ठ कृष्णा १३ रविवार को जावरा शहर में हुआ। मान्यवर श्री रतिचंदजी एवं सुश्री फूलीदेवी आप जैसे पुण्यवान् पुत्र को पाकर फूले नहीं समाये।

चन्द्र-कला ज्यों आप बढ़ने लगे। योग्यावस्था के अनुसार माता-पिता ने आपको अध्ययन के लिए पाठशाला में प्रवेश कराया। दत्त-चित्त होकर अध्ययन करने लगे। उन्हीं दिनों जीवन के महान निर्माता श्री मज्जैनाचार्य खूबचंदजी महाराज का जावरा नगर में पदार्पण हुआ। हृदय को उद्वेलित करने वाले व्याख्यान होने लगे। वैराग्य रसास्वादन करने के लिए हमारे चरितनायक भी अपने साथियों के साथ जा पहुँचे। पूर्वजन्म के शुभ संस्कारों के फलस्वरूप पूज्य प्रवर के प्रवचन सुने और वैराग्य भावना जाग्रत हो उठी। यद्यपि धर्माराधना काल में एक के बाद एक विघ्न-बाधा उभरते हैं तथापि धुन के पक्के साधक अपने निर्णीत मार्ग का परित्याग नहीं करते हैं।

अन्ततोगत्वा पारिवारिक जनों की अनुमति प्राप्त कर सम्वत् १९६२ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी गुरुवार को पूज्यश्री खूबचंदजी महाराज साहब के सान्निध्य में रामपुरा में दीक्षा व्रत स्वीकार किये। लघुवय में संयमी बन कर हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती एवं ज्योतिष सम्बन्धी गुण ज्ञान में आशातीत सफलता प्राप्त की। विद्वद्वर मुनि-महासती वृन्द आपके मुखार्विन्द से पांडित्यपूर्ण ज्ञान की चर्चियाँ सुनते-सुनते आनन्द विभोर हो जाते हैं।

जैन वाङ्मय में आपका विशाल अनुभव है तथापि आप अभिमान से किसी दूर हैं। आप सरल स्वभावी एवं कठोर संयम पालक रहे हैं।

आपने अपने जीवन काल में अनेक सन्त एवं सती वर्ग को अध्ययन करवाया है। संयमी जीवन निर्वाह के आवश्यक सभी साधन आपश्री के भण्डार में विद्यमान हैं जिन्हें समय-समय पर अभेद भाव से आप अपने वरद् कर-कमलों से प्रदान किया करते हैं। दीन-दुखी, अनाथ, अनाश्रितों को देखकर आपका मृदु मन पसीज जाता है। फलस्वरूप आपकी बलवती प्रेरणा से लगभग सभी प्रान्तों में विधवा सहयोग, छात्रवृत्ति एवं

साधर्मी सहायता स्वरूप हजारों रुपये प्रति वर्ष पहुँचते हैं। कई विद्यार्थी आपश्री की महती कृपा से प्रगति कर रहे हैं।

आपका जीवन एक अगाध सिन्धु सदृश्य है। जिसमें जो भावुक डुबकियाँ लगाता है वह विविध गुण रूपी रत्नों को अवश्य प्राप्त कर आनन्दित हुए बिना नहीं रहता। जो भी वादी-प्रतिवादी आपके सम्पर्क में आते हैं वे पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होकर ही घर लौटते हैं। संयम साधना के अन्तर्गत आपने हजारों मील की पैदल यात्रा करके राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, पंजाब को पावन किया है।

इस समय आपकी अवस्था करीब ८५ वर्ष की है। सम्भवतः स्थानकवासी जैन समाज में सबसे बड़े दीक्षास्थविर, वयःस्थविर एवं श्रुतस्थविर आप ही हैं। आपकी साधना के आद्योपांत सभी क्षण गौरवशाली रहे हैं। मनसा, वाचा, कर्मणा सदैव आप समस्त विश्व कल्याण भावना का चिन्तन किया करते हैं। जिस प्रकार आप शारीरिक दृष्टि से गौरवर्ण युक्त हैं। उसी प्रकार आन्तरिक जीवन भी आपका विमल और विशुद्ध है। कई बार मुझे आप के समीप रहने का अवसर मिला है। आपके मुँह से मैंने कभी भी किसी की निन्दा नहीं सुनी। आप सागर सदृश्य गम्भीर हैं। विविध प्रसंग आपके सामने उभर आते हैं पर आप सभी को अमृत मान कर पी जाते हैं। यही कारण है कि सभी मुनिराज आपको गुरु तुल्य मानते हैं।

मैं अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण के शुभावसर पर पूज्य उपाध्यायश्री के कल्याणकारी चरणों में श्रद्धासुमन अर्पित करता हुआ आपके सुदीर्घ जीवन की मंगल कामना करता हूँ। आशा करता हूँ कि आप जैसे महामनस्वी मुनिपुंगव द्वारा मार्गदर्शन मिलता रहे ताकि मैं अपने साधक जीवन को आलोकित करता रहूँ।

जैन स्थानक २०३३ वर्षावास
रूपनगर (राजस्थान)



कोरे कागज पर ज्ञान के हस्ताक्षर

□ श्री कांतिमुनि जी महाराज 'जैन सिद्धान्त विशारद'

यह जगविदित और सर्वमान्य बात है कि भारत आदिकाल से एक आत्मवादी देश रहा है। जैन, वैदिक और बौद्ध धर्म की धाराएँ इसी देश से निकली हैं और उसके अविरल ज्ञान, वैराग्य, अध्यात्म प्रवाह ने जग को आप्लावित किया है।

भारतीय जन जीवन की पृष्ठभूमि के निर्माण में ऋषियों, मनीषियों और चिन्तकों का महान योगदान रहा है। समय-समय पर सन्तों ने इस देश में ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य की त्रिवेणी मानव-मेदिनी में प्रवाहित कर जन-मानस को आध्यात्मिक अवगाहन का अमूल्य अवसर प्रदान किया है।

सन्तों की इस उज्ज्वल, पुनीत, अविच्छिन्न परम्परा में "मालवरत्न, वयोवृद्ध, शास्त्रज्ञ, ज्योतिर्विद पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज" एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी है।

शस्य श्यामल मालव प्रान्त के रतलाम नगर में विराजित पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज से कौन परिचित नहीं है? कोटि-कोटि जैन व अजैन धर्मप्राण जनता इनसे परिचित व प्रभावित है। संत-सतियाँ एवं श्रावक-श्राविका इनकी सेवा व दर्शन कर अपने आपको धन्य व महाभाग्यशाली मानते हैं। इन्हीं पुनीत पावन जगत उद्धारक पूज्य गुरुदेवश्री की सेवा करने का शुभ अवसर मुझे लम्बे समय से प्राप्त हो रहा है, जिससे मैं अपने आपको धन्य व गौरवान्वित अनुभव करता हूँ।

सांसारिक जीवन काल से ही मैं गुरुदेव के सान्निध्य में रहा। गुरुदेव के दर्शनार्थ जो भी कोई आता है, वे उन्हें जीवन विकास के लिये आध्यात्मिक सद्प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं। इसी प्रकार उनके द्वारा मुझे भी प्रेरणा प्राप्त हुई एवं मेरे मन में पड़ी अज्ञान की गुत्थी सुलझ गई। उनके आदर्श व त्यागपूर्ण जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर मुझे भी सांसारिक प्रपंचों से विरक्ति हो गई और मैं भी संयम मार्ग की ओर अग्रसर होने लगा। समाज व गुरुदेवश्री के द्वारा जाँचा-परखा गया। मेरी दृढ़ संयमी भावना देखकर व पारिवारिक सम्बन्धियों से स्वीकृति प्राप्त होने पर गुरुदेव ने दीक्षा के लिये आज्ञा प्रदान कर दी।

संवत् २०२७ माघ सुदी पंचमी (वसन्त पंचमी) रविवार को गुरुभ्राता पण्डित श्री रमेश मुनिजी महाराज 'जैन सिद्धान्त आचार्य' द्वारा ग्राम छायाण (जिला—धार) में दीक्षित हुआ एवं गुरुदेव श्री प्रतापमलजी महाराज को नेश्रित किया गया।

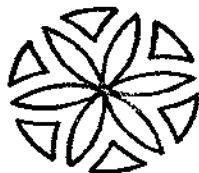
दीक्षा ग्रहण करके मैं सीधा विचरता हुआ पूज्य गुरुदेवश्री कस्तूरचन्दजी महाराज के श्री चरणों में सेवार्थ रतलाम पहुँचा। दीक्षाकाल से लेकर अब तक मैं गुरुदेवश्री की सेवा में हूँ।

संवत् २०२७ में मैं गुरुदेवश्री की सेवा में आया। प्रारम्भ से ही गुरुदेवश्री का मुझ पर प्रगाढ़ प्रेम रहा। जब मैं गुरुदेवश्री की सेवा में आया तब मैं एक कोरे कागज के समान था। कुछ प्रारम्भिक ज्ञानाभ्यास के सिवा मैं एकदम निरा था।

गुरुदेव शास्त्रों के प्रगाढ़ ज्ञाता हैं। उनका कहना है कि शास्त्र ज्ञान ही धर्म का सार है। अतः उन्होंने मुझे भी प्रारम्भ में शास्त्रों के पठन-पाठन के लिये प्रोत्साहित किया। उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त कर मैं शास्त्राभ्यास में लग गया। गुरुदेव ने अपने ज्ञान व अनुभव द्वारा मुझे नन्दीसूत्र, उपासकदशांग, समवायांग, ठाणांग आदि करीब-करीब १० शास्त्रों का पूर्ण विवेचन सहित पठन कराया। तदुपरान्त गुरुदेव ने अपने ज्ञान के अक्षय भण्डार में से निःसंकोच ज्ञानामृत प्रदान कर मुझे व्याख्यान देने हेतु प्रोत्साहित किया। यह गुरुदेवश्री की ही असीम कृपा है जिसके कारण आज मैं सांसारिक प्रपंचों से मुक्त हो भगवान महावीर के बताये गये आदर्शों को अपने जीवन में आत्मसात् करने में प्रयत्नशील हूँ।

गुरुदेव ने एक दीर्घ संयमी जीवन व्यतीत किया है। अनेक प्रान्तों व स्थानों का भ्रमण कर उन्होंने अपने पास ज्ञान व वास्तविक अनुभव का अपार भण्डार संचित किया। गुरुदेव को दीक्षा लिये करीब ७२ वर्ष हो गये हैं। इस दीर्घ दीक्षावधि में उन्होंने कभी आराम को स्थान नहीं दिया। ८६ वर्ष की आयु होने पर भी आज वे व्यस्त दिनचर्या में रत हैं। अपने निकटस्थ साधु-सन्तों को वे निरन्तर शास्त्राभ्यास कराते रहते हैं। ज्योतिष ज्ञान में तो आप पूर्ण रूप से पारंगत हैं। इन सबके अतिरिक्त आपका साधर्मी वात्सल्य भाव जगद्विदित है। सौम्यता व शालीनता में आपसे कोई सानी नहीं रखता।

ऐसे धीर, गम्भीर, पूज्य गुरुदेव की सेवा में रहने का जो मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ है, इसे मैं अपना असीम पुण्योदय मानता हूँ। मेरी जीवन-नीका को ज्ञान व संयम के सागर में निरन्तर प्रवाहित होते रहने के लिये गुरुदेवश्री मुझे जो समय-समय पर सद्गुपदेश प्रदान करते हैं, उसके लिये मैं उनका कोटि-कोटि कृतज्ञ हूँ। शासन देव से प्रार्थना है कि ऐसे पूज्य गुरुदेव की वात्सल्यमयी छाया मुझे अपने जीवन काल में सदैव मिलती रहे। उनके योग्य व कुशल मार्गदर्शन में मैं अपने ज्ञानाभ्यास में निरन्तर वृद्धि करता रहूँ, यही अभिलाषा है।



करुणा-कृपा के कुबेर



□ प्रदीप मुनि 'शशांक'

भगवान महावीर के साधना-शासन में स्व० आचार्यवर्य परमादरणीय श्री हुक्मीचन्द जी महाराज की गच्छ परम्परा में स्वनामधन्य एवं प्रातः स्मरणीय अनेक महान् मुनिवर हो गये हैं। वे सभी अपनी-अपनी जीवन-साधना के प्रकाशमान नक्षत्र थे। उसी पावन धारा के वर्तमान में सर्वोच्च, वरिष्ठतम, ज्योतिकेन्द्र, साधुरत्न, उपाध्याय, ज्योतिर्विद परमाराध्य गुरुदेवश्री कस्तूरचन्दजी महाराज हैं। जिनके वरद-शासन की प्रभावना आज मेरु से भी ऊर्ध्वोन्नत है।

महा-महिम गुरुवर्यश्री के जीवन की गरिमा के सम्मुख संसार की सम्पूर्ण उपमार्यें तेज एवं ओजहीन हैं। वे वात्सल्य एवं करुणा के वास्तव में जीवन स्रोत हैं। जिस किसी ने भी आपका पावन सान्निध्य एकबारगी पा लिया। मेरी दृष्टि से वह निहाल हो गया। उसे फिर भटकने की एवं भीख माँगने की आवश्यकता नहीं।

मेरे गुरुदेवश्री के पास क्या नहीं है? विश्व का वैभव ही जिनके चरणश्री का स्पर्श कर सौभाग्य सराहता है। कभी-कभी तो अनचाहे भी वरदायी आशीर्वाद-निधि उपलब्ध हो जाती है। कुबेर के पास से कभी कोई खाली नहीं आ सकता।

मेरी हार्दिक अभिलाषा यही है कि मैं हरदम पावन पुरुष, पूज्यवर, मालवरत्न गुरुदेवश्री के सान्निध्य लाभ को पाता हुआ जन-मन को ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य की त्रिवेणी संगम की तीर्थता की ओर अग्रसर कर सकूँ।



हार्दिक अभिनन्दन : हृदय के आंगन में



□ श्री राजेन्द्र मुनि जी महाराज (उपदेशाचार्य)

महामनस्वी संत-मुनियों का महकता जीवन पुष्प एक विराट् अध्याय है। सुष्ठुरीत्या जिसका अध्ययन-अध्यापन करके तत्कालीन समाज जनोपकार कल्याण में प्रवृत्त होता हुआ अपने जीवनोत्थान कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है।

ऐसे तेजस्वी एवं कर्मठ साधक व्यक्तित्व को अनेक उपमाओं से उपमित करना कोई अतिशयोक्ति नहीं मानी जाती है—

उरग गिरि जलण सागर, नहयल तरुण समो जो होई ।
भमर गिर धरणी जलरुह, रवि पवण समो जओ समणो ॥

—दशवै० निर्युक्ति, गा० १५७

जिसके जीवन में सर्प के तन की तरह मृदुता, पर्वत की तरह जिसके जीवन में स्थैर्यता, अग्निवत् जिसका जीवन प्रज्वलित है। समुद्र की तरह जिसका जीवन गम्भीर है, आकाश की तरह जिसका जीवन विराट् है, जिसका जीवन वृक्ष की तरह आश्रय-दाता है, मधुकर की तरह जिसकी वृत्ति है, जो अनेक स्थानों से मधु को बटोरता है, हरिण की तरह जो सरल है; भूमि की तरह जो क्षमाशील है, कमल की तरह जो निर्लेप है, सूर्य की तरह जिसका जीवन तेजस्वी है और पवन की तरह जो अप्रतिहत विहारी है। उक्त उपमाओं से अलंकृत साधक जीवन को श्रमण कहा है।

मालवरत्न पूज्य गुरुदेवश्री कस्तूरचन्दजी महाराज के गौरव-गरिमा-मण्डित व्यक्तित्व को किसी एक संकीर्ण परिधि में आबद्ध करना भारी भूल होगी। महाराजश्री का प्रशस्त प्रयास सभी क्षेत्रों में अत्यधिक सक्रिय रहा है। समाज के हजारों-लाखों नर-नारी आपकी कृपा के पात्र रहे हैं। अतएव मैं आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।



पूज्यपाद, मालवरत्न, वयोवृद्ध, शास्त्रज्ञ, ज्योतिर्विद
करुणासागर श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब
अभिनन्दन ग्रन्थ के उपलक्ष में

विनम्र पुष्पांजलि

□ मुनि हस्तीमल 'साहित्यरत्न'

पूज्य गुरुदेव के ७२वीं दीक्षा ग्रंथि के उपलक्ष्य में प्रकाश्य अभिनन्दन ग्रन्थ के पुनीत अवसर पर मैं अपने को अत्यन्त उत्फुल्ल एवं प्रफुल्लित अनुभव कर रहा हूँ।

संवत् २००५ से ही मुझे करुणामूर्ति, धर्मज्ञ श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब के पावन चरणों में सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। इस दीर्घावधि में मैंने महान् परोपकारी करुणासागर के वरदहस्तकमल के पुण्यबल से अपने को घन्य माना।

आपके गुणमान के विषय में तुलसीदासजी का कथन कितना समीचीन प्रतीत होता है कि—'गिरा अनयन, नयन बिनु वाणी'।

ठीक यही दशा इस समय मेरी भी है। मैंने श्री जी के विशाल व्यक्तित्व के रूप में जो कुछ देखा उसे जिह्वा वर्णन नहीं कर सकती। जीभ के नयन नहीं है जो वह ठीक-ठीक वर्णन कर सके।

इस पुनीत पुण्यमय सुअवसर पर आपके श्रीचरणों में शतशत वन्दन।



मालवरत्न पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज के प्रति विनम्र-भावांजलि

शंकरराव तानपुरे, एम. ए., साहित्यरत्न
रतलाम

पूज्यपाद मालवरत्न ज्योतिर्विद करुणासागर पं० श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब के 'हीरक-महोत्सव' के पावन उपलक्ष्य में प्रकाश्य अभिनन्दन ग्रन्थ के शुभ समाचार से मैं अपने को अत्यन्त उत्फुल्ल और प्रफुल्लित कर रहा हूँ।

ज्योतिर्विद्

विगत कुछ वर्षों से पूज्य १००८ श्री श्रद्धेय गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने आप में एक ऐसे ज्योतिर्विद् का आलोक पाया जो भ्रम, संशय, अज्ञान और निराशा के तमःपुंज को विदीर्ण कर मन को उल्लास, आनन्द एवं उत्साह से उजाला देते हैं। दीप प्रकोष्ठ को प्रकाश से आच्छादित कर देता है, तारे झिलमिल कर रात्रि को आभा दिखाते हैं, दामिनी की तड़पड़ क्षणिक होती है किन्तु अरविन्द जगती को आलोक पूरित कर रात्रि गत आलस्य का विसर्जन करवा देता है।

इसी प्रकार ज्योतिर्विद् गुरुदेव के सम्पर्क का प्रभाव है—जो मन के असीम क्षेत्र को अर्हनिश चिरन्तन रूप से तथा शाश्वत रूप से आलोक की वृष्टि कर अभिसिंचित करते रहते हैं।

मालवरत्न

शस्य श्यामला मालवभूमि वास्तव में रत्न प्रसविनी है। अनेक उज्ज्वल रत्नों को प्रसवित करने का सौभाग्य इसे प्राप्त हुआ है। कालिदास, भास, भवभूति जैसे कवि; विक्रम, यशोवर्द्धन एवं भोज जैसे राजा। वराहमिहिर जैसे ज्योतिषी, अहिल्या-बाई जैसी धार्मिक एवं नीतिज्ञ रानी, चन्द्रशेखर आजाद जैसे अमर शहीद किन्तु मालव रत्नों की इस मणिमाला का एक अत्यन्त मूल्यवान रत्न है—श्रद्धेय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब जिनमें तप-त्याग, ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य एवं करुणा की इन्द्रधनुषीय आभा के दर्शन होते हैं।

शास्त्रज्ञ

आपके जीवन के दृष्ट ऋतु चक्रों में ज्ञान एवं अध्ययन ने प्रारम्भ से ही आधार भूत भूमिका निभाई है। आपने विभिन्न शास्त्रों का मनन-चिंतन एवं अध्ययन कर तत्त्व-बोध के नवनीत से जीवन को स्निग्ध बनाया है।

साधारण प्रसंग एवं घटनाओं की शास्त्रोक्त एवं तात्त्विक व्याख्या जो आपके मुखारविंद से सुनने को मिलती है वह आपके प्रगाढ़ पाण्डित्य एवं ज्ञान-गरिमा का परिचय देती है।

करुणासागर

समाज की समस्त कलुषता यदि किसी पदार्थ से घुल सकती है तो वे तत्त्व हैं करुणा एवं क्षमा। मैंने श्रद्धेय गुरुदेव के अन्तःकरण में करुणा सलिल को उर्मियाँ भरते हुए लहराते हुए देखा है। क्षमा की तो आप साक्षात् प्रतिभूर्ति ही हैं। कोई कैंसा भी कलुष मन या क्रोध कषायमय आक्रोषित उद्वेलन को लेकर जब आपके सम्मुख प्रस्तुत होता है तो आपके करुणामय एवं क्षमाशील व्यक्तित्व के महोदधि में वह अवगाहन कर एकदम सर्वथा सात्त्विक पुरुष बन जाता है। ऐसे अनेक प्रसंग व घटनाएँ मैंने अपनी आँखों से देखी हैं।

ऐसे महान् गुणों के सागर, उदारमना, ज्योतिषविद्, दिव्य पुरुष, शास्त्र निपुण, आगम ज्ञाता, सद्धर्म शिक्षा के दाता, विनम्र, वैराग्य भावों से परिपूरित श्रद्धेय गुरुदेव श्री १००८ श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब के पावन चरणों में मेरी यह भावाञ्जलि सादर समर्पित है।

वैसे वे तो दीपक हैं, बाती भी वे ही हैं, ज्योति उन्हीं की है, मैं तो हूँ एक सामान्य जन, संसारी सीमाओं में आबद्ध; उन्हीं से लेकर उन्हीं के पावन चरणों में समर्पित करने वाला। मेरे कोटिशः वन्दन। ओम् शान्ति, शान्ति, शान्ति।



ॐ नमः

मालवरत्न श्री कस्तूरचंदजी महाराज :

एक शब्द चित्र

□ मधुबाला बाफना, एम. ए.

भारतभूमि देदीप्यमान रत्नों की खानि है। उसके अतीत से कई महापुरुषों ने जन्म लिया एवं देश के नागरिकों की आत्म-जागृति, आत्म-उत्थान एवं पर-कल्याण में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। उन्हीं महान् आत्माओं में से मालवरत्न, प्रातः स्मरणीय, ज्योतिष विशारद, शान्ति के सम्राट्, महान् पुण्यशाली आत्मा, परम मनस्वी, अखण्ड यशधारी, पूज्यप्रवर श्रद्धेय गुरुवर श्री कस्तूरचन्दजी महाराज का अपना अनुपम एवं अद्वितीय स्थान है।

इस धर्म महारथी एवं महामनीषी के द्विव्य पुंज का उदय मालव प्रान्त में स्थित जावरा नगर में वि० सं० १९४९ जेठ वदी १३ रविवार के पुण्य प्रभात को चपलोट परिवार में श्रेष्ठिवर्य श्री रतिचन्द्रजी चपलोट के यहाँ श्रीमती फूलबाई की कूँख से अवतरण हुआ था। सेठ श्री रतिचन्द्रजी नवाब के यहाँ मोदी का काम करते थे। इनका भरा-पूरा परिवार था। इस दम्पति को सात पुत्र एवं तीन पुत्रियों की प्राप्ति हुई थी। आप बहुत ही दयालु स्वभाव के व्यक्ति थे, उनकी दयालुता का परिचय इस प्रकार है। वि० सं० १९५६ में जब जावरा में भयंकर दुष्काल ने भयानक रूप धारण कर मानवों को अस्त-व्यस्त कर दिया था, प्रकृति के प्रकोप के कारण अन्न के अभाव में सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची हुई थी, ऐसे संकट के समय में श्रेष्ठिवर्य श्री रतिचन्द्रजी ने जनता को सस्ते भाव में अनाज बेचा एवं दयालुता का परिचय दिया। आपने दुष्काल के समय अपने स्वार्थ को त्यागकर जनता के दुःख-दर्द को दूर कर जो आदर्श व्यवहार किया वह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

पूज्य गुरुवर पर उनके पिताश्री के चरित्र की अमिट छाप उभर आई और १४ वर्ष की यौवन अवस्था में ही सन्तों के समागम के द्वारा आपके हृदय में मायावी संसार की निस्सारता से अरुचि उत्पन्न हो गई एवं समस्त प्रकार के सुखों के साधनों एवं भोग विलास के जीवन को त्याग कर वैराग्य भावना से परिपूर्ण होकर वि० सं० १९६२ कार्तिक शुक्ला १३ गुरुवार को रामपुरा के लाल बाग में श्रद्धेय श्री खूबचन्दजी महाराज के चरण कमलों में गुरु श्री जवाहरलाल जी महाराज के उपदेश से किशोर अवस्था के आंगन में अति अल्प आयु में ही कंटकाकीर्ण मार्ग को अपना कर अष्टादश पापों को त्याग कर भागवती दीक्षा अंगीकार की एवं संयम मार्ग की निर्मल आराधना से मुक्ति मार्ग को अपनाकर अपने आप को कृत-कृत्य किया।

संयम लेते ही आपने अपनी निर्मल बुद्धि एवं सम्पूर्ण शक्ति को ज्ञानाभ्यास में लगाकर थोड़े ही समय में दशवैकालिक, उपासकदशांग, निरयावलिका, अनुत्तरोववाई आदि सूत्र ग्रन्थों का अध्ययन किया। जैन तत्त्वज्ञान सम्बन्धी थोकड़ों का अभ्यास दत्तचित होकर किया, साथ ही जैन आगमों और सिद्धान्तों के अभ्यास के साथ ही विशिष्ट ज्योतिष शास्त्र का गहन अध्ययन कर निपुण हुए।

ब्रह्मचर्य के तेज से इनका व्यक्तित्व इतना निखरा हुआ प्रतीत होता है कि मानों अरुणाचल पर लालवर्णीय सूर्योदय हो रहा हो। ऐसे जैन शास्त्रीय समुदाय में प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले तथा भगवती सरस्वती देवी के वरद पुत्र श्री कस्तूरचन्द्रजी महाराज रतलाम नगर में नीमचौक स्थानक में विराजमान हैं, मालव मणि के समान रतलाम नगरी की शोभा को चमका रहे हैं।

सन्तों, महापुरुषों एवं मनीषियों की वाणी जीवन निर्माण एवं लोक कल्याण की पवित्र प्रेरणा का सन्देश लिए हुए होती है। आपके अगाध पाण्डित्यपूर्ण ओजस्वी एवं मर्मस्पर्शी प्रवचन का पान कर कोई भी मुमुक्षु विरला ही मिलेगा जो प्रवचन को सुनकर प्रभावित न होता हो। मधुर, सारगर्भित एवं अद्भुत शैली प्राञ्जल्य को सुनकर दुष्ट से दुष्ट आत्मा भी अपना आत्मोत्थान किये बिना नहीं रह सकती है। महापुरुषों का प्रमुख लक्ष्य धर्म का प्रचार-प्रसार एवं पतितों का उद्धार करना होता है। इसी उद्देश्य को समक्ष कर राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तक के चारों ओर के प्रदेशों में भ्रमण कर अहिंसा के अवतार भगवान महावीर के दिव्य एवं अनुपम सन्देश को कुटियों से लेकर महलों तक अपने भावपूर्ण एवं ओजस्वी प्रवचनों के द्वारा सत्य-अहिंसा का पाठ जनमानस को देकर अज्ञान के अन्धकार को मिटाकर उसके स्थान पर ज्ञान की अक्षय दीपशिखा प्रज्वलित कर दीन-दुःखियों के हृदय को परम आनन्द की अनुभूति प्रदान कर उनको जीवन के कल्याण का सन्मार्ग बताया। आपकी वाणी में वह अमृत है जो कई सागरों के मन्थन करने पर भी प्राप्त नहीं होता है। ऐसी अमृतमयी वाणी से ओतप्रोत उपदेश का पान करने जो भी आपको शरण में आता है वह अपने जीवन को धन्य एवं कृत-कृत्य कर लेता है।

आपकी व्याख्यान छटा बड़ी आकर्षक, मनोहर, प्रिय, सरस-सरल, मनोरंजक और प्रभावशाली है। साथ ही आप ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। आपके अनुभव का पान करने पर मौलिक चिन्तन और असीम शास्त्रज्ञान का सहज ही परिचय हो जाता है। स्मरण शक्ति और बौद्धिक क्षमता में अद्भुत इस शिरोमणि आत्मा का आज ८५ वर्ष की वय में भी ज्ञान इतना ठोस, प्रामाणिक और कठोर है कि शास्त्रों की एक-एक पंक्ति अर्थ एवं भावार्थ सहित कंठस्थ है।

मुनियों का जीवन सूर्यवत् परोपकारी हुआ करता है। जैसे सूर्य के कारण ही जल-वृष्टि होती है और संजीवनी शक्ति प्राप्त होती है वैसे ही सन्तों के जीवन चरित्र से मुमुक्षु जीवों की कषाय स्थिति क्षीण होकर वह पवित्र हो जाता है। ऐसी आपकी

वाणी को श्रवण करने और दर्शन करने भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों से हजारों जैन-अजैन बारहों-मास रत्नपुरी के तीर्थ की यात्रा करने आते हैं और गुरुदेव के दर्शन पाकर अपने जीवन को धन्य मानकर हर्ष से गद्-गद् हो जाते हैं। आपके मुख से जो बात मुखरित हो जाती है ठीक वैसा ही होता है अतः आप उपलब्धि के भण्डार हैं। किसी को सच्चे मन से कुछ भी कह देते हैं तो उसका कल्याण हो जाता है और मनचाही लब्धि की प्राप्ति उसे हो जाती है।

विश्व कुंज में अनन्त पुष्प विकसित होते हैं। किसी उद्यान में खिले हुए फूल की शोभा उसके रंग-रूप के कारण नहीं, अपितु उसमें पाई जाने वाली सुगंधि से होती है। किशुक कुसुम रूप रंग से पूर्ण होते हैं, किन्तु उनमें मधुर सौरभ न होने से प्रिय नहीं होते हैं। ठीक ! उसी प्रकार गुणवान पुरुषों की पूजा उनके मानवीय गुणों के द्वारा होती है, लिंग के कारण नहीं। ऐसे ही परम श्रद्धेय, शान्ति के सम्राट्, स्थविर पद विभूषित, सद्धर्म की शिक्षा देने वाले, परमार्थ को जानने वाले, धर्म में निष्ठा रखने वाले, भव्य लोगों के हृदय में प्रशस्त स्थान प्राप्त करने वाले, जैनशासन में निरत रहने वाले, ऋजु एवं नम्र स्वभाव वाले, जीवात्मा की रक्षा करने वाले, कल्याण के कार्यों को करने में सदा निपुण मालवरत्न श्री कस्तूरचन्दजी महाराज का जीवन एक महकते हुए सुमन की तरह अपने गुणों की सौरभ को चारों ओर फैल रहा है ऐसे कुसुम रूप सन्त रत्न के चरण कमलों में हर्ष के साथ मैं अपनी विनम्र श्रद्धा-भक्ति अर्पित करती हूँ एवं गुरुदेव चिरकाल तक हम सबको मार्गदर्शन देते रहे—इन्हीं आशाओं के साथ अन्त में पुनः ऐसे महान् सन्त के चिरायु होने की मञ्जल-कामना के साथ हृदय से श्रद्धा सुमन समर्पित करती हूँ।



करुणासागर के चरणों में

□ चन्द्रशेखर कटारिया
नीमचौक, रतलाम (म० प्र०)

परम श्रद्धेय मालवरत्न ज्योतिर्विद् गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज वर्तमान युग में स्थानकवासी समाज में एक युगपुरुष के रूप में विद्यमानता रखते हैं। जीवन को जीने की कला की मार्मिक समीक्षा प्रत्येक प्राणी के लिए आपकी एक महानतम देन के रूप में है। जिस मानस में करुणा का एवं दया का सैलाब लहराता हो, उसकी ओजस्वी गरिमा के दर्शन हमें गुरुदेवश्री में होते हैं। किसी भी सम्प्रदाय का कोई भी निर्धन असहाय भाई-बहिन एवं बच्चे हों, उन्हें गुरुदेवश्री का वात्सल्यमय वरदान सहज ही उपलब्ध हो जायेगा। इस सम्बन्ध में गुरुदेवश्री की पैनी दृष्टि गजब की शक्ति रखती है। इसी के लिए प्रत्येक व्यक्ति सहज में ही आपको करुणासागर के शब्द से सम्माननीय रूप में सम्बोधित कर उठता है। यह अन्तरतम से अन्तरलहरियों की प्रतिध्वनित गूँज है।

गुरुदेवश्री के पास अपना-पराया की विभेद रेखा नहीं है। केवल हमें आत्मीयता के ही दर्शन होते हैं। इसके सिवा अन्यथा कुछ भी नहीं है।

मैं आज अपने मन की असीम श्रद्धा की गहराइयों के साथ में अपनी विनम्र भावाञ्जलि समर्पित करता हूँ। जिससे, कि मैं भी आपके आध्यात्मिक विकास के पथ-चिन्हों पर चलने की गति साधना का संबल पा सकूँ।



मालव की एक विरल विभूति :

शास्त्रज्ञ श्री कस्तूरचन्द जी महाराज

□ प्रबंतक मुनिश्री उदयचन्दजी महाराज 'जैन सिद्धान्ताचार्य'

भारत सदैव ही धर्मप्रधान देश रहा है। इसने मानव-जीवन का लक्ष्य केवल लोकेषणा, वित्तेषणा एवं पुत्रेषणा तक ही सीमित नहीं रखा अपितु उसने मानव-जीवन की सफलता आध्यात्मिक गम्भीरता में आँकी है।

इसी आध्यात्मिक शृङ्खला में जन-जीवन में संत-परम्परा का जो स्थान है वह परम आदरणीय है। और वह लाखों लोगों की श्रद्धा का केन्द्र है।

इस अक्षुण्ण उज्ज्वल परम्परा को स्थिर रखते हुए हमारे चरित्रनायक मालव रत्न वयोवृद्ध शास्त्रज्ञ श्री कस्तूरचन्द जी महाराज साहब एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं।

भारत का हृदयस्थल मालव प्रान्त सदैव ही अपनी सुसम्पन्नता, धार्मिकता, सौजन्यता एवं सरलता का घर ही रहा है। इसके रतलाम जिला अन्तर्गत जावरा नामक एक छोटे से नगर में परोपकारी श्रेष्ठिवर्य श्रीमान् 'रतिचन्दजी चपलोट की धर्म-प्राणपत्नी श्रीमती फूलबाई की पुनीत कुक्षि से विक्रम संवत् १९४८ की शुभ घड़ी में बालक कस्तूरचन्द ने जन्म लिया'। धर्मपरायण माता-पिता के सुसंस्कारों ने बालक को सहज ही अनुप्रेरित किया। श्रीमान् रतिचन्द जी दयालु व्यक्ति थे। उन्होंने संवत् १९५६ के भयंकर दुष्काल में यथाशक्ति और हर संभव प्रयत्नों द्वारा भूखी जनता को सस्ते भावों में अनाज बेचकर अपने मानवोचित धर्म का परिचय दिया था। अस्तु, ऐसे सुसंस्कारी पिता के प्रभाव से बालक किस प्रकार वंचित रह सकता है।

अभी हमारे चरित्रनायक ने शैशव को पार ही किया था कि प्रकृति ने उनकी कठोर परीक्षा ले डाली। महामारी प्लेग ने पूरे परिवार के अधिकांश सदस्यों को क्षण-भंगुर जीवन का प्रमाण-पत्र देकर केवल ३ व्यक्तियों को इस विराट संसार के कर्म क्षेत्र में विचरण करने के लिए छोड़ दिया। विधि को हमारे चरित्रनायक से महान् परोपकार करवाना था, अतः आप अपने बड़े भाई तथा भौजाई सहित महामारी पर विजय प्राप्त कर जन-कल्याणार्थ स्वस्थ रहे। किन्तु इस घटना से आपका अन्तःकरण संसार की क्षणभंगुरता से व्यथित हो उठा और आपने अनुभव किया कि इस जीवन को सही अर्थों में सार्थक बनाने के लिए आध्यात्मिक मोड़ देना चाहिए। फलस्वरूप आप साधु-संतों की सेवा में रहने लगे।

योग टलता नहीं है। सुयोग से पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज के जावरा चातुर्मास ने आपको झकझोर डाला। आप पर आध्यात्मिक रंग चढ़ा और हृदय ने निश्चय किया

कि इस सांसारिक जीवन को त्याग कर भगवती दीक्षा अंगीकार कर लेनी चाहिए। अस्तु विक्रम संवत् १९६२ कार्तिक शुक्ला १३ गुरुवार को गुरु श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब के पवित्र सान्निध्य में रामपुरा नामक नगर में पतित पावनी भगवती दीक्षा ग्रहण करली। सुयोग से आपको अपने दीक्षा गुरु के रूप में प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री खूब-चन्दजी महाराज का वरदहस्त रहा है।

अपनी दीर्घ दीक्षा अवधि में आपने देश के कई प्रमुख नगरों में विहार (पैदल-यात्रा) किया है और वहाँ के जन-मानस को अपने ज्ञान, तप और साधना के अद्विगल प्रवाह से अवगाहन किया है।

आपकी विद्वत्ता के विषय में तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आप जैन आगमों एवं ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित हैं। आपकी व्याख्यान शैली अपने आप में सरल एवं बोधगम्य है। जिस किसी ने हृदय से आपकी मधुर वाणी को श्रवण किया है वह सदैव के लिए आपका भक्त-सा बन गया है।

आपका सम्पूर्ण जीवन साधनामय, आचरण तथा तपस्या का पवित्र जीवन रहा है। आप अपनी संन्यास परम्परा के ७२ ऋतु चक्रों को बड़ी सफलतापूर्वक पार कर चुके हैं। यह दीर्घ सुयशमयी अवधि कितने जनकल्याण और परोपकार तथा सेवाभाव एवं साधना से परिपूर्ण है, यह बता सकना अत्यन्त कठिन है।

जिन महान विभूतियों ने अपने प्रखर चारित्र बल से, कठोर संयम से, अपूर्व तप, त्याग और तपस्या से, अद्वितीय ज्ञान आराधना से तथा अविचलित ब्रह्मचर्य से श्रमण-परम्परा एवं संस्कृति का पोषण, संरक्षण व अभ्युत्थान का सुमंगल तथा स्फूर्तिदायक कार्य किया है, उनमें से आप भी एक हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मुनिजीवन के इतिहास में आपने जो परोपकारी, जग-हितकारी एवं सेवा भावना के पुनीत कार्य किये हैं, वे सब स्थानकवासी जैन समाज के इतिहास में अपना एक प्रमुख स्थान रखते हैं। आप जैसी परम उपकारी दिव्य विभूति किसी भी समाज को उसके महान पुण्योदय से ही प्राप्त हो सकती है। आपके गुण एवं महिमा को शब्दों के परिवेश में बाँधना अत्यन्त कठिन है।

ऐसे निर्भल शुद्ध अन्तःकरण वाले सुमधुर संत प्रवर के प्रति कृतज्ञता अर्पित करते हुए मैं अपने को धन्य और कृत-कृत्य समझता हूँ।

श्री गुरुदेव के चरणों में शत-शत वन्दन !



त्याग और करुणा की अक्षय दीप-शिखा, शान्त स्वभावी, वयोवृद्ध

मुनि श्री कस्तूरचंद जी महाराज

□ मनोहरलाल श्रीमाल “चंचल”

चौमुखी-पुल, रतलाम (म० प्र०)

धर्म-भूमि भारतवर्ष का कण-कण पुण्य-मय संतों के पवित्र चरण-रज से सदा जगमगाता रहा है। अतीत से आज तक इन महान संतों की त्याग और वैराग्य से परिपूर्ण पावन वाणी ने यहाँ सदैव सरलता, समानता, सहिष्णुता, सद्भाव, मधुरता एवं उदारता जैसे उच्च आदर्शों को स्थापित कर मानव के आध्यात्मिक चिन्तन को एक नई दिशा और नई चेतना दी है। संतों की इसी पावन शृङ्खला में मालवा की शस्य-श्यामला और सुजला-सुफला भूमि को अक्षय गौरव प्रदान करने वाले महान संत वयोवृद्ध पंडित मुनि श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब का अद्वितीय स्थान है तभी तो आपको मालव रत्न जैसी परम सम्मानजनक उपाधि और करुणा-सागर जैसे चारित्र-ख्याति-स्रोतक विशेषणों से विभूषित और अलंकृत कर समाज ने उनकी कीर्ति की प्रखर दीप-शिखा को स्वीकारा है।

इस धर्म-महारथी ने मध्य प्रदेश के जावरा शहर के वैश्य-कुल में स्वर्गीय सेठ श्री रतीचन्द जी चपलोट और परम दयालु माता श्री फूलीबाई के यहाँ संवत् १९४८ में जन्म लिया। हँसते-खेलते चंचल बालपन तो व्यतीत हो गया पर जल्द ही इन्हें इस मायावी संसार की निस्सारता का बोध हो गया। घर की धार्मिक परम्परा में पली इस महान् प्रतिभा ने सांसारिक आनन्द और भोग-विलास के जीवन को ठुकरा दिया और अपनी किशोरावस्था की प्रथम देहरी पर ही पाँव रखा था कि चौदह वर्ष की अत्यन्त-अल्प-आयु में तत्कालीन भारत के महान जैन संत पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज साहब के प्रभाव में आये और अपने बड़े भाई स्वर्गीय श्री केशरीमल जी महाराज साहब के साथ कार्तिक सुदी १३ गुरुवार संवत् १९६२ को दोनों भाइयों ने आजीवन मुनिव्रत की भगवती दीक्षा ग्रहण कर आध्यात्मिक जीवन के कंटकाकीर्ण पथ पर चलकर पद-पद गहन अध्ययन, चिन्तन, मनन, तप, त्याग, सेवा और संयम को जीवन में स्थान दिया।

आपने सारे भारतवर्ष के प्रमुख नगरों का भ्रमण एवं चातुर्मास किये हैं और अहिंसा के अवतार चरम तीर्थंकर भगवान महावीर के दिव्य सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार द्वारा अपनी अमृतमय वाणी से मानव-मात्र को सत्य और अहिंसा के सुमार्ग का अनुसरण करने की प्रेरणा देकर असंख्यों सुप्त जन-मानस में ज्ञान की लौ जलाई है। आप केवल धर्मापदेशक मात्र ही नहीं रहे अपितु जीवन के उच्चतम आदर्शों को पूरी तरह अपने स्वयं के जीवन में भी उतार कर, मानव-समाज के प्रेरणा-स्रोत के रूप में आज सादगी और सरलता की साकार-प्रतिमा बन रतलाम नगर के नीमचौक स्थानक में स्थायी-रूप से विराजमान हैं। आप दया के असीम लहराते समुद्र हैं। गजानन्द की

भांति निजानन्द-निमग्न शांत-मुद्रा में बैठे हिमालय स्वरूप, अटल भाव से जीवन-साधना में तल्लीन यह परम-साधक ऐसा प्रतीत होता है मानों साध्य को पाकर अब मन को उसी में मग्न किये संसार की किसी बुराई-भलाई से अपने को अलिप्त रख प्राणी-मात्र के लिए मङ्गल-कामना कर रहा हो।

इस महान संत की वाणी से जो वाक्य निकलते हैं वे सरलता की सीमा को पार कर जाते हैं। आपकी पवित्र वाणी को श्रवण करने और दर्शन करने भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों के हजारों जैन-अजैन बारहों-मास रत्नपुरी रतलाम का तीर्थ कर मृदु-मंगल शब्दावलियों को श्रवण कर धन्य और गद्-गद् हो जाते हैं। आपकी वाणी में सरलता के साथ एक गम्भीरता भी है। हर दुःखी मानस को यहाँ शान्ति मिलती है। हर निराश-मन को यहाँ आशा की सुकुमार किरण अन्धकार से प्रकाश की ओर प्रवृत्त करती है। संसार की पीड़ा से सिहरे हर मनुष्य को गरीब-अमीर और ऊँच-नीच के भेदों से मुक्ति मिलकर उसे आध्यात्मिक जीवन दृष्टि उपलब्ध होती है जो भौतिक संतापों से हमें मुक्ति दिलाकर जीवन के उच्च आदर्शों को अपनाने की मूल्यवान प्रेरक कड़ी है।

धर्म-शास्त्रों के असीम ज्ञान के अतिरिक्त ज्योतिष के आप माने हुए प्रकाण्ड पंडित हैं। आप अपने समय के ओजस्वी वक्ता रहे हैं। आपके व्याख्यानो में मौलिक चिन्तन और असीम शास्त्र-ज्ञान का सहज ही परिचय हो जाता है। आपकी स्मरण शक्ति और बौद्धिक क्षमता अद्भुत है। आपकी आयु आज ८६ वर्ष के करीब है और दीक्षा-वय भी कोई ७२ वर्ष के आस-पास है। परन्तु शास्त्रों की एक-एक पंक्तियाँ अर्थ-भावार्थ सहित याद ही नहीं उन्हें प्रस्तुत करने की विचित्र शैली के कारण आपका व्याख्यान रोचक हो जाता है। निश्चय ही प्रतिभा की यह मूल्यवान धरोहर समाज की एक अनुपम उपलब्धि है।

आपके जीवन का प्रमुख लक्षण प्राणी-मात्र के लिए “साता उपजाओ” अर्थात् शांति पहुँचाओ है। गरीबों और असहायों की सेवा करने की आप हमेशा सीख देते रहे हैं। आप अमीर-गरीब दोनों वर्गों में समान रूप से प्रिय हैं। आप जहाँ अमीरों के हृदय में गरीबों और असहायों के लिए दया और प्रेम की भावना जगाते हैं वहीं गरीबों के आँसु पोंछकर अपने सरल शब्दों से उन्हें सांत्वना का अमिय-पान करा कर उनके निराश मन में आशा का जगमगाता दीपक प्रज्वलित करते हैं। दया आपके हृदय में कूट-कूट कर भरी है और किसी भी मनुष्य को एक बार देखने के बाद भूलते नहीं हैं। इस महान संत के दर्शन करने वाला कोई भी व्यक्ति इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। जो व्यक्ति ज्यादा प्रसिद्धि प्राप्त करने लगता है उसके लिए अनेक किंवदन्तियाँ भी स्वयमेव प्रारम्भ हो जाती हैं। आज अनेक लोगों की यह धारणा है कि ये जैसा जिसको कह देते हैं वैसा हो जाता है और ये लब्धि के भण्डार हैं। किसी को सच्चे मन से कुछ कह देंगे तो उसका कल्याण हो जायेगा और वह मनचाही उपलब्धि पा जायेगा। परन्तु सच्ची बात तो यह है कि “भोले भाव बसे रघुराई” वाली कहावत के अनुसार इनके विशुद्ध

वाणी और सरल हृदय से जब भी और जो भी कुछ निकल जाता है वैसा वास्तव में हो भी जाता है ।

आज भौतिक उपलब्धियों की दौड़ में मानव आध्यात्मिक पहलुओं को भुलाने का प्रयास कर रहा है किन्तु अशांत मन को शांति आध्यात्मिक जीवन के बिना न तो कभी सम्भव ही है और न कभी साकार ही । हमें आज धर्म, मजहब और सम्प्रदायों की संकीर्ण गलियों से ऊपर उठकर ऐसी आध्यात्मिक-गंगा की धारा में निमग्न शाश्वत-जीवन-कमल के दर्शन कर उनके उच्च आदर्शों को अपने जीवन में उतारने की कोशिश करनी ही चाहिए । इस महान संत के जीवन में हम एक उच्च प्रतिभा और अद्भुत सादगी के दर्शन प्राप्त करते हैं । त्याग और करुणा के अक्षय भण्डार शांत-स्वभावी वयोवृद्ध मुनि श्री कस्तूरचंदजी महाराज साहब निश्चय ही आज स्थानकवासी जैन समाज में एक विशाल और सघन वट-वृक्ष की तरह अपनी शीतल छाया फैलाये हुए हैं जिनका आश्रय पाकर विभिन्न धार्मिक मनोवृत्तियाँ पुष्पित और परलवित हो रही हैं । इस महान संत के चिरायु होने की मङ्गल-कामना है ।



परिभाषा में छलकता गुरुदेव श्री का स्वरूप

इह लोग णिरवेक्खो, अप्पडिबद्धो परम्मि लोयम्मि ।

जुत्ताहारविहारो रहिदकसाओ हवे समणो ।

इस लोक में निरपेक्ष, पर-लोक में अप्रतिबद्ध-अनासक्त, आहार-विहार में विवेकशील, कषाय-रहित सच्चे श्रमण होते हैं ।

उक्त गुणों की छवि श्री कस्तूरचन्दजी महाराज के जीवन में साकार दिखाई देती है ।

जैन संस्कृति के महान् सन्त मालवरत्न उपाध्याय
पदालंकृत पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी
महाराज के कर-कमलों में
समर्पित
अभिनन्दन—उद्गार

□ मदन लाल जैन (रावल पिंडी वाला)

हे महामुने !

तुम्हारे जैसे महान् साधक, महान् योगी, महान् तपस्वी को पाकर आज शस्य श्यामला मालव धरा धन्य-धन्य हो गई एवं अपने आप में गौरवान्वित होकर फूली नहीं समा रही है। कारण यह है कि—इस विलासी युग में आपके मुखारविन्द से निःसृत अमृतोपम उपदेश आज जन-जीवन के कर्ण-कुहरों तक परिव्याप्त है। जिनके सहारे-सहारे आज का बुद्धिजीवी समाज जीवन-हित की दिशा में अग्रसर हो रहा है।
हे शुभचिन्तक महामनस्वी !

तुम्हारे अन्तर्मानस में सदा सर्वदा शुभ संकल्प अंगड़ाइयाँ लेता रहा है। विश्व के सूक्ष्म स्थूल समस्त जीवात्मा सुखानुभूतिपूर्वक जीवन-यापन करें। पारस्परिक वैर-विरोध की भावना को तिलांजलि देकर सभी जीवात्माएँ मैत्री भावना के भावार्थ को समझें एवं जीवन में आचरित करें। इसलिए तुम्हारी वाणी से आठों पहर शुभ संकल्पों की अमृत बरसात हुआ करती है। फलस्वरूप संसारी जन शुभाध्यवसायों से ओत-प्रोत होते हैं।

हे आश्रयदाता महामुने !

आधि, व्याधि और उपाधि आदि त्रय तापों से अखिल विश्व दुःखित-पीड़ित एवं व्यथित परिलक्षित हो रहा है। मानो निर्भयता सर्वत्र विलुप्त हो गई हो, ऐसा प्रतीत होता है। इसीलिए महामुने ! पामर प्राणी आपके कमनीय चरण-कमलों के आश्रय की अपेक्षा करते हैं। चूँकि आपके कल्याणकामी आश्रय में पहुँच कर भव्यात्माएँ अपने आप में निर्भय बनकर सर्व भयों से मुक्त बनती हैं।

ऐसी तपःपूत आत्मा का अभिनन्दन करता हुआ मैं अपने आपको भाग्यवान समझता हूँ। ऐसे अभिनन्दन क्षण मेरे जीवन में सदैव आया करें। ताकि मेरा जीवन भी मंगलमुखी—सदा सुखी बने।



कोटि कोटि हृदयगत प्रणाम

□ अभयकुमार भटेवरा, एम. कॉम., रतलाम (म० प्र०)

भारत प्राचीनकाल से ही मनीषियों का देश रहा है। ऋषभदेव, बुद्ध, महावीर से लेकर आज तक अनेक ज्ञानी एवं महात्यागी व्यक्तित्वों ने इस भूमि को अपने जन्म से पावन किया है। वेद, पुराण और शास्त्रों का जनक भी यही देश है और इसी देश ने सम्पूर्ण विश्व में ज्ञान, दर्शन व चारित्र्य की त्रिवेणी को प्रवाहित व प्रसारित किया है।

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण में ऋषि, मुनियों एवं चिन्तकों का महान योगदान रहा है। देश में अनेक ऐसे सन्त हुए हैं जिन्होंने समस्त सांसारिक सुखों को त्याग कर मानव कल्याण व धर्म जागरण में अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। ऐसे महामनीषियों की परम्परा में मालववर्तन ज्योतिर्विद् शास्त्रज्ञ पूज्य गुरुदेव १००८ श्री कस्तूरचन्द्र जी महाराज का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्राकृतिक सम्पदा सम्पन्न मालव प्रान्त की जावरा नगरी में संवत् १९४८ में पूज्य गुरुदेव का जन्म धर्मपरायणा श्रीमती फूलबाई की पुनीत कुक्षि से हुआ। आपके पिताश्री का नाम सेठ श्री रतिचन्द्र जी चपलोट था। धर्मिष्ठ एवं सुसंस्कारी माता-पिता के सान्निध्य से बाल्यावस्था से ही आपकी रुचि धर्म-ध्यान के प्रति थी।

प्रकृति जितनी कोमल है, उतनी निष्ठुर भी है। अभी आपने शैशव के द्वार को पारकर यौवनावस्था में प्रवेश किया ही था कि आपको जीवन का बहुत ही कठु अनुभव हुआ। सम्पूर्ण मालवा को प्लेग ने अपनी भयंकर चपेट में ले लिया। चपलोट परिवार भी इस महामारी से बच न सका। परिवार में केवल तीन प्राणी ही शेष रहे, एक तो पूज्य गुरुदेव स्वयं, दूसरे इनके बड़े भाई मुनि श्री केशरीमल जी महाराज एवं भाभी श्रीमती गेन्दीबाई। श्री केशरीमल जी महाराज थोकड़ों के विशिष्ट ज्ञाता थे।

जग की इस क्षणभंगुरता को देखकर आपका संवेदनशील कोमल हृदय द्रवित हो उठा। सांसारिक नश्वरता से परिचित हो आपके मन में विरक्तता जाग उठी। पूर्व के धार्मिक संस्कारों के फलस्वरूप आप साधु-सन्तों की सेवा करने लगे। आपके पूर्व संचित पुण्य उदित हो उठे, आप में एक आध्यात्मिक स्फुरण जाग उठा।

साधक के मन में उमंग हो तो साधना का मार्ग मिल ही जाता है। भाग्यवश आपके वैचारिक उत्थान के ऐसे समय में जावरा में जैनाचार्य पूज्यश्री खूबचन्द्रजी महाराज का चातुर्मास हुआ। उनके सत्संग एवं सारगर्भित प्रवचनों से आप अत्यन्त प्रभावित हुए। आपने सांसारिक प्रपंचों से मुक्त होकर वीतराग वेश को अपनाते का दृढ़ निश्चय कर लिया। फलस्वरूप विक्रम संवत् १९६२ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी गुरुवार को रामपुरा के लाल बाग में आम वृक्षों के गहरे झुरमुट में तुमुल जयघोषों के बीच हमारे चरित्रनायकजी ने गुरु श्री जवाहरलाल जी महाराज के पवित्र सान्निध्य में पूज्यश्री खूबचन्द्र जी महाराज के नेत्राय में भगवती दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा के पश्चात् आपने जैनशास्त्रों एवं आगमों का गहन अध्ययन कर तप-साधना, संयम, विवेक, ज्ञान एवं चारित्र्य की कठोर तपस्या की। अपनी दीर्घ दीक्षावधि में आपने उत्तरांचल में जम्मू-कश्मीर से लेकर सुदूर दक्षिण भारत तक पैदल धर्मानुकूल विहार कर कोटि-कोटि जैन व अजैन जनता को अपनी सुमधुर वाणी की ज्ञान-गंगा प्रवाहित कर परोपकार एवं अहिंसा का अमर पाठ पढ़ाया।

जैनशास्त्रों के मर्मज्ञ ज्ञाता होने के साथ-साथ आप ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित भी हैं। नक्षत्रलोक की जानकारी आपकी अध्ययनशीलता की द्योतक है।

असहाय, अनाथ एवं गरीब भाई-बहनों के लिये तो आप करुणा के सागर ही हैं। विधवा एवं विद्यार्थियों के प्रति आप सदा अति उदार दृष्टिकोण रखते हैं। आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर अनेक दानी धर्मप्रेमी सज्जन प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से साधर्मी सहायता का शुभ कार्य करते हैं। इसी तारतम्य में भविष्य में भी ऐसे लोगों को निरन्तर सहयोग प्रदान करते रहने की दृष्टि से गुरुदेवश्री संघों एवं सक्षम व्यक्तियों को साधर्मी सहायता प्रदान करते रहने की प्रेरणा देते रहते हैं। यह पुनीत कार्य भी आपकी साधर्मी-वात्सल्यता, महानता एवं हृदय की विशालता को प्रतिबिम्बित करता है।

यह गुरुदेव की वाणी एवं व्यवहार की ही विशेषता है कि अनेक व्यक्ति आपसे प्रभावित हैं। क्या जैन और क्या जैनेतर, सभी सम्प्रदाय व धर्म के लोग समभाव से आपके प्रति श्रद्धाभाव रखते हुए आपको नमन करने के लिये आते हैं। गुरुदेव का प्रेम सभी के प्रति समान रहता है। भेदभाव व संकीर्णता को तो इन्होंने अपने जीवन में कभी स्थान दिया ही नहीं।

गुरुदेव वर्तमान में दीक्षावधि की दृष्टि से श्रमणसंघ में सबसे बड़े सन्त हैं। आपकी आयु ६६ वर्ष की है तथा आपको संयमी जीवन व्यतीत करते हुए ७२ वर्ष बीत गये हैं। इस दीर्घ दीक्षावधि में संघ ने आपको अनेक बार बड़ी श्रद्धा-भक्ति एवं विनयपूर्वक उपाध्याय, प्रवर्तक, आचार्य, गणी आदि अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर आरूढ़ होने के लिये अनुरोध किया परन्तु आपने हर बार सरल भाव से उन सभी यशस्वी पदों पर आसीन होने के लिये विनम्रतापूर्वक इनकार कर दिया। यह कितनी चारित्रिक व व्यक्तिगत महानता की बात है।

पूज्य गुरुदेव वर्तमान पीढ़ी में उन महान् संतों में से एक हैं जिनके त्यागमय जीवन, आजीवन साधुवृत्ति, वात्सल्य भाव, तप, धर्म व चारित्रिक निर्मलता के कारण भारत आज भी विश्व में महा-मनीषियों का देश बना हुआ है। आप जैसी महान् विभूति किसी देश, सम्प्रदाय अथवा समाज को बड़े पुण्योदय से ही प्राप्त हो सकती है। वर्तमान जैन समाज आपके त्यागमय महान् व्यक्तित्व से प्रेरणा प्राप्त करता रहा है और कर रहा है तथा भावी पीढ़ी भी आपके प्रति सदा श्रद्धानत रहेगी। ऐसे महान् सन्तप्रवर को मेरा कोटि-कोटि हृदयगत प्रणाम !



अभिनन्दन की पंखुड़ियाँ

□ मुनि पीयूष (अमृत)

विश्व पर सदियों से महामनस्वी मुनियों का अमिट उपकार रहा है। सामाजिक क्षेत्र हो चाहे धार्मिक; जब-जब मानव-समाज अपना मार्ग भूलकर अज्ञानान्धकार में भटका है तब-तब महोपकारी मुनिजनों ने ही पुनः दिशादर्शन के बहाने विवेक का अरुणोदय किया है।

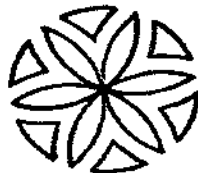
महामुनि वही कहलाता है जो आने वाले आँधी-तूफान व परीषहों से न घबराता हुआ अपनी साधना-आराधना में मदमस्त हस्ति की तरह गतिशील रहता है। कराहते हृदयों की व्यथा को दूर करने में तत्पर है। जो मंत्री और करुणा के स्रोत सदा प्रवाहित करते हुए त्याग और विराग में गतिशील है जिसके हृदय में क्या शत्रु क्या मित्र? क्या अपना, क्या पराया? क्या घनी और निर्धन? सभी समान रूप से स्थान पाते हैं। वही साधक गुरु पद के योग्य उच्च-आसन पर विराजित होता है। कहा है —

निर्भय कर दे मृत्यु से, कहीं न भय पहुँचाय ।
शान्त, दान्त, विक्रान्त ही, शुद्ध सन्त कहलाय ॥
शुद्ध सन्त कहलाय नाथ विश्वास दें ।
अपने सच्चे घर का नित्य विश्वास दें ॥
सूर्य - चन्द्र उनको सर्वदा प्रणाम है ।
सत्य प्रेम संयम सद्धर्म ललाम है ॥

(पं० सूरजचन्द डांगी)

श्रद्धेय उपाध्याय मालवरत्न श्री कस्तूरचन्द जी महाराज भी एक महान् वयोवृद्ध विभूति हैं; जिनके पावन दर्शन कुछ वर्षों पहले मैंने रतलाम में किये थे। वास्तव में जिनका भव्य चेहरा और पीयूषवर्षिणी मधुर गिरा प्रत्येक मानव को आकर्षित किये बिना नहीं रहती है। मेरे वैराग्यमय विचारों की परिपुष्टि में मुझे आप से काफी प्रेरणा मिली है।

प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज भी एक जाने-माने महान् संत साधक हैं। मैं मुनिद्वय के पावन चरणों में शत-शत अभिनन्दन की पंखुड़ियाँ समर्पित करता हूँ।



सन्त-संस्कृति के पावन प्रतीक

□ महासती जेनार्या श्री सुशीलाकुमारी 'कल्पना'

मालवभूमि पर अनेकानेक महान् पुरुषों का आविर्भाव हुआ है। मालव प्रान्त को गुण-गरिमा में एक लोक कवि की यह पंक्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं—

मालव भूमि गहन गंभीर !
डग-डग रोटी पग-पग नीर !!

इसी शस्य श्यामला मालवभूमि के रम्य नगर जावरा में चपलोट वंश में जन्म लेकर मालव प्रदेश को गौरवान्वित किया वे हैं—मालवरत्न उपाध्याय महान् प्रतिभा के धनी पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज।

आपश्री का विराट व्यक्तित्व कुछ शब्दों में बाँधा नहीं जा सकता। आपकी स्मरण शक्ति बड़ी विलक्षण है। वर्तमान में आपके सहृदय शास्त्रवेत्ता एवं ज्योतिर्विद् कम ही दृग्गत होते हैं।

महामहिम पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन करने का हमें कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपश्री की छत्रछाया प्राप्त करने वाला मानव अपना अहोभाग्य समझता है। आपकी सौम्य एवं सुदौल आकृति-प्रकृति एवं विराट मनोवृत्ति में साक्षात् सन्त-जीवन के दर्शन होते हैं।

आप करुणा के सागर हैं। जब आपके समक्ष कोई दीन-दुखी या समस्या-पीड़ित व्यक्ति सम्पर्क में आता है तो आपका कोमल हृदय पसीज जाता है एवं करुणा की हिलोरें उसके अनुताप को शान्त कर देती हैं।

आपके ज्ञान की अनुपम ज्योति से मुझे मार्गदर्शन मिला है एवं आपके त्यागमय संयमी जीवन से प्रकाश प्राप्त कर मैं अपने को धन्य मान रही हूँ।

आप परम सौम्य, दूरदर्शी, मिष्टभाषी एवं मिलनसार हैं। आपके जीवन की महनीयता में ही समाज की संजीवनी रही हुई है।

मैं आशा करती हूँ कि कस्तूरी सुगन्ध की तरह आपके जीवन की निर्मल सुरभि युग-युगों तक जन-मानस को सुरभित करती रहेगी।



परम-प्रणम्य, कहुणावतार, ज्योतिर्मय-ज्योतिर्विद्, युग-श्रमण
महास्थविर, मालवरत्न, पूज्यपाद गुरुवर्य
श्री कस्तूरचन्द जी महाराज

के पावनतम चरण-कमलों में सादर, सश्रद्धा, सवन्दना समर्पित

यशःप्रशस्ति-पत्र

धर्मगगन के ज्योतिपुंज !

यशस्वी, मनस्वी तपस्वियों की अमल-धवल घरा, पुण्य प्रभामय भारत के हृदय स्थल, श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन जगत के तीर्थोपम धर्मधाम रश्मिरम्य रत्नपुरी रतलाम के प्रशस्त-प्रांगण में आज आचार्य श्री मन्नालाल जी महाराज के सुखद शताब्दी समारोह एवं आपश्री के अनुपम-अमृत-महोत्सव के मंगलमय सुअवसर पर चतुर्विध श्रीसंघ की आत्मिक भावाभिव्यक्ति के रूप में प्रशस्ति-पत्र आपश्री के पुनीत पाद-पद्मों में समर्पित करते हुए अपार आत्मतोष एवं अनन्त परमानन्द की अपूर्व आत्मानुभूति सहज ही हो रही है।

स्थितप्रज्ञ महामनीषी !

रत्नोपम रतलाम जिले की ज्वाज्वल्यमान नगरी जावरा ने आप जैसे महान् स्थितप्रज्ञ महामनीषी को जन्म देकर इतिवृत्त में यह सिद्ध कर दिया है कि भारत के सामान्य लघुतम क्षेत्र भी धर्मोन्नायक सन्तप्रवर को अवतरित करने का महान् गौरव अर्जित कर सकते हैं।

ओसवाल कुलावतंस परम श्रेष्ठ श्री रतिचन्द्र जी चपलोत एवं पुण्यश्लोका सुमन-मना, निश्कल हृदया श्रीमती फूलाबाई जैसे धर्मनिष्ठ श्रावक-श्राविका की कुलीन-कुक्षि में अवतरित एवं सुसंस्कारित होकर आपश्री ने तीर्थकरों के अमिट चरण-चिन्हों का अनुसरण करने का कठोर व्रत अंगीकार किया तथा अनगार धर्म, श्रमण संस्कृति एवं जैन-संस्कृति की शाश्वत सेवा का अनन्त-पंथ सोल्लास अपनाया; यह अविस्मरणीय, अभिनन्दनीय एवं चिरवन्दनीय है।

अनगार-धर्म के पावन-प्रतीक !

कार्तिक शुक्ल १३ गुरुवार विक्रम सम्बत् १९६२ की अरुणाभ किरण-बेला में आपश्री ने रामपुरा के निसर्गरम्य प्राकृतिक प्रांगण में श्री हुकमेश गच्छीय षष्ठ पट्ट अधीश्वर श्री मज्जैनाचार्य शासन-प्रभाकर पूज्यपाद श्री खूबचन्दजी महाराज के सुसान्निध्य में भागवती दीक्षा अंगीकार कर आजीवन अनगारधर्म के प्रबल-प्रसार का अभिव्रत धारण किया एवं अपने साधनाशील मुनि-जीवन के अनुकरणीय ६५ वर्ष व्यतीत होने पर भी आज भी आपश्री अहर्निश आध्यात्मिकता के अमर मार्ग के अरूक पथचारी बने हुए अनेक पथ-भ्रान्त पथिकों को अपने दिव्य भव्य सन्त जीवन की आलोक रश्मियों से धर्मोचित मार्गदर्शन प्रदान कर रहे हैं। श्रमणधर्म के गौरवशाली इतिवृत्त में आपका तप-त्याग साधनामय जीवन एक प्रेरक परिच्छेद बन कर जुड़ गया है।

सौम्यमूर्ति अजातशत्रु !

संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं के अभिज्ञाता, जैनागमों के मर्मज्ञ एवं ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड पंडित के रूप में आपश्री की ज्ञानगरिमा चिर अक्षुण्ण है। आपश्री के उपदेशामृत का रस पान कर, मालवा, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, उत्तर-प्रदेश आदि क्षेत्रों के श्रावकवृन्द, तत्त्वबोध, धर्म-मर्म एवं शाश्वत ज्ञान की अमर कुंजी प्राप्त कर श्रमण धर्म की चिरत्तन श्रीवृद्धि में तन्मय हो चुके हैं।

यथानाम तथागुण !

“कस्तूरी कुण्डल वसे, मृग ढूँढ़े वन मांहि”

आपश्री ने अपने अन्तस् रूपी ‘कुण्डल’ में संस्थित अलौकिक आध्यात्मिक तत्त्व रूपी ‘कस्तूरी’ को सद्ज्ञान एवं गहन चिन्तन के माध्यम से प्राप्त कर उक्त उक्ति को निरर्थक एवं निस्सार सिद्ध कर दिया है। “कस्तूर सौरभ” से सुरभित ‘चन्द्र’ के सदृश्य आपश्री का गौरव-गरिमा युक्त विमल व्यक्तित्व अनुपमेय, अपराजेय एवं अगम्य है।

अमृतमय सन्त शिरोमणि !

आज इस पावन-अमृत-महोत्सव की परम-पुनीत पुण्य बेला में भाव भक्ति-भरित यह ‘सुयशः प्रशस्ति-पत्र’ आप अमृत सन्तवर के कान्त कराम्बुजों में सादर-सश्रद्धा समर्पित करते हुए हम स्वयं को धन्य एवं महान् गौरवशाली अनुभव कर रहे हैं। तथा श्री शासन देव से आपश्री के चिरायुष्य की विनम्र प्रार्थना करते हुए आश्वस्त होते हैं कि—यह मांगलिक अवसर निकट भविष्य में ही अवश्य आये जबकि आपश्री के सुखद सान्निध्य में आपश्री का गौरवमय शताब्दी महोत्सव हम स-समारोह मना कर आत्म-तुष्टि प्राप्त कर सकें।

“तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतंगमय”

हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मर्त्य से अमृत की ओर ले चलो।

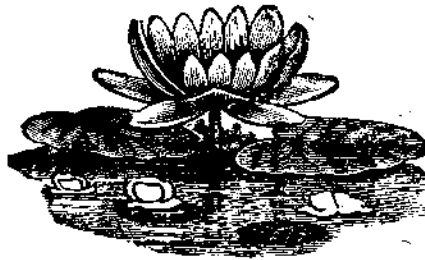
युग-युग तक गुरुदेव आप का, रहे संघ पर वरदहस्त।

करें शतायु पूर्ण आप, नित रहें आपश्री अमर, स्वस्थ ॥

विनयावनत

अखिल भारतीय चतुर्विध जैन संघ एवं
श्री मज्जेनाचार्य श्री मन्नालाल जी महाराज
शताब्दी समारोह तथा
पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी महाराज
अमृत महोत्सव स्वागत समिति
रतलाम (म० प्र०)

दिनांक—३ मई, १९७१



परम प्रणम्य, धैर्यं, गाम्भीर्यं, करुणा, अहिंसादि विविध सद्गुणालंकृत, ज्योतिर्विद्
श्रमणप्रवर, महास्थविर, अमृत-सन्त, मालवरत्न सद्गुरुदेव
पूज्यश्री कस्तूरचन्द जी महाराज

के
पुनीत पाद-पद्मों में सभक्ति समर्पित
प्रशस्ति-पत्र

पूज्यपाद गुरुदेव !

महान् जैन तीर्थ रतलाम में आचार्य श्री मन्नालाल जी महाराज के ऐतिहासिक अताब्दी-समारोह के पावन अवसर पर आपश्री के आज्ञानुवर्ती धर्म-निष्ठ भक्तों ने अमृत महोत्सव का मंगल आयोजन कर अपनी अगाध गुरु-भक्ति को श्रद्धात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। यह शिष्य परम्परा का सहज सनातन-स्वरूप सर्वथा अनुकरणीय एवं अभिवादनिय ही है।

दिव्य-आलोक-स्तम्भ !

आपश्री के आदर्श-जीवन की ज्योतिर्मयी रश्मियों की उष्मा से अनुप्राणित होकर किसी भी भक्त श्रावक का आत्म-कमल विकसित होकर धर्म-सौरभ से आह्लादित हो उठता है। आप श्री की सत्प्रेरणा से ही हम जैन तरुणों ने श्रमण संस्कृति के चतुर्विध विकास का लक्ष्य लेकर "मालवरत्न श्री कस्तूरचन्दजी महाराज जैन नवयुवक मण्डल रतलाम" की स्थापना की है एवं अपने इस तरुण संगठन के माध्यम से समाज की नई पीढ़ी को श्रीसंघ समाज एवं संस्कृति की सेवा के संकल्प को साकार करने की शुभ दिशा में उन्मुख कर रहे हैं जो वस्तुतः श्लाघ्य है।

तरुणों के आशा केन्द्र !

आज इस अमृत-पर्व पर हम आपश्री के पावन-चरणों में विनयावनत होते हुए सम्पूर्ण श्रद्धा, निष्ठा, आस्था एवं चेतना-सहित आत्मर्पित होते हुए आपश्री को विश्वस्त करते हैं कि महान् श्रमण संस्कृति के हितार्थ हमारी नई पीढ़ी सर्वस्व समर्पण करने में कभी भी पीछे नहीं रहेगी तथा आपश्री के संयम, साधनाशील चरण-चिन्हों पर चलने में कदापि संकोच नहीं करेगी।

अमृत-सन्तप्रवर !

आप चिरायु हों और अतियों तक हम तरुणों को धार्मिक तत्वबोध की संप्राप्ति आपश्री से निरन्तर होती रहे इसी मनोभावना के साथ सर्वाधि वन्दना कर यह श्रद्धा प्रतीक प्रशस्ति-पत्र आपश्री को स-भक्ति स-सम्मान समर्पित करते हैं।

सन्तं शरणं गच्छामि

वीरं शरणं गच्छामि

धम्मं शरणं गच्छामि

गुरुदेव के श्रद्धाभिभूत तरुण भक्त

शान्तिलाल काठेड "सरकार"

अमृतलाल गांधी

महेशचन्द्र शाह

अध्यक्ष

कार्य समिति अध्यक्ष

मन्त्री

मालवरत्न श्री कस्तूरचन्द जी महाराज

जैन नवयुवक-मण्डल

रतलाम

दिनांक—३ मई, १९७१, सोमवार

बैशाख सुदी ६, सम्वत् २०२८

मालवरत्न ज्योतिर्धर गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी महाराज के पवित्र कर-कमलों में समक्ति समर्पित

श्री श्रमण अभिनन्दन—पत्र

हे महामालव के महामहिम !

इतिहास सुप्रसिद्ध धवला-अमला मनोहर धरा ने समय-समय पर एक-दो नहीं, अपितु अगणित सहस्रों-लाखों कर्मठ कर्मवीर व धर्मवीर ज्योतिर्धर-निष्णात पुत्ररत्नों को जन्म देकर देश, समाज, संघ का बहुत बड़ा हित किया है। अतएव मालव माँ अपने सुयोग्य लाड़ले पुत्रों के सद्ज्ञान व सच्चरित्र से आज गौरवान्वित हो रही है। तदनुसार जावरा की रम्य भव्य-मनोरमा स्थली भी आज गुरु भगवंत के चमकते-दमकते व महकते संयमी जीवन से महक रही है, गुस्करा रही है।

हे वात्सल्यावतार !

सुमन पराग जिस प्रकार सरस सुगन्ध से सुगन्धित रहता है उसी प्रकार श्रद्धेय गुरुवर का स्फटिक रत्न-रश्मि सादृश्य शुद्ध-विशुद्ध हृदय वात्सल्य की पवित्र पावनी मन्दाकिनी से सदा-सर्वदा परिपूर्ण-प्रवाहित व प्रगति-मान रहा है। वस्तुतः अमेद-भावपूर्ण आपके विराट-व्यक्तित्व व वात्सल्य पीयूष स्रोत से सहस्रों भव्यात्माएँ लाभान्वित होती हुई अपने आप को धन्यशाली-पुण्य-शाली मान रही हैं।

हे संघ प्रतिष्ठा के सम्मुन्नायक !

परम ज्ञानस्तम्भ गुरुवर्य ने खिलती लघुवय में श्रद्धेय परम-पूज्य त्याग शिरोमणि श्री मज्जेनाचार्य श्री खूबचन्द जी महाराज के श्रेष्ठ एवं वरद् हाथों से आर्हती दीक्षा स्वीकार अंगीकार कर, अपूर्व अद्वितीय अनूठा आगम सिद्धान्तों का गहन-गहरा गम्भीर हृदयस्पर्शी मकरन्द सम्पादन कर, चतुर्विध संघ प्रगति-विकास व अभ्युदय उन्मेष में अनुपम-योगदान व प्रेरणा प्रदान की है। एतदर्थ भवदीय सुकृपा से आज संघ सुमेरु उत्थान कल्याण के शिखर पर अनवरित वृद्धि-मान रूप से अग्रसर हो रहा है।

हे आगम सिद्धान्त के ज्योतिर्धर !

जिनका गौरवमय जीवन पुष्प अभिराम आगमोदधि में सदा-सर्वदा अवगाहित रहा है। जैन सिद्धान्त-दर्शन का कोई भी सूत्र व भाव भाषा अर्थ आपकी पैनी दृष्टि से अछूता नहीं रहा—ऐसा हम मानते हैं। अर्थात् आगम का अक्षर-अक्षर आपने देखा व उन पर मार्मिक तार्किक अनुभव चिन्तन-मनन कर आपने प्रेरणादायी आगमिक निष्कर्ष निकालकर जन-जीवन को भर-भर मुट्ठी बाँटने का स्तुत्य प्रयास किया है। अतएव अनुभवशाली आप अपनी शानी के श्रमण श्रेष्ठ समूह में आप ही निष्णात-निपुण मनस्वी-यशस्वी माने जाते हैं। आपकी अन्तरात्मा व शान्त मुखमुद्रा श्रुतरत्नों से प्रकाशमान होती हुई आज चतुर्विध संघ के लिए प्रकाशस्तम्भ का कार्य कर रही है।

हे गणाधीश !

आपकी सबल व प्रबल प्रतिभासम्पन्न भुजाओं में व आपकी अन्तरात्मा में कुदरत ने वह शक्ति—वह बल इस प्रकार समर्पित कर दिया है कि आप एक वरिष्ठ-बलिष्ठ सुशासक योद्धा की तरह एक विराट विशाल साधु श्रावक समुदाय का अपनी विलक्षण सूझ-बूझ व निर्मला-विमला मेधा से सफलतापूर्वक नेतृत्व व मार्गदर्शन प्रस्तुत कर रहे हैं। तात्पर्य यह है कि—आपकी सरलता-उदारता, विशाल भाव, ऋजुता आदि गुण गरिमा-महिमा की शीतल छाया में आज श्रद्धा-शील चतुर्विध संघ दिनोंदिन प्रगति के पवित्र धुंज स्वरूप पथ पर गतिमान हो रहा है।

हे ज्योति पुत्र !

मालवरत्न परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी महाराज के अमृत व्यक्तित्व की ज्योति से आज का प्रतिपल प्रकाशित हो रहा है। इस अमृत ज्योति की संजीवनी रसायन से हम आपके अनुयायी शिष्य उल्लसित रूप से अनुप्राणित होते आये हैं।

अतः आज आपके सान्निध्य में आपके ही अमृत-महोत्सव पर उपस्थित मुनि समुदाय अपनी भावांजलि के पावन प्रतीक स्वरूप “शासन सम्राट” के सम्मानित पद से विभूषित करते हैं।

हम हैं आपके—

कृपापात्र सन्तबृन्द

दिनांक—३ मई, १९७१

नीमचौक, रतलाम (म० प्र०)



पुरातन पीढ़ी के आदर्श संत

□ मालवकेशरी सन्तरत्न श्री सौभाग्यमलजी महाराज

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि मालवरत्न ज्योतिर्विद् वयोवृद्ध उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब की सेवा में अभिनन्दन ग्रन्थ के माध्यम से भावाञ्जलि समर्पित करने का अभिनन्दनीय आयोजन किया गया है। इस प्रसंग पर उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करना, मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ।

मालवरत्न श्री कस्तूरचन्दजी महाराज और मैं दोनों ही जीवन के आठ दशक पार कर चुके हैं। हमारा संयमी जीवन भी लगभग सातवें दशक में चल रहा है। इतनी लम्बी अवधि में हमारा सम्पर्क बहुत प्रगाढ़ और नजदीक का रहा है। आज हम जीवन की सन्ध्या में चल रहे हैं। परन्तु बाल्यकाल और युवाकाल की विविध स्मृतियाँ मेरे मस्तिष्क में उभर रही हैं। प्रेम, सौहार्द्र और वात्सल्य की मधुर स्मृतियाँ हृदय को तरंगित कर रही हैं।

मालवरत्न श्री कस्तूरचन्दजी महाराज समता, सरलता व सहिष्णुता के साकार स्वरूप हैं। वे उस पुरातन पीढ़ी के सन्त हैं जिसे हम सन्त जीवन के लिए आदर्श मान सकते हैं। इस कोटि में बहुत विरले सन्त ही आते हैं। हमारा सौभाग्य है कि आज के विषम वातावरण में श्रद्धेय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज के जीवन-दर्शन में हमें त्याग, विरक्ति, संयम और भक्ति से परिपूर्ण साधना की पुरानी झलक दृष्टिगोचर होती है। वर्तमान श्रमण संघ में उनका अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि अभी-अभी आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज साहब ने आपको 'उपाध्याय' के गौरवपूर्ण पद से अलंकृत किया है।

श्रद्धेय उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब का हृदय अत्यन्त सरल और करुणा से ओत-प्रोत है। समाज के सम्पन्न व विपन्न वर्ग के बीच सम्पर्क सूत्र बनकर वे अपनी उपदेश-धारा से दोनों को लाभान्वित करने में अतिशय सिद्धहस्त हैं। अपनी साधु मर्यादा में रहते हुए संघ वात्सल्य और स्वधर्मी सहायता के प्रति आपकी गहरी आत्म-रुचि है। 'योग्यं योग्येन योजयेत्' के अनुसार इस महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति के प्रति आप सक्रिय हैं, जो आपके हृदय की करुणा का प्रतीक है।

श्रमण संघ की तिथि निर्णायक समिति के आप सर्वाधिक सम्माननीय सदस्य हैं। आपका ज्योतिष विषयक ज्ञान प्रगाढ़ व प्रकाण्ड है। इस विषय में आपका मन्तव्य विशेष समादरणीय होता है। तिथि निर्णायक समिति के सदस्य के रूप में भी आपने श्रमण संघ की बहुत सेवा की है।

मैं, इस प्रसंग पर उनकी सेवा में अपनी विनम्र भावांजलि अर्पित करता हूँ और कामना करता हूँ कि आप युग-युगों तक जिन-शासन की सेवा और प्रभावना करते रहें।

□

वंदनीय-व्यक्तित्व

□ प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज

भारत का कोई भी ऐसा स्थानकवासी जैन नहीं होगा, जो मालवरत्न महा-स्थविरपद विभूषित श्रद्धेय उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब के बहुमुखी व्यक्तित्व से परिचित नहीं हो। आपका उदीयमान व्यक्तित्व इन दिनों श्रमण संघ के 'उपाध्याय' पद को सुशोभित कर रहा है। आपके विचारों में बड़ी उदारता एवं नई-पुरानी परम्परा के सुन्दर-समन्वय का संगम परिलक्षित होता है। आगम-वाङ्मय का चिंतन और मनन भी आपका गहन-गंभीर रहा है। मेरी दृष्टि में आपके विचार और आचार की उच्चता हिम शिखर से भी ऊँची और गांभीर्य सागर से भी अधिक रहा है।

वाणी में माधुर्य है, तेज है और ओज है। यह साधक भी आपकी ही शीतल छाया में फला-फूला एवं रत्नत्रय की अभिवृद्धि कर पाया है। मैं आपका परिचय क्या करवाऊँ।

प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ का एक-एक पृष्ठ आपके गौरव गरिमा-महिमा की अभिव्यक्ति कर रहा है। मैं आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। आपकी ओर से सदा चतुर्विध संघ को मार्गदर्शन मिलता रहे—यही मेरी शुभकामना है।

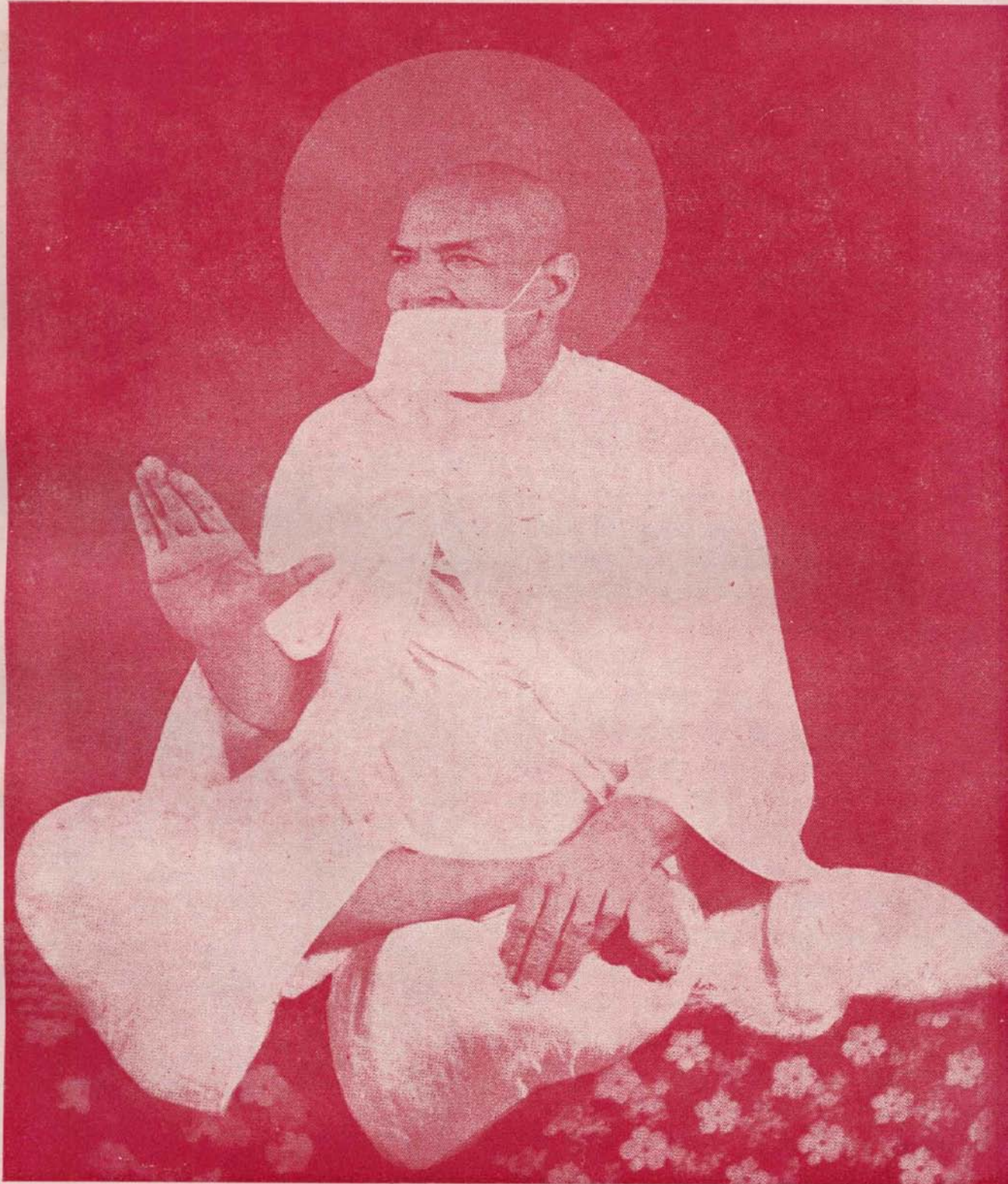


प्रथम खंड II

जैनागम तत्वविशारद प्रवर्तक
श्री हीरालाल जी महाराज

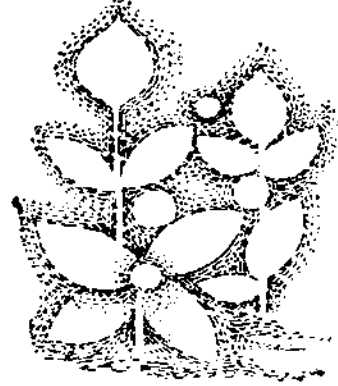


जैनागम तत्वविशारद प्रवर्तकपं० मुनिश्री हीरालालजी महाराज



□ प्रियदर्शी सुरेश मुनि, शास्त्री

[मेवाड़भूषण श्री प्रतापमलजी महाराज
के प्रशिष्य]



महिमा-मंडित मालव मही

एक कवि की भाषा में—

बहुमुखी प्रतिभा के धनी
प्रवर्तक श्री हीरालालजी
महाराज

मालव देश सुहावनो, वरते सदा सुकाल ।
सरवर भरिया नोर सूं, सुखी बाल गोपाल ॥

मालव की पुण्य भूमि अत्यन्त गौरव-शालिनी रही है । धन-धान्य एवं ऐश्वर्य सम्पन्न होने के साथ-साथ चिरकाल से यह नर-रत्नों की खान भी है । जो मानव एक बार शस्य-श्यामला मालव माँ का दर्शन कर लेता है, वह कभी भी इसकी छवि को भूल नहीं सकता है । दूर-दूर तक फैले हुए हरीतिमा युक्त विशाल मैदान, कल-कल ध्वनि से प्रवाहित सरिताएं एवं जहाँ-तहाँ प्रस्थापित कलात्मक प्राचीन स्थान, सचमुच ही दर्शकों को प्रभावित किये बिना नहीं रहते । ऐसा कहा जाता है—मालव वह पुण्यभूमि है जहाँ कभी अकाल के दर्शन नहीं होते । मालव वह पुण्यभूमि है जहाँ भूखा और प्यासा कोई व्यक्ति नहीं सोता । मालव वह पुण्यभूमि है—जहाँ अकाल-पीड़ितों और मरुभूमि के निवासियों को खुले दिल शरण मिलती है । ऐसी महान् पवित्र भूमि के दर्शन कर कौन धन्य नहीं होगा ? उसके लिए यह अभिव्यक्ति अक्षरशः सत्य है—



मालव धरती गहन गंभीर ।

डग-डग रोटी पग-पग नीर ॥

भारतीय इतिहास के शौर्यपूर्ण अनेक स्वर्णिम पृष्ठ मालवीय नर-रत्नों की गौरव-गाथाओं से भरे हुए हैं। भारतीय साहित्य तो इसके अमर कवियों, लेखकों और दार्शनिकों से धन्य और उपकृत है। यहाँ एक ओर बड़े-बड़े सम्राट् विक्रम-भोज जैसे हुए हैं तो दूसरी ओर ज्ञान-गंगा को प्रवाहित करने वाले कालिदास और भारवि सहश अमर कवि भी। एक ओर अनेक धर्मनिष्ठ श्रद्धालु-श्रमणोपासक हुए हैं तो दूसरी ओर अपार ऐश्वर्य को ठुकराकर साधना-पथ के पथिक अनेक मुनि-मनस्वी एवं महासती वृन्द भी।

सदियों से मालव की चप्पा-चप्पा धरा श्रमणसंस्कृति एवं वैदिक संस्कृति के प्रिय संदेशों से प्लावित-प्रभावित रही है। दोनों संस्कृतियाँ मूल में पूर्ण स्वतंत्र अस्तित्व को संजोये पारस्परिक एक-दूसरे की पूरक रही है। अहिंसा-सत्य-अचौर्य-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह आदि दोनों संस्कृतियों का अमर उद्घोष रहा है। उक्त पंचशील के संदेश को गाँवों-गाँवों और घरों-घरों तक पहुँचाने में संत-जीवन का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। फलतः इस पुण्यभूमि के निवासी अन्य प्रांत-वासियों की अपेक्षा सात्त्विक, सरल एवं धर्म-दर्शन-साहित्य-कलाप्रेमी रहे हैं।

जन्मस्थान मंदसौर (दशपुर)

पुरातत्त्व-अन्वेषकों के अनुसार दशपुर का अर्वाचीन रूप आज मंदसौर शहर के रूप में विकसित हुआ माना जाता है। दशार्णभद्र नरेश की यह भोगभूमि एवं योगभूमि रही है। इसी पुण्यभूमि पर आत्महितैषी दशार्णभद्र ने काफी वर्षों तक न्याय-नीति पूर्वक शासन किया। तत्पश्चात् हस्तगत अपार राजवैभव एवं सगे-सम्बन्धी, पुरजन-परिजनों से नेह-नाता तोड़कर भगवान महावीर के सुखद सान्निध्य में इसी पावन धरा पर अकिंचन संयति (भिक्षु) बनकर आदर्श-त्यागी जीवन का एक उदाहरण प्रस्तुत किया था।

जिसके समक्ष प्रथम देवाधिपति शक्रेन्द्र भी नत-मस्तक होकर अभिवादन करता हुआ बोला था—“हे महामुने ! आपके इस आदर्श त्यागरूप वैभव के समक्ष दैविक सम्पदा तुच्छ है। आपका यह स्वाभिमान सदा-सर्वदा अमिट रहेगा।”

हँसता चेहरा, लम्बा सुडोल गौरव वदन, कहुणा बरसाती आँखें, दिनकर सा दमकता ललाट, चाँदी-सी चमकती केशावली, धनुषाकार भौहें, अमृत रसमय अधर-पल्लव, कृत्रिम दन्तमुक्तापंक्ति की विद्युत छटा, गौर गुलाबी गाल, मनमोहक मुखड़े पर मँडराने वाली मुस्कान आदि बाह्य वैभव के साथ उदारता, गुण-ग्राहकता, मिलनसारिता, सरलता, सौम्यता आदि आत्मिक-वैभव के संगम से एक महान् व्यक्तित्व का सर्जन हुआ है, जिनको “जैनागम तत्त्वविशारद प्रवर्त्तक पंडितरत्न श्री

हीरालाल जी महाराज” के नाम से पहचानते हैं। सहस्रों-लाखों आत्माएँ जिनके प्रवचन-पीयूष का पान कर जीवन-विकास की पवित्र प्रेरणा पा चुकी हैं।

पारिवारिक परिचय

मान्यवर लक्ष्मीचन्दजी दुगड़ की धर्मपत्नी सहधर्मानुगामिनी हगाम कुँवर बाई की कमनीय कुक्षि से वि० सं० १९६४ पौष शुक्ला प्रतिपदा शनिवार की मंगल बेला में इसी मंदसौर की पावन भूमि पर हमारे चरित्रनायक श्री का जन्म हुआ था। फलतः सारा दुगड़ परिवार हर्षविभोर हो उठा एवं दुगड़ भवन का कोना-कोना मंगल गान से मुखरित भी।

आपके पितामह मान्यवर ताराचन्दजी दुगड़ मंदसौर के प्रमुख एवं प्रतिष्ठित व्यापारियों में से एक थे। श्रेष्ठी श्री लक्ष्मीचन्दजी का दाम्पत्य जीवन बहुत ही सात्त्विक-सरल-सुखी एवं धर्मनिष्ठ था। यथावसर सामायिक करना, संत मुनियों के व्याख्यान सुनना एवं शक्त्यनुसार तपाराधना में रत रहना, उन दोनों पुण्यात्माओं को इष्ट था—

जैसे होंगे सघन विटप, तो छाया भी वैसी होगी।

जैसे होंगे मात-पिता तो, संतति भी वैसी होगी ॥

यह निर्विवाद सत्य बात है कि संतान पर माता-पिता के संस्कारों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिसमें भी माता की दिनचर्या की छाप गर्भस्थ आत्मा पर अतिशीघ्र पड़ती है। अतएव माता के सहवास को सर्वप्रथम पाठशाला की उपमा से उपमित किया है। नवजात शिशु हीरालाल पर भी माता-पिता के संस्कारों का गहरा प्रभाव पड़ा। वस्तुतः बालक आरम्भ से ही सरल-सौम्य एवं मेधावी दृष्टिगोचर होने लगा।

परिस्थितियों के बीच जीवन

मानव-जीवन के निर्माण में परिस्थितियों का बहुत योगदान रहता है। सुख किंवा दुखात्मक घटनाएँ व्यक्ति के जीवन-प्रवाह को बदल देती हैं। पथिक को उत्थान या पतन के किसी भी मार्ग की ओर ले जाती हैं। विषम परिस्थितियों में भी जीवन को समुन्नत करना तथा अपना मार्ग निश्चित कर लेना होनहार सपूतों का ही काम है। अन्यथा अधिकांश नर-नारी पथभ्रष्ट होकर अधःपतन के गहरे गर्त में जा गिरते हैं।

बालक हीरालाल के जीवनोत्थान में भी परिस्थितियों का काफी सहयोग रहा। वि० सं० १९७१ के वर्ष में अर्थात् सात वर्ष की लघुवय में ही माता का स्नेहमय हाथ सदा-सर्वदा के लिए उठ जाने से और बड़ी बहन कंचन व छोटे भाई पन्नालाल का देहावसान होने से हीरालाल का मृदु-मन अत्यधिक द्रवित हो उठा। उक्त परिजनों की दुर्घटनाएँ लघु बालक के मन-मस्तिष्क में एक प्रश्न बन गईं। जीवन और मरण के प्रति एक जिज्ञासा जाग गई—“व्यक्ति मरता क्यों है और मरकर कहाँ जाता है? इसका

पता लगाना चाहिए। क्या सारा संसार इसी तरह मरता-मिटता और जन्म धारण करता है? क्या इसी तरह मैं भी मरूँगा?” आदि-आदि विचार-तरंगों अन्तर्हृदय रूपी सागर में हिलोरें खाने लगीं। धीरे-धीरे ये शुभ विचार ही चरित्रनायक के लिए वैराग्य की पृष्ठभूमि बन गई। बालक को खोया-खोया देखकर पिता का स्नेहमय हृदय द्रवित हो उठता। हीरालाल उनकी अब इकलौती संतान रह गई थी। फलतः लक्ष्मीचन्दजी ने अपने हृदय का समस्त लाड़-प्यार हीरालाल के जीवन में उँडेल दिया। पर पिता का प्यार भी उनकी मानसिक स्थिति में कोई परिवर्तन न ला सका।

माँ और मौसी का प्यार एक-सा है। माँ की गोद न सही, मौसी की गोद तो है, यह सोचकर आपकी मौसी कजोड़ीबाई बालक हीरालाल को अपने पास ले आई। मातृवत् प्यार पाकर भी बालक का हृदय पूर्ववत् ही आकुलित बना रहा। जीवन और मरण की जिज्ञासा अभी तक उपशांत नहीं हुई।

व्यक्तित्व कभी छुपता नहीं

बालक हीरालाल प्रारम्भ से ही अत्यन्त मेधावी एवं विवेक-विनय-शील था। वयानुसार हिन्दी-महाजनी और अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। ग्यारह वर्ष की लघुवय में वह कठिन से कठिन गणित के प्रश्नों का मुखाग्र हिसाब कर दिया करता था। एक व्यापारी के पुत्र को और क्या चाहिए? यह बात आज भी व्यावहारिक जीवन में साकार देखी जाती है।

बालक की प्रतिभा ने श्रेष्ठी ताराचन्दजी दुगड़ का ध्यान अपनी ओर खींचा। उनके कोई संतान नहीं थी। ऐसा कहा जाता है—‘चने हैं तो चबाने वाला नहीं’ तदनुसार धन था पर संतान के अभाव में वह भी काटने दौड़ता था। उन्होंने बालक हीरालाल को अपने यहाँ दत्तक लेने की इच्छा श्रीमान् लक्ष्मीचन्दजी के सम्मुख रखी। पिता, पुत्र के विचारों को भली-भाँति जानते थे। उन्होंने कहा—मेरी ओर से कोई मनाई नहीं है, परन्तु आप पहले हीरा से पूछ लें।

सेठजी ने मन ही मन सोचा था—वह क्या मना करेगा? हमारी ऊँची अट्टालिका को देखकर ही हाँ भर लेगा। उन्होंने हीरालाल को अपने पास बुलाया और स्नेह-सिक्त वाणी में ‘दत्तक’ लेने की बात कही।

श्रेष्ठी ताराचन्दजी को उत्तर देते हुए तपाक से बालक हीरालाल ने कहा—मैंने अपने समुज्ज्वल भविष्य के लिए निर्णय कर लिया है। मैं साल-दो साल में ही संसार के समस्त बन्धनों को तोड़कर साधु-जीवन अंगीकार करना चाहता हूँ। आप किसी अन्य भाई-बन्धु को दत्तक लेने की सोचेंगे तो अच्छा रहेगा। श्रीमान् ताराचन्द जी तो अवाक् एवं विस्फारित-नेत्र रह गये। उनके आश्चर्य का पार नहीं रहा कि हीरालाल ऐसी गूढ़ बातें कहाँ से सीख आया? जिस ऐश्वर्य के लिये मोह-मायावी मानव मर मिटते हैं, उसी धन को प्राप्त होने पर भी यदि उसका उपभोग न करके कोई मिट्टी के ढेले की तरह फेंक दे तो आश्चर्य न हो तो और क्या हो?

सस्नेह पुनः ताराचन्दजी बोले—“बेटा ! यह कोई जल्दी का प्रश्न नहीं है । इस सम्बन्ध में जरा शान्तचित्त से विचार करना । मैंने तो तुम्हारा जीवन सुखी रहे, इस आशय से अपने भाव व्यक्त किये हैं ।”

श्रीमान् लक्ष्मीचन्दजी अपने पुत्र हीरालाल के वैराग्योत्पादक विचारों को सुनकर चौंक पड़े । सचमुच कहीं हीरालाल साधु न बन जाय । उन्होंने हाथ से निकलते हुए पंखी को पकड़ रखने के लिए मन-मोहक जाल फैलाना चाहा, वह जाल जिसमें आबद्ध होकर विरले ही नर-नारी निकल पाते हैं । यद्यपि विवाह के योग्य उम्र नहीं थी, फिर भी अतिशीघ्र विवाह कर देने का निश्चय किया । योग्य कन्या उनकी दृष्टि में थी ही ।

एक दिन कन्या के पिताश्री, हमारे चरित्रनायक की जन्म कुण्डली मंगवाकर देख रहे थे । ठीक उसी समय परम प्रतापी, वादीमानमर्दक, चारित्रचूड़ामणि दादागुरु जी श्री नन्दलाल जी महाराज आहारार्थ पधार गये । कुण्डली देखने वाले श्रीमान् से स्वाभाविक रूप से गुरुदेव ने पूछा—यह कुण्डली किसकी है ?

प्रत्युत्तर में उस महाशय ने कहा—“महाराजश्री ! यह कुण्डली हीरालाल जी दुगड़ की है । मैं अपनी पुत्री का विवाह इनके साथ करना चाहता हूँ, तो सरसरी निगाह से ग्रहगोचर देख रहा हूँ ।

गुरुदेव ने कहा—आप व्यर्थ ही कोशिश करके समय बर्बाद न करें । मैंने पिता-पुत्र दोनों को जिन-शासन में दीक्षित होने का उपदेश दिया है । मेरा आत्म-विश्वास है कि दोनों अनगार वृत्ति धारण करेंगे ।

हाँ गुरुदेव ! कुण्डली को देखने पर भी ऐसा लगता है कि इनके विवाह का योग नहीं है, परन्तु दीक्षा का योग है । ख्याति-प्राप्त सुसमाधिवन्त साधु बनेंगे और चारों दिशाओं में जिन-शासन की खूब प्रभावना बढ़ायेंगे ।

दीपक से दीपक दीप्तिमान होते हैं

पुत्र की वैराग्यवर्धक प्रवृत्ति और निवृत्ति को देखकर श्रीमान् दुगड़ जी असमंजस में पड़े बिना नहीं रह सके । बोले—

“बेटा ! दीक्षा लेना कोई बुरा नहीं है । पर तेरे लिए जन-अपवाद कुछ और बोल रहा है । अपने सगे-सम्बन्धियों का कहना है कि वंश की वृद्धि के लिए किसी भी स्थिति में हीरालाल को दीक्षा की अनुमति नहीं दी जाय । उसे घर पर ही रखा जाय ।”

पिताजी ! आप कैसी बातें कर रहे हैं ? तीर्थंकरों का वंश भी कायम नहीं रहा तो क्या आपकी वंश-परम्परा कायम रहेगी ? विश्वास है ? जिसका नाम है, उसका (वस्तु) विनाश अवश्यभावी है । तो फिर दीक्षा जैसे महान् कार्य के लिए विलम्ब करना क्या ठीक है ? दीक्षा लेने पर क्या वंश का नाम मिट जायगा ? मैं किसी भी परिस्थिति में रुकने वाला नहीं हूँ । आप अपना हिताहित सोच लें । मेरी तो आप से

यही प्रार्थना है कि आप भी मेरा अनुकरण करें। ताकि आपका पिछला जीवन अधिक धर्म में बीते।

अब मुझे क्या करना चाहिए ? अर्थ का मोह-पाश बेटे को न बांध सका और न रोक सका। विवाह का पाश भी व्यर्थ हो रहा। हीरा संसार रूपी कर्दम में से निकल रहा है। इसके दीक्षित हो जाने पर मैं अकेला घर पर क्या करूँगा ? पुत्र के घर पर रहने पर ही तो मेरी वाह ! वाह !! है। हीरा को बार-बार धन्य है, क्या खाया, क्या पिया और क्या देखा ? एकदम दीक्षित होने का निर्णय कर लिया इस छोटी अवस्था में। मैं कहाँ तक कर्म-बन्धन करता रहूँगा ? हीरा के साथ मुझे भी दीक्षित हो जाना चाहिए ताकि जीवन का हित हो सके और पिता-पुत्र को जोड़ी बिछुड़ भी नहीं सके। एकदम पिता के हृदय में परिवर्तन आया। उन्होंने भी मन ही मन पुत्र के साथ साधु बनने का निश्चय किया। पुत्र के वास्तविक वैराग्य ने पिता के अन्तर्मन को धर्म-पथ के लिए सजग कर दिया।

स्वर्णिम अवसर का सदुपयोग

उन्हीं दिनों अर्थात् सं० १९७६ में वादीमानमर्दक दादागुरुजी श्री नन्दलाल जी महाराज आदि मुनि मण्डल का चातुर्मास इसी मन्दसौर (दशहपुर) में था। उनके वर्षावास से वैराग्यवान् आत्माओं की नींव और अधिक सुदृढ़ बनी। ज्ञानाराधना में आशातीत अभिवृद्धि हुई एवं प्रभावशील व्याख्यानों से उनका मार्ग प्रशस्त भी होता रहा। खुशी की अभिवृद्धि करने वाले अपने ही समवयस्क देवगढ़ निवासी वैराग्यानन्दी प्रतापमल गांधी को पाकर बालक हीरालाल की भावना संयम के प्रति और बलवती बनी।

पिता-पुत्र दोनों मुमुक्षुओं की साध्वोचित योग्यता एवं आवश्यकीय धर्मभ्यास (जैसे साधु प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल, दशबैकालिकसूत्र, भक्तामर, लघुदण्डक, गुणस्थान द्वार आदि) पूरा होने पर वि० सं० १९७६ माघ शुक्ला तीज शनिवार की मंगल वेला में रामपुरा की शस्य-श्यामला स्थली में दादागुरुजी श्री नन्दलाल जी महाराज साहब ने पिता-पुत्र को भगवती दीक्षा प्रदान की। दोनों मुमुक्षु शिष्य और प्रशिष्य के रूप में घोषित किये गये। इस शुभावसर पर पं० प्रवर श्री देवीलालजी महाराज, भद्रमना श्री भीमराजजी महाराज, आदर्श त्यागी पं० श्री खूबचन्दजी महाराज, तपस्वी श्री हजारीमलजी महाराज, चर्चावादी पं० श्री केशरीमलजी महाराज आदि १७ मुनिवृन्द और प्रवर्तनी महासती श्री प्याराजी आदि सात सतिर्या उपस्थित थीं। इस दीक्षोत्सव में सम्मिलित होने के लिए बाहर से हजारों श्रद्धालु दर्शक मौजूद थे। जन-जीवन में सराहनीय उत्साह था। सभी नवदीक्षित मुनिवरों के त्याग और वैराग्य भावना की शत-शत कंठों से प्रशंसा कर रहे थे। इस प्रकार रामपुरा श्री संघ ने पूरे हर्षोल्लास के क्षणों में इस मांगलिक महोत्सव को पूरा करके जिनशासन की श्लाघनीय और ऐतिहासिक प्रभावना की।

शास्त्रीय अध्ययन

दीक्षोपरांत दादागुरुजी श्री नन्दलालजी महाराज साहब ने नव दीक्षित मुनि श्री हीरालालजी महाराज की प्रखर बुद्धि को एवं शास्त्रीय अभ्यास की स्वतः लगन को देखकर अभ्यासार्थ भावी आचार्य श्री खूबचन्दजी महाराज की सेवा में रहने का आदेश फरमाया। पंडितप्रवर श्री खूबचन्दजी महाराज का सुयोग मिलने पर तीव्र गति से आप (श्री हीरालालजी महाराज) का विकास होने लगा। साधु का परिधान पहन लेने मात्र से ही नव दीक्षित मुनि संतुष्ट होकर बैठे नहीं रहे, ज्ञानार्जन के लिए पूरे परिश्रम के साथ जुट गये। अमूल्य इन क्षणों में अब मुझे ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य की अभिवृद्धि अच्छे ढंग से करनी है ताकि—‘पुनरपि जननं पुनरपि मरणं’ का यह चिरकालीय सिलसिला अवरुद्ध हो जाय। कहीं प्राप्त हुआ समय यूँ ही न बीत जाय। जैसे किसी को खजाना बटोरने को कह दिया हो, उसी प्रकार विनय-विवेक एवं भक्तिपूर्वक गुरु प्रदत्त ज्ञान-निधि सम्पादन करने में लगे रहे। गुरु भगवंत भी निम्न गुणों से युक्त साधक को ही ज्ञानामृत का पान करवाते हैं—

अह् अट्ठहिं ठाणेहिं सिक्खासीले त्ति वुच्चई ।
 अहस्सिरे सया दंते न य मम्ममुदाहरे ॥
 नासीले न विसीले न सिया अइलोलुए ।
 अकोहणे सच्चरणे सिक्खासीले त्ति वुच्चइ ॥

(उत्तराध्ययन, ११४-५)

जो साधक अधिक नहीं हँसने वाला, इन्द्रियों का सदैव दमन करने वाला, मर्मकारी वाणी का प्रयोग न करने वाला, शुद्धाचारी, विशेष लोलुपतारहित, मन्द-कषायी और सत्यानुरागी है, वही शिक्षा के योग्य होता है।

उक्त योग्यता हमारे चरित्रनायक के साधनामय जीवन में थी और है। गुरुदेव सचमुच ही ऐसे विनय-विवेकसम्पन्न अंतेवासी के लिए अपना विराट् ज्ञान-भण्डार बिना संकोच किए खोलकर उस मुमुक्षु के सामने रख देते हैं। गुरुप्रवर का अमूल्य ज्ञान कोष ऐसे विनीत, गुण-ग्राही शिष्यों के लिए सर्वदा सुरक्षित रहता है। कहा भी है—“संपइ विणीयस्स”।

भावी आचार्यप्रवर श्री खूबचन्दजी महाराज की महती कृपा से दीक्षोपरांत आपने जैन वाङ्मय तथा जैनदर्शन सम्बन्धित अन्य साहित्य का तलस्पर्शी अध्ययन प्रारम्भ किया। स्वयं पंडितप्रवर श्रद्धेय श्री खूबचन्दजी महाराज आपको (हीरालालजी महाराज) पास में बिठाकर अति प्रेम-पूर्वक तात्त्विक ज्ञान सिखाते थे। त्वरित गति से दशवैकालिकसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, आचारांगसूत्र, सुख-विपाकसूत्र, नंदीसूत्र, एवं प्राकृत व्याकरण कंठस्थ करवाई और हिन्दी-साहित्य में भी उच्चस्तरीय योग्यता प्राप्त की। उसके बाद भी अध्ययन चालू रहा। श्रीमद्भगवतीसूत्र, प्रज्ञापनासूत्र,

स्थानांगसूत्र, अनुयोगद्वारसूत्र आदि-आदि जो अति कठिनता से समझे जाते हैं, उन आगमों का अध्ययन भी आपने पूर्ण किया ।

उसके बाद भी आपके अध्ययन का क्रम चालू रहा । वृहत् आगमों के अध्ययन-अध्यापन से आपके तत्त्वज्ञान-कोष में बहुमुखी अभिवृद्धि हुई । अनुभव का क्षेत्र विशाल बना एवं प्रवचनों में प्रौढ़ता-रोचकता एवं लालित्य भाव आये । आज भी वही अध्ययन का क्रम गतिशील है । वर्षाकाल के अलावा भी आप अधिक से अधिक आगम-वाचना, स्वाध्याय करने में लोभी बणिक् की भाँति बड़ी तन्मयता से जुट जाते हैं । आगमों के प्रति आप पूर्ण श्रद्धावान हैं । अतिरुचिपूर्वक आगमों का अध्ययन करने-करवाने में आप सदैव संलग्न हैं । इन्हीं कारणों से साधु-साध्वी वर्ग आपको 'जैनागम तत्त्व (शास्त्र) विशारद' की उपमा से उपमित करते हुए अपने आप में गौरव का अनुभव करते हैं ।

विहार और प्रचार से यावन क्षेत्र

बहता पानी निर्मला, पड़ा गंदिला होय ।

साधु तो रमता भला, दोष न लागे कोय ॥

मंद-मंद गतिमान जल प्रवाह निर्मल होता है । प्रवहमान पवन उपयोगी माना है, कलित-ललित झरने मानव-मन को आकृष्ट करते हैं एवं गतिमान नदी-नाले मानव और पशु-पक्षियों के कलरवों से सदैव सुहावने प्रतीत होते हैं । उसी प्रकार सूर्य-शशि भी चलते-फिरते शोभा पाते हैं । अर्थात्—विश्व के अंचल में उदयमान तत्त्व जितने भी विद्यमान हैं, वे सभी परोपकार के विराट् क्षेत्र में तैनात हैं । श्रमण जीवन-ज्योति भी अप्रवाहित नीर के सदृश एक ही स्थान पर स्थिर रहने से दूषित हो जाती है । अतः जैनागमों में साधुओं को सतत विहार के लिए कहा गया है । साधु किसी भी गाँव या नगर का नहीं होता है । अपितु—'वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात् समष्टि ही उसका कुटुम्ब है । इस कारण वह एक स्थान पर मठ या आश्रम बनाकर नहीं रहते हैं । चिरकाल से जैन साधु एक स्थान से दूसरे स्थान पर पाद-यात्रा करते आ रहे हैं । दीर्घ उत्ताल तरंग पर्वत मालाएँ, संतप्त बालुकामय मरु-प्रदेश, कंटकाकीर्ण मेवाड़ भूमि, विजन पथ, ऊँचे-नीचे गिरि-गह्वर उनके पाद-विहार यात्रा को नहीं रोक सके । जन-हित तथा आत्म-कल्याण की भावना ने उनको विश्व के सुदूर कोने-कोने तक पहुँचाया । उनका यह अभियान स्वर्ण-खानों की खोज के लिए अथवा तैल-कूपों की शोध के लिए या कहीं उपनिवेश स्थापित करने के लिए नहीं हुआ । बल्कि हुआ है अशांत विश्व को शान्ति का संदेश सुनाने के लिए, विश्व को भ्रातृत्व के एक सूत्र में बाँधने के लिए और अज्ञानान्धकार में भटकती जनता को सत्पथ प्रदर्शित करने के लिए । आज भी वही क्रम चालू है । आधुनिक याता-यात के ढेरों साधन उपलब्ध होने पर भी जैन साधु पाद-विहार करते हुए देश के कोने-कोने में पहुँच जाते हैं । विश्व को श्रमण जीवन की यह बहुत बड़ी देन है ।

भावी आचार्यप्रवर श्री खूबचन्दजी महाराज की सेवा-सुश्रूषा में रहकर आपने काफी चातुर्मास पूरे किए । योग्य विनीत-वैयावृत्य कुशल शिष्य की गुरु को सदैव

चाहना रही है। हमारे चरित्रनायक (प्रवर्तक हीरालालजी महाराज) द्वारा की जाने वाली सेवा-भक्ति से प्रभावित होकर भावी आचार्यदेव 'हीरा' कहकर सीधी-सादी भाषा में पुकारा करते थे। इससे विदित होता है कि महामनस्वी पूज्यप्रवर की आप पर कितनी कृपा थी? वस्तुतः किसी खास कारण के अतिरिक्त आपको अपनी सेवा में ही रखते थे। ऐसे महामहिम निर्ग्रन्थ गुरु के सान्निध्य में रहने से दिन दुगुनी-रात चौगुनी प्रगति अविराम गति से होती रही। पूरा विश्वास किया जाता है कि आपके जीवन विकास में अधिक श्रेय श्रद्धेय पंडितप्रवर आदर्शत्यागी पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज को है। जिनकी स्फुरणा एवं चेतना चरित्रनायक को प्रतिपल-प्रतिक्षण रत्न-त्रय की अभिवृद्धि के लिए प्रेरित एवं उत्साही बनाती रही है।

'आणाए धम्मो, आणाए तवो' शास्त्रीय नियमानुसार हमारे चरित्रनायक श्री हीरालालजी महाराज सदैव अपने संघ के सुयोग्य अधिपति पं० श्री खूबचन्द जी महाराज के आदेशों को मनसा-वाचा-कर्मणा कार्यान्वित करने में तत्पर रहे हैं। सदैव अनुशासन की परिपालना में सुखानुभूति करते रहे हैं। यही कारण है कि आज भी हम देखते हैं कि आपका यशस्वी जीवन उतना ही व्यवस्थित-मर्यादित एवं निस्पृह वृत्ति—इस त्रिवेणी संगम का सफल-सबल परिचायक है।

आत्म-कल्याण के साथ-साथ धर्म-प्रचार भी मुनि-महासती वृन्द का सर्वोपरि लक्ष्य रहा है। धर्म-संदेश को घर-घर और गाँव-गाँव तक पहुँचाना कोई सहज कार्य नहीं है। यद्यपि प्रचार करते समय जैन साधकवृन्द को काफी परीषहों का सामना करना पड़ता है। आहार-पानी-आवास की कहीं सुविधा मिलती और कहीं नहीं। फिर भी अनुकूल-प्रतिकूलता में जैन श्रमण-श्रमणी वर्ग कभी भी पीछे नहीं हटे हैं। अपने देहिक सुख-सुविधा को गौण समझते हुए जिन-शासन सेवा व जन-सेवा को मुख्यता प्रदान करते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। जैसा कि आगम में भगवान महावीर ने कहा है—

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।

समो निंदापसंसासु, समो माणावमाणओ ॥

(उत्तराध्ययन १६।६१)

जो साधक लाभ-अलाभ, सुख-दुख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशंसा और मान-अपमान में समभाव रखता है, वही वस्तुतः मुनि है। ऐसे साधक जन-जन के श्रद्धा के केन्द्र होते हैं।

चरित्रनायक श्री का जीवन भी धर्म-प्रचार कार्यों में अग्रगण्य रहा है। इसी विराट् भावना से प्रेरित होकर आपने सुदूर प्रान्तों में अर्थात् भारत के इस छोर से उस छोर तक विहार द्वारा सद्धर्म प्रचार का ध्वज फहराया है। यह जिन-शासन के लिए महत्त्वपूर्ण गौरव की बात है। आपके प्रभावशाली प्रवचनों के प्रभाव से कई जैन-जैनेतर सत्पथ के पथिक बने, कई गृहत्यागी और कई श्रमणोपासक की श्रेणी में

प्रविष्ट हुए हैं। वस्तुतः काफी जनसमूह आपके व्यक्तित्व से अति ही लाभान्वित हुए हैं।

सभी वर्षावासों का विस्तृत वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है। पाठकवृन्द के केवल चन्द्र चातुर्मासों का ही दिग्दर्शन कराना उचित रहेगा।

सं० १६६५ का जम्मू चातुर्मास

जम्मू यह काश्मीर का मुख्य जिला है। पंजाब की सीमा पर होने से व्यापार का केन्द्र है। यहाँ के जैन परिवार अन्य प्रान्तों की अपेक्षा सुखी एवं समृद्ध हैं। मुनियों के शुभागमन पर स्थानीय जैन समाज में उत्साह की लहर-सी दौड़ गई। मानो इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो गई। इतना ही नहीं आपके पांडित्यपूर्ण प्रवचनों के प्रभाव से आबाल-वृद्ध-युवक आदि सभी धर्मारोधिना में लोभी वणिक् की भाँति लग गए। सैकड़ों जैनैतर मानव आपकी प्रभावशाली वाणी के प्रभाव से शाकाहारी बने और सैकड़ों निर्व्यसनी; एवं सैकड़ों मूक प्राणियों को अभय दान जीवन मिला।

समय-समय पर आपके सान्निध्य में कई बार सार्वजनिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गये। जिसमें नगर के साहित्यकार-संगीतकार तथा संस्कृति प्रेमी सज्जनों ने बड़ी संख्या में आकर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई। उपस्थित बुद्धिजीवी वर्ग को कई बार आपने धर्म के प्रति श्रद्धा के लिए सम्बोधित भी किया। आपके उपदेशों का इतना प्रभाव पड़ा कि तत्काल 'जीव दया मण्डल' नामक एक संस्था की स्थापना हुई। कई श्रीमंत उस संस्था के सदस्य बने। उसी जीव दया फंड से 'महावीर जैन औषधालय' खोला गया। आज दिन तक पीड़ित नर-नारियों की सेवा में निष्ठापूर्वक वह औषधालय संलग्न है। इस अल्पकाल में जम्मू एवं कश्मीर राज्य के अनेकों प्रमुख अधिकारी एवं कर्मचारी वर्ग आपके सम्पर्क में आये और जैन साध्वाचार से परिचित हुए। इस ऐतिहासिक वर्षावास को वहाँ के बुजुर्ग वर्ग आज भी याद करते हैं।

सं० २००८ का दिल्ली वर्षावास

चातुर्मास प्रारम्भ से पूर्व ही व्याख्यानों की धूम-सी मच गई। चरित्रनायक के हृदयस्पर्शी उपदेशों के प्रभाव से चारों ओर से जन-प्रवाह उमड़-धुमड़ कर आने लगा। कुछ दिनों बाद दिगम्बराचार्य श्री सूर्य-सागरजी महाराज से स्नेह-मिलन हुआ। तत्पश्चात् कई बार संयुक्त व्याख्यान हुए। दिल्ली-संघ के इतिहास में भी शायद यह प्रथम घटना ही थी कि दिगम्बराचार्य एवं स्थानकवासी मुनि इस प्रकार सस्नेह मिल-जुल कर रचनात्मक कार्य में रत हों, यह समाज के लिए गौरव की बात थी। इस प्रकार पारस्परिक मैत्री-भावना का सूत्रपात हुआ। एक-दूसरे के सन्निकट आये एवं नाना प्रकार की मिथ्या भ्रान्तियाँ भी दूर हुईं।

तत्पश्चात् दोनों संघों के भगीरथ सत्प्रयत्नों से मुनिमण्डल के 'श्री हीरालाल हायर सेकेण्डरी स्कूल' में हजारों जन भेदिनी के समक्ष सम्मिलित व्याख्यान हुए। फलतः

जैनधर्म की महती प्रभावना हुई। क्रमशः दशलाक्षणी पर्व समारोह, विश्व मैत्री दिवस, विश्व कल्याण जयोत्सव, जैन दिवाकर जयन्ती, लोंकाशाह स्मृति दिवस आदि अनेकों प्रभावशाली आयोजन सफल रहे। प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रकुमारजी तथा अक्षय कुमारजी आदि अनेक विद्वानों के सम्पर्क में आए। धर्म प्रचारार्थ किये गये आयोजनों से इस वर्ष का यह वर्षावास आशातीत सफल रहा। जिसका श्रेय अधिक रूप से गुरु-प्रवर श्री प्रतापमलजी महाराज एवं चरित्रनायक श्री हीरालालजी महाराज को दिया जा सकता है जिनकी उदार भावना ने सभी को मैत्री-भाव के सूत्र में बाँध रखा।

नेहरू-मुनि-मिलन

ता० १८-११-५१ को प्रातः ६ बजे गुरुप्रवर श्री प्रतापमलजी महाराज, प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज आदि मुनि-मण्डल भारत के प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल जी नेहरू को बंगले में दर्शन देने के लिए पधारे। यहाँ पर संसद के सदस्यों एवं केन्द्रीय मन्त्रियों ने मुनिद्वय का योग्य सत्कार-सम्मान किया। प्रधान मंत्री ने भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अनुसार मुनिद्वय को वन्दन कर कुछ सामयिक वार्तालाप भी किया। इस सन्दर्भ में प्रधान मंत्री को जैन दिवाकर जी महाराज द्वारा संग्रहीत “निर्ग्रन्थ प्रवचन” (अंग्रेजी अनुवाद) भेंट किया।

मुनि और विनोबा भेंट

ता० २१-११-५१ को प्रातः ८ बजे मुनिद्वय (श्री प्रतापमलजी महाराज, श्री हीरालाल जी महाराज) की महात्मा गांधी के उत्तराधिकारी भूदान यज्ञ के याज्ञिक आचार्य विनोबा भावे से भेंट हुई। इस अवसर पर विनोबाजी ने जैन मुनियों के पैदल विहार का बहुत ही समर्थन किया एवं प्रशंसनीय बतलाया। इसी संदर्भ में प्रेमावेश में विनोबा जी बोले—“पैदल चलने के कारण मैं भी जैन साधु हूँ।” खादी के प्रसंग पर आपने आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

सं० २०१० का कलकत्ता वर्षावास : एक मधुर स्मृति

ये कौन, कहाँ जा रहे हैं? ऐसे तो साधारण जान पड़ रहे हैं; परन्तु आकृति-प्रकृति से महान् जान पड़ रहे हैं। तभी तो बड़े-बड़े सेठ साहूकार इनके चरण चूमते दिखाई दे रहे हैं।” उक्त उद्गार बंगाली जनता के हैं, जो पारस्परिक वार्तालाप कर रहे थे।

चातुर्मास के दिन निकट आ चुके थे। किन्तु पहले से ही श्रावक-श्राविकाओं के बीच धर्म-ध्यान एवं जप-तप की होड़ा-होड़-सी लग गई थी। एक तरफ भक्त-मण्डली की ओर से धर्मारोचना की झड़ी तो दूसरी ओर हमारे चरित्रनायक के मुख रूपी मेघ से अमृत झड़ी तो तीसरी ओर से इन्द्र की प्रसन्नता से जल वृष्टि। इस त्रिवेणी तीर्थ में डुबकी लगा-लगाकर भावुक वृन्द सुखानुभूति कर रहे थे। आशातीत शासन प्रभावना हुई।

प्रत्येक रविवार को एक विशिष्ट व्याख्यान का आयोजन भी हुआ करता था। जिससे चारों सम्प्रदाय के हजारों जैन भाइयों के अतिरिक्त इतर जन भी काफी उत्साह पूर्वक लाभान्वित हुए। जनता की एक ही आवाज थी कि—ऐसे सरल-स्वभावी शान्त प्रकृति के स्वामी, विद्वान् मुनि यदा-कदा ही यहाँ आया करते हैं। मुनियों के शुभागमन से अनेक रचनात्मक कार्यों को जीवन दान मिला। गुजराती, मारवाड़ी एवं पंजाबी अर्थात्—तीनों संघों की नींव मजबूत हुई, बंगाल-बिहार प्रान्तीय कान्फ्रेंस शाखा का भी श्रीगणेश, भारी मानव-मेदिनी के बीच स्नेह-सम्मेलन, क्षमापना-दिवस, वीर निर्वाणोत्सव, पूज्य खूबचन्द जयन्ती समारोह, लोकाशाह एवं दिवाकर जयन्ती समारोह आदि धार्मिकोत्सव हमारे चरित्रनायक श्री के सान्निध्य में ही सम्पन्न हुए।

१० जनवरी, ५४ को २७ पोलोक स्ट्रीट जैनस्थानक में पण्डितप्रवर श्री हीरालाल जी महाराज आदि मुनि-मण्डल के समीप एक विशाल जैन संस्कृति सम्मेलन मनाया गया। इस सम्मेलन का सभापतित्व बंगाल के माननीय राज्यपाल एच० सी० मुखर्जी कर रहे थे। इस सम्मेलन में अनेक इतिहासकार एवं पुरातत्त्वविज्ञों ने जैनधर्म एवं संस्कृति पर प्रभावशाली भाषण दिये। सम्मेलन में उपस्थित जनता के अतिरिक्त नेपाल के प्रधान मंत्री श्री मातृकाप्रसाद कोइराला, डा० कालिदास नाग तथा बौद्ध भिक्षु श्री जगदीश काश्यप भी थे। सभी वक्ताओं के प्रासंगिक भाषण हुए।

सं० २०२१ का जोधपुर वर्षावास

स्थानीय संघ के अत्याग्रह पर चरित्रनायकजी आदि मुनि-मण्डल का विक्रम सं० २०२१ का चौमासा जोधपुर होना निश्चित हुआ। इस वर्षावास को काफी महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक चातुर्मास की संज्ञा से सम्बोधित करने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उन दिनों जोधपुर एवं आस-पास के उपनगरों में चरित्रनायक प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज, प्रखर वक्ता श्री लाभचन्दजी महाराज, मधुर वक्ता श्री ईश्वर मुनि जी महाराज एवं महासती श्री कमलावतीजी आदि के प्रभावशील प्रवचनों की जहाँ-तहाँ भारी धूम रही। जनता के निवेदनों पर हाईस्कूलों, कॉलेजों एवं स्थानीय कारागृह में कई बार शानदार ढंग से व्याख्यानों के आयोजन सफल हुए। चारों ओर हजारों नर-नारियों के उमड़ते हुए दृश्य को देखकर सभी आश्चर्यचकित थे। सिंह पोल धर्म-स्थान का विशाल मण्डप, जिसमें पर्युषण पर्व के मंगल दिनों में बढ़ते हुए जन-प्रवाह का समावेश नहीं होता देखकर स्थानीय कार्य-कर्ताओं को जनता की सुविधा के लिए स्कूल और धर्म-स्थानक की दीवार भी हटानी पड़ी तब कहीं जाकर ठीक ढंग से जनता बैठ सकी। कई भावुक नर-नारी आपश्री के मधुर स्वभाव से प्रभावित होकर धर्माराधना में स्थिर हुए। इस चातुर्मास में अत्यधिक तपाराधना भी हुई। एक साथ सैकड़ों अट्टाइयाँ-तेले-बेले एवं बड़ी-बड़ी तपस्याएँ भी……। मुनियों की प्रेरणा से कई रचनात्मक योजनाओं को जीवनदान भी मिला एवं कई संस्थाओं को मार्गदर्शन भी। इस ऐतिहासिक वर्षावास की मधुर स्मृतियाँ आज भी जोधपुर निवासियों के मुँह-जबानी हैं।

अन्य के बढ़ते हुए प्रभाव को भले साधक हो कि संसारी उसे पचा कहाँ पाते हैं ? जोधपुर के इस ऐतिहासिक वर्षावास से आस-पास के कतिपय साम्प्रदायिक तत्त्व मन-ही-मन तिलमिला उठे। बढ़ते हुए प्रभाव को किस प्रकार से क्षीण किया जाय ? उस मौके की ताक में थे कि ऐसे ही अवसर पर वहाँ एक अवांछनीय घटना घटित हो गई। उस घटना की ओट में वे साम्प्रदायिक शक्तियाँ उठ खड़ी हुईं। घटना-क्रम को समझे बिना मिथ्या चोला पहनाकर उस शांत-स्वच्छ वातावरण को दूषित करने में जुट गये। फिर भी चरित्रनायक श्री जी का साहस अडिग रहा। अंततोगत्वा चातुर्मास पूरा हुआ। छोटे-मोटे गाँव-नगरों में घूमते हुए मुनि-मण्डल का आगमन पीपाड़ हुआ। वहाँ राजस्थानकेशरी प्र० श्री पुष्कर मुनिजी महाराज अपने शिष्य परिवार से विराज रहे थे। आचार्यश्री आनन्द ऋषिजी महाराज साहब की अनुमति प्राप्त किये बिना आपने, प्रवर्तकश्री हीरालालजी महाराज के साथ केवल शिष्टाचार का ही व्यवहार रखा। जिसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि श्रमण संघीय मुनियों में असहयोग अस्नेह एवं बिखराव की स्थिति का निर्माण हुआ। समस्या को समझने की कोशिश करते और दीर्घ-दृष्टि से प्रतिक्रियावादी कार्य करते तो मेरी समझ में आज अनैक्यता का वातावरण नहीं बनता।

व्यक्तित्व के आईने में—सरलता के धनी

“भद्रएणेव होअव्व पावइ भद्दाणि भद्दओ ।”

(उत्तराध्ययननिर्युक्ति० ३२६)

साधक को सरल होना चाहिए। भद्र को ही कल्याण की प्राप्ति होती है। चरित्रनायक जी के उभयपक्षी जीवन का मूल्यांकन मेरे जैसा साधारण साधक क्या करेगा ? क्या परखेगा ? फिर भी विगत इन कुछ वर्षों से आपके कल्याणकारी सान्निध्य में रहने का एवं यत्किञ्चित् सेवा-शुश्रूषा करने का सुनहरा अवसर इस सेवक को मिला है। आप अति सरल-भद्र, सौम्य-शांत-स्वभाव के साधक हैं। सदा खिली हुई मुख मुद्रा सभी दर्शनार्थियों के लिए आकर्षण एवं श्रद्धा का केन्द्र बनी हुई है। वाणी और व्यवहार में जितनी सरलता दृष्टिगोचर होती है, साधक जीवन के आदर्श के रूप में उतना ही आप में कथनी और करनी का सामञ्जस्य हुआ है। भले बालक-युवक-वृद्ध-विद्वान् या अनपढ़ मानव कोई भी क्यों न हो ? सभी के साथ उसी प्रमोद एवं सरल भाव से बातचीत करेंगे एवं मिष्टवाणी द्वारा सावधान भी। बाह्य और आंतरिक जीवन की एकरूपता की मंद-मंद मंदाकिनी हमेशा सामाजिक क्षेत्रों को प्लावित करती हुई प्रतीत होती है। आपके जीवन के कण-कण में छल-प्रपंच-मायाचार एवं कापट्यपूर्ण व्यवहार को स्थान नहीं है। आप कहा करते हैं कि—

“जो करना सो अच्छा करना,
फिर दुनिया में किससे डरना ?”

कई बार आपके मुखारविंद से उक्त उद्गार निःसृत हुए एवं सुनने को भी मिले हैं। भगवान महावीर के शब्दों में—

करणसच्चे वट्टमाणे जीवे
जहावाई तहाकारी यावि भवइ ।

(उत्तराध्ययन २६।५१)

करण सत्य—व्यवहार में स्पष्ट तथा सच्चा रहने वाला आत्मा “जैसी कथनी, वैसी करनी” का आदर्श प्राप्त करता है। ऐसी सरल और ऋजु आत्माओं की विशुद्धि होती है, और विशुद्ध आत्मा में ही धर्म ठहरता है। जैसा कि भगवान महावीर ने कहा है—

‘सोही उज्जुअ भूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई ।’

स्वाध्याय और सिद्धान्त के श्रुतधर

जैन द्वादशांगी वाङ्मय पर आपकी पूर्ण श्रद्धा और निष्ठा रही है। अहिंसा-अनेकांत-अपरिग्रह सिद्धान्तों पर आपको भारी स्वाभिमान है। शास्त्र-स्वाध्याय में भी आप आगे हैं। कई बार मैंने देखा है—आप रात्रि के चतुर्थ प्रहर में नियमित रूप से बड़ी तन्मयतापूर्वक स्वाध्याय-चित्तन-मनन और मंथन में लगे रहते हैं। चातुर्मास में भी आप अधिकाधिक आगमों का अनुशीलन-परिशीलन करने में तत्पर रहते हैं। अवकाशानुसार आज भी आगम-वाचना का क्रम चालू रहता है। शास्त्रीय भाषा में आप फरमाया करते हैं—“सुयस्स आराहणयाए णं अन्नाणं खवेई । (उ० २६।५६) श्रुत की आराधना करने से अज्ञान के पर्दे दूर हटते हैं और समस्त दुखों से मुक्ति मिलती है। जैसे—“सज्जाए वा निउत्तेण सव्व दुक्ख विमोक्खणे ।” (उ० २६।१०) प्रत्येक बुद्धि-जीवी आसानीपूर्वक स्वाध्याय तपाराधना करके अपने आपको समुज्ज्वल बना सकता है।

“ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय” अर्थात् महामनस्वियों को प्राप्त हुई सम्पत्ति का सदुपयोग ज्ञान के लिए, दान के लिए और स्व-पर रक्षा के लिए होता है। कितना महान् सिद्धान्त ? हमारे चरित्रनायक जी का व्यक्तित्व सदैव विराट् रहा है। कोई भी मुमुक्षु अध्ययन के लिए आपके सान्निध्य में पहुँचता है तो उदारतापूर्वक आप उसे ज्ञान-दान देने में तत्पर रहते हैं।

इसी भावना को साकार करने के लिए चरित्रनायक जी का अपने शिष्य परिवार के साथ बंगाल, बिहार, उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल-प्रदेश, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिल प्रदेश, केरल एवं उड़ीसा आदि प्रांतों में धर्म-प्रचार-प्रसारार्थ काफी परिभ्रमण रहा। अहिंसा, अनेकांत एवं अपरिग्रह सिद्धान्तों का जन-जन में प्रचार हो, इस भावना को प्रमुखता देकर आपने हजारों मील की पैदल यात्रा तय की। रंक से राजा पर्यन्त हजारों-लाखों भारतीय आपके सम्पर्क में आये, धर्मोपदेशों से लाभान्वित हुए एवं सैकड़ों-हजारों मानवों ने मदिरा-मांस का परित्याग भी किया।

साहित्यिक क्षेत्र में भी आपकी अभिरुचि कम नहीं है। मानव-समाज में अधिकाधिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार हो, और भूली-भटकी अनभिज्ञ जनता सुगमतापूर्वक सत्साहित्य को पा सके, पढ़ सके एतदर्थ हीरक प्रवचन के भाग एक से दस, हीरक-हार दृष्टान्त भाग एक-दो-तीन, सहस्र दोहावली, हीरक भजनावली, मुनि विहार, बंग विहार एवं खूब कवितावली इस प्रकार आपके संकेतों पर “दिवाकर दिव्य ज्योति” कार्यालय व्यावर संस्था से उक्त साहित्य प्रकाशित हो चुका है। पुस्तकों की भाषा काफी सरल-सुबोध होने के कारण बहुत से बुद्धिजीवी लाभान्वित हुए हैं। इस प्रकार आपने साहित्य भण्डार की श्लाघनीय सेवा प्रस्तुत की है। आप कभी-कभी अपने व्याख्यान में फरमाया करते हैं—

वहाँ अंधकार है, जहाँ आदित्य नहीं।
वह मुर्दा समाज है, जिसमें साहित्य नहीं ॥

साफ कहना, सुखी रहना (स्पष्ट वक्ता के रूप)

‘साफ कहना, सुखी रहना’ यह सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति को पसन्द नहीं आता है। क्योंकि—सत्य हमेशा महँगा एवं कटु होता है। जैसा कि “अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता-श्रोता च दुर्लभः” अर्थात् साफ-स्पष्ट कहने वाला वक्ता दुनिया की आँखों में खटकता है। दुनिया उसे पचा नहीं पाती है। परन्तु निष्पक्ष विचारों की तुला पर कसा जाय तो स्पष्टतः पता चलेगा कि “साफ-साफ कहने वाला दुश्मन नहीं, अपितु परम हितैषी के रूप में खरा उतरा है।”

चरित्रनायकजी का स्वभाव सदैव साफ-स्पष्ट कहने का पक्षी रहा है। साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका या इतर कोई नर-नारी क्यों न हो? वे यदि अनुचित राह पर अग्रसर हो रहे हों या दुराग्रह-कदाग्रह-क्लेश के दल-दल में अपने को डुबो रहे हों तो फिर आप उन्हें खरी-खरी सुनाने में हिचकिचाते नहीं हैं। वैसे आप सागर-सम गंभीर और हिमाचल-सम धीर-वीर हैं। आपकी यह स्पष्टोक्ति है—किसी की भी पीठ-पीछे निन्दा-बुराई नहीं करनी चाहिए। जिसको कहना हो मुँह के सामने उसे कह दिया जाय—भले उसे बुरा लगे या अच्छा। जो वक्ता व्यर्थ की लीपा-पोती करते हैं, अगले व्यक्ति को साफ-साफ नहीं जताते हैं, हमेशा मीठी-मीठी बातें बनाकर जो अपना स्वार्थ पूरा करते हैं, ऐसे कुटिल-मायावी वक्ताओं को आप ठीक नहीं मानते हैं।

इन दिनों आप श्रमणसंघ के प्रवर्त्तक पद पर आसीन हैं। प्रमुख-प्रमुख प्रवर्त्तकों में से आपका नाम भी उल्लेखनीय है। सदैव आपकी अन्तरात्मा यह चाहती है कि श्रमणसंघ सुदृढ़ बने। घर-घर में श्रमणसंघ की जय-ध्वनियाँ गूँजे एवं स्नेह-संगठन-समर्पण का अधिकाधिक विस्तार हो। जन-जीवन रत्नत्रय से आलोकित हो। आपके उदात्त विचारों ने हमेशा कड़ी से कड़ी जोड़ी है। टूटे हुए दो दिलों को मिलाया है। यही कारण है कि सभी प्रान्तों के नर-नारी आज भी आपके प्रिय उपदेशों को याद करते हुए नत-मस्तक हो जाते हैं।

महामनस्वी के वरदान-स्वरूप चरण-कमलों में श्रद्धा-भक्ति के सुमन-समर्पित कर मैं आपश्री का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। आराध्यदेव से प्रार्थना करता हूँ कि आप द्वारा सकल मानव-समाज को सदैव मार्गदर्शन मिलता रहे ताकि भूला-भटका मानव-समाज धर्म को भूले नहीं। इन्हीं चन्द-विचारों के साथ मैं अपनी लेखनी को विश्राम देता हूँ—

भारत के हे संत ! तुम्हारा,
जीवन है जग में आदर्श ।
पापी पावन हुए तुम्हारी
चरण-मणि का पाकर स्पर्श ॥



प्र. श्री हीरालालजी महाराज की चातुर्मास तालिका

वि० सं० गाँव का नाम

- १६८० अजमेर
- १६८१ रतलाम
- १६८२ मन्दसौर
- १६८३ जावरा
- १६८४ जावरा
- १६८५ जावरा
- १६८६ रतलाम
- १६८७ रतलाम
- १६८८ जावरा
- १६८९ जावरा
- १६९० रामपुरा
- १६९१ चित्तौड़गढ़ (किला पर)
- १६९२ व्यावर
- १६९३ जयपुर
- १६९४ दिल्ली (चाँदनी चौक)
- १६९५ जम्मू (कश्मीर)
- १६९६ अम्बाला सिटी
- १६९७ दिल्ली
- १६९८ सोजतरौड
- १६९९ उदयपुर
- २००० व्यावर
- २००१ मन्दसौर
- २००२ पालनपुर
- २००३ जामनगर
- २००४ वरावल और वडिया
- २००५ भावनगर
- २००६ अहमदाबाद

वि० सं० गाँव का नाम

- २००७ जयपुर
- २००८ दिल्ली
- २००९ कानपुर
- २०१० कलकत्ता
- २०११ झरिया
- २०१२ कलकत्ता
- २०१३ बालोतरा
- २०१४ खाचरोद
- २०१५ सिकन्दराबाद
- २०१६ बेंगलौर (कैन्ट)
- २०१७ मद्रास
- २०१८ बेंगलौर सिटी
- २०१९ बम्बई (फोर्ट)
- २०२० कपासन
- २०२१ जोधपुर
- २०२२ चित्तौड़गढ़
- २०२३ उदयपुर
- २०२४ अहमदाबाद
- २०२५ सूरत
- २०२६ बम्बई (विलेपारले)
- २०२७ बम्बई (फोर्ट)
- २०२८ इन्दीर
- २०२९ दिल्ली
- २०३० दिल्ली (चाँदनी चौक)
- २०३१ व्यावर
- २०३२ जावरा
- २०३३ जावरा



श्री हीरा लाल जी महाराज का जन्मांक चक्रम्

के० ६ सू० ७	८ चं० १० ११	६	६
११	१	४ वृ०	३ वा०
१२ मं	२		

जन्म संवत् १९६४, पौष शुक्ला
प्रतिपदा, शनिवार

पूर्वाषाढा १६।५३ प्रवेश उत्तराषाढा
तृतीय चरण। इष्ट ४६।१८

सूर्य स्पष्ट ६।२०, लग्न ६।२२

नक्षत्रों की भाषा

परिचय

[प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज
का कुण्डली फलित-चक्रम्]

जन्म-भूमि मंदसौर जहाँ कालिदास,
भारवी, मालवरस्त कस्तूरचन्दजी
महाराज, मालवकेसरी सौभाग्य मुनिजी
का जन्म मध्य प्रदेश की पावन भूमि में हुआ
है, इसी पावन भूमि में मुनिवर का जन्म
हुआ है। पितामह ताराचन्दजी, पिता लक्ष्मी-
चन्दजी, मातृ नाम हृगाम कुंवर था। माता-
पिता धार्मिक प्रवृत्ति के थे। 'यथापिता तथा-
पुत्रः' की उक्ति सार्थक की। व्याघात योग में
जन्म होने से गृहस्थाश्रम को व्याघात लगा
अर्थात् श्रमण बने।



पौष शुक्ला प्रतिपदा को आपका जन्म
हुआ। इसी पुण्य तिथि को मेवाड़ के महाराणा
संग्रामसिंहजी तथा ठाकुर गोपालशरणसिंह
(कवि महोदय) का जन्म हुआ है। आपका
जन्म व दीक्षा शनिवार को हुई। स्वर्गीय
जैनाचार्य पूज्य गणेशलालजी महाराज साहब
का जन्म भी शनिवार को हुआ है।

पौष माह में जन्म लेने वाले महत्वाकांक्षी
होते हैं।

तुला लग्न में जन्म लेने वाला मातृ-
पितृ-भक्त, पुण्यात्मा, ईश्वरोपासक, सत्य वक्ता,
असत्य में सत्य की खोज करने वाला होता
है। पूर्व-जन्म में आप ब्राह्मण पंडित थे।

□ मदनमोहन जैन 'पवि'
[ज्योतिष-मनीषी, कानोड़]

शास्त्रार्थ करते थे। कथावाचक थे। गायन संगीत में विशेष रुचि थी। जैन संतों का सम्पर्क था।^१ अतः इस लोक में श्रमण बनने का योग बना।

ग्रहतुलना—आपके सुतस्थ शनि कुम्भ राशि का है। गौतम बुद्ध के मकर का शनि स्वगृही पंचमस्थ था। कुम्भ का शनि विभिन्न स्थानों में कुम्भराशि पर “काका” हाथरसी, डा० महेन्द्र भानावत, पूज्य प्रवर्तक अम्बालालजी महाराज साहब व “पवि” के विद्यमान हैं।

दीक्षा योग—पिता-पुत्र की सह दीक्षा होना, “मणि-कांचन योग” बना है। १५ वर्ष की अल्पायु में माघ सुदी ३ संवत् १९७६ में शनिवार को आपकी दीक्षा हुई। पूज्य नन्दलालजी महाराज से दीक्षा ग्रहण की। पूज्यश्री ने पूर्ण ही प्रव्रज्या योग की घोषणा करदी थी। स्वयं दीक्षागुरु ज्योतिर्विज्ञ, खगोलज्ञ थे। भाग्येश शुभ ग्रह है। वह भाग्य भवन को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। राज्य भाव में वृहस्पति उच्च का है। वह चन्द्र सौम्य ग्रह द्वारा पूर्ण दृष्ट है। अतः प्रव्रज्या योग बना है। मंगल षष्ठस्थ है। इसके प्रभाव से अविवाह योग व अपरिग्रही योग बना है। वृहस्पति बलाढ्य होने से आध्यात्मिक, नैतिक एवं दार्शनिक योग बना है।

शास्त्रविशारद योग—शनि बलाढ्य है। यह मेधावी, प्रज्ञाचक्षु, स्मरण शक्ति तेज, कुशाग्रबुद्धि, कंठस्थ करने की क्षमता व दक्षता को बढ़ाता है। यही लेखक, कवि, सम्पादक व शास्त्रनिष्णात बनाता है। “खूब रत्नावली” “हीरक हार” आदि अनेकानेक पुस्तकों का सम्पादन किया है। “शनि कुम्भस्थ होने से पढ़ने में होशियार, प्रभावशाली विख्यात होता है।” (प्रतापोदय ज्योतिष विज्ञान)।

सूर्य व केतु—पराक्रम में सूर्य स्थित है। “जिसके पराक्रम में राहु या केतु स्थित हो उसकी भुजा में एक हाथी जितना बल होता है।”^२ पराक्रम में पं. उदय जैन के राहु है। स्वर्गीय दिवाकर जैनाचार्य चौथमलजी महाराज साहब के सिंह राशि का केतु पराक्रम में था। सरदार पटेल के विभिन्न राशि पर पराक्रम में था। “पराक्रम में राहु या केतु जाने से मनुष्य शुचि से रहने वाला राज, बलयुक्त, यशस्वी, कीर्तिवान होता है।”^३ “तृतीये यदा हर्म्यणि जन्मकाले प्रतापाधिकं विक्रमं च तनोति”^४ अर्थात् सूर्य पराक्रम में जाने से महापराक्रमी तेजस्वी बनाता है “पराक्रम में सूर्य जाने से प्रत्युत्पन्नमति होता है।”

संगीतज्ञ योग—चतुर्थभाव में शुक्र शास्त्रज्ञ, संगीतज्ञ तथा व्याख्याता बनाता है। चन्द्र शुक्र साथ होने से कवि योग बनाता है। पुण्यशील, पूतात्मा बनाता है।

कर्क पर वृहस्पति—(विशेष फल) “दशम भावगत वृहस्पति स्वधर्मरत,

१ “प्रतापोदय” संहिता

२ “चमत्कार चिन्तामणि”

३ राहु फलम् खेट कौतुकम्, पृ० २७

४ ज्योतिष कल्पतरु, पृ० १३२

विद्वान्, सिद्ध, उत्तम चारित्रवान्, बहु-मित्र युक्त, यशान्वित कराता है।”^१ “तुला लग्न में कर्क का गुरु पराक्रमी, उच्च पद प्राप्ति, आस्तिक, धर्म प्रसारक, पंडित मंडित बनाता है।”^२ “यदा मुस्तरी कर्कटे वा कमाने, यदा चक्षुः खोरा जमी, वासमाने” तदा “ज्योतिषि क्या पदेषा लिखेगा ? हुआ बालका बादशाही करेगा।”^३ अर्थात् बृहस्पति कर्क या धन राशि का हो, शुक्र धन या सुख भाव में हो तो जातक बादशाह या संतात्मा होगा। (प्रबल राजयोग होने पर जातक राजा या संत बनता है)।

आजानुबाहु—पूज्यश्री के बाहु घुटनों तक पहुँचते हैं। अतः आप “आजानुबाहु” हैं। महात्मा गांधी, भगवान महावीर, नेहरू, पूज्य स्व० आचार्य जयमलजी महाराज आजानुबाहु थे। पृथ्वीराज चौहान भी आजानुबाहु थे। “पृथ्वीराज रासो” के पद्मावती समय खण्ड में “आजानुबाहु भू-लोक इन्दु” का उल्लेख है। आजानुबाहु मानव बहुत प्रसिद्ध राजा या संतात्मा होता है। एतदर्थ पूज्यश्री के श्रमणश्रेष्ठ होने का योग बना है।

शनि में बृहस्पति का अन्तर चल रहा है। संवत् २०३३ विशेष ख्याति बढ़ाने वाला है। २०३३ से मृत्यु पर्यन्त भाग्योदय, यश-कीर्ति में अभिवृद्धि होती रहेगी। स्वास्थ्य बाधक वर्ष ७६-७९ है। विशेष शुभ कर्मोदय से ८० या ८१ वर्ष तक आध्यात्मिक जीवनयापन करते हुए, देह-त्याग करेंगे। समाधिमरण या संधारा ग्रहण करते हुए मरण होगा। धर्मशास्त्रों का श्रवण करते हुए, स्वर्ग लोक पधारेंगे। लक्षाधिक संख्या में अन्तिम समय में श्रावक-श्राविकाएँ विद्यमान रहेंगी।

संतवर ! प्रसन्नवदन, आनन्द सदन, लोकोपकारी, दिवाकर, सत्यनिष्ठ, संयम-निष्ठ, धर्म-कर्मनिष्ठ हैं, निश्चली, लोहपुरुष, जैनागमविज्ञ, कुलदीपक, धर्मदीपक हैं। तुलसीदास जी की यह उक्ति आपके जीवन में सार्थक रही है।

‘तुलसी’ जब जग में भए, जग हँसा और तुम रोए।

ऐसी करणी कर चलो, तुम हँसो और जग रोए ॥

चिरायु भव ! दीर्घायु भव !!

१ “जातक-तत्त्वम्” पृ० ४४५

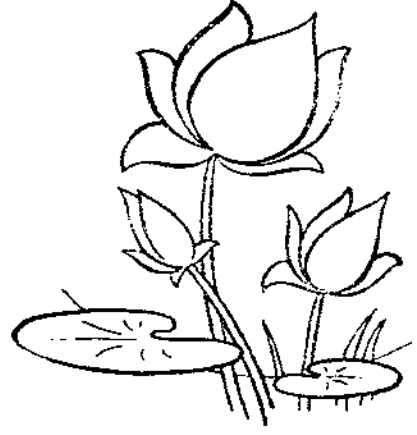
२ “प्रतापोदय” ज्योतिष विज्ञान, चतुर्थ अध्याय, पृ० २४

३ “खेट कौतुकम्” राजयोगाध्याय, श्लोक १४, पृ० ३३

संकलनकर्ता—

□ मुनि नरेन्द्र 'विशारद'

[भेवाङ्गभूषण श्री प्रतापमलजी महाराज
के शिष्य]



भक्ति और भगवान

प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज के वचन और विचार



भगवान की शांत मुख-मुद्रा से शान्ति का वह अनुपम झरना झरता है कि देखने वालों के चित्त में भी शांति का आभास होने लगता है। तीर्थंकरों की प्रशान्त छाया में जो भी पहुँच जाता है; वह देहधारी त्रय-ताप से विमुक्त होकर अद्भुत शान्ति का अनुभव करने लगता है। यहाँ तक कि भगवान के समवसरण में पहुँचकर जन्म-जात बैरी—सिंह-बकरी, कुत्ते-बिल्ली उसी प्रकार अन्य शत्रु-मित्र अपने बैर-भाव को भूलकर एक अनूठे प्रेम-स्नेह सरोवर में अवगाहन करने लगते हैं। यह वास्तविक भाव-भक्ति का प्रभाव ही कहा जायगा कि इस शांत एवं सुन्दर मुख छवि को निहारता ही रहे, तो भी भक्त का मन ऊबता नहीं है।

धर्म रूपी दुकान

जैसे किसी कपड़े वाले की दुकान पर जाएं तो वह तरह-तरह की डिजायनों के रंग-बिरंगे कपड़े दिखाएगा। सर्राफ की दुकान पर आपको तरह-तरह के स्वर्णभूषण देखने को मिलेंगे। वैद्य की दुकान पर हर बीमारी की दवा मिलेगी। हलवाई की दुकान पर तरह-तरह की मिठाइयाँ सजी हुई देखने को मिलेंगी। जैसे संसारी दुकानों पर आपको धरेलू आवश्यकता से सम्बन्धित चीजें प्राप्त

होती हैं। ठीक उसी प्रकार धर्म की दुकान के विषय में भी समझना चाहिए। धर्म की पवित्र दुकान पर प्राणीमात्र के लिए शिवपुरी अर्थात् मोक्ष में जाने के नानाविध साधन प्राप्त होते हैं। इसीलिए धर्म की दुकान को सर्वोत्तम-सर्वोपरि कहकर सभी धर्म-प्रवर्तकों ने धर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अष्ट प्रवचनमाता

जैसे माता अपनी संतति का पालन-पोषण करती है उसी प्रकार यह आठ प्रवचन माताएं चारित्र्य का पालन-पोषण करती हैं। यह समिति गुप्ति रूप अष्ट विध आचार समग्र चारित्र्य का मूलाधार है। जो इनका स्वरूप समझकर ठीक तरह से पालन करता है उसकी भी रक्षा हो जाती है। यह अष्ट प्रवचनमाता आत्मा को दुर्गति में जाने से बचाती है। ईर्या समिति का अर्थ है—साढ़े तीन हाथ जमीन देखकर चलना, भाषा समिति का अर्थ है—सोच-विचार करके निर्दोष वचन बोलना, आहार सम्बन्धी-शुद्धि को एषणा समिति कहते हैं। मल-मूत्र आदि को निर्जीव भूमि में उत्सर्ग करना परिष्ठा-पनिका समिति है। मन-वचन-काया को अप्रशस्त व्यापार से रोकना तीनों प्रकार की गुप्ति है।

श्रद्धा का संबल

शास्त्रों में अनेक विषयों का प्रतिपादन है, जिनके विषय में हमारी बुद्धि और तर्क का प्रवेश हो सकता है और उन पर तर्क से विचार भी किया जाता है। परन्तु कुछ बातें ऐसी भी हैं जो तर्कगोचर नहीं होतीं। उनको आगम के प्रमाण के आधार पर ही स्वीकार करना चाहिए। जो वीतराग और सर्वज्ञ हैं, उनके कथन में कोई दोष नहीं आ सकता। वह मिथ्या नहीं हो सकता। सर्वज्ञ की वाणी जिन्होंने स्मरण (याद) रखी और बाद में सूत्रबद्ध की है। वे महात्मा भी निःस्वार्थी थे। कहिए—क्या मिथ्या वस्तु का प्रचार करने में उनका कोई प्रयोजन था? नहीं। अतएव उनकी प्रामाणिकता में किसी प्रकार का सन्देह न करते हुए श्रद्धा रखनी चाहिए। अनेक विषय ऐसे हैं जिनकी सत्यता को वर्तमानकालीन वैज्ञानिकों ने भी पुष्टि प्रदान की है। कई विषय ऐसे भी हैं जिनके सम्बन्ध में वैज्ञानिक मान्यता भिन्न प्रकार की है परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि विज्ञान ने सत्य की कोई सीमा (रेखा) नहीं खींच दी है। विज्ञान सत्य की खोज में लगा है और आज जो उसे सत्य प्रतीत होता है, कल अधिक खोज करने पर वह असत्य भी हो सकता है। वैज्ञानिक नम्रतापूर्वक अपनी मान्यता बदल लेता है। ऐसी स्थिति में हमें अपनी श्रद्धा से विचलित होकर अपना अहित नहीं करना चाहिए।

जैसा माल : वैसा मूल्य

जिसके पास जैसी वस्तु है वैसी ही वह दूसरों को दे या दिखला सकता है। जो बाटा कम्पनी की दुकान पर जायगा, उसे तरह-तरह के जूते दिखलाये जायेंगे, आप लेना चाहें तो ले लें, अन्यथा उसकी वस्तु उसके पास है। तो जैसे बाटा वाले के पास जूते हैं, वैसे ही क्रोधी के पास क्रोध भड़काने वाले शब्द हैं। तुम उसके शब्द मत ग्रहण करो, उसके उस

शस्त्र का अपने चित्त पर आघात मत होने दो, वह गाली दे तो समझ लो कि—
बेचारा क्रोध से उन्मत्त होकर बेभान हो गया है, दया का पात्र है; क्रोध का नहीं। इस प्रकार सोचकर अगर तुम शांति धारण कर लोगे तो गाली वहीं की वहीं रह जायगी।
ऐसा करोगे तो उसमें और तुममें अन्तर रहेगा; अन्यथा दोनों में क्या अन्तर रह जायगा ?

पंडित की परिभाषा

बहुत से लोग पुस्तकों के कीड़े होते हैं, वे ढेर की ढेर पुस्तकें पढ़ते हैं, और संसार से विदा हो जाते हैं। कवि कहता है कि उन्हें पंडित नहीं माना जा सकता। मैं तो उसी को पंडित मानता हूँ जिसने अढाई अक्षर वाले 'प्रेम' शब्द के मर्म को समझ लिया हो, जिसने प्रेम के अढाई अक्षर नहीं पढ़े हैं, उसने कुछ भी नहीं पढ़ा है। सारी पढ़ाई का सार यही है कि प्राणी-मात्र के प्रति प्रेम और मंत्री का प्रकाश और विकास दो। क्योंकि जैसी अपनी आत्मा है, वैसी ही दूसरों की है। संसार में हजारों पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, उन्हें पढ़कर अगर प्रेम-भाव नहीं जागा तो उनका पढ़ना क्या काम आया ?

पैसे की प्रतिष्ठा

आज के भौतिक युग में पैसा परमात्मा के समान है। पैसा पास में है तो जंगल में भी मंगल है। जिसके पास पैसा नहीं है, उस गृहस्थ की कोई पूछ नहीं है। कहावत है 'साधु के पास पैसा है तो वह कोड़ी का है और गृहस्थ के पास पैसा न हो तो वह कोड़ी का है।' पैसे के बिना सगा भाई भी भाई की तरफ नहीं देखता। यह पैसा ही तो है जो राजा को भी अपने वश में कर लेता है। राजा का कलेजा भी पैसे को देखकर ठण्डा हो जाता है। पैसा न्याय को भी अन्याय में परिणत कर देता है। पारस्परिक वैर-विरोध को उत्पन्न करने का साधन है। जहाँ घनिष्ठ प्रेम है वहाँ भी जब पैसा आड़ा आ जाता है तो मुकदमेबाजी करा देता है। यहाँ तक कि—एक को दूसरे के प्राणों का घातक भी बना देता है।

स्वाध्याय : एक तप

आज समाज में धर्म तत्त्व सम्बन्धी अज्ञानता फैली हुई है। लोग अखबारों द्वारा इधर-उधर की बातों को तो जान लेते हैं, मगर शास्त्रीय विषयों की जानकारी नहीं करते। इस कारण उनका शास्त्रीय ज्ञान नहीं जैसा ही देखा जाता है। आज स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ाने की आवश्यकता है, यह देश बहुत बड़ा है, और साधु-संतों की संख्या परिमित है। उनमें भी सभी प्रकार के साधु हैं। अतएव उन पर निर्भर न रहकर आपको प्रतिदिन स्वयं स्वाध्याय करना चाहिए और अपने ज्ञान की वृद्धि करके उसे आत्म-कल्याण में लगाना यह भी एक तप है।

कथनी करनी में भेद क्यों ?

लोग पुण्य के फल को तो चाहते हैं, मगर जिन प्रशस्त कृत्यों से पुण्य का संचय होता है, उन्हें नहीं करते। दीन-दुखियों की सेवा करने से, उन्हें साता पहुँचाने से और

दान देने से पुण्य की प्राप्ति होती है। पुण्य किये बिना ही जो पुण्य का फल चाहते हैं वे बीज बोये बिना ही फसल चाहते हैं। ऐसा कभी हुआ नहीं, हो भी नहीं सकता। अतएव भाइयो! अगर आप श्रीपालजी की भांति पुण्य का फल चाहते हैं तो उनके समान सत्कृत्य करो, धर्म-क्रिया करो। आपको भी उसी प्रकार का फल प्राप्त होगा।

जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि

जिसकी जैसी दृष्टि होती है, उसे वैसा ही अर्थ प्रतिभासित होने लगता है। इसी कारण शास्त्र में कहा है कि सम्यक्दृष्टि के लिए मिथ्याश्रुत भी सम्यक्श्रुत के रूप में परिणत हो जाता है और इसके विपरीत मिथ्यादृष्टि सम्यक्श्रुत को भी मिथ्यारूप में परिणत कर लेता है। यह बात समझने वाले के सही या गलत दृष्टिबिन्दु पर निर्भर है। अतएव जब कभी किसी शास्त्र को पढ़ें तो इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि—किस नय की अपेक्षा कौन सी बात कही गई है। नय-विपक्ष को समझने में भूल करने वाला पाठक भ्रम में पड़ जाता है और कभी-कभी तत्त्व स्वरूप को विपरीत समझ लेता है।

कथनी का नहीं, करनी का मूल्य है

केवल मात्र साधु का वेष धारण करने से ही वह सच्चा सुख प्राप्त नहीं होगा। वेष के साथ-साथ जीवन में साधुत्व के गुणों का आना भी परमावश्यक है। उन गुणों से ही साधु-वेष की कीमत मानी गई है। यदि किसी ने साधु का वेष तो धारण कर लिया परन्तु जीवन में साधुता नहीं आई तो ऐसा रूप बना लेना इसी प्रकार का सिद्ध होगा जैसा कि कोई एक गधे को हाथी की कीमती झूल यह समझकर ओढ़ा दे कि यह गधा भी हाथी जैसा दिखने लगेगा। परन्तु पहली बात यह है कि यह झूल के भार को सहन भी नहीं कर सकेगा और कदाचित्त कर भी ले तो उस झूल की कदर नहीं कर सकेगा और यहाँ तक कि राख में लोटकर उसे खराब कर देगा। हाथी की झूल तो कोई हाथी के गुणों को धारण करने वाला ही धारण कर सकेगा। अन्यथा दूसरे के लिए आनन्द के बदले दुखदाई ही सिद्ध होगी। हाँ, सुखानुभव तो तभी हो सकेगा जबकि संयम में रमण करते हुए उसे अच्छी तरह निभाया जायगा।

अमूल्य अवसर है

भाई! जो सुअवसर तुमको जीवन सुधारने के लिए मिल गया है यदि उसमें प्रभु-भक्ति और सदाचार का पालन नहीं किया तो प्राप्त सुअवसर के लाभ से वंचित रहोगे और पश्चात्ताप ही अवशिष्ट रह जायगा। जैसे उदाहरण के रूप में कहा जाता है कि जब खेत में फसल पकी हुई थी परन्तु कोई महमान तब तक नहीं आया और जब फसल बाजार में बिक चुकी या नष्ट हो गई तब महमान किसी जमींदार के यहाँ आए। परन्तु ऐसी स्थिति में उन महमानों को वहाँ से क्या प्राप्त हो सकता है? अर्थात् उन्हें वहाँ से भूखे ही रवाना होना पड़ेगा। हाँ, खेत में उन्हें मिट्टी के ढेले तो अवश्यमेव मिल सकते हैं।

यह चुनौती सामने है

आज यदि हम वर्तमान सरकार के कार्य-कलापों की ओर दीर्घ दृष्टि डालें तो हमें जानकारी होगी कि वह हिंसात्मक प्रवृत्ति करके देश को पाप कर्म के बोझ से भारी बना रही है। जिस कांग्रेस की बुनियाद केवल अहिंसा और सत्य के ऊपर डाली गई थी, वही कांग्रेस सरकार आज हिंसा के नए-नए तरीके अपना रही है जबकि महात्मा गांधी ने स्वयं सत्य एवं अहिंसा का जीवन में पूर्ण रूप से पालन करते हुए अपने अनुयायियों को भी उसी राह पर चलने का आदेश दिया था। परन्तु वे ही अनुयायी स्वतंत्र भारत में उच्च पदाधिकारी बन कर अपने राष्ट्रपिता के बताए हुए मंत्र को प्रायः भूल गये हैं। आज की सरकार तो हिंसात्मक व्यापार ही करने लग गई है। जिस पवित्र भारतभूमि के निवासी किसी दिन आध्यात्मिकता का पाठ विदेशी लोगों को पढ़ाते थे, वही आज विदेशों के साथ पशुओं की जवान, चमड़ा और मांस का व्यापार करने पर उतारू हो गये हैं। आज लाखों बन्दर पकड़वाकर अमेरिका आदि विदेशों में भेजे जा रहे हैं, जहाँ वे मूक पशु दयनीय दशा में तरह-तरह के प्रयोगों में काम आने के बाद मरण को प्राप्त हो जाते हैं। तो आज पूर्व समय की अपेक्षा विशेष रूप से हिंसा बढ़ चुकी है। परन्तु याद रखना, कहीं यही हिंसात्मक प्रवृत्ति भारत के भाग्य को समुज्ज्वल बनाने के वजाय रसातल की ओर न पहुँचा दें।

गुणग्राही बनें

मैं आपसे यही अभिलाषा करता हूँ कि जहाँ कहीं और जिस किसी वेष में भी गुणवान पुरुष मिल जायें तो मैं उनके दर्शन करके प्रेम से विह्वल हो उठूँ। मैं उनकी यथोचित सेवा कर सकूँ। उनकी सेवा करते हुए मेरे मन में अत्यधिक सुख का अनुभव होने लगे। कहिए! प्रार्थना तो भगवान से भक्त इस प्रकार की करता है परन्तु उसी भाव को जब अमली रूप देने का वक्त आता है तो वह अपनी भावना को भी भूल जाता है और साकार रूप देने में उसके पैर लड़खड़ाने लगते हैं। ऐसी परिस्थिति में उसके द्वारा की गई दैनिक प्रार्थना का क्या महत्त्व रहा? कभी-कभी ऐसा होता है कि—किसी भक्त के हृदय में राग-भाव के कारण अपने माने हुए गुणी पुरुष के प्रति तो प्रेम उत्पन्न हो जाता है और दूसरे सम्प्रदाय के उससे भी अधिक गुणी महापुरुष के प्रति द्वेष-भाव जाग्रत हो जाता है। यद्यपि उस भावना के अनुसार तो सभी सम्प्रदायों के गुणी पुरुषों के प्रति समान भाव, समान प्रेम और समादर की वृत्ति ही रहनी चाहिए।

यह मानसिक बोध

देखो! जवासा एक प्रकार का घास होता है। वह काले-काले पानी भरे बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर सहमने लगता है। जब वर्षा होती है तो वह सूख जाता है। परन्तु इसके विपरीत जब ग्रीष्म ऋतु की कड़कड़ाती धूप पड़ती है तो वह हरा-भरा हो जाता है। उस जवासा के समान भी कई मनुष्य हैं जो गुणी पुरुषों को देखकर प्रसन्न होने के वजाय जलने लगते हैं। यह ईर्ष्याग्नि मानव को जिन्दा रहते हुए भी जलाकर भस्म

कर देती है। ऐसे ईर्ष्यालु व्यक्ति अपना आत्मा को उन्नति के वजाय अवनति की ओर ले जाते हैं।

समय का मूल्य समझें

यदि आप वकीलों के पास या डाक्टरों के पास जायेंगे और उनसे किसी विषय पर परामर्श लेना चाहेंगे तो आपको बात करने की भी फीस देनी पड़ेगी। बिना फीस लिए वे आप से बात नहीं करेंगे। तो दोनों ही बात करने की फीस लेते हैं। यदि आपके पास फीस देने को पैसा नहीं है तो आपसे बात करने की उनको फुरसत भी नहीं है। तो जिनके पास कार्य की अधिकता है, उनके पास समय की भी कीमत है और जो बेकार हैं उनके लिए समय की कोई कीमत नहीं है। ऐसे बेकार आदमी स्वयं भी समय की कद्र (कीमत) नहीं करते और जो कार्य में संलग्न हैं, उन्हें भी बाधा पहुँचाते हैं।

भावों की महत्ता है

आपको मालूम है कि माता का हृदय भी अपनी संतान के प्रति कितनी वात्सल्यता लिए हुए होता है। वह अंतरंग हृदय से बच्चे को प्यार करती है। माँ की ममता जगत्प्रसिद्ध है। वह अपनी संतान के सुख के लिए खाना, पीना, सोना, बैठना आदि सब कुछ छोड़ देती है और मौका आने पर अपने सर्वस्व का त्याग करने में भी नहीं सकुचाती। परन्तु इतना ममत्व होने पर भी जब कभी बच्चा बीमार हो जाता है और डाक्टर या वैद्य उसको निरोग करने के लिए कड़वी दवा देते हैं जिसे बच्चा लेना पसंद नहीं करता। वह दवा नहीं लेने के लिए अपने हाथ-पैर उछालता है, मारता है और दवा भी ढुलका देता है परन्तु उस समय माता उसके हाथ-पैर पकड़ लेती है और जबर्दस्ती उसके मुँह में दवा उड़ेल देती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बच्चा दवा लेने को मुँह नहीं खोलता है तो वह उसके मुँह में बेलन या चम्मच डालकर भी दवा उड़ेल देती है। भाई! माता का हृदय इतना कोमल होने पर भी उस समय इतना कठोर बन जाता है कि कड़वी दवा का सेवन कराकर ही वह चैन लेती है। तो इतना सब कुछ वह किसलिए करती है ?

साधु नहीं, वे स्वादु हैं

आज के युग में आपको सच्चे गुरुओं के दर्शन मुश्किल से प्राप्त होंगे क्योंकि— 'आज के साधु, साधु नहीं रहकर स्वादु' बन गये हैं। आज कई लोगों ने तो अज्ञाभाव के कारण या सरकारी कानून की गिरफ्त से अपने आपको बचाने के लिए साधुवेश धारण कर लिया है। तो इस प्रकार के वैराग्यहीन वेषधारी साधु अपने आपको तो घोखा देते ही हैं परन्तु अपने काले कारनामों के द्वारा समाज की निगाहों में भी कलंकित और दोषी साबित हो रहे हैं। परन्तु वास्तव में देखा जाय तो वे जितने अपराधी हैं उससे कहीं अधिक अपराधी शिष्य-लोलुपी गुरु हैं जो बिना परीक्षा किए ही ऐसे लम्पटी, विषयी और दुराचारियों को शिष्यत्व पद देकर अपना अहोभाग्य समझते हैं किन्तु जब

उसी विषवृक्ष के जहरीले फल लगते हैं तो उन गुरुओं को भी समाज में अपमानित होकर अपने किए पर पश्चात्ताप करना पड़ता है।

अहिंसा वीरत्व का प्रतीक है

देखो ! आज तक अहिंसा भगवती ने संसार के प्राणीमात्र की रक्षा की है। अहिंसा वीरों का शस्त्र है, न कि कायरों का। कायर पुरुष अहिंसा को धारण ही नहीं कर सकता। यह भगवती अहिंसा प्राणियों को दुर्गति से निकाल कर सद्गति में ले जाती है। इसका पालन करते हुए प्रत्येक आत्मा इस लोक तथा परलोक में सुखी बन जाती है। तो अहिंसा दुःख से उन्मुक्त करने वाली है, न कि दुःख के सागर में डालने वाली और जो कुछ प्राणियों को संसार में दुःख की प्राप्ति है, वह केवल पाप के कारण ही होती है। मनुष्य जैसे-जैसे कर्म करता है उसी के अनुसार उसे सुख या दुःख की प्राप्ति होती है तो अहिंसा ने मनुष्य को कायर नहीं बनाया किन्तु उसके पाप ने ही उसको बुजदिल बना दिया है। और जो तुम इस प्रकार कुतर्क यहाँ करते हो तो यह तर्क यहाँ तो चल जायगा, परन्तु जब तुम यहाँ से मरकर नरक में जाकर उत्पन्न होओगे और नेरिये के रूप में जब तुम अपने पाप-कर्मों का फल भोगने के लिए वहाँ के परमाधर्मी देवों के सामने उपस्थित होओगे तब तुम्हारा एक भी तर्क नहीं चलने वाला है। इसीलिए कुतर्क में अपना और दूसरों का समय बरबाद नहीं करते हुए मानव को अच्छी बात में ही तर्क उपस्थित करना चाहिए।

कमलवत् निर्लेप

समकितधारी आत्मा का यही लक्षण है कि—वह अपने कुटुम्ब की प्रतिपालना करते हुए भी अन्तर्हृदय से सबसे पृथक् रहता है। जैसे कोई घायमाता किसी सद्-गृहस्थ के बच्चे को अपने स्तन का पान कराती हुई और सब प्रकार से लाड़ लड़ाती हुई भी मन में यही विचार रखती है कि यह पुत्र मेरा नहीं है और न मैं इसकी माता हूँ तो ठीक इसी प्रकार सम्यक्त्वी जीव भी संसार के सारे कर्तव्य करते हुए भी यही विचार करता है कि मैं तो सिर्फ अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ। न तो ये पदार्थ मेरे हैं और न ही मैं इनका हूँ। इस प्रकार वह वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझकर अपने जीवन को विशुद्ध रूप में व्यतीत करता है।

आत्म-विजय की ओर बढ़ें

एक मनुष्य ऐसा है जो अपनी आत्मा के शत्रुओं के साथ युद्ध करता है और उसका यह आध्यात्मिक युद्ध बाह्य युद्ध से कहीं अधिक बलशाली है। बाह्य शत्रुओं पर प्राप्त की जाने वाली विजय अस्थायी है। जब उससे भी प्रबल युद्ध सामने आ जाता है तो उसकी विजय पराजय के रूप में परिणत हो जाती है। ऐसा न हुआ तो भी उस विजेता को एक दिन मरण-शरण होना पड़ता है। उस समय प्राप्त समस्त साम्राज्य और वैभव को ही त्याग कर उसे परलोक के मार्ग पर जाना पड़ता है। किन्तु

आत्मिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाली विजय में ऐसी बुराई नहीं। वह शाश्वत और सच्ची विजय है। अतएव ज्ञानीजन कहते हैं—भाई ! तू युद्ध करना चाहता है तो आत्मा के साथ ही कर, बाहरी युद्ध से तेरा क्या भला होने वाला है ? अरे, अपनी आत्मा से ही आत्मा को जीतकर सुखी बन। यही सुख-प्राप्ति का राजमार्ग है, आत्म-जय ही सच्चा पथ है।

सम्यक्त्व का महत्त्व है

सम्यक्दर्शन अर्थात् सच्ची श्रद्धा के बिना कितना भी ज्ञान और कितनी भी उग्र किया क्यों न हो, सब मिथ्या है। संसार परिभ्रमण का कारण है। सम्यक्दर्शन ही ज्ञान और चारित्र्य को प्रशस्त एवं मोक्षोपयोगी बनाता है। इस प्रकार सम्यक्दर्शन के बिना काम नहीं चल सकता और ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सम्यक्ज्ञान प्राप्त होने पर अज्ञान भाग जाता है। ज्ञान के द्वारा ही जीव को हिताहित का, कृत्य-अकृत्य का और भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक होता है।

मिथ्या धारणाओं का अन्त आवश्यक है

पर्युषण पर्व मानव को संसार के समस्त भयों से मुक्त करने के लिए ही आता है। उसकी यही प्रधान प्रेरणा है कि शुद्ध आत्मस्वरूप की उपलब्धि करो जिससे कोई भय शेष न रह जाए। जब तक आप पर-पदार्थों को अपना समझते रहेंगे और उन्हीं को शरणभूत एवं सुखदाता मानते रहेंगे, तब तक भयों का अन्त नहीं आ सकता। भय का अन्त करने के लिए मिथ्या धारणाओं का अन्त करना आवश्यक है। मिथ्या धारणा का अन्त महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को सुनने-समझने और उनका गहरा मनन करने से सहज ही आ सकता है। इसी कारण पर्युषण पर्व के अवसर पर उन्हें सुनाने की प्रणाली प्रचलित हुई है।

प्रतिज्ञा-भंग, कायरता का प्रतीक

कई भाई-बहिन भावावेश में आकर साधु-साध्वियों के समक्ष प्रतिज्ञा तो ले लेते हैं परन्तु जब पालन करने में थोड़ी-सी कठिनाई उपस्थित होती है या किसी प्रकार का प्रलोभन सामने होता है, तो अपने मन पर काबू नहीं कर पाते और प्रतिज्ञा भंग कर डालते हैं। परन्तु आपको जानना और याद रखना चाहिए कि प्रतिज्ञा लेने के साथ आप पर बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। अतएव प्रतिज्ञा ग्रहण करने से पूर्व ही अपनी शक्ति को पूर्णरूप से तोल लेना चाहिए और यह निश्चय कर लेना चाहिए कि प्रतिज्ञा का भली-भाँति पालन मुझसे हो सकेगा, तत्पश्चात् ही उसी प्रकार अंगीकार करना चाहिए। पूर्ण विश्वास न हो तो अभ्यास के पश्चात् उसे प्रतिज्ञारूप में स्वीकार करना चाहिए।





सफलता की कुंजी—आत्म-विश्वास

धर्मोद्योत करते हुए एकदा प्रवर्तक-प्रवर श्री हीरालालजी महाराज का श्रीमज्जेनाचार्य श्रीलालजी महाराज की जन्म-स्थली टोंक, राजस्थान में पदार्पण हुआ। स्थानीय श्रमणोपासक मंडली धर्माराधना, जप-तप एवं संत-भक्ति में काफी आगे रही है। फलस्वरूप संतवृन्द को कुछ दिन रुकना ही पड़ा।

प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज संस्मरणों के प्रकाश में

प्रस्थान के अवसर पर सहविहारी मुनि बोले—“गुरुदेव ! सुना जाता है कि अगले गाँव में जैन परिवार का एक भी घर नहीं है और इतर जन भी संत-जीवन के प्रेमी नहीं हैं। इसलिए आहार-पानी की दिक्कत सामने है। यहाँ से कुछ सामग्री लेकर चलें तो अच्छा है।”

प्रवर्तक श्री ने फरमाया—“संतो ! सफलता की कुंजी आत्म-विश्वास है। आत्म-विश्वास पर ही तो सारा जीवन सौंपा है। मुझे आत्म-विश्वास है, अगले गाँव में 'असण-पाण' की कोई दुविधा नहीं पड़ेगी ! अगर तुम्हें भरोसा नहीं तो मेरे विश्वास पर चले चलो। मैं सभी की जिम्मेदारी लेता हूँ। किसी को भूखा नहीं रखूंगा। जल्दी आगे बढ़ें, मंजिल पुकार रही है।”

गंतव्य स्थान पर पहुँचे । एक जीर्ण-शीर्ण राम मंदिर में मुनिवृन्द विराज गये । ईर्यापथिक क्रिया का चिन्तन कर सभी मुनि निश्चित होकर बैठ गये । पारस्परिक संत कानाफूसी करने लगे—बड़े महाराज कभी-कभी बड़ी जल्दबाजी कर देते हैं, इस टूटे-फूटे गाँव में आहार-पानी कौन देगा ? सारा दिन यूँ ही बिताना पड़ेगा और संध्या को फिर दो-तीन मील का विहार करना है । खैर !

स्वयं महाराजश्री पात्र लेकर घूमते-घामते एक गली में पहुँचे । वहाँ एक विप्रबन्धु अन्य के साथ बातचीत कर रहा था । महाराजश्री को आते देखकर, नमस्कार कर बोला—‘कल मेरे यहाँ जाति का भोजन था । आपकी कृपा से काफी पूड़ियाँ और मिष्ठान्न बच गया है । मेरा सौभाग्य है कि आप भी ठीक समय पर यहाँ पधार गये । दोनों समय को पूरा भोजन मेरे यहाँ से ही ले पधारें । बस, अचार-पूड़ियाँ और पकवान से पूरे पात्र भर दिये ।

महाराजश्री आहार लेकर स्थान तक पहुँच कर बोले—आत्म-विश्वास कितनी बड़ी चीज है । साधक जीवन का आत्म-विश्वास महान् सम्बल है । आहार-पानी कर सभी मुनियों ने आगे कदम बढ़ाये ।

उचित समाधान

एकदा प्रवर्तकप्रवर श्री हीरालालजी महाराज अपने शिष्य परिवार के साथ छोटी-सादडी को पावन कर नीमच छावनी पधारे । धार्मिक प्रवृत्तियाँ चालू होना स्वाभाविक था । कुछ इतर सामाजिक तत्त्व एकत्रित होकर महाराजश्री के सान्निध्य में पहुँचे । बोले—“ऐसे जैन साधुओं के व्याख्यान बड़े रोचक होते हैं । पर हमने सुना है कि—आप लोग स्नान नहीं करते हैं । मँले-कुचले-वासी रहते हैं । क्या कारण है ? हम जानना चाहते हैं ?”

प्रत्युत्तर के तौर पर प्रवर्तक श्री ने फरमाया कि—“बात सत्य है । हम लोग अर्थात् जैन साधु किसी नदी-नाले-सरोवर, कुए, बावड़ी पर जाकर कच्चे जल से स्नान नहीं करते हैं । फिर भी आप अपने शरीर की ओर देखें और मेरे शरीर की ओर भी । जबकि आप लोग हमेशा बाल्टिर्या बन्द पानी से नहाते होंगे । मतलब यह कि शरीर तो स्वभाव से ही अपवित्र है । गंगा और यमुना की जलधाराओं से सैकड़ों बार इसे स्नान कराने पर भी यह पवित्र नहीं होने का । जिसका निर्माण ही अपवित्र पदार्थों से हुआ है वह पवित्र कैसे होगा ? बल्कि पवित्र वस्तु को भी यह अपवित्र बना देता है ।

हाँ तो, जैन श्रमण-श्रमणी वर्ग का प्रमुख लक्ष्य देह-शुद्धि नहीं है, आत्म-शुद्धि है । अंतरात्मा की शुद्धि ही सिद्धि को प्राप्त करवाती है । आत्मा की शुद्धि ब्रह्मचर्य रूपी सरोवर में स्नान करने में होती है । जैन साधु पूर्णरूपेण ब्रह्मचारी होते हैं । इसी दिव्य शक्ति के कारण ही हमारा शरीर सदैव पवित्र और ताजगी पूर्ण रहता है ।

प्रश्नकर्ता—माफ कीजिएगा । हमारे कुछ मित्रों ने हमें कहा कि जैनसाधु

बड़े गन्दे रहते हैं। इसलिए हमारे मन में जैन साधुओं के प्रति भ्रान्तिर्या थीं। बहुत दिनों से पूछने की इच्छा रही, पर आप जैसे साधुओं का समागम नहीं मिला। आज हमने आपकी शांत सूरत देखी तो आपसे पूछने के लिए हमारा साहस हो गया। आपने ठीक कहा—शरीर कभी भी पवित्र होता ही नहीं है। ब्रह्मचर्य रूपी पानी में स्नान करने से ही आत्मा की शुद्धि होती है। यही वास्तविक शुद्धि है। हमें क्षमा कीजियेगा। हमने आपका काफी समय लिया।

ऐसा बोल कर वे चलते बने।

साधुत्व का परिचय

इन दिनों बंगाल प्रांत के वासियों पर अपेक्षाकृत अनार्य संस्कारों का अधिक प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। वस्तुतः दुष्परिणाम यह हुआ कि आर्य-संस्कृति वहाँ से लुप्त होती गई और व्यसन, फैशन, मद्य, मांस का प्रचार अधिक होता गया। इस कारण यहाँ के निवासी जैनधर्म एवं जैन मुनियों से सर्वथा अनभिज्ञ रहे और न उन्हें जैन मुनियों का सम्पर्क ही मिला। ऐसी स्थिति में भ्रान्तिवशात् वहाँ के निवासी यदि जैन भिक्षु को चोर-लुटेरे और पाकिस्तान-चीन के गुप्तचर मान लें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

उन दिनों ऐसी ही घटना प्र० श्री हीरालालजी महाराज के साथ घटित हुई। साथ में न भक्तों का झमेला था और न कार-मोटरो की गड़गड़ाहट ही। बिल्कुल सीधे-सादे विहार करते हुए आपश्री अजीमगंज से कलकत्ते की ओर पधार रहे थे।

बीच मार्ग में एक अनभिज्ञ थानेदार अपने कुछेक साथियों के साथ सामने आ खड़े हुए—“तुम लोग पाकिस्तान के गुप्तचर मालूम पड़ रहे हो, तभी तो मुह बँधे हुए हैं। जरा ठहरो! अगर आगे बढ़ने की चेष्टा की तो साथ में जास्ती की जायगी। इधर-उधर यह क्या बाँध रखा है?”

“हम जैन साधु पैदल ही परिभ्रमण करते हैं। अब कलकत्ते की ओर जा रहे हैं।” मुस्कान भरते महाराजश्री ने कहा।

“साधु-बादु हम कुछ नहीं जानते; साधुवेश में भी बहुत से देशद्रोही घूमा करते हैं। साधु हो तो कुछ चमत्कार…………?”

“पाखंडी जन चमत्कार बताकर भद्र जनों को ठगा करते हैं, साधुजन नहीं।” पुनः महाराजश्री ने कहा।

“तुम साधु हो, इसका प्रमाण-पत्र तुम्हारे पास है क्या?” सारे उपकरणों की तलाशी होने लगी। संयोगवशात् बंगाल के गवर्नर एस. सी. मुकर्जी हाथ जोड़कर मुनिमण्डल के समक्ष वार्तालाप करते हुए का एक संयुक्त फोटू निकल आया। मन-ही-

मन थानेदार तो पानी-पानी हो गया। सोचने लगा—वास्तव में ये महान् संत हैं। नासमझी से हमने इनको रोका और सताया।

पैरों में गिर पड़ा। “स्वामीजी ! अपराध के लिए क्षमा करें। आपको जरा भी क्रोध नहीं आया। हमारे पास ऊपर से आदेश आया हुआ है। इन दिनों पाकिस्तान के बहुत से द्रोही-तत्त्व आया-जाया करते हैं। इसलिए हमें सतर्क रहना पड़ता है।”

मुस्कान भरते हुए महाराजश्री ने कहा—“मुझे प्रसन्नता है। आपने अपने कर्तव्य का पालन किया है। देश के प्रति आपने वफादारी बताई है। इसमें बुरा मानने की कोई जरूरत नहीं है ? ‘जैनमुनि’ परिचय का एक पेंपलेट देकर मुनि आगे बढ़ गये। थानेदार बहुत देर तक नंगे पैर, नंगे सिर एवं निराडम्बरी साधु-जीवन की ओर अभिवादन करता ही रहा, जहाँ तक वे साधक ओझल नहीं हुए।

उपदेश का प्रभाव

यह घटना ३०-४-५३ की है। उन दिनों डालमिया नगर में पर्याप्त धर्म-प्रभावना कर प्रवर्तकश्री आदि मुनिमण्डल के चारु-चरण-बरकट्टा गाँव की ओर आगे बढ़ रहे थे। मार्ग के बीच सड़क के किनारे ही उबलते हुए जल से भरा एक कुण्ड देखा, उसका नाम सूर्य कुण्ड कहा जाता है।

इसी कुण्ड पर संयोगवश गहलोत राजपूतों की एक जाति-सुधार सभा हो रही थी। इस विशाल सभा में उन्हीं जाति वाले सज्जनों के तद्विषयक जोशीले भाषण हो रहे थे। चलते-चलते मुनिसंघ भी वहाँ आ पहुँचा। जैन मुनियों के शुभागमन की सूचना मिलते ही वे लोग सेवा में आये और प्रवचन के लिए आग्रह कर बैठे। सभासदों के आग्रह से प्रवर्तकश्री ने भी सारगर्भित प्रवचन फरमाया एवं उनकी इस प्रवृत्ति की सराहना की।

प्रवर्तकश्री ने उपदेश में जोर देते हुए फरमाया कि “समाज-सुधार तभी सम्भव है जब आप सभी मद्य-मांसादि का बिल्कुल त्याग करें। तभी आपके समाज की उन्नति हो सकती है, तभी जीवन का स्तर ऊँचा उठ सकता है और एकत्रित होना भी तभी सार्थक है।”

यह उपदेश का ही प्रभाव था कि उन तामसी प्रवृत्ति वाले पुरुषों की भी बुद्धि फलट गई और वे एक स्वर से बोल उठे—“हमें प्रण दीजिए, हम आज से मद्य और मांस न खायेंगे और न पीयेंगे।”

तत्काल ही उपस्थित सज्जनों ने मद्य-मांसादि कुटेवों का त्याग कर दिया एवं सम्मिलित रूप से एक लिखित प्रतिज्ञा-पत्र दिया। वह इस प्रकार है—

आज ३०-४-५३ को हमारी गहलोत राजपूतों की जाति-सुधार की विशाल सभा हुई। जिसमें जैन मुनि श्री प्रतापमलजी महाराज, श्री हीरालालजी महाराज आदि जैन मुनि उपस्थित हुए और जैन मुनि श्री हीरालालजी महाराज का मद्य-मांस

निषेध पर भाषण हुआ। जिसको सारी सभा ने मान लिया और महाराज महात्माजी को कोटिशः धन्यवाद दिया।

सूर्यकुंड
बरकट्टा
जिला—हजारीबाग

सही—
—मास्टर बुधनसिंह महलोत
प्रेमचन्द सिंह गौरहर

मिथ्या मान्यता का पर्दाफाश किया

रावलपिंडी (पंजाब) के आस-पास के क्षेत्रों में घर्म प्रभावना करके एकदा प्रवर्तकश्री हीरालालजी महाराज अपने साथी मुनियों के साथ विहार करते हुए 'गुजरखान' शहर में पधारे। यहाँ अनेकों जैनेतर जिज्ञासु प्रवर्तकश्री के सान्निध्य में उपस्थित होकर प्रश्न पूछ बैठे—

“हमने सुना है कि जैनधर्म ईश्वर को सृष्टिकर्ता नहीं मानता है। तो बताइये कि इस ब्रह्माण्ड का बनाने वाला कौन है? क्या इतनी विराट् सृष्टि ऐसे ही पंदा हो गई? संचालक कोई है कि नहीं? हम सम्यक् समाधान चाहते हैं।”

समाधान के तौर पर प्रवर्तकश्री ने फरमाया—सुनिये! जैन-परम्परा आज से नहीं, अनादि काल से ईश्वर को सृष्टिकर्ता नहीं मानती है। कारण यह है कि ईश्वर को कर्ता मान लेने पर देहधारी बेचारा सदियों क्या, एक लम्बे काल तक ईश्वरीय पराधीनता के घेरे में दम तोड़ता रहेगा। देहधारी के भाग्य का निर्माता ईश्वर रहा, वह इच्छानुसार प्राणी के भाग्य को बनाता बिगाड़ता-रहेगा। फिर मानव की दुष्कर साधना-आराधना व्यर्थ ही रही। क्योंकि प्राणी पहले ही ईश्वर के हाथों का खिलौना बन चुका है।

ऐसा मानना निरा भ्रम एवं कपोल-कल्पित एक मान्यता मात्र है। प्राणी स्वयं अपने भाग्य का सृष्टा और विधाता है। ईश्वर केवल मार्गदर्शक होता है, न कि प्राणी के भाग्य को बनाने वाला। सृष्टि अनादिकाल से गतिशील है। न किसी ने प्रकृति का सर्जन किया और न किसी ने विनाश। समयानुसार सहज-भाव में कुछ अंशों में विकास और विनाश के दृश्य अवश्य उपस्थित होते हैं।

थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि ईश्वर ने सृष्टि बनाई है तो कहाँ बैठकर बनाई? आधार के बिना आधेय टिक नहीं सकता है। केवल ईश्वरीय शुभ-संकल्प मात्र से सृष्टि का प्रादुर्भाव हो गया—ऐसा मानना भी सदोष है। क्योंकि सभी देख रहे हैं—संसार में एक चोर, एक साहूकार; एक दुखी, एक सुखी और एक अमीर, एक गरीब—इतनी विषमता-विचित्रता क्यों? क्या सृष्टिकर्ता भगवान समदृष्टि नहीं था? अगर समदृष्टि होता तो सृष्टि को समान बनाता और विषमदृष्टि वाला मानते हैं तो वह कभी भगवान नहीं हो सकता।

इसलिए सभी प्राणी कर्मानुसार फल पाते हैं। इसमें ईश्वरीय शक्ति का कोई हस्तक्षेप नहीं है। चर्चा काफी लम्बी हो गई है। क्या कुछ समझ में आया?

सभी श्रोता तन्मयतापूर्वक चर्चा श्रवण कर बोले—“आपका फरमाना यथार्थ लगता है। कर्मानुसार ही प्राणी सुख किंवा दुख पाता है। ईश्वर को कर्ता मानने की अपेक्षा मार्गदर्शक मानना अधिक उचित लगता है।”

सभी ने नतमस्तक होकर घर की राह ली।

आगमिक प्रश्नोत्तर

उक्त घटना सं० २००२ से सम्बन्धित है। महाराजश्री अपने शिष्य परिवार के साथ राजकोट (गुजरात) में धर्म-शासन की अद्वितीय प्रभावना फैला रहे थे। उन दिनों बड़ी सादड़ी (मेवाड़) में पूज्यश्री मन्नालालजी महाराज के सम्प्रदाय का प्रवर्तक पद आप (श्री हीरालाल जी महाराज) श्री को प्रदान किया गया। जब यह सूचना राजकोट श्रीसंघ को तार द्वारा प्राप्त हुई तो सकल संघ के हर्ष का पार नहीं रहा। आपश्री का अभिनन्दन कर स्थानीय संघ अपने आप में गौरवान्वित हुआ।

यहीं मोरवी से हीराचन्द लक्ष्मीचन्द कापडिया के जैनदर्शन सम्बन्धी कुछ लिखित प्रश्न आये। जिनका लिखित प्रत्युत्तर दिया गया। उक्त प्रत्युत्तरों से वे प्रवर्तक श्री के शास्त्रीय ज्ञान से बहुत प्रभावित हुए। यहाँ प्रश्न और उत्तर दोनों सर्व साधारण के बोधार्थ देना उचित ही रहेगा—

प्रश्न— (१) “गणधरों के नाम सप्रमाण आगमों में से बतलावें ?”

उत्तर— १४५२ गणधर इस चौबीसी में हुए हैं। उनके नाम आगमों में नहीं मिलते हैं।

प्रश्न— (२) जीवात्मा को शुक्लपक्षी कब से हुआ मानना ?

उत्तर— अनादि मिथ्यादृष्टि जीवात्मा जब प्रथम बार सम्यक्त्व का स्पर्श करता है, तब……।

प्रश्न— (३) ऐसी कौनसी आत्मा हुई है, जो गृहस्थाश्रम में और साधु अवस्था में बराबर वर्ष जीवित रही ?

उत्तर— भगवान महावीर के पाँचवें गणधर सुधर्मा स्वामी पचास वर्ष संसारावस्था में रहे और उतने ही वर्ष संयम पर्याय में।

प्रश्न— (४) २७ वर्ष का संयम किसने पाला ? आगम का प्रमाण चाहिए।

उत्तर— अंतकृद्शांगसूत्र में सुपईदु गाथापति २७ वर्ष का संयम पाल कर सिद्ध-बुद्ध हुए हैं।

प्रश्न— (५) कालिकसूत्र और उत्कालिकसूत्र क्यों माना जाय ?

उत्तर— कालिकसूत्रों के रचयिता चार ज्ञान के स्वामी गणधर होते हैं और उत्कालिकसूत्रों के प्रणेता बहुसूत्री आचार्य आदि होते हैं। विशेष जानकारि नंदीसूत्र में देखिए।

प्रश्न— (६) कौन से तीर्थंकर का और कौन से गणधर का आयुष्य समान था ?

उत्तर— चरम तीर्थंकर महावीर और अचलभ्राता गणधर का आयुष्य बराबर ७२ वर्ष का था । समवायांगसूत्र में इसका उल्लेख मिलता है ।

प्रश्न— (७) भगवान महावीरस्वामी को आहार बहराकर कितने जीवों ने संसार परित किया ? नामोल्लेख करें ।

उत्तर— भगवतीसूत्र, शतक १५वें में जब भगवान महावीर का द्वितीय चातुर्मास बीत रहा था । उस चौमासे में भगवान महावीर ने महीने-महीने के चार मासखमण किये । पहला पारणा विजय श्रेष्ठी के द्वारा, दूसरा पारणा सुदर्शन श्रेष्ठी के हाथों से, तीसरा पारणा आनन्द गाथापति के हाथों से और चौथा मासखमण का पारणा 'गोबहुल' विप्र के हाथों से सम्पन्न हुआ । उक्त चारों पुण्यात्माओं ने संसार परित किया । जिनका आगम में उल्लेख है ।

प्रश्न— (८) वर्तमानकाल के चौबीस तीर्थंकर कौनसी तपस्या करके दीक्षित बने ? उल्लेख करें ।

उत्तर— पाँचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ भगवान ने एकासन करके, बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य भगवान ने उपवास करके, उन्नीसवें मल्लिनाथ और तेईसवें पार्श्वनाथ प्रभु अट्टम तप करके और शेष तीर्थंकरों ने बेले की तपाराधना के अन्तर्गत दीक्षाव्रत स्वीकार किये हैं ।

प्रश्न— (९) वेदनीय कर्म की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की क्यों है ?

उत्तर— सकषायी आत्माओं को सातावेदनीय का बंधन जघन्य १२ मुहूर्त का होता है और अकषायी आत्माओं को सातावेदनीय का जघन्य बंधन दो समय का होता है । इस कारण से वेदनीय कर्म की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की कही है ।

आश्चर्यकारी, किन्तु सत्य

विक्रम संवत् २००९ का चातुर्मास आपश्री का कानपुर था । स्थानीय संघ में अत्यधिक उत्साह की लहर परिव्याप्त थी । आनन्द के क्षणों में तीन मास बीते और चौथे मास ने प्रवेश किया ।

कार्तिक शुक्ला ९वीं की रात्रि के समय महाराजश्री एक शयनकक्ष में निद्राधीन थे । उस समय एक शुभ स्वप्न दृष्टिगोचर हुआ ।

अनुपम कान्ति-द्युति-युक्त तीसरे देवलोक का एक देव महाराजश्री के चरण-कमलों में खड़ा है ।

तब महाराजश्री ने पूछा—“आपका इतना तेज ! आप कौन हैं ? अपना परिचय दें ।”

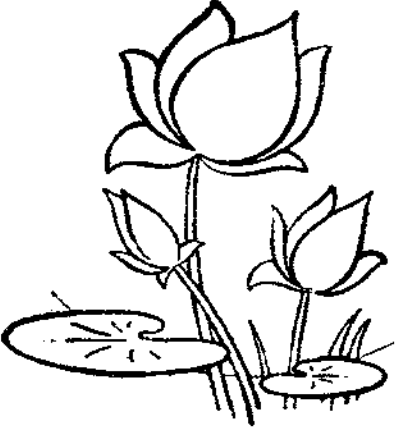
“भंते ! मैं तीसरे देवलोक का रहने वाला देव हूँ । केवल दर्शनों के लिए अवतरित हुआ हूँ ।”

“बहुत प्रसन्नता की बात है । अच्छा बताओ कि मेरे कितने भव बाकी हैं ?” महाराजश्री ने पूछा ।

“भंते ! सम्पूर्ण भवों का व्योरा तो सर्वज्ञ ही बता सकते हैं । किन्तु मैं आत्म-विश्वास के साथ कहता हूँ कि आपके बहुत थोड़े भव बाकी हैं ।”

मुनि-चरणों में नतमस्तक होकर देव अदृश्य हो गया । फिर महाराजश्री की निद्रा भंग हुई ।





मुनिद्वय का संयुक्त अभिनन्दन

गुरुजनों के-





आशीर्वचन

मालवरत्न ज्योतिर्विद स्थविर पद-विभूषित
गुरुदेव श्रीकस्तूरचन्दजी

भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित पावन त्रिवेणी स्वरूप (अहिंसा-अनेकान्त-अपरिग्रह) सिद्धान्तों का पूरी निष्ठा के साथ प्रचार-प्रसार करते हुए आगम विशारद प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज साहब अपने समुज्ज्वल संयम साधना के पचपनवें वर्ष में मंगल-प्रवेश कर रहे हैं।

आपकी आध्यात्मिक साधना स्व-पर के लिए कल्याणस्वरूप सिद्ध हुई। भूले-भटके हजारों-लाखों नर-नारियों के लिए मार्गदर्शन बनी एवं उन्हें जीवनोत्थान की सबल प्रेरणा भी मिली।

सरलता, ऋजुता, सहिष्णुता, दयालुता, उदारता, स्पष्टवादिता एवं मिलनसारिता आदि गुण-सौरभ से आपका साधनामय जीवन समाज रूपी वाटिका को तरोताजा बना रहा है। इसी कारण आबाल-वृद्ध पर्यन्त आपका व्यक्तित्व गूँज रहा है।

आपके प्रभावशाली व्याख्यानों का पान कर जैन-जैनेतर सभी तल्लीन हुए

बिना नहीं रहते हैं। कारण यह कि तात्त्विक विषय को भी आप सरल-सुगम भाव-भाषा-शैली में फरमाने में दक्ष हैं। फलतः श्रोताओं का मन-मयूर बाग-बाग हो जाता है।

आप स्व० श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज के शिष्यरत्न हैं। सदैव मेरे प्रति पूर्ण-रूपेण श्रद्धाशील एवं भक्तिशील रहे हैं।

मैं पूर्ण रूप से आपके लिए यह मंगल कामना करता हूँ कि इसी प्रकार आप जन-जीवन को जिनवाणी से प्रतिबोधित करते रहें। महामहिम धर्म-प्रभावना की महनीय सुगन्ध से संसार को महकाते रहें। साधना की चिर-ज्योति से जगतीतल को जगमगाते हुए स्वयं प्रकाशमान हों। इसमें आप सक्षम हों, सफल एवं सबल बनें अपनी साधना में।

श्रावण शुक्ला १

जैन स्थानक

नीम चौक, रतलाम (म० प्र०)



भावांजलि

□ मालवकेशरी श्री सोभाग्यमल जो महाराज

हर्ष का विषय है कि मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ के द्वारा शास्त्र विशारद प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज द्वारा जैन शासन की, की गई सेवाओं के लिये उनका अभिनन्दन किया जा रहा है।

प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज का जीवन सिद्धान्तों से अनुप्राणित जीवन है। जैनागमों के प्रति आपकी विशेष रुचि है। आपके प्रवचनों में तत्त्वज्ञान का सुन्दर विवेचन रहता है। आपके प्रवचनों की कई पुस्तकें 'हीरक-प्रवचन' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनसे आपके शास्त्रीय और तात्त्विक ज्ञान का परिचय

मिलता है। आपने भारत के कई प्रान्तों में विचरण कर जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रचार किया है। बंगाल, बिहार, पंजाब, उत्तर-प्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, आन्ध्र, मद्रास, कर्नाटक आदि क्षेत्रों में विचरण करके आपने जैनधर्म की अच्छी प्रभावना की है। आपका चारित्र-पक्ष भी पर्याप्त समुज्ज्वल रहा है। मैं कामना करता हूँ कि प्रवर्तक श्री हीरालाल जी महाराज चिरकाल तक ज्ञान-दर्शन और चारित्र की आराधना करते हुए जैनशासन की शोभा में अभिवृद्धि करते रहें।

☆

हीरा चमकता रहे

□ मेवाड़ संघ शिरोमणि प्रवर्तक श्री अम्बालालजी महाराज

प्रतिक्रमण के बाद श्रावक एक "आवश्यक पद" गाया करते हैं। उसका एक पद यह है—

हीरा की परख भाई,
कूजड़ी तो जाणे काई।

जौहरी से परख कराओ रे,

भाई ! भव आवश्यक अति सुखदाई रे ॥

आज जब मैं पण्डित श्री हीरालाल जी महाराज के विषय में कुछ कहना चाह रहा हूँ तो बरबस यह पद मेरे मन में उभर-उभर कर आ रहा है।

'हीरा' जो एक रत्न होता है, सच्चा जौहरी ही उसकी कीमत आँक सकता है। कूजड़ा तो उसे मात्र कंकर समझ कर फेंक देगा।

हमारा 'हीरा' जिसकी मैं चर्चा करने जा रहा हूँ उसे परखने को भी जौहरी जैसी ही पैनी दृष्टि की आवश्यकता है।

श्री हीरालालजी महाराज को कोई नया व्यक्ति प्रथम बार देखे तो वह केवल उतना ही प्रभावित होगा, जितना कि सामान्यतया साधुमात्र को देखकर कोई भी प्रभावित होता है किन्तु ज्यों ही वह व्यक्ति उस शांत व्यक्तित्व के घने सम्पर्क में आएगा, सचमुच उसे कुछ निराले अनुभव होने लगेंगे।

वह देखेगा कि सामान्यतया साधुता के इस साधारण वातावरण में एक ऐसी असाधारण विशेषता विद्यमान है जो प्रायः अन्यत्र मिल पाना सम्भव नहीं।

सच भी है कि—‘हीरा’ प्रथम दर्शन में अप्रभावक ही होता है किन्तु जो पैनी दृष्टि उसकी आन्तरिक चमक को पहचान लेती है वह फिर उसे साधारण समझने की भूल नहीं करती ।

श्री हीरालालजी महाराज भी साधारण से दिखाई देकर भी अन्तर से बड़े असाधारण हैं। सर्वदा मेलजोल को पसंद करने वाले श्री हीरालालजी महाराज हंसमुख और खुले विचारों के मुनिराज हैं।

हम जब-जब भी मिले हैं, बड़े प्रेम और आत्मीयता से। नम्रता तो फिर आप में अनोखी ही देखने को मिली, यदि लघु

मुनि की भी सेवा का अवसर आ जाए तो निःसंकोच उसकी परिचर्या में मग्न हो जाएंगे ।

प्रबल विरोधी से भी हंसकर मिल लेने की क्षमता रखने वाले श्री हीरालालजी महाराज सचमुच दिवाकर गच्छे के ही नहीं श्रमण संघ के भी एक हीरे हैं ।

अभिनन्दन के शुभावसर पर मैं शुभकामना प्रगट करता हूँ कि—संघ का यह चमकदार ‘हीरा’ आगामी कई वर्षों तक अक्षुण्ण रहकर अपने ज्ञानादि गुणों की चमक से जिनशासन को प्रकाश पूर्ण बनाता रहे । ☆

प्रवर्तक-पूज्य श्री हीरालालजी महाराज : मेरी दृष्टि में

□ राजस्थान केसरी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी

पूज्य प्रवर्तक श्री हीरालाल जी महाराज स्थानकवासी जैन समाज के एक विचारक, आगमों के ज्ञाता, संगठन के प्रेमी सन्त प्रवर हैं ।

आपश्री से अनेक बार मिलने का अवसर मिला है, आपसे अनेक विषयों पर विचार-चर्चा करने का भी मौका मिला है। विचार-चर्चा में जब मैंने आगम के अकाट्य तर्क प्रस्तुत किये तो आपश्री ने स्वीकार करने में संकोच नहीं किया। मुझे ऐसा लगा कि यही तो महापुरुष का महान गुण है, जिसे अपनी बात का आग्रह नहीं होता, और सत्य-तथ्य ज्ञात होने पर उसे स्वीकार करने में किञ्चित्-मात्र भी संकोच नहीं होता। “तमेव सच्चं निसंकं जं जिणोहि पवेइयं” ही उनके जीवन का आघोष होता है।

प्रवर्तकश्री के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है कि उनका मन, वाणी और

आचरण सभी सरल है। कपट करना तो उन्हें आता ही नहीं है। उनका जीवन खुली पुस्तक की तरह है। उसका हर पृष्ठ कोई भी पढ़ सकता है।

आप मधुर प्रवक्ता हैं, आपके प्रवचनों में दार्शनिक गुत्थियाँ नहीं होतीं और न सांस्कृतिक समस्या ही होती हैं। धर्म और जीवन सम्बन्धी बातें होती हैं। जिन्हें रूपकों, दृष्टान्तों के माध्यम से जन-साधारण को समझाने का संलक्ष्य होता है यही कारण है कि आवाल-वृद्ध के लिए आपके प्रवचन बहुत ही उपयोगी होते हैं।

आपश्री सुदीर्घकाल तक स्वस्थ और प्रसन्न रहकर जैनधर्म की प्रभावना करते रहें यही मेरी हार्दिक मंगल कामना है। आपश्री का अभिनन्दन ग्रन्थ निकाल कर समाज ने अपने कर्तव्य को निभाया है इसकी मुझे प्रसन्नता है।

□

मेरे परम सहयोगी

□ मुनिश्री प्रतापमलजी महाराज

मैं वि० सं० १९७६ के चातुर्मासिकाल में वैराग्य भाव से ओत-प्रोत होकर देवगढ़ (मदारिया) से लसानी धर्म-ध्यानार्थ पहुँच गया। क्योंकि उस समय वहाँ जैनाचार्य श्री खूबचन्दजी महाराज के सुशिष्य श्री हर्षचन्द जी महाराज ठा० २ का वर्षावास था।

वहाँ जाकर मैंने धर्म-ध्यान-सामायिक-संवर, तप-जप के साथ-साथ श्रमण सूत्र का अभ्यास भी प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिन ऐसा क्रम चलता रहा, उसके बाद मैं वहाँ से वि० सं० १९७६ आसोज शुक्ला दसमी के दिन गुरुदेव श्री नन्दलालजी महाराज एवं उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज की सेवा में दीक्षा ग्रहण करने की प्रबल भावना से मन्दसौर पहुँच गया।

वहाँ जब मैं पहुँचा तो मेरे हर्ष का पार नहीं रहा; क्योंकि मुझे मालूम हुआ, और मैंने देखा कि गुरुदेवश्री की सेवा में सेठ श्री लक्ष्मीचन्दजी दूगड़ तथा उनके सुपुत्र श्री हीरालाल जी दीक्षा की शुभ-कामना को लेकर श्रमण सूत्र का अध्ययन कर रहे हैं। मैंने विचार किया कि यह

दीक्षा का संयोग बहुत ही सुन्दर रहेगा— क्योंकि इनकी (हीरालालजी) उम्र और मेरी उम्र समान है। दोनों का अध्ययन साथ ही चलता रहा। वहाँ तीनों दीक्षा एक साथ करने की बात चल रही थी, किन्तु पारिवारिक मोहबन्धन से ऐसा न हो सका, आखिर मृगसर शुक्ला पूर्णिमा वि० सं० १९७६ की शुभ वेला में गुरु प्रवर श्री नन्दलालजी महाराज के वरदहस्त से मेरी दीक्षा सम्पन्न हुई। और आप दोनों (पिता-पुत्र) की दीक्षा वि० सं० १९७६ माघ शुक्ला ३ शनिवार को रामपुरा नगर में सम्पन्न हुई।

क्रमशः हम दोनों मुनियों का आगम-वाचन, अध्ययन, विहार यात्रा, अनेक वर्षावास साथ-साथ सम्पन्न हुए। आपके इस अपूर्व सहयोग से मेरी साधना को भी बहुत बल मिलता रहा। आज वही मेरे परम सहयोगी श्री हीरालालजी महाराज श्रमण संघ में प्रवर्तक पद को विभूषित कर रहे हैं। मैं मंगल कामना करता हूँ कि आप दीर्घायु बनकर समाज को धर्मोपदेश एवं साहित्य के माध्यम से मार्ग-दर्शन देते रहें।

☆

प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज

□ श्री मनोहरलालजी महाराज

स्व० आचार्य श्री मन्नालालजी महाराज अपनी शिष्य मण्डली सहित सम्बत् १९६७ का उदयपुर का चातुर्मास पूर्णकर अनेक ग्राम नगरों को पावन करते हुए नीमच पधारे।

इधर स्व० आचार्य श्री खूबचन्द जी महाराज अपने शिष्य परिवार से पधार कर पूज्य श्री के दर्शन नीमच में किये।

उस समय पं० रत्न श्री हीरालालजी महाराज के मुझे प्रथम दर्शनों का सौभाग्य

प्राप्त हुआ था। उसके पश्चात् तो अनेक बार आपश्री के साथ में रहने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ।

मुझे आपका हंसमुख चेहरा, लम्बा कद, गौर वर्ण, शरीर बड़ा ही सुन्दर लगता है। आपके प्रसन्न वदन पर कभी भी म्लानता देखना मुश्किल है। आप पिछली रात में स्वाध्याय-ध्यान में अपना समय व्यतीत करते हैं। आपका जीवन संयमी प्रवृत्ति में रहते हुए घुमकड़ है।

आपने पंजाब, गुजरात, राजस्थान, मध्य-प्रदेश, आन्ध्र-प्रदेश, महाराष्ट्र आदि अनेक क्षेत्रों में विचरण किया एवं चातुर्मास किये। आपश्री को अजमेर सम्मेलन में प्रवर्तक पद से सुशोभित किया गया है।

आपश्री को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का जो संघ ने निर्णय किया है। यह संघ का कर्त्तव्य है।

आपश्री दीर्घायु होकर समाज को मार्ग-दर्शन दें; यही मेरी शुभकामना है।

□

श्रद्धार्चन

मैंने देखा

जहाँ तक मैंने अनुभव किया है, प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज का संयमी जीवन जितना सीधा, सरल, साफ है, उतना ही स्पष्ट अभिव्यक्ति का प्रतीक भी रहा है।

आपको छल, प्रपंच, मायाचार, ढकी-सला करना, दिखावा कतई पसन्द नहीं है। आप साफ-साफ कहते हैं कि साधक को

□ कविरत्न श्री केवल मुनि

दुहरा जीवन नहीं बिताना चाहिए। क्योंकि दुहरे जीवन में आत्मिक जीवन की वास्तविकता पर काषायी भाव छा जाते हैं।

इसीलिए साधक को सरल होना चाहिए। हार्दिक अभिनन्दन के लिए मुझे प्रसन्नता हो रही है कि आप दीर्घजीवी बनकर समय-समय पर हमें विचार-रत्न दिया करें।

□

स्नेह की जीती जागती प्रतिमा :

प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज

□ देवेन्द्र मुनि शास्त्री 'साहित्यरत्न'

वैज्ञानिकों का मानना है कि विश्व में जितने भी रत्न हैं उन सबमें हीरा बहुमूल्य है। हीरा को हीरा बनने के लिए खदान में अत्यधिक ऊष्मा को सहन करना पड़ता है। कोयला ही अन्त में हीरा बनता है। जिसमें ऊष्मा को सहन करने की क्षमता नहीं है वह काला-कलूटा कोयला ही बना रहता है।

परमादरणीय प्रवर्तक हीरालालजी महाराज जैन समाज के एक जगमगाते हीरे हैं। उन्होंने अपने जीवन को निखारने के लिए, चमकाने के लिए अनेक घात-प्रत्याघात सहन किये हैं। हीरा खदान से निकलने पर भी उतना चमकता नहीं है जितना कि शान पर चढ़ाने से चमकता है। मुनिश्री जी का जीवन रूपी हीरा भी सद्गुरुदेव पं० प्रवर लक्ष्मीचंदजी महाराज के शान पर चढ़कर चमका है, पं० श्री खूबचंदजी महाराज के सम्पर्क से उसमें अधिक निखार आया है।

मैंने उनके दर्शन कब किये? यह निश्चित रूप से कहना सम्भव नहीं है। बाल्यकाल में, सम्भव है उदयपुर में उनके दर्शनों का सौभाग्य मिला हो, किन्तु श्रमण बनने के पश्चात् जब मैंने उनके द्वारा सम्पादित 'खूब-कवितावली' पुस्तक जो सन्मति ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हुई थी, उसको देखा, पढ़ा, तभी से उनके दर्शन के लिए मन लालायित था।

मेरे परमाराध्य गुरुदेव महास्थविर श्री ताराचन्दजी महाराज तथा मेरे श्रद्धेय गुरुदेव श्री पुष्कर मुनिजी महाराज, राजस्थान की राजधानी जयपुर में अपने शिष्यों सहित विराज रहे थे, मैं भी साथ ही था, उस समय आप कलकत्ते की ओर से उग्र विहार कर वहाँ पधारे। कुछ दिनों तक वहाँ साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ। जैसा मैंने सुना था उससे भी अधिक मुझे आप सरल, सहृदयी प्रतीत हुए। उसके पश्चात् भीम, अजमेर, भोपालगढ़ और बम्बई में आपके साथ रहने का व मिलने का अवसर मिला और जब भी मैंने देखा तब भी आपका मुख कमल सदा खिला हुआ पाया। आपके विचार उदात्त, मन निर्मल, वाणी मधुर एवं हृदय विराट पाया। स्नेह की जीति जागती प्रतिमा के रूप में देखकर मैं सदा मुग्ध हुए बिना नहीं रह सका।

आप आगम साहित्य के कुशल प्रवचनकार हैं, आपके प्रवचनों में लोक कथाएँ और आगमिक कथाओं की प्रधानता रहती है। दोहे, श्लोक, सवैये व उर्दू शायरी का भी प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है। 'हीरक-प्रवचन' के नाम से अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। एक भाग पर मुझे भी भूमिका लिखने का अवसर मिला था। आपश्री श्रमण संघ के एक आदरणीय प्रवर्तक हैं। आपश्री का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, यह आल्हाद का विषय है। मैं श्रद्धास्निग्ध श्रद्धार्चना उनके श्रीचरणों में समर्पित करता हुआ यह मंगल कामना करता हूँ कि वे पूर्ण स्वस्थ रहकर जैनधर्म की सतत प्रभावना करते रहें।



सिद्धान्तप्रिय संत—श्री हीरालालजी महाराज

□ मधुर वक्ता श्री ईश्वर मुनिजी

कई बार मुझे प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज के पावन सान्निध्य में रहने का, चौमासा करने का, दर्शन एवं उनके आध्यात्मिक प्रवचन श्रवण करने का स्वर्णिमावसर प्राप्त हुआ है। आपके साधक जीवन की डायरी के महकते पृष्ठ मैंने अति सन्निकटता से देखे हैं। आपका स्नेहशील व्यक्तित्व सरलता, ऋजुता एवं सिद्धान्तप्रिय गुणों से ओत-प्रोत हैं, अतएव भव्यों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

आपकी सिद्धान्तिक अभिरुचि बढ़ाने में आचार्य प्रवर श्री खूबचन्द जी महाराज साहब का पूर्ण योगदान रहा है। जिनकी महती कृपा से हमारे चरित्रनायक को प्रारम्भिक साधु जीवन में ही कई आगम कंठाग्र हो चुके थे। अद्यावधि आगम पठन-पाठन की वैसी ही रुचि आप श्री के जीवन में परिलक्षित होती है। यथावसर आप रात्रि में किवा दिन में चिंतन-मनन एवं स्वाध्याय में रमण-शील रहते हैं। जैसा कि आगम में कहा है—‘नाणो संजम सहिओ, नायव्वो भावओ समणो।’ जो ज्ञान पूर्वक संयम की साधना में रत है, वही श्रमण कहलाता है।

अनेक बार आपके प्रवचन-पीयूष का पान करने का मुझे सौभाग्य मिला है। प्रायः आपके प्रवचनों में आत्म-धर्म एवं दर्शन से सम्बन्धित तात्त्विक विद्वेषण की एवं आगमसम्मत उदाहरणों की मुख्यता रहती है। श्रोतावृन्द मंत्रमुग्ध हुए बिना नहीं रहते हैं। आपको यदि कहीं शास्त्रों के प्रतिकूल व्यवहार परिलक्षित होता है तो आप स्पष्ट फरमा दिया करते हैं कि ऐसा आचरण साधक जीवन के लिए उचित नहीं है। जैसा कि शास्त्र में कहा है—

तो समणो जइ सुमणो, भावेण य जइ ण होइ पावमणो ।

सयणे अ जणे अ समो, समो अ माणावमाणेसु ॥

(अनुयोगद्वार १३२)

—जो साधक मन से सुमन (निर्मल मन वाला) है, संकल्प से कभी पापोन्मुखी नहीं होता, स्वजन तथा परजन में, मान एवं अपमान में सदा सम रहता है—वह श्रमण है।

मैं आपके आचार-विचार-व्यवहार से काफी प्रभावित हुआ हूँ। जिसका मुख्य कारण यह है कि आपकी कथनी और करनी अर्थात्—आपके बहिरंग और आन्तरिक जीवन में सामंजस्य मैंने देखा है। ‘उवसमसारं खु सामणं’ अर्थात् श्रमणत्व का सार है—उपशम। तदनुसार आपका जीवन सरल और सौम्य है।

इन दिनों पूज्य प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज साहब जैन-सिद्धान्त के नियमोपनियमों का सम्यक् प्रकार से पालन करते हुए अपने संयमी जीवन के ५५ वसंत सम्पन्न करके ५६वें वसन्त में मंगल प्रवेश कर रहे हैं। उनके संयमी जीवन की गौरव-मय पावन घड़ियों में अभिनन्दन समर्पण की जो योजना तैयार हो रही है। मैं इन मुनि प्रवर्तक के चरण सरोज में श्रद्धा-सुमन समर्पित करता हुआ दीर्घ संयमी जीवन की मंगल-कामना करता हूँ।

□

हार्दिक अभिनन्दन

□ कांति मुनि, 'जैन साहित्य विशारद',

अनादि काल से अपनी धार्मिक विशिष्टता के कारण प्रख्यात भारत आज भी विश्व की धर्मप्राण जनता के लिये केन्द्रबिन्दु बना हुआ है। जहाँ भारत ने भूतकाल को महावीर, गौतम, जैसे महान धर्म-रत्न प्रदान किये वहीं वर्तमान में भी भारत अनेक महामनीषियों से सुशोभित है।

भारत की विविध धार्मिक संस्कृतियों में जैन संस्कृति का एक प्रमुख स्थान है। जैन संस्कृति के विकास एवं विस्तार में जितने महापुरुषों ने अपने सम्पूर्ण जीवन का समर्पण किया उतना अन्य संस्कृतियों में दृष्टिगत नहीं होता है। त्याग एवं वैराग्य के द्वारा जैन संस्कृति को विश्व में दैदीप्यमान करने वाले महापुरुषों की पावन परम्परा में जैनागमतत्त्वविशारद प्रवर्तक पं० रत्न श्रद्धेय श्री हीरालालजी महाराज भी एक महत्त्वपूर्ण साधक हैं।

महामनीषी प्रवर्तकश्री जी महाराज के त्यागमय जाज्वल्यमान जीवन के बारे में कुछ भी लिखना सूरज को दीपक दिखाने के समान है। शांति-स्वभावी, वात्सल्य-हृदयी, दीर्घ संयमी, संत प्रवर के जीवन की अच्छाइयों एवं महानता को देखकर तो बस, मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है।

सौभाग्य एवं हर्ष का विषय है कि आज हम एक धर्मदूत का हार्दिक अभिनन्दन कर रहे हैं। इस पावन सन्दर्भ पर मैं भी जैन समाज की इस महान विभूति का अन्तर् की गहराई से हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ दीर्घ संयमी जीवन की कामना करता हूँ।

नये सूरज की नई किरण से तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ।
विश्व समराङ्गण में खीलते खून से अभिनन्दन करता हूँ ॥
धर्म टिका है इस धरा पर तुम जैसे मानव से, ऐ महासंत।
तन से मन से कर बद्ध हो तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ ॥

□

प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज

□ वीरपुत्र श्री सोहन मुनिजी महाराज (सि० प्रभाकर)

परिवर्तिनि संसारे, मृतः को वा न जायते।

स जातो येन जातेन, याति वंशः समुन्नतिम् ॥

इस परिवर्तनशील संसार में जन्म और मृत्यु की बीमारी से कोई मुक्त नहीं है। परन्तु इस धवल धरा पर जन्म धारण करना उसी का सार्थक माना गया है जिसके द्वारा वंश-परम्परा धर्म के क्षेत्र में विकास पाती हो।

आगमतत्त्वविशारद महोपकारी सरलमना श्रद्धेय प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज उन्हीं महकते-दमकते महामनस्वियों की श्रेणी में हैं। ओसवाल दुगड़ परिवार में जन्म लेने के बावजूद भी आप उस संकीर्ण परिधि में चिपक कर बैठे नहीं रहे अपितु कमलवत् अनावसत योग में रहे।

आचार्यश्री खूबचन्दजी महाराज द्वारा सद्बोध पाकर आपकी अन्तरात्मा वैराग्य रस में तरबतर हो गयी। इतना ही नहीं तीर्थस्वरूप अपने पिता श्री लक्ष्मीचन्द जी दुगड़ को भी सामयिक दिशा निर्देश देते हुए आपने कहा था—‘कहाँ तक संसारी प्रवृत्तियों में आप रचे-पचे रहेंगे? इसलिए आप और मैं, दोनों आचार्य भगवंत के चरण-कमलों में दीक्षा अंगीकर करके आत्म-कल्याण करें।’ वैसा ही हुआ।

दीक्षित होने के पश्चात् आगमों का आपने तलस्पर्शी ज्ञान किया। भारत के लगभग सभी प्रान्तों में आपका भ्रमण हुआ है। जहाँ-जहाँ आपका पदार्पण हुआ है वहाँ-वहाँ अहिंसा धर्म का अच्छा प्रचार हुआ है।

प्रकृति से आप महान् हैं। सदा मनमोहक मुखड़े पर मुस्कानें अठखेलियाँ करती हैं। इन दिनों आपश्री श्रमण संघ के प्रवर्तक पद पर आसीन हैं।

इस मंगल महोत्सव के संदर्भ में हार्दिक अभिनन्दन करते हुए मुझे अपार हर्षानुभूति हो रही है।

□

पथ-प्रदर्शक-प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज

□ प्रिय सुशिष्य प्रवर्तक मुनि श्री उदयचन्दजी महाराज ‘जैन सिद्धान्ताचार्य’

वही साधक सौरभ से महकता है जो अपनी सौरभ से संसार को मकरंद-सुगंधित करता है। कहा भी है—**सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय !**

प्रवर्तक पं० श्री हीरालालजी महाराज साहब इसी कोटि के साधक माने जाते हैं जो सदैव ज्ञानाराधना करते हुए दिखाई देते हैं। किसी समय आप शास्त्रादि पढ़ते हुए मिलेंगे या कभी पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज साहब अथवा जैन दिवाकर जी महाराज या विनयचन्दजी कवि आदि महाविभूतियों के त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए चरित्र एवं भजनादि गाते दृष्टिगत होंगे। आप कभी निष्क्रिय नहीं रहते, स्फूर्ति एवं ताजगी जवानों से भी विशेष है। आपके जीवन में सक्रियता—कुछ न कुछ करते रहने की धुन सी है। आप जैनागमतत्त्वविशारद के रूप में प्रसिद्ध है।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आचारांग सूत्र में कहा भी है—

पासिय आउरे पाणे अप्पमत्तो परिव्वए !

अर्थात्—आत्म-कल्याणार्थी मानव विषय-वासनाओं के परिसेवन से उत्पन्न दुःखों से दुःखित तथा चबराये हुए प्राणियों को देखकर अथवा अपने मन में इसके कारणों की मीमांसा करके सदा अप्रमत्त होता हुआ अपना जीवन व्यवहार चलावे। भावदृष्टि से जागरूक होता हुआ संयम की आराधना में तत्पर रहे।

प्रवर्तकजी महाराज साहब भगवान् महावीर के उपरोक्त सूत्र-वाक्य को अपने जीवन में पूर्णतया आत्मसात किये हुए हैं।

आपका जन्म विक्रम संवत् १९६४ पौष शुक्ला एकम शनिवार को मंदसौर में हुआ। यह वही प्राचीन भूमि है जहाँ दशार्णभद्र जैसे महान् राजा ने दीक्षा लेकर स्व-सम्मान को कायम रक्खा जिससे देवों के देव—इन्द्र (शकेन्द्र) ने भी हार मान कर मानव को ही उत्कृष्ट बतलाया। प्रवर्तकजी महाराज ने केवल इस शहर में जन्म ही नहीं लिया वरन् राजा दशार्णभद्र की परम्परा को भी कायम रखा। आपके पिता श्री लक्ष्मीचन्दजी दुग्गड़ एवं माता श्रीमती हृगामबाई थीं। माता-पिता दोनों ही सुसंस्कारी एवं धर्मपरायण थे। इनके सद्गुणों का आपकी के जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रीमद्-आचारांगसूत्र के द्वितीय अध्ययन में फरमाया है कि—

इच्छेऐहि विरूवरूवेहि पण्णाणेहि अपरिहायमाणेहि
आयट्ठं सम्मं समणुवासिज्ज्जासि ॥

अर्थात्—संयोग से प्राप्त होने वाली भौतिक वस्तुओं में निरन्तर ह्रास होता ही रहता है। इस पौद्गलिक नियम के अनुसार कर्मोदय से प्राप्त इन्द्रियों की शक्तियाँ शनैः-शनैः घटती ही रहती हैं। इसलिये यदि तू आत्म-कल्याण का इच्छुक है तो जब तक नाना प्रकार की ज्ञानशक्ति से ये इन्द्रियाँ क्षीण न होवें—अशक्त तथा संज्ञाशून्य न हो जावें, उसके पूर्व ही आत्मा के हितार्थ “ज्ञान-चारित्र के विकासार्थ” सम्यक् प्रकार से तू पराक्रम कर, प्रयत्न कर और उद्यम में रत रह।

प्रवर्तक श्री जी ने उपरोक्त तथ्य को शीघ्र ही समझ लिया। सांसारिक नश्वरता से परिचित होकर आपने संयम धारण कर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करने का निश्चय कर लिया। सांसारिक प्रपंचों से मुक्त होकर आपने वि० सं० १९७९ माघ शुक्ला तीज शनिवार को रामपुरा में भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली। आप सेवाभावी श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज के शिष्य हुए।

संयम लेकर आपने अपना चित्त शास्त्राभ्यास में लगाया। आपने आगमों का गहन अध्ययन किया, इसी कारण आप ‘जैनगमतत्त्वविशारद’ के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपका लक्ष्य साहित्य की ओर गया तब आपने हीरक-सहस्रावली आदि पुस्तकों का संग्रह कार्य किया। आप व्याख्यान मधुर एवं शान्त भाषा में फरमाते हैं। आपके व्याख्यान दस भागों में प्रकाशित हुए हैं। जो ‘हीरक-प्रवचन’ के नाम से प्रकाशित हुए

हैं। उसमें आपने विपाक-सूत्र—याने दुःख विपाक तथा सुख-विपाक के आधार पर कर्मों के फल पर विशेष प्रकाश डाला है।

श्रमण संघ ने अजमेर सम्मेलन में आपको प्रवर्तक पद से विभूषित किया है। इससे आपकी विद्वत्ता आदि का परिचय मिलता है। आप अपने इस गरिमामय पद का बड़े उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से निर्वाह कर रहे हैं।

आपने अपने संयमी जीवन में जैनधर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिये मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, पंजाब, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों में विहार किया और जनमानस में धर्म जागृति की भावना फैलाई।

ऐसे महान व्यक्तित्व के जीवन की महिमा एवं गरिमा की जितनी भी व्याख्या की जाय, उतनी स्वल्प है। ऐसे त्यागमय आदर्श जीवन के प्रति मैं अपनी हार्दिक भावाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

□

मेरे श्रद्धा के केन्द्र

□ तपोधनी श्री बसंत मुनिजी महाराज

पवित्र-प्रेरणादायी 'मन्दसौर' नगरी इतिहास प्रसिद्ध है। जिस नगरी को चरम तीर्थंकर महाराज वर्धमान ने पावन किया है। उसी क्षेत्र के प्रतिष्ठित श्रावक श्री लक्ष्मीचन्द जी दूगड़ के सुपुत्र माता हगामबाई के लाल श्री हीरालाल जी महाराज जो आज श्रमण संघ के प्रवर्तक के रूप में विद्यमान हैं। ये इसी भूमि को सुरभित करने वाले अनमोल हीरे हैं।

आपने अपने प्रबल वैराग्य भावों से प्रेरित होकर सं० १९७६ में मध्य प्रांत के रामपुरा नगर में आदर्श त्यागी पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज के पास दीक्षा स्वीकार की।

गुरुदेव वादीमान-मर्दक श्री नन्दलालजी महाराज से बड़ी उत्कण्ठा एवं विनम्रता से आगमों का ज्ञान प्राप्त किया।

आज आपका अभिनन्दन करते हुए मुझे परम हर्षानुभूति हो रही है। क्योंकि आपके साथ रहने एवं चातुर्मास करने का मुझे कुछ अवसर प्राप्त हुआ है। देहली, कानपुर, कलकत्ता, सिकन्दराबाद आदि स्थानों पर वर्षावास में मैं आपका सहवासी रहा हूँ। आपकी प्रकृति बड़ी ही सरल एवं स्वच्छ है।

आपकी प्रवचन प्रतिभा बहुत सुन्दर है। वाणी में माधुर्यता, ओज-गाम्भीर्यता आदि गुण स्वभावतः प्रवाहमान हैं।

आपने निःस्वार्थ भाव से राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, पंजाब, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक-केरल एवं तमिलनाडु आदि प्रदेशों में परिभ्रमण करते हुए जिन शासन के गौरव को गौरवान्वित किया और आज भी चतुर्विध संघ में ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य और धार्मिक प्रभावना की अभिवृद्धि कर रहे हैं। भविष्य में इसी तरह प्रभावना बढ़ाते रहें इसी मंगल कामना के साथ मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ।

लोक-मानस के उत्रायक प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज

□ जैनार्या प्रभाकुमारी 'कुसुम'

भारतीय संस्कृति को लोकोपयोगी बनाने एवं उसके अलौकिक प्रभाव से लोक-मानस को प्रभावित करने में सन्त-समुदाय का समय-समय पर अथक प्रयास रहा है।

मध्यप्रदेश में स्थित मन्दसौर शहर में एक यशस्वी आत्मा का जन्म हुआ, जिनका कि मंगल नाम है—जैनागमतत्त्वविशारद पंडित प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज।

यथानाम तथागुण के अनुरूप ही आप सरलता-सहिष्णुतादि गुणों से संयुक्त हैं, आगम-वारिधि श्री हीरालालजी महाराज का जीवन वास्तव में सच्चे साधक का जीवन है। आपके जीवन में साहस, लगन, चिन्तन एवं रत्नत्रय का अद्भुत समन्वय है।

आपकी प्रवचन शैली जैनागम सम्मत होते हुए भी रोचक रही है। आपका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। आप अपने प्रवर्तक-पद को भली-भाँति निभा रहे हैं।

आप अहिंसा और सत्य के समर्थक एवं प्रबल प्रचारक हैं। आपने भारत के कई प्रदेशों में विचरण करते हुए भगवान महावीर की वाणी को व्यापक रूप दिया है। आपके अनेक मौलिक तत्त्वों को हमने कई बार हृदयंगम किया। आप गहन तात्त्विक प्रवक्ता हैं।

जिनशासन के प्रबल प्रचारक आगमनिधि श्री हीरालालजी महाराज चिरायु बनें! हमें आपश्री का आशीर्वाद एवं जन-जीवन के उत्थान हेतु आपश्री की प्रेरणा सदैव मिलती रहे। इसी विनम्र भावना के साथ श्रद्धा सहित सादर बन्दनांजलि समर्पित है।

□

जैनजगत् की विमल विभूति

'जैनागमतत्त्वविशारद' प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज

□ मदनलाल जैन, (रावलपिंडो)

संत महिमा

संत सत्पथ के केवल पथिक ही नहीं, अपितु संसार को सत्पथ प्रदर्शित करने वाले प्रकाश स्तम्भ और भव-सागर के तैराक होने के साथ-साथ तारक भी होते हैं। संत जन-जन के हितैषी महापुरुष होते हैं। जिनके मन में सदैव ही सभी के उत्थान की मंगल कामना छिपी रहती है। भारतीय संस्कृति में संत जीवन का इसीलिए सर्वोपरि स्थान रहा है।

दिव्य ज्योति स्वरूप

मालव घरा के संतरत्न परम श्रद्धेय महान् दिव्य-ज्योति प्रवर्तक श्री हीरालाल

जी महाराज' के ५० वर्षीय संत-जीवन के उपलक्ष में जो यह 'अभिनन्दन ग्रन्थ' का प्रकाशन हो रहा है यह हमारे लिए गौरव का विषय है। ऐसे प्रकाशन इसीलिए प्रकाशित किये जाते हैं कि भावी जनता उस समय कर्मठ त्यागी-संयमी संत के प्रति कुछ जान सके इस महान दिव्य ज्योति के जीवन से प्रेरणा लेकर जन-मानस अपने आपको उज्ज्वल एवं उन्नत बना सकें।

बाल्य जीवन

परम श्रद्धेय प्रवर्तक श्री हीरालाल जी महाराज का शुभ जन्म मध्य प्रदेश के महानगर मन्दसौर की पवित्र भूमि में हुआ है। आपका शैशवकाल सुख के क्षणों में बीता। पिता लक्ष्मीचन्दजी और मातु श्री हगामबाई की आप पर अद्वितीय कृपा एवं देख-रेख थी। जिस प्रकार तात-मात धार्मिक संस्कार वाले थे उसी प्रकार पुत्र हीरालाल का जीवन भी धार्मिक संस्कारों से ओत-प्रोत प्रतिभावित होने लगा। बाल्य-काल में ही आपको त्याग-तप-वैराग्य व सत्संगति इष्ट थी। यही कारण था कि धार्मिक ज्ञान प्राप्ति की रुचि सदैव बनी रहती थी।

गुरुदेव और दीक्षा

आप अभी केवल १५ वर्ष के ही थे। तभी आपश्री की वैराग्य भावना अति प्रबल हो गई और आप अपने पिताश्री के साथ रामपुरा की रम्य स्थली में ईस्वी सं० १६२२ आचार्य श्री खूबचन्दजी महाराज के पावन सान्निध्य में दीक्षित बन गये। आचार्य देव की सेवा में रहकर आपश्री ने धीरे-धीरे अच्छा अध्ययन किया। हिन्दी-प्राकृत-संस्कृत एवं गुजराती भाषाओं में अच्छी योग्यता प्राप्त की। साथ-साथ विनय-विवेक गुण भी विकसित होते गये। उन्हीं आचार्यदेव के शुभाशीर्वाद से आपके व्याख्यान प्रभावशील होने लगे। मुझे भी कई बार व्याख्यान श्रवण का लाभ मिला है। श्रोता मंत्रमुग्ध हुए बिना नहीं रहते।

स्नेह सौजन्यता के प्रतीक

आपश्री का स्वभाव बड़ा सरल एवं मधुर है। भले गरीब हो कि—अमीर एवं बाल हो या वृद्ध, सभी के प्रति आपका व्यवहार बड़ा सुखद है। समता के तो आप सागर हैं। कई बार आपके और दिगम्बराचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज के संयुक्त व्याख्यान दिल्ली के प्रांगण में हुए हैं। दिल्ली की समाज आज भी उस प्रसंग को याद करती हुई फूली न समाती है।

इन दिनों आपश्री श्रमण संघ के प्रवर्तक पद पर विराजमान हैं। भारत के अघिकांश प्रांतों में आपका भ्रमण हुआ है। सत्य और अहिंसा के अमर सन्देश को आपने सुदूर तक फैलाया है। जैन समाज सदा आपके इस महान् शासन प्रभावना को कभी भी नहीं भूल सकता है।

हार्दिक भावना

मेरी हार्दिक मंगल भावना है कि तत्त्वविशारद प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज दीर्घकाल तक भगवान महावीर स्वामी के आदर्श सिद्धान्तों का एवं श्रमण संस्कृति का शंखनाद करते रहें। आप अपने में एक आदर्श मुनि, आदर्श त्यागी, आदर्श मनस्वी और आदर्श साधक हैं।

मैं आपके प्रति हार्दिक श्रद्धा अभिव्यक्त करता हूँ। मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ प्रवर्तकश्री जी की समाज सेवाओं का एक मृत्यांकन माना जायगा।

प्रातः स्मरणीयश्री मज्जैनाचार्य स्वर्गीय पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज के गुरुभ्राता स्व० पं० मुनि श्री लक्ष्मीचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य श्रमण संघीय जैनागमतत्त्वविशारद पं० मुनि श्री हीरालालजी महाराज के चरण-कमलों में—

अभिनन्दन पत्र

गुरुवर्य ! आपको अनेकशः धन्यवाद है कि आपने उग्र विहार करते हुए पं० मुनिश्री लाभचन्दजी महाराज, मुनिश्री दीपचन्दजी महाराज, मुनिश्री मन्नालालजी महाराज तथा तपस्वी मुनि श्री बसन्तलाल जी महाराज के साथ बेंगलोर नगर को पावन किया और मोरचरी व सपींग्स रोड श्रावक संघ की बिनती को स्वीकार कर चातुर्मास के लिए पधारे ।

वास्तव में देखा जाय तो जैन मुनियों का मार्ग बड़ा ही कंटकाकीर्ण है । विहारकाल में सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि अनेक मीषण परीषहों को सहनशीलता की मूर्ति बनकर सहन करना आप जैसे वीरों का ही कार्य है । कायर पुरुष इन परीषहों को सहन करने में असमर्थ ही होते हैं । आप वीरों ने उन परीषहों की फूलों के सहस्र मानकर सहन किया है । एतदर्थ आपको कोटिशः धन्यवाद है ।

इस चातुर्मास काल में आपके यहाँ विराजने से बेंगलोर जैन समाज पर अत्यन्त उपकार हुआ है । मोरचरी तथा सपींग्स रोड वाले श्रावकों को तो सेवा करने का यह प्रथम सुअवसर ही प्राप्त हुआ था । आपके चातुर्मास करने से यहाँ श्रावक संघ के हृदय में अकथनीय धर्म जागृति हुई । आपके धर्मोपदेश से प्रेरित होकर जो सपींग्स रोड स्थित बंगला ५१०००) हजार रुपये में धर्म प्रवृत्ति करने के लिए लिया गया है, यह आपश्री के सफल चातुर्मास की अमर यादगार दिलाता रहेगा । हम सबका हृदय इस महान् कमी की पूर्ति में गद्-गद् हो रहा है ।

आप श्री के प्रवचन बड़े ही ओजस्वी सारगर्भित एवं सोये हुए हृदय में जागृति पैदा करने वाले होते हैं । आपकी जादूभरी वाणी को सुन-सुन कर कई भाई श्रद्धालु श्रावक बने हैं । आपकी वचस्व शक्ति अद्भुत रंग लाने वाली है । आपके बिना प्रेरणा दिए ही उपदेश मात्र से यहाँ के भाई-बहनों में बड़ी-बड़ी तपस्याएँ एवं प्रत्याख्यान हुए हैं ।

आप जैसे विरले ही महान् संतों में इस प्रकार की वाक्पटुता पाई जाती है । टूटे हुए हृदयों में असीम प्रेम पैदा करा देना आपको खूब आता है । यदि हम आपको लोकप्रिय धर्म नेता से भी सम्बोधित करें तब भी अतिशयोक्ति न होगी । आप वास्तव में सद्धर्म प्रचारक सन्त हैं ।

आपकी हँसमुख मुद्रा से सदैव फूल बरसते रहते हैं । आपके सौम्य दीदार की अलौकिक छटा प्रशंसनीय है । दर्शन करने वाले मन्व्य प्राणियों को आपका मुखारविन्द अतीव आनन्द का प्रतीक है । प्रत्येक नर-नारी दर्शन लाभ कर अपने जीवन को धन्य-धन्य मानते हैं ।

आपश्री के गुणों का वर्णन करना हमारे लिए मूर्त्य के सामने दीपक दिखाने के सदृश है । गुरुदेव ! हमारे पास वह शाब्दिक चमत्कार नहीं जिससे हम आपके अनेक गुणों का बखान कर सकें । तदपि भक्ति से प्रेरित होकर जो यत्किञ्चित् गुण-पुष्प आपश्री के चरणों में समर्पित किये हैं उन्हें आप बहुलता में मानकर स्वीकार करें ।

हृदय सम्राट् ! आपको विदाई देते हुए हम श्रावकों के हृदय दुःख से व्यथित हो रहे हैं । परन्तु संयोग के पश्चात् वियोग भी अवश्यम्भावी है । अतएव न चाहते हुए भी हम आपको विदाई दे रहे हैं । हमारी आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि सतप्त पिपासुओं को पुनः दर्शन लाभ कराकर अपने अपूर्व प्रेम का परिचय देते रहिए । इस चातुर्मासकाल में हमारी तरफ से जो भी अविनय आशातना हुई हो, उसे हृदय में स्थान नहीं देते हुए क्षमा करेंगे, ऐसी आशा करते हैं ।

अन्त में शासनदेव से कर जोड़ प्रार्थना है कि गुरुदेव चिरकाल पर्यन्त ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए, जैनधर्म का अधिक से अधिक प्रचार कर सकें ऐसी शक्ति प्रदान करें ।

चातुर्मास सं० २०१६
स्थान—मोरचरी सपींग्स रोड, बेंगलोर १

हम हैं आपके श्रावकगण
श्री वर्धमान स्था० जैन श्रावक गण
मोरचरी सपींग्स रोड, बेंगलोर १

अभिनन्दन पत्र

प्रातः स्मरणीय परमादरणीय श्रीमज्जैनाचार्य स्वर्गीय पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज साहब के गुरुभ्राता स्व० पं० मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी महाराज सा० के सुशिष्य श्रमण संघीय जैनागमतत्त्वविशारद मधुर व्याख्यानी पं० मुनि श्री हीरालालजी महाराज साहब के चरण कमलों में सादर समर्पित—

गुरुवर्य ! हमारा यह अहोभाग्य रहा है कि आपश्री मद्रास का चातुर्मास समाप्त कर सुदूर दक्षिण में जैनधर्म का प्रचार करते हुए एक बार फिर हमारी विनती को मान देकर बेंगलोर शहर में चातुर्मासार्थ पधारे ।

आपने अपनी सरल एवं रोचक भाषा में अनेक हेतु दृष्टान्तों के साथ जैनागम के गहन तत्त्वों को श्रोताओं के सम्मुख रखकर भलीभाँति समझाने का प्रयास किया, शत-शत प्रणाम है आपकी इस विद्वत्तापूर्ण मधुर वाणी को ।

आपके ओजस्वी व्याख्यानों से प्रेरित होकर धर्म-ध्यान, शान्ति-सप्ताह एवं बड़ी-बड़ी तपस्याओं की आराधना हुई । श्रीमती धापुबाई (धर्मपत्नी श्रीमान् जसरराज जी गोलेच्छा) ने इक्कावन उपवास की अद्वितीय तपस्या कर समाज की शोभा में चार चाँद लगा दिये । यह सभी आप ही का प्रताप है, आप धन्य हैं ।

आपके सुशिष्य पं० मुनि श्री लाभचन्दजी महाराज साहब ने एकान्तर की तपस्या की आराधना के साथ ही साथ छूटकर तपस्या करके अपनी आत्मा को निर्मल बनाया है और साथ में “श्रावक व्रत अभियान” का भी प्रचार प्रारम्भ रखा जिसके फलस्वरूप यहाँ लगभग ५०० श्रावक श्राविकाओं ने बारह व्रत अंगीकार किये । गुजराती बन्धुओं ने बारह व्रतों की विशेष उपयोगिता समझकर करीब दो हजार पुस्तकें गुजराती में प्रकाशित करवाने का निश्चय किया है । अनेक धर्म प्रेमियों को इससे लाभ होने की सम्भावना है । हम आपका आभार मानते हुए यह आशा करते हैं कि आपका यह अभियान निरन्तर चालू रहेगा ।

पूज्यवर ! आपने जब भारत के पूर्वी भाग—कलकत्ता आदि का प्रवास किया था तब मुनिराजों की सुविधा हेतु “बङ्ग-विहार” नामक मार्ग-प्रदर्शिका प्रकाशित करवाई थी उसी प्रकार आपश्री के सौजन्य से “दक्षिण विहार” नामक पुस्तिका प्रकाशित करवाने की व्यवस्था की है और शीघ्र ही समाज की सेवा में प्रस्तुत की जायगी, दक्षिण में विचरण करने वाले संत मुनिराजों के लिए यह एक वरदान सिद्ध होगी । आपके इस सौजन्य के लिए अनेकशः धन्यवाद हमारी ओर से समर्पित हैं ।

हे क्षमासागर दयानिधे ! आपके सुशिष्य सेवाभावी मुनिश्री दीपचन्द्रजी महाराज साहब ने भी श्राविकाओं एवं बच्चों को किस्से-कहानियों एवं चौपाई द्वारा धार्मिक सुसंस्कार देने की बड़ी कृपा की है इसे भी हम नहीं मूल सकेंगे ।

इस चातुर्मास की अवधि में हमसे जान-अनजान में किसी प्रकार से आपका अविनय हुआ हो, आपके हृदय को किसी प्रकार की व्यथा पहुँची हो तो हम नतमस्तक हो अत्यन्त विनम्रभाव से हार्दिक क्षमा माँगते हैं । आप उदार चित्त हो हमें क्षमा प्रदान कीजियेगा, और इस शहर को पुनः पावन करने की कृपा कीजिये ।

अन्त में, श्री जिनेश्वर से यह विनम्र प्रार्थना हम करते हैं कि आप चिरायु होकर देश के कोने-कोने में जैनधर्म का प्रचार करते हुए जिन शासन की शोभा बढ़ाते रहें ।

विदाई का समय है, हृदय गद्-गद् हो रहा है अधिक क्या वर्णन करें । इन चन्द शब्दों को ही फूल की जगह पाँखुड़ी के रूप में आपके चरण-कमलों में सविनय समर्पित कर संतोष का अनुभव करते हैं ।

चातुर्मास सं० २०१८

बेंगलोर सिटी,

आपके विनयावनत

श्री स्थानकवासी जैन श्रावक संघ
बेंगलोर



शुभकामना संदेश

शुभ
कामना

दारू बंदी पुनर्वसन व सांस्कृतिक कार्य मंत्री
महाराष्ट्र शासन सचिवालय,
शिविर कार्यालय नागपुर-१
दि० ७ दिसम्बर, १९७६

उपाध्याय श्री कस्तूरचन्द जी महाराज यांच्या तसेच प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज यांचे अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करीत आहेत, हे वाचून आनन्द ज्ञाला ।

आपल्या उप क्रमास माझा हार्दिक शुभेच्छा ।

श्रीमती प्रतिभा पाटील

मधुकर राव चौधरी एम. कॉम.

खिरोदा ता० रावेर, जि० जलगांव
ता० ६-१२-१९७६

उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं श्री प्र० हीरालालजी महाराज का अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं ।

इन महानुभावों ने अहिंसा, शांति तथा प्रेम के महान् तत्त्वों का प्रचार तथा प्रसार करके मानव समाज की बड़ी भारी सेवा की है; ये तत्त्व मानव-जीवन के मूल आधार है ।

आशा है आपका प्रयास सफल होगा ।

विनीत

मधुकर राव चौधरी

मंत्री, सार्वजनिक आरोग्य व ग्राम विकास

महाराष्ट्र राज्य

सचिवालय मुंबई ४०००३२

दिनांक ४ दिसम्बर १९७६

श्री केशर कस्तूर स्वाध्याय भवन जावरा द्वारा मुनिद्वय (उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज) अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है, यह सुनकर खुशी हुई । आशा है कि यह अभिनन्दन ग्रन्थ समाज के लिए मार्गदर्शक एवं सचिपूर्ण हो ।

अभिनन्दन समारोह के लिए शुभकामनाएँ ।

भवदीय

कृ० भ० पाटील

संदेश

पूज्य कस्तूरचन्दजी महाराज साहब एवं प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज साहब का अभिनन्दन ग्रन्थ पूज्य रमेश मुनिजी सिद्धान्त आचार्य साहित्यरत्न द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, यह बाँचकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई ।

ऐसी पुण्यात्मा विभूतियों की अत्यन्त ज्वलन्त कीर्ति है और उनके बताये गये मार्ग पर चलने से निःसन्देह कर्म बन्धन से मुक्ति पा सकते हैं । ऐसी विभूतियों के प्रति आपने जो भाव व्यक्त किये हैं, वे सच्चमुच प्रशंसनीय हैं । ईश्वर इन दोनों पुण्यात्माओं को खूब आयुष्मान करे और जन-मानस में धर्म भावना का प्रादुर्भाव हो यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है ।

—सुगनमल भण्डारी, इन्दौर

सश्रद्धा सभक्ति अभिनन्दन

मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ की रूपरेखा से मालूम हुआ कि निकट भविष्य में मालवरत्न उपाध्याय प्रवर श्रद्धेय गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं प्रवर्तक प्रवर श्रद्धेय संत रत्न श्री हीरालालजी महाराज मुनि युगल के पावन कर-कमलों में अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण किया जा रहा है । यह सुनकर मेरे अन्तर्मन को हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हुआ ।

श्रद्धेय मुनिवरों की हमारे परिवार पर महती कृपा रही है । कई बार आप मुनिवरों का नयापुरा उज्जैन में पदार्पण हुआ है । अनेक बार आपकी मधुर वाणी का रसास्वादन करने का मुझे परम सौभाग्य मिला है । आपकी वाणी जहाँ प्यासों के लिए पानी का और बुभुक्षुओं के लिए भोजन का काम करती है वहाँ जन्म-जरा और मृत्यु से भयभीतों के लिए राम बाण औषधि और अभय का काम भी करती है ।

मुझे अच्छी तरह याद है—आप जब नयापुरा स्थानक में पधारे थे तब स्व० मेरे पूज्य पिता श्री पांचूलालजी घंटों तक अपकी पर्युपासना एवं तत्त्वगोष्ठी में लगे रहते थे । पिताश्री फरमाया भी करते थे कि इतने बड़े संत होने पर भी जीवन में किञ्चित्मात्र भी अभिमान को स्थान नहीं, बालक हो या युवक, वृद्ध, धनी हो या निर्धन हो, परिचित हो या अपरिचित सभी के साथ एक समान आत्मीयता एवं वात्सल्य पूरित वाणी का व्यवहार जो देखते एवं सुनते ही बनता है । मेरे पूज्य पिताश्री पर आपकी अपार कृपा दृष्टि रही है । आज भी मेरे परिवार पर वही कृपा, वही शुभ दृष्टि है । मैं सश्रद्धा सभक्ति मुनिद्वय का हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ शासनदेव से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे आराध्य मुनिद्वय सदा हमें मार्गदर्शन प्रदान करते रहें ।

विनीत

—संतोषचन्द्र चपलोद

श्रद्धा-सुमन

शुभ कामना

उपाध्याय ज्योतिर्विद पूज्य प्रवर श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज भूतपूर्व आचार्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज एवं आ० श्री मन्नालालजी महाराज के सम्प्रदाय के हैं। संघ एक्य योजना में विलीनीकरण होने के पश्चात् अब आप श्रमण संघ में मूर्धन्य मुनियों में से हैं।

सम्प्रदाय के नाते ऐसे मेरा सम्बन्ध अति सन्निकट एवं मधुर रहा है। कई बार उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं प्रवर्तकश्री जी के साथ सामाजिक एवं धार्मिक विचार-विमर्श, चर्चा-प्रश्नोत्तर एवं मार्गदर्शन लेने का मुझे स्वर्णिम अवसर मिलता रहा है।

उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज का बहुमुखी व्यक्तित्व किसी से भी छुपा हुआ नहीं है। जिनके मन-मोहन आनन पर सदैव शांति-समता सरलता की रेखाएँ मंडराई हुई नजर आती हैं। जिनके हृदय-मंदिर में करुणा का अपार-अमिट वैभव सुरक्षित है। फलस्वरूप प्रतिवर्ष हजारों नर-नारी उस करुणा-स्रोत से लाभान्वित हो रहे हैं। मैंने प्रत्यक्ष देखा एवं अनुभव किया है—आपकी अन्तरात्मा को प्रशस्त वातावरण प्रिय है। इसीलिए समय-समय पर आपके मुँह से संगठन की उद्घोषणा होती रही है।

प्र० श्री हीरालालजी महाराज का विमल व्यक्तित्व भी अनुपम रहा है। आपकी हँसमुख मुद्रा सहज में सभी को आकर्षित करती है। “साफ कहना—सुखी रहना” इस सिद्धान्त के अनुगामी हैं। आप स्वाभिमानी भी पूरे हैं। इन दिनों आप श्रमण संघ के प्रवर्तक पद को अलंकृत कर रहे हैं। आपने भारत के सभी प्रान्तों में विहार—यात्रा करके जिन-शासन की अनुपम प्रभावना की है। सश्रद्धा-सभक्ति युगल मुनियों के पावन चरणों में समर्पित श्रद्धा सुमन !

—फकीरचन्द मेहता, इन्दौर

संघों द्वारा शुभकामनाएँ

□ श्री रमेशमुनि महाराजश्री के समाचारों से मालूम हुआ कि उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं प्रवर्तक आगमतत्त्वविशारद श्री हीरालालजी महाराज का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। हमें अति प्रसन्नता हुई। महामनस्वियों का अभिनन्दन होना ही चाहिए।

—श्री शबे० स्थान० जैन संघ सिकन्दराबाद

संदेश

□ मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन की रूपरेखा पत्रिका प्राप्त हुई। हमारे सकल संघ द्वारा उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं प्र० श्री हीरालालजी महाराज का अभिनन्दन स्वीकृत हो।

—श्री श्वे० स्था० जैन श्रावक संघ, रायचूर

□ मुनिद्वय का आगामी वर्ष में अभिनन्दन किया जायगा। यह शुभ सूचना पाकर हमें खुशी हुई। जालना स्थानकवासी श्रीसंघ भी इस अभिनन्दन समारोह का सश्रद्धा-सभक्ति अनुमोदन करने में पीछे नहीं है। इन्हीं शब्दों के साथ शुभ कामना !

—श्री स्थानकवासी जैन संघ, जालना

□ हमें मेवाड़ भूषण श्री जी से एवं श्री रमेश मुनिजी महाराज के मुखारविंद से ज्ञात हुआ कि निकट भविष्य में उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं प्र० श्री हीरालालजी महाराज को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जायगा। स्थानीय श्रीसंघ भी इन महामुनियों के प्रति भक्ति एवं श्रद्धा के पुष्प समर्पित करता है।

—श्री स्थानकवासी जैन संघ, जलगांव

□ सुलेखक साहित्यकार श्री रमेश मुनिजी द्वारा हमें मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ की विस्तृत जानकारी मिली। हमारे संघ को प्रसन्नता इस बात की हुई कि मुनिद्वय (उ० श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं प्र० श्री हीरालालजी महाराज) का अभिनन्दन करना सचमुच ही श्रमण परम्परा की गरिमा की अभिवृद्धि है। इस धार्मिक आयोजन की सफलता के लिए हमारे संघ की शुभकामना !

—श्री स्था० जैन संघ, भुसावल

□ मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है। एतदर्थ हमारी भी शुभकामना आपके साथ हैं।

—श्री स्था० जैन संघ, जामनेर

□ अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन की रूपरेखा पढ़कर मन प्रसन्नता से भर उठा। साहित्य-कोष की अभिवृद्धि में अभिनन्दन ग्रन्थ मार्गदर्शक बनेगा, यही शुभकामना है।

—श्री जैन संघ, खण्डवा

□ उ० श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं प्र० श्री हीरालालजी महाराज, इन दोनों महामुनियों का श्रमण संस्कृति के विकास में प्रशंसनीय योगदान रहा है। वस्तुतः श्री संघों द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जायगा, यह हमारे लिए ही नहीं, अपितु सकल समाज के लिए गौरव की बात है। हमारा संघ भी मुनियों का अभिनन्दन करता हुआ फूला नहीं समाता है।

—श्री श्वे० जैन संघ, बुरहानपुर

सर्वदना भावाञ्जलि

शुभ

कामना

गुरुदेव ज्योतिषाचार्य शासन सम्राट मालवरत्न श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं प्रवर्तक शास्त्रज्ञ पं० मुनि श्री हीरालालजी महाराज के अनुपम व्यक्तित्व एवं अनुकरणीय कृतित्व से जैन समाज अर्हनिश धन्य होता आया है तथा इनके सद्गुणों की सुवास से इनका अनुयायी वर्ग प्रतिपल सुवासित एवं गौरवान्वित हो रहा है। इनके सुकोमल हृदय में जन-जन को आकर्षित करने एवं शांति स्रोत प्रवाहित करने की शक्ति विद्यमान है जो इनकी बहुमुखी प्रतिभा के प्रतीक अनेक धार्मिक कार्यों से सुशोभित है।

माँ भारती के इन दो वरद पुत्रों ने निज जीवन का प्रत्येक क्षण 'परहिताय, परसुखाय' में लगाकर अज्ञानान्धकार को मूलतः मिटा कर ज्ञान का आलोक फैलाया है।

इनका सात्त्विक तपःपूत जीवन, वीतरागमुद्रा, भव्य विचारणा जन्म-जन्मांतरों की अमूल्य धरोहर है। हमारे ये दोनों ही गुरुदेव जीवन कला के सच्चे कलाकार, अहिंसा के परम उपासक, करुणा के महासागर, समाज के सात्त्विक सुधारक एवं योग्यतम धर्मनेता हैं।

जब-जब भी समाज में कटुता, वैमनस्य और द्वेष का विष घनपा इन दिव्य भव्य सन्तद्वय ने महादेव बनकर इसका पान किया और समाज की विघटन से रक्षा की।

सुखद स्मृतियों के कारण आज भी दोनों महान विभूतियों का जीवन प्रेरक एवं ज्योतिर्मय है। हमारे शासन सम्राट एवं प्रवर्तक का भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं कर्मयोग का स्रोत सतत जीवन पथ पर प्रवाहमान है। इनके ज्ञान की मधुर स्वर लहरी में आज भी वही ओज विद्यमान है जो पूर्व में था।

शासनदेव से करबद्ध प्रार्थना है कि ये ज्ञान के निर्मल प्रकाश स्तम्भ सहस्रों वर्षों तक अपने तेज से अज्ञानान्धकार में भटकते हुए जनमानस को प्रभावित करते रहें और मुमुक्षुओं को मोक्षगामी बनने का पथ-प्रशस्त करते रहें।

—चांदमल मारू (मंदसौर)

(प्रधानमंत्री—अ० भा० श्वे० स्था० जैन श्रावक संघ, जनकपुरा, मंदसौर)

□ जैनधर्म त्याग एवं करुणा की सुदृढ़ नींव पर टिका हुआ है। कल-कल बहती हुई गंगा की पवित्र धारा के समान जिस व्यक्ति का हृदय दया एवं करुणा से ओत-प्रोत होता है वहीं मानव-जीवन का विकास कर सकता है। सन्त जीवन मक्खन के समान दयार्द्र होता है। अग्नि के प्रसंग से मक्खन पिघल जाता है। उसी प्रकार दयालु व्यक्ति भी दीन-दुःखी, अनाथ

संदेश

व्यक्तियों की करुण पुकार सुनकर मन, वचन, काया से उन्हें सुखी बनाने में जुट जाते हैं।

करुणासागर मालवरत्न पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के वयोवृद्ध आगमज्ञ स्थविर मुनिराज हैं। आपकी ७२ वर्ष की सुदीर्घ संयम साधना निर्मल एवं सुदृढ़ है। आप शान्त-दान्त, गम्भीर एवं प्रसन्नमुखी मुनिराज हैं। आपकी रग-रग में करुणा की धारा प्रवाहित है। आपके सदुपदेश से स्वधर्मी सहायक फण्ड कई स्थानों पर चल रहे हैं। ज्योतिष एवं जैनागमों का तलस्पर्शी गहरा पाण्डित्य आपकी मधुर वाणी में व्याप्त है। आपकी ८५ वर्ष की वृद्धावस्था में भी स्मरण-शक्ति बहुत तेज है। एक बार किसी से परिचय हो जाता है तो उसे कभी भूलते नहीं हैं। आपके सान्निध्य में अनेकों मुनिवरों ने ज्ञान-ध्यान की वृद्धि की है। आपके अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण की मंगलमय वेला में हम भावाञ्जलि अर्पित करते हुए सुदीर्घ संयमी जीवन की प्रार्थना करते हैं।

□ सन्त जीवन गंगाजल के अजस्र प्रवाह की भाँति निर्मल एवं पवित्र होता है। गंगा जहाँ-जहाँ पहुँचती है वहाँ-वहाँ का वातावरण सुरम्य एवं मनोहारी हो जाता है, सरसता व्याप्त हो जाती है। ठीक इसी प्रकार सन्त समागम से भव-भव के पातक हट जाते हैं। अज्ञानान्धकार मिटकर ज्ञान-ज्योति प्रकट हो जाती है। प्र० श्री हीरालालजी महाराज स्पष्टवक्ता एवं क्रियाशील आगमप्रेमी सन्त हैं। आपने अपने संयमी जीवन में पादविहार कर सुदूर प्रान्तों में जैसे कन्याकुमारी, आन्ध्र प्रदेश, कर्णाटक, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, उत्तर-प्रदेश, बंगाल, नेपाल, गुजरात आदि में धर्म का प्रचार किया है। आप सरल स्वभावी, निष्कपट जीवन के मुनि हैं। आपने अपने प्रवास काल में अनेक स्थानों पर रचनात्मक प्रवृत्तियों की स्थापना करवाई है।

२०२७ का वर्षावास मेवाड़ की वीर भूमि चित्तौड़गढ़ में हुआ। आपकी अमृतमय वाणी से प्रभावित होकर श्रावक संघ ने “जैनदिवाकर शिक्षण संस्था” की स्थापना की है। जो आज भव्य इमारत के रूप में अपना कार्य प्रगतिशील बनकर कर रही है। जहाँ पर बालक-बालिकाओं में धार्मिक संस्कार मजबूत बनाये जाते हैं। आपकी स्वर्ण जयन्ती के शुभावसर पर हम आपके पावन चरणों में भावाञ्जलि अर्पित करते हुए शासनेश से प्रार्थना करते हैं कि—आप दीर्घायु बनकर जैन शासन के गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखें।

—भवदीय

मोतीलाल पटवारी

मंत्री, वरुण० स्था० जैन श्रावक संघ, चित्तौड़गढ़

भारत के महान् ज्योतिर्धर

शुभ

कामना

संत शिरोमणि, मालवरत्न, उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब के प्रति एक भावांजलि—

पंडितरत्न, उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब बाल्य अवस्था से ही इस भौतिक धरातल से ऊपर उठकर अध्यात्म की ओर अग्रसर हो गये हैं। ऐसे प्रमाण भारत की पावन भूमि पर विरल ही हैं।

आपकी मधुर वाणी, सरल व्यवहार, स्पष्ट विचार, परहित की असीम भावना आपकी अपनी विशेषताएँ हैं, जो मानव मन को सहज ही प्रमुदित कर देती हैं।

आपका व्यक्तित्व इतना व्यापक एवं विराट है कि वह किसी भी सम्प्रदाय विशेष के घेरे में नहीं बंधता। प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय तथा सम्प्रदाय के प्रति सहानुभूति, प्रीतिभाव, श्रद्धा एवं आदर आपके समग्र जीवन के विराट तत्त्व हैं।

अभी तक के दीर्घायु जीवन में शिष्य परम्परा के प्रति कभी भी मोह नहीं रहा, जबकि समस्त संत मण्डल आपको अपना आराध्य मानते हैं। इसका कारण है कि आपने सदैव संतों को आत्मीयता, स्नेह एवं उदार हृदय से अपने सांनिध्य में रखा। तथा साधना के पथ पर सभी को अग्रसित करने में आप प्रकाश स्तम्भ एवं प्रेरणा के स्रोत बने रहे।

आपकी प्रतिभा गुरु गौतम की प्रतिभा का आभास सहज ही करा देती है। जो भी संत आपके सम्पर्क में एक बार आ जाता है वह आजीवन आपके चरणों में नतमस्तक होकर अपने आपको गुरु-चरणों में समर्पित कर गौरव का अनुभव करता है।

आपके असीम हृदय की असीम उदारता के कारण हजारों व्यक्ति अपनी समस्याएँ, शिकायतें तथा याचनाएँ लेकर आते हैं, जिन्हें आप सदैव सन्मान एवं आदरपूर्वक सुनते हैं तथा यथासम्भव उनका तत्काल निराकरण करते हैं।

आपका करुणासागर हृदय, पर-दुख-कातर है व सदैव ही दीनों के दुःख से पसीजता रहता है। दीन व्यक्ति, दुःखी व्यक्ति आपके दर्शन मात्र से आत्मिक शांति एवं एक अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है।

एक चमकती ज्योति

प्रातःस्मरणीय, संतरत्न, शान्ति निकेतन, दिव्य संस्कारों की प्रतिच्छाया, त्यागी एवं तपस्वी प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज साहब भी भारत के एक महान संत हैं। आपके दिव्य गुणों का स्मरण करना भी इस पुण्य पर्व पर अतिशयोक्ति नहीं कहा जा सकता।

संदेश

श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब के साथ आपका भी अभिनन्दन होना आपकी त्याग-तपस्या का प्रताप ही परिलक्षित होता है।

अतः ऐसे महान् संतों को सन्मानित करना एवं अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करना हमारे लिये एक अत्यन्त गौरव की पुण्य वेला है।

इस महान् एवं अविस्मरणीय अवसर पर आत्मा की अनन्त गहराइयों में से यही प्रार्थना करता हूँ कि युग-युगों तक आप जैसे महान् संतों का सान्निध्य, शरण और मार्गदर्शन मुझे तथा प्रत्येक मानव को प्राप्त होता रहे। हमारा यह सौभाग्य रहे कि हम अपनी समस्त सेवा भक्ति आपश्री के चरणों में अर्पित करते हुए अपने आपको कृतार्थ समझें।

आपका भक्त

सुजानमल सेठिया

नयापुरा चौक, उज्जैन, (म० प्र०)

अभिवन्दना

जैन समाज में एक मधुर सूक्ति अत्यन्त प्रसिद्ध है—

“षट्काया ना पियर”

अर्थात् साधु-साध्वी छःकाया के पीहर हैं। वास्तविक रूप से इस बात में चमत्कारिक सत्यता है। पीहर में पुत्री पूर्णरूप से निर्भय, सुरक्षित एवं पोषित होती है। उसका जीवन-समय आमोद-प्रमोद के साथ व्यतीत होता है। ठीक इसी प्रकार छःकाया भी साधु-साध्वी के रूप में पितृ कुल पाकर सदा-सर्वथा चैन से जीवन यापन करते हैं।

हमारे परम श्रद्धेयवर्य पंडितरत्न मालवरत्न ज्योतिर्विद् उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज के व्यक्तित्व की महान शोभा और भी बढ़ जाती है जबकि हम पाते हैं कि वे छःकाया के ही पीहर नहीं हैं वरन् इससे भी ऊपर उठकर वे मानव समाज के लिये भी पीहर के समान हैं।

आपकी दया एवं करुणामयी भावना की साकारता से सभी परिचित हैं। निर्धन तथा दुःखी साधर्मी भाई-बहिनों की सहयोग-सेवा का प्रवृत्ति-पाठ आपने सुन्दरतम ढंग से समाज में फैलाया। आज कई सम्पन्न व्यक्ति अपने ही भाई-बहिनों की आर्थिक दान की सेवा करते अघाते नहीं हैं। दान देने के स्रोत संदेश के लिये कई जन आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। असहाय वर्ग भी आपश्री का पूरा-पूरा उपकार मानते हैं। अतः आपको प्राणो मात्र का भी सच्चा पीहर कहा जाये, तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है।

शुभ कामना

आपसे महान् मुनि के अभिनन्दन की इस मांगलिक परम्परा पर हम श्रद्धामय भावांजलि समर्पित करते हुए गौरवान्वित मान रहे हैं। जिन्होंने अपनी सुदीर्घ संयम पर्याय के जीवन में व्यक्ति एवं समाज को पवित्र संदेश के रूप में सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र्याराधना की ओर अग्रसर किया। हम चाहते हैं कि आपश्री अनेकानेक वर्षों तक हमारे लिये पितृकुल के समान मार्गदर्शन प्रदान करते रहें।

जैनधर्म की साधना, सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र्याराधना से संयुक्त है। ऐसी सर्वोच्च साधना के द्वारा ही मुमुक्षुजन अपना आध्यात्मिक विकास कर सकने में सक्षम होते हैं। इस साधना के सिद्धि लाभ से ही तो आत्मा भी परमात्मा बन जाती है। अनंत-अनंतकाल से भटकती हुई आत्मा को इस सद्बोध की प्रेरणा सदा से मिलती आई है, मुनि जनों से ! इस मुनि-प्रेरणा से जीवन अपने सच्चे स्वरूप में लहराने लगता है और उसे शाश्वत आनन्द की उपलब्धि हो जाती है।

इन्हीं परम पावन परम्परा के परिचायक जैनागमतत्त्वविशारद, प्रवर्तक, परम श्रद्धेयवर्य श्री हीरालालजी महाराज हैं। जिन्होंने जैनागम के तात्त्विक रहस्यों को प्रत्येक समय सामान्य जनों को उनके हितार्थ उजागर किया। उनको जिनवाणी के पवित्र माध्यम से सुन्दरतम रूप से मार्गदर्शन दिया। जैनागम स्वाध्याय एवं ज्ञानाभ्यास की अभिवृद्धि की। आप निरन्तर ही प्रतिबोध देने में कभी हिचकिचाते नहीं हैं।

संयम साधना के साथ ही साथ आपकी संघ-सेवायें भी उल्लेखनीय हैं। आप कार्य करने में तथा उसमें लगन से जुट जाने में ही विश्वास करते हैं। स्वयं की सजगता ही आप पसन्द करते हैं। प्रमादी जीवन का आपके पास कोई मूल्यांकन नहीं है।

ऐसे परमोपकारी मुनिप्रवर के प्रति हमारी यही आमोदमयी भावना है कि हमारे संघ गौरव प्रवर्तक श्रद्धेयवर्य हमारे जीवनपथ को आलोकित करके संसार के भविष्यो को भी मोक्षमार्ग की प्रशस्तता की ओर अग्रसर करते रहने की महती कृपा करें।

अध्यक्ष :

लक्ष्मीचन्द तालेडा

मंत्री :

अभयराज नाहर

श्री जैनदिवाकर मित्र मंडल
महावीर मार्ग, ब्यावर (राज०)



संदेश

बेजोड़ कर्मठ व्यक्तित्व

संयमी संस्कृति ही वास्तव में संत-साधना संस्कृति है। जिसे सर्वोत्कृष्ट संस्कृति के रूप में सम्बोधित किया जा सकता है। जो जीवन-व्यक्तित्व को संवार-संस्कार दे एवं अखंड आनन्द की अनुभूतियों के वैभव से परिपूर्ण करदे, बस ! वही संस्कृति श्रेष्ठता की अधिकारी है। इसकी अविच्छिन्न धारा अभी तक श्रेष्ठ संतों-मुनियों की सक्षमता से चली आई है और भविष्य के अनन्त काल तक ज्यों की त्यों प्रवाहित रहेगी।

इस संयम-साधना की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में आज भी हमारे सम्मुख उपाध्याय, मालवरत्न, ज्योतिर्विद, महासंतस्थविर पदविभूषित श्रेष्ठ श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एक जीवंत ज्योति विराजित हैं। जिनकी संयम साधना की पर्याय आज के भौतिक युग के लिये आश्चर्यपूर्ण चमत्कृति है। वाणी एवं विचार स्फटिक सदृश निर्मल तथा हर पल माधुर्यता से ओत-प्रोत है। करुणा एवं वात्सल्यता के आप अक्षय भंडार हैं। आपको असहाय, दीन-दुःखी भाई-बहिनों एवं बच्चों का आत्मीय सहायक या प्रतिपालक भी कहा जाये, तो किंचित् भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। समाज का ऐसा वर्ग भी है, जो कि आप से निरन्तर ऐसी शुभ प्रेरणा पाकर साधर्मी-सेवा करके स्वयं को कृतार्थ मानता है। साधर्मी-सेवा की आप एक जीवित संस्था ही तो हैं। जहाँ अभेद-भाव रूप से, यज्ञो-कामना से रहित, बिना शोर किये अपने कर्मठ कार्यक्रम में संलग्न हैं। ऐसी मिसाल दुर्लभ रूप से ही मिला करती है।

ज्योतिष-शास्त्र के आप प्रकांड विद्वान् हैं। जैनागमिक भूगोल एवं खगोलीय रहस्यों की गुत्थियों को जब आप आज के विज्ञान के संदर्भ में सुलझाते हैं, तो एकबारगी श्रोता मनोमुग्ध से हो जाते हैं। यदि वास्तव में देखा जाये, तो आपके अपने सुदीर्घ जीवन की अनुभूति से सम्पन्न एवं शताधिकदशकों की पारंपरिक विरासत से प्राप्त ज्ञान-विज्ञान की साकार वैभव विभूति है।

आज हमारे ऐसे पुण्यवान संत प्रवर ज्योतिर्धर उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज की पावन सेवा में भावमयी श्रद्धा के साथ अभिनन्दन एवं अभिवन्दन !

सुजानमल चाणोदिया

अध्यक्ष :

बापूलाल बोधरा

मंत्री :

श्री जैनदिवाकरजी महाराज का श्रावक संघ

नीमचौक : रतलाम (म० प्र०)

सिद्धान्त-साधना के वरिष्ठतम मुनि !

शुभ
कामना

जैनसिद्धान्त सार्वभौम सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त की सहजतम महानता इसी में है, कि यह संघर्ष को नहीं, वरन् समन्वय को महत्त्व देता है। इस समन्वय का शृङ्गार यदि धरती पर कर दिया जाये, तो स्वर्ग की शोभा हमें सर्वत्र दिखाई दे जाये। जैनागम के सत्य सिद्धान्त बिखराव-अलग-आव की भूमिका वाले जीवन में साधना की एकरूपता एवं एकसूत्रता का बीजारोपण कर देते हैं जिससे कि अध्यात्म विज्ञान हरदम फलता चला जाये।

इस जैन जीवन विज्ञान के पोषक, प्रवर्तक, जैनागमतत्त्वविशारद, पंडितरत्न श्रद्धेय श्री हीरालालजी महाराज सुदीर्घ संयम साधना के एक वरिष्ठतम मुनिगण हैं। आपके पास प्रतिपल सिद्धान्त-साधना की ज्योति प्रकाशित मिलेगी। आगमों की स्वाध्याय एवं चिंतन-पूर्ण तात्त्विक चर्चा में आपकी प्रिय रुचि रहती है। इस उज्ज्वल दर्शन के आप उद्भट विद्वान हैं। अनेक साधु-साध्वी आपसे आगम वाचना द्वारा महाज्ञान से प्रवेश परिचय पाते हैं।

आपके द्वारा संघ एवं समाज में निरन्तर ही ज्ञान-दर्शन एवं चारित्र्य की ओजस्वी त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है। भव्य प्राणियों की सुप्त चेतना को आपने जागरण की नयी दिशा दी है, प्रेरणा प्रतिबोध का प्रखर प्रकाश दिया है।

इन्हीं मुनिपुंगव को आज की स्वर्णिम बेला में हम प्रणम्य अभिनन्दन सादर समर्पित करते हुए हार्दिक कामना प्रगट करते हैं, कि आप युग-युगों तक जैनत्व-साधना की महानता का परिचय इसी भाँति प्रदान करके विश्व-अभ्युदय की ओर अग्रसर करते रहें।

सुजानमल चाणोदिया

अध्यक्ष :

बापूलाल बोधरा

मंत्री

श्री जैनदिवाकरजी महाराज का श्रावक संघ
नीमचौक : रतलाम (म० प्र०)

संदेश

दो पूज्य विभूतियाँ

□ स्थविरवर उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज

मानव के पास जहाँ चेतना का अजस्र स्रोत है, वहाँ उसके पास जरा-मरण के वेग से मुक्त होने के अमोघ उपाय हैं। जहाँ उसके पास देवत्व की चरम ऊँचाइयों पर खिलने वाले फूलों को प्राप्त करने का स्वतन्त्र अधिकार है, वहाँ उसके पास स्मृति का ऐसा अद्भुत कोष भी है जिसमें उसने इसी जन्म के नहीं जन्म-जन्मान्तरों के परिचय पत्र एकत्र किए हुए हैं। सौभाग्य से मैं भी जैनत्व से मण्डित महिमाशालिनी मानवता को प्राप्त कर उस स्मृतिकोष को संजोए बैठा हूँ। मालवरत्न उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं जैनागम-तत्त्व-विशारद प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज के सम्मानार्थ अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रस्तुतीकरण की चर्चा पढ़ते ही मेरे स्मृतिकोष में सुरक्षित दोनों महामानवों के पावन चित्र उभर कर मेरे सामने आए।

सन् १९६४ में अजमेर साधु-सम्मेलन के समय तथा सन् १९५६ के भीनासर साधु-सम्मेलन की पावनवेला में श्री कस्तूरचन्दजी महाराज का सांनिध्य मुझे प्राप्त हुआ। तेरह वर्ष पूर्व का दर्शन-सांनिध्य भी आज जैसा लग रहा है। उनके प्रौढ़ दार्शनिक चिन्तन, वाणी के मधुर एवं क्रान्ति विशिष्ट प्रवाह, साधना के प्रति अनन्य निष्ठा एवं विरक्त हृदय में समस्त-सन्त-समूह के प्रति सम्मान देखकर मैं उनके प्रति आकृष्ट ही नहीं हुआ, अपितु श्रद्धान्वित भी हो उठा। साधुत्व की समस्त सम्पत्तियाँ मानों उनके चारों ओर एकत्र होने में ही अपना गौरव समझ रही थीं। मैंने जो उनमें सर्वथा वैशिष्ट्य पाया वह था कि वे प्रत्येक समस्या की गहनतम जड़ों का स्पर्श करके उनके सर्वाङ्गीण रूप को जानकर सद्यः चिन्तनशीला प्रतिभा द्वारा उनके सुलझे समाधान प्रस्तुत कर देते थे।

वे ज्योतिर्विद् के नाम से विख्यात हैं। ज्योतिर्विद् का प्रसिद्ध अर्थ तो ज्योतिष-शास्त्र का वेत्ता ही होता है। हो सकता है उन्होंने इस शास्त्र की गहनतम गहराइयों में गोते लगाए हों, परन्तु साधुता की समतल पावन भूमि पर ज्योतिष-शास्त्र की वनस्पतियाँ अपने सौन्दर्य का पूर्ण विकास नहीं कर पाती हैं, क्योंकि साधु के लिये उसकी उपयोगिता नगण्य सी होती है। परन्तु मेरी दृष्टि में श्री कस्तूरचन्दजी महाराज सच्चे अर्थों में ज्योतिर्विद् हैं, क्योंकि आत्म-साधना के विशाल गगन में चमचमाते ज्योतिस्वरूप 'आत्मा' को वे भली प्रकार जानते हैं, उसके स्वरूप को समझते हैं, वे साधना-सम्पन्न ज्योतिर्विद् हैं—यही मेरी धारणा है।

श्री कस्तूरचन्दजी में संयम, साधना, साधुत्व समता आदि जब हम अनेक खूबियाँ देखते हैं तो कभी-कभी आश्चर्यान्वित हो उठते हैं, परन्तु मेरा मन आश्चर्यचकित नहीं होता, क्योंकि मुझे ज्ञात है कि उनके दीक्षा-गुरु श्री खूबचन्दजी महाराज इन समस्त खूबियों के अक्षय भण्डार थे। आज ८४ वर्ष की अवस्था में भी उनकी जैन-शासन को गौरवशाली

बनाने की लगन, आत्मोत्थान के साथ-साथ समग्र मानवता के उद्धार का दृढ़ संकल्प, उनकी अपराजेय विद्वत्ता का अभिनन्दन करके यदि समाज अपने कर्तव्य का पालन कर रहा है तो मैं समाज की इस कर्तव्य-निष्ठा का अभिनन्दन अवश्य करूँगा।

शुभ
कामना

□ प्रधर्तक श्री हीरालालजी महाराज

साधु-शिरोमणि श्री हीरालालजी भी मेरे स्मृति कोष के एक अनुपम रत्न हैं। जब भीनासर-सम्मेलन के अवसर पर मैंने सुना कि आप कलकत्ता में चातुर्मास करके १३०० मील की सतत दुर्गम यात्रा करते हुए यहाँ पधारे हैं तो मेरा हृदय उनकी संघ-भक्ति के गौरवशाली रूप को देखकर उल्लसित हो उठा था।

जयपुर में मैंने उनकी विद्वत्ता के विजयी स्वरूप के दर्शन किये थे। उनके शान्त स्वभाव को देखकर मुझे साहित्य श्रुत शान्त रस के मानो साकार दर्शन ही हो गए थे।

सं० २००८ में मैंने उनके दर्शन लुधियाना में किये थे। उनकी प्रवचन-प्रभावना से पंजाब का जैन संघ ही नहीं साधु-सती-मण्डल भी प्रभावित हो उठा था। उनकी "निर्ममो निरहंकारः यतश्चित्तेन्द्रियक्रियः" के पावन मूर्ति आज भी पंजाब के लोग भूले नहीं हैं।

कभी-कभी संयोग बड़े प्रबल हो उठते हैं। यह संयोग का प्राबल्य ही तो था कि उन्होंने जड़ चञ्चला लक्ष्मी से उदासीन होने के लिए पिता लक्ष्मीचन्दजी से विदाई ले ली और उन्हें मोक्ष-लक्ष्मी का उपहार देने वाले गुरु श्रद्धेय लक्ष्मीचन्दजी मिल गए। तब से वे निरन्तर मोक्ष लक्ष्मी के पावन मन्दिर की ओर निरन्तर बढ़ते चले जा रहे हैं।

उन्होंने महर्षियों के "चरैवेति चरैवेति" मन्त्र का मनन करते हुए राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, पंजाब, आंध्र, कर्नाटक, तामिलनाडु अर्थात् आसेतुहिमाचल भारतीय धरा की गोद में खेलती मानवता को अपने प्रवचनामृत का पान कराकर अपनी स्व-पर-कल्याण साधना को पूर्ण किया है। आज ६६ वर्ष की अवस्था में भी वे अपने साधना-पथ पर बढ़ते हुए आत्म-शुद्धि के साथ-साथ लोकमानस को भी विशुद्ध बना रहे हैं। अतः लोकमानस को उनका अभिनन्दन करना चाहिये और वह कर रहा है यह सन्तोष का विषय है।

मैं भी एक साधु हूँ अतः विरक्ति ही मेरा सम्बल है। इसलिये मैं यह तो नहीं कह सकता कि मुनिद्वय से मेरा प्रेम है, अनुराग है, परन्तु यह अवश्य कह सकता हूँ कि उनका साधना-पथ मेरे लिये आदर्श है। आदर्श अनुकरणीय होता है, अतः सब साधु उनके साधना-मार्ग का अनुकरण करें। मेरी यही अभिलाषा मुनिद्वय का सादर अभिनन्दन करती है।

—उपाध्याय श्रमण फूलचन्द

२४-११-७६ : जैन स्थानक, लुधियाना

संदेश

महाप्रतापी पयस्विनी भूमि तू धन्य है !

संसार सागर की अनन्त गहराइयों में सीप भी मिलती हैं तो मोती भी मिलते हैं। सीप का महत्व नगण्य सा है, मोती का महत्व महत्वपूर्ण व महार्घ है। मोती में स्थित पानी का मूल्य होता है। इसी प्रकार संसार में अनेकों प्राणियों का प्रादुर्भाव होता है, जन्मते हैं, मरते हैं, अनेक प्रकार के खेल रचकर ज्यों आये त्यों ही चले जाते हैं, पर उन्हें कोई स्मरण नहीं करता, न कोई माला ही फेरता है किन्तु जो यहाँ आकर कर्मों की शुभ ज्योत्स्ना को विकसित करता है। सदाचरणों से, मधुरवाणी से व मधुर व्यवहार से जग को आलोकित करता है उसी का इस धरातल पर अवतीर्ण होना सार्थक है “स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्” संसार में उसी प्राणी का आना सार्थक है जिससे वंशकुल गौरव की अभिवृद्धि हो।

परम श्रद्धेय, ज्ञान गरिमा से सम्पन्न गुणाकर, जनमानस के तरल-तमभावों को पैनी सूक्ष्मग्राहिणी दृष्टि से निरीक्षक, शास्त्रभावों के पारंगत, मनीषी, ज्योतिर्विद्या पारंगत मालवर्त्तन स्थविर पद विभूषित श्री कस्तूरचन्दजी महाराज की मैं किन शब्दों से संस्तुति करूँ चूँकि—

पृथ्वी का कागज करूँ, कलम करूँ वनराय।

समुद्र की स्याही करूँ, तो भी गुण कहा न जाय ॥

भारतवर्ष महापुरुषों सन्तपुरुषों की प्रसविनी भूमि है। रणवीरों युद्धवीरों की युद्धभूमि है, विचारक मनीषियों की विचारभूमि है तो त्यागियों की त्यागभूमि है। यहाँ पर अनेक नररत्न, देशरत्न, समाजरत्न, युद्धरत्न अवतीर्ण हुए हैं। जिन्होंने अपने उज्ज्वल पवित्र क्रिया-कलापों से स्नेह तरल सरल भूमि को अपना कर जनमानस को आल्हादित एवं आप्लावित किया है।

‘मालव माँ का पेट है’ की कहावत उसकी शस्य श्यामला जल वृक्षों की परिपूर्णता का बोध कराती है। उसी के अंग जावरा अपने तन्वावी शाही शान-शौकत का दर्शक एक मध्यमाकार शहर है। माता-पिता के लाङ्प्यार से पालित, स्नेहरस से सिञ्चित युगल बन्धु संसार सागर के किनारे की प्राप्ति की राह देख रहे थे। मार्ग सामने था पर मार्गदर्शक की प्रतीक्षा थी। वैराग्य अपने पूर्ण सुरभित सद्गुणों के साथ आकर उनके हृदय मंदिर में प्रवेश कर रहा था। कुमति अपनी तीव्र दृष्टि से वैराग्य को हटाने के लिए पूर्ण तैयारी के साथ आयी थी पर प्रशमन भावों की दृढ़ता से कुमति परवश हो गई थी। संयमभावों की दृढ़ता उनके हृदय मन्दिर पर अंकित होगई थी।

अपने समय के ख्याति प्राप्त अथाह ज्ञान गरिमाशील कविकुल भूषण शास्त्रपारंगत श्री खूबचन्दजी महाराज साहब विचरण करते हुए जावरा

शुभ कामना

पधारे। युवक कस्तूरचन्द भी अपने भावों की निर्मलता से अनुप्राणित होकर अपने अग्रज केसरीचन्दजी के साथ वाणी श्रवणार्थ पहुँचे। गुरुदेव की वाणी में जादू का सा असर था। जन-जन के मन-मन में अभिनव जाश्रुति का संचार कर संयम निर्मल जलधारा से हृदय मन्दिर में आपूर्ति करदी।

संयम क्या है? इन्द्रियों की चंचलता पर अंकुश लगाना! जो मनीषी मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण करता है वही श्रेष्ठ पथ का अनुसरण करके आत्मसाधना कर सकता है। उसका ही आत्मोद्धार निश्चित है।

गुरुदेव की वाणी ने जादू का सा असर किया। दोनों भाइयों को संसार की असारता का प्रत्यक्षतः अनुभव होने लगा। उन्होंने सुपथ अपनाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। गुरुदेव के चरण कमल में जाकर फूलों से कोमल संयम जीवन को समझकर वज्रादपि कठोर मार्ग पर साधक रूप में चल पड़े। भगवान महावीर के शब्दों में—

जहा कुम्मे स अंगाई सए देहे समाहरे।

एवं अंगाइं मेहावी अज्जोप्येण समाहरे ॥

विकास की ओर बढ़ने की भावना रखने वाले मानव के लिए संयमी वृत्ति का विकास करना अनिवार्य है। ऐन्द्रिक, शारीरिक और मानसिक शक्तियों का सुकार्य और परोपकार में व्यय करना ही संयम है। यही सुख का राजमार्ग है। श्रद्धेय श्री जी का पूरा जीवन एक स्वच्छ दर्पण के समान पवित्र एवं समुज्ज्वल है।

जिस दिन विक्रम सम्वत् १९६२ में रामपुरा मध्यभारत के एक जाज्वल्यमान ग्राम में आपका दीक्षा समारोह हुआ उसी दिन से आपने अपना कार्यक्रम अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर मोड़ दिया। आपने अपना उद्देश्य संयमाराधना ज्ञानाराधना ही बना दिया।

आपका हृदय करुणा से आप्लावित रहता है। जहाँ कहीं भी दीन दुःखी, अपाहिज दृष्टिगोचर होते हैं तो वहाँ आपका हृदय करुणा से भर जाता है। ऐसे हजारों प्राणी हैं जिन पर आपका वरद हस्त आच्छादित है।

सर्वप्रथम आपके दर्शनों का सौभाग्य “सोजत सम्मेलन” में हुआ था। उस समय मैंने पाया कि आपके नेत्रों में करुणा का अथाह सागर झौंके मार रहा है। उपनेत्रों से टपकता हुआ प्रकाश अमृत बनकर सभी को अमर कर रहा है। फिर तो अनेक बार आपके दर्शनों का सौभाग्य मिलता ही रहा।

इस अभिनन्दन समारोह में अपनी शुभाकांक्षा इस भावना के साथ पूर्ण करता हूँ कि सवासौवीं जयन्ती समारोह के उपलक्ष्य में आयोजित सभा में मुझे भी श्रद्धा कुसुम चढ़ाने का समय मिले, वस इसी भावना के साथ—

समता शुचिता सत्य समन्वित।

पावन जीवन - दर्शन ॥

आगमविचारक करुणहृदय निस्पृह साधक।

लो शत शत निर्मल का अभिनन्दन ॥

—भगवती मुनि ‘निर्मल’

संदेश

मालवरत्न गुरुदेव श्री कस्तूरचंदजी महाराज

कोटि कोटि वन्दन करूँ, श्री सद्गुरु चरणार ।
 श्रद्धा भक्ति प्रेम के, घरूँ पुष्प उपहार ॥
 पद पंकज की सुरभि से, सुरभित हुआ समीर ।
 श्री चरणन के स्पर्श से, पावन गंगा नीर ॥
 मृदुपद नख की ज्योति से, दस दिशि होत प्रकाश ।
 पाद-पद्म के स्मरण से, होता भव भय नाश ॥
 चरण रेणु धरि सीस पर, उघड़त नयन विवेक ।
 संशय भ्रम बहि जात है, सब में सूझत एक ॥
 सकल गुणों के धाम हैं, महिमा अगम अपार ।
 विधि हरि हर अरु शेष भी, पाय सके नहीं पार ॥
 दीनबन्धु करुणायंतन, भक्त जनों की टेक ।
 प्रेम भक्ति अवतार हैं, संत शिरोमणि एक ॥

—शिरोमणि चंद्र जैन

जैनागमतत्त्वविशारद प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज

शशि शीतल श्री चरण हैं, श्री नख ज्योति अपार ।
 दण्डवत वन्दन मैं करूँ, भक्तन के आधार ॥
 सद्गुरु चरण स्पर्श से, होता हर्ष अपार ।
 नाम मंत्र की नाव से, करते हैं भव पार ॥
 विश्वरूप गुरुदेव जी, निराकार साकार ।
 अमित है महिमा आपकी, अगम अनंत अपार ॥
 अति कोमल मृदुगात है, महाबाहु शुचि भाल ।
 आयत वक्ष सुरम्य है, उन्नत नयन विशाल ॥
 नमस्कार ते मिटत हैं, रोग-शोक त्रय ताप ।
 मानस निर्मल होत है, उर में रहत न पाप ॥
 पुनि पुनि वन्दो गुरुचरण, जो है अग जग टेक ।
 जाके सुमिरन से कटें, आवागमन अनेक ॥

—शिरोमणि चंद्र जैन

अभिनन्दन श्लोका

□ बाबूराम शास्त्री, उज्जैन

शुभ
कामना

नन्दाब्ध्यङ्क^१ महीमिते रविदिने, ज्येष्ठासिते पक्षके ।
जातो यस्त्रिजयातिथौ शुभतमे, श्री जावरे मालवे ॥
माता फूलि सती च यस्य चपलोत्, रत्यादिचन्द्रः पिता ।
तं भक्त्या सततं नुवे गुरुवरं, कस्तूरचन्द्राभिधम् ॥१॥

नेत्रर्तुग्रहेमेदिनी^२ परिमिते, श्री खूबचन्द्रान् गुरुन् ।
यातस्तत्पुरसन्निधौ गुरुवरं, ज्ञानामृतंस्तोषितः ॥
निर्विण्णो भवसन्ततेः समभवत्, दीक्षार्थितां यो ययौ ।
तं भक्त्या सततं नुवे गुरुवरं कस्तूरचन्द्राभिधम् ॥२॥

आचार्यः परिचिन्त्य साधुभवने, प्राप्तोत्सुकं तन्मनः ।
मङ्क्षु रामपुराय यं प्रदिदिशे, प्राप्तुं मुनेः सम्पदाम् ॥
तत्र श्री गुरुनन्दलालसविधे, दीक्षां प्रपेदे पुनः ।
तं भक्त्या सततं नुवे गुरुवरं, कस्तूरचन्द्राभिधम् ॥३॥

श्री श्री श्री गुरुनन्दलालमुनिराट्, कृत्वा मुनिं तं पुनः ।
नेश्राये गुरु खूबचन्द्र सविधे, सम्प्रेषयामास यम् ॥
तत्रागत्य पपाठ यो गुरुवरात्, भाषाञ्च हिन्धादिकां ।
तं भक्त्या सततं नुवे गुरुवरं, कस्तूरचन्द्राभिधम् ॥४॥

योगभूषण खूबचन्द्रमुनि यै, ज्ञानैस्तथा शिक्षितः ।
जातस्तत्र सुधी सनिश्चलमतिः, ज्योतिर्विदामग्रणीः ॥
शास्त्राणामपि पारगः परहिते, यो विल्लसा संगतः ।
तं भक्त्या सततं नुवे गुरुवरं, कस्तूरचन्द्राभिधम् ॥५॥

सम्यग्दर्शनधारिणं मुनिवरं, धर्ममृतं स्येन्दिमम् ।
यं ध्याताऽपि पुनः सदैव मुनिवत्, शुद्धो नरो जायते ॥
विश्वेषां हितकारकं शुभहृदं, विश्वोपकारे रतम् ।
तं भक्त्या सततं नुवे गुरुवरं, कस्तूरचन्द्राभिधम् ॥६॥

राजस्थान् पुरुषान् तथा जनपदान्, श्रीगुर्जरस्थान् बहून् ।
यात्रायां सम्बोधयन् सुवचनैः, धर्ममृतं पाययन् ॥
यश्चक्रे मनुजान् बहून् वृषरतान्, देशान् युनानः सदा ।
तं भक्त्या सततं नुवे गुरुवरं, कस्तूरचन्द्राभिधम् ॥७॥

सर्वेषामपि सौख्यदं मुनिवरं, श्री ज्ञानलाभप्रदम् ।
ज्योतिः शास्त्रविशारदं गुरुवरं, कस्तूरचन्द्रं पुनः ॥
वार्धक्यात् रतलामगं शुभतमं, शान्तिप्रदं कामदम् ।
तं भक्त्या सततं नुवे गुरुवरं, कस्तूरचन्द्राभिधम् ॥८॥

१ वर्षिणिम् १६४६ ।

२ वर्षिणिम् १६६२ ।

संदेश

गुरुद्वय के पवित्र चरणों में वन्दनाञ्जलि

—उच्छ्वलाल मेहता (रतलाम)

असीम गुण भण्डार धर्मशासन प्रभावक तपोनिष्ठ रत्नत्रयाराधक जन-जन के उद्धारक आगमोदधि ज्योतिषाचार्य मालवरत्न गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं प्रवचनभूषण प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज के पवित्र पाद पद्मों में श्रद्धा सुमन समर्पित कर मुझे परमानन्द का अनुभव हो रहा है।

मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ का मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ। जैन समाज के लिए गौरव गरिमा की बात है।

शासनदेव से यह शुभ कामना है कि चिरकालपर्यन्त गुरुद्वय अपनी तेजोमय आभा एवं जाज्वल्यमान प्रतिभा से जन-जीवन को आलोकित करते हुए जन-कल्याण के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते रहें। इसी मंगलकामना के साथ लेखनी को विराम देता हूँ।



करुणा के सागर

—निर्मल कुमार लोढ़ा (निम्बाहेड़ा)

भारतवर्ष को आध्यात्मिकता की जननी कहा जाय तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस भारतभूमि पर अनेक महापुरुष हुए। जिन्होंने यहाँ की जनता के दिलों में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के सिद्धान्तों को कूट-कूट कर भरा है, जो कभी भी भुलाये नहीं जा सकते। आज भी देश में ऐसी महान् विभूतियाँ विद्यमान हैं, जो समय-समय पर मार्ग-दर्शन देकर हमें ज्ञान की ओर बढ़ने का सन्देश देती रहती हैं।

मालवरत्न श्रद्धेय गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज स्थानक-वासी जैन समाज की एक महान् विभूति हैं, जो आज हमारे और आपके लिए प्रकाशस्तम्भ स्वरूप हैं।

आपका जन्म 'जावरा' निवासी सुश्रावक सेठ रतिचन्दजी चपलोट की धर्मपत्नी फूलीबाई चपलोट की कुक्षि से हुआ था।

आपश्री ने जैनाचार्य श्री खूबचन्दजी महाराज का शिष्यत्व स्वीकार किया। आपश्री ने देश के विभिन्न प्रदेशों में परिभ्रमण कर जिनवाणी का जन-मानस में अत्यधिक प्रचार किया है।

आपश्री के प्रवचन एवं दर्शन से जनता को अति आनन्द एवं शान्ति की प्राप्ति होती है। हम आपका अभिनन्दन करते हुए प्रभु से कामना करते हैं कि 'आप चिरायु हों'।

अभिनन्दनीय प्रयास

शुभ
कामना

हमें अपने इस मुसावल के यशस्वी चातुर्मासकाल में ज्ञात हुआ कि आगामी वर्ष में—मुनिद्वय (उपाध्याय मालवरत्न श्रद्धेय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं आगमतत्त्वविशारद प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी महाराज) अभिनन्दन ग्रन्थ का शानदार-सुन्दर शैली में प्रकाशन हो रहा है।

हमने प्रत्यक्ष अनुभव भी किया कि सुलेखक श्री रमेश मुनिजी महाराज एवं विशारद श्री नरेन्द्र मुनिजी महाराज ग्रन्थ सम्बन्धित लेखन एवं संकलन कार्य में पूरे दिन व्यस्त रहते थे।

हमारा संघ भी आप मुनिद्वय का हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ पूर्ण श्रद्धा अभिव्यक्त करता है।

—श्री व० स्था० जैनसंघ
मुसावल

उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज का व्यक्तित्व एवं कृतित्व किसी से भी छिपा हुआ नहीं है। आप शांत स्वभावी, समतासागर, महान् आगमज्ञ एवं ज्योतिर्धर हैं। आप युग-युग जीयें और देश-समाज को अपनी पीयूषोपम वाणी सुनाते रहें।

प्रवर्त्तक पंडित मुनि श्री हीरालालजी महाराज के दीक्षा स्वर्ण जयंती के संदर्भ में हमारे संघ की ओर से सुदीर्घ-जीवन की मंगल कामना समर्पित हो।

सुरजमल सिसोदिया
—मंत्री, श्री व० स्था० जैनसंघ, कोटा (राजस्थान)

संदेश

जावरा शहर की अमूल्य निधि

मालवरत्न उपाध्याय, करुणासागर श्रद्धेय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज जावरा के सन्तरत्न हैं। आपने बाल्यावस्था में ही दीक्षा ग्रहण कर हमारे नगर की शोभा में और भी अभिवृद्धि कर दी है। हमें आपके संयमी जीवन पर बड़ा गर्व है।

आपके जीवन में गंभीरता, उदारता, दयालुता, क्षमता-समता-करुणा-सह-मैत्री आदि विशिष्ट गुण शोभा पा रहे हैं।

हम अधिक क्या लिखें, अनेकानेक लेखकों ने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

आपके दीक्षा लेने के पश्चात् आपके सगे ज्येष्ठ भ्राता श्री केशरी-मलजी ने भी संयम स्वीकार किया, जिनकी अपने विद्वत्ता-त्याग-वैराग्य-संयम से श्रेष्ठ मुनियों में गणना की गई है।

भविष्य में भावी पीढ़ियाँ भी आपको न भूलें एतदर्थ यहाँ पर नई बस्ती चौपाटी पर एक "केशर-कस्तूर स्वाध्याय भवन" की स्थापना की गई है।

महिमावंत मुनि पुंगव सुदीर्घकाल तक समाज के अभ्युत्थान में रत रहें, ऐसी हमारी शुभकामना है।

श्री व० स्था० जैन श्रावक संघ

अध्यक्ष—सुजानमल मेहता

जावरा (म० प्र०)

भावांजलि

परमपूज्य श्री अशोक मुनिजी की प्रेरणा से इन महान् सन्तों का हमें परिचय हुआ है। ऐसे पूज्य और महान् सन्तों को बाशीं स्थानकवासी जैनसंघ वन्दनीय द्वय गुरु चरणों में भाव सुमन अर्पण करता है !

—श्री व० स्था० जैन संघ, बाशीं

सादर भावाञ्जलि

शुभ
कामना

परम श्रद्धेय मालवरत्न ज्योतिषाचार्य पंडितरत्न उपाध्याय पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द्रजी महाराज साहब के धूलिया श्रीसंघ के सदस्यों को दर्शनों का अनेक बार प्रसंग प्राप्त हुआ ।

महाराजश्री समता, सरलता, सहिष्णुता त्रिवेणी के पावन तीर्थ के रूप हैं । महाराजश्री का सदैव हँसमुख चेहरा, शांत-गंभीर-सौम्य मुद्रा से हमें ऐसा आभास होता है कि वे हमारे धर्मपिता ही हैं । ८६ वर्ष की वृद्धावस्था होते हुए भी बड़े धैर्यवंत हैं । अनेक शास्त्रों और ज्योतिष-विषयों पर आपश्री का प्रभुत्व सराहनीय है । कोई भी छोटे-बड़े व्यक्ति, स्त्री, पुरुष महाराजश्री के दर्शन को आवें उनसे प्रेमयुक्त वार्तालाप करते हैं । साथ ही मांगलिक श्रवण का लाभ मिलता है ।

चतुर्विध संघ पर आपश्री की अनुपम कृपा रहती है । शासनदेव से श्री संघ की यही प्रार्थना है कि चतुर्विध संघ के हित के लिए दीर्घायुष्य प्राप्त होवे और जनकल्याण का कार्य होता रहे । महाराजश्री के चरणों में धूलिया श्री संघ की वन्दनाञ्जलियाँ समर्पित हैं ।

आपश्री का विनीत

—नेमीचन्द्र नथमल बोहरा

श्री वर्धमान स्था० जैन श्रावक संघ

धूलिया

संदेश

संत जीवन को शत-शत प्रणाम

सदियों से इतिहास बता रहा है—संत जीवन, मानव-समाजोत्थान में एवं संस्कृति-सम्यता के विकास में बहुत बड़ा सहायक रहा है। देहधारी प्राणी जब चारों ओर से निराशान्वित हो जाता है, तब 'डूबते हुए को तिनके का सहारा' के अनुसार उस प्राणी के लिए संत-जीवन रूपी किरण ही सहायक बनती है। शत-प्रतिशत उसे आत्मविश्वास रहता है कि मुझे सभी ठुकरा सकते हैं, पर संत के शरण में अवश्य आश्रय मिलेगा। वहाँ मेरी व्यथा की कथा सुनी जायगी, समझी जायगी एवं उचित उपचार भी। इसलिए कहा है—'संत हृदय नवनीत समाना' अर्थात् पर-पीड़ा को देखकर संत का दयावान हृदय निश्चर की भाँति बहने लग जाता है।

मुनिद्वय—मालवरत्न पूज्य उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं जैनागमतत्त्वविशारद प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज उसी महिमावंत धवल गौरव परम्परा के प्रतीक रहे हैं। जिनकी लम्बी तपःपूत साधना स्थानकवासी जैन समाज के विकास एवं प्रकाश में बहुत बड़ी सहायक रही है।

हमारा संघ मुनिद्वय का सश्रद्धा-सभक्ति हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ शुभ भावना अभिव्यक्त करता है कि आप मुनिराज दीर्घजीवी बनें।

—श्री व० स्था० जैन श्रावक संघ

मंत्री

माणकचन्द जैन, (एम. ए.)

सवाई माधोपुर

हार्दिक अभिनन्दन

मालवरत्न ज्योतिषाचार्य उपाध्याय पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी महाराज साहब एवं जैनागमतत्त्वविशारद प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज साहब—युगल मुनि प्रवरों का अभिनन्दन करते हुए हमारे रूपनगर श्री संघ को परमानन्दानुभूति हो रही है।

आप मुनिद्वय ने अपने दीर्घ संयमी जीवन में अनेक गाँव-नगरों में धर्म-प्रचारार्थ परिभ्रमण किया। अनेक भव्यों को प्रतिबोध प्रदान कर महान् उपकार किया है।

आपके अभिनन्दन समारोह पर हमारा संघ आपके दीर्घ संयमी जीवन की मंगल कामना करता है।

अध्यक्ष

हस्तीमल कुचेरिया

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, रूपनगर (राजस्थान)

मंत्री

जबरसिंह बरड़िया

स्मृति के कुछ मधुर क्षण

शुभ
कामना

□ भ्रमण संघीय आचार्य सन्नाट् पूज्यश्री आनन्दऋषिजी महाराज

नाम की विशेषता कोई महत्ता नहीं रखती है। परन्तु ज्योतिर्विद पंडितरत्न श्री कस्तूरचन्दजी महाराज के लिए यथानाम तथागुण की उक्ति सार्थक है।

जिस तरह कस्तूरी अपनी महक से क्लृप्त वातावरण को भी महका देती है। उसी प्रकार उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज अपने शान्त, सौम्य, व्यक्तित्व के प्रभाव से मानव समाज को सुवासित एवं आलोकित कर रहे हैं।

लगभग ४०-४५ वर्ष पूर्व की स्मृति है। जिस समय मैं (आनन्दऋषि) अपने गुरुदेव के साथ वृद्ध साधु-सम्मेलन अजमेर में पहुँचा। वहाँ आपसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह हमारा ज्योतिर्विद श्री कस्तूरचन्द जी महाराज के साथ पहला मधुर मिलन था।

उस समय वहाँ कई प्रान्तों के महामनस्वी मुनि एकत्र हुए थे। आवश्यकतानुसार ज्योतिर्विदजी भी अधिकांश मुनियों के साथ बहुत ही आत्मीयता के साथ विचार-विमर्श करते थे। हमारे साथ भी किये हुए उस मधुर व्यवहार की स्मृति आज भी हृदय-पटल पर अंकित है।

उसके बाद छह सम्प्रदायों का सम्मेलन जब ब्यावर में हुआ था। उस समय आपश्री की स्पष्ट वाणी में विचार-धाराओं को श्रवण करने का अवसर मिला। तब मुझे आभास हुआ था कि आपश्री सद्गुणों के ग्राहक हैं और पदलिप्सा से कोसों दूर हैं।

भ्रमण संघ की एकता, अनुशासन आदि मर्यादाओं का पालन करने में उनका सहयोग हमेशा सराहनीय रहा है।

ज्योतिर्विदजी म० को जो अभिनन्दन ग्रन्थ अर्पित किया जा रहा है— वह अभिनन्दन उनके गुणों का, अनुशासन, एकता तथा संगठनप्रियता का ही रहा है। इस शुभावसर पर मैं हार्दिक शुभकामनाओं को प्रेषित कर रहा हूँ। इस भव्य विभूति का मार्गदर्शन समाज को निरन्तर मिलता रहे ताकि इनके सहयोग से भ्रमण संघ रूपी रत्नाकर अपने गंतव्य की ओर प्रगतिशील बना रहे।



संदेश

संत जीवन—

चलता-फिरता दवाखाना !

□ अवधानी—पूज्य अशोक मुनिजी (सा० रत्न)

□

भारत एक धर्मप्राण महादेश है और इस धर्मप्रेमी समाज की सबसे बड़ी इकाई तथा आधारशिला है साधुसंत ! संतजीवन संस्कारित, जागरूक तथा सबल होने से स्वभावतः ही समाज समृद्ध, प्रगतिशील तथा शक्तिमान हो जाता है। भारत की भूमि को कई संतों ने पवित्र किया है। उन्होंने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श सामने रखकर सबके सुख के लिए विविधतापूर्ण सामाजिक शक्तियों को एक माला में पिरोने का प्रयास किया है। भारत की गरिमा को आध्यात्मिक शक्ति से मंडित करना उनके जीवन का एक महान् लक्ष्य है। संत जीवन सही अर्थों में एक 'चलता-फिरता दवाखाना' ही है। यह दवाखाना आंतरिक प्रकृति सुधार कर आत्मा के रोगों को दूर करता है तथा क्रोध, मोह, माया, मत्सर, लोभ, हिंसा, द्वेष, ईर्ष्या आदि तमोगुणों का नाश करता है। दवा भी दो प्रकार की होती है। एक, बाहर लगाने की और दूसरी, खाने की। रोगी अगर विवेक भूलकर लगाने की दवा खा ले, तो रोग बढ़ जाएगा। जो चीज अन्दर उतारने की है, वह अन्दर लेने से ही रोग मिट सकता है। अन्यथा दवा के दुष्परिणाम स्पष्ट हैं। अतः धन बाहर लगाने की, तथा धर्म अन्दर ले लेने की दवा है।

संतों के जीवन-आदर्शों को अपनाकर और उनके बताए हुए मार्ग पर चलकर प्रत्येक प्राणी शांति और आनन्द को प्राप्त कर सकता है। जनता के लिए, प्राणिमात्र के लिए संतोपदेश प्रेरणादायी और अनुकरणीय होता है। संतों के लिए प्राणिमात्र की सेवा ही प्रभु-सेवा का साधन होता है। देश और काल की कोई सीमा उन्हें सीमित नहीं कर सकती। संत-सज्जन तो आध्यात्मिक प्रेरणा के दिव्यदूत हैं। उन्होंने आध्यात्मिक ज्योति में नवजागरण का संदेश भी दिया है। प्राणिमात्र के प्रति सहानुभूति का भाव दिखाकर उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना लोक-कल्याण का उत्तम साधन है। उन्होंने संस्कृति और धर्म के आदर्शों के संरक्षण में अमूल्य योगदान दिया है। इसी के कारण उनका जीवन सही मायने में 'धर्माचरण की सजीव कथा' कहा जा सकता है।

संतों का अटल विश्वास है, कि जिस तरह दिग्दर्शक यन्त्र की सूची सदा उत्तर की ओर रहती है, उसी प्रकार आत्मोन्मुख हृदय कभी भवसागर की उत्ताल तरंगों में नहीं पड़ सकता। उनके आध्यात्मिक जीवन का चरित्रांकन संकेत करता है कि वे सत्य के देवदूत हैं। संत-वाणी कभी सत्य, धर्म और शास्त्र के मूल सिद्धान्तों की न तो उपेक्षा करती है, न विरोध !

सचमुच, संत-वाणी माधुर्य और स्वारस्य का अप्रतिम प्रतीक बनकर समूचे देश पर आकाश की भाँति छायी है। और फिर यह वही संतवाणी है जो कि वास्तव में आत्मविकास के साथ-साथ लोक विकास के लिए क्रियात्मक साधन है।

ऊँच-नीच के बन्धन झूठे।
प्रेम-सुधा के बोल अनूठे ॥

संत-जीवन संकीर्ण दृष्टि, जात-पाँत के भेदभाव और अहम् के अंधकार में भटकने वालों के लिए एक चेतना है, प्रेरणा है। प्रसिद्ध मराठी संतकवि श्री तुकारामजी अपने एक अभंग में सहज सुन्दर भाव से कहते हैं—

बोलें तैसा चालें। त्याची वंदावी पाऊलें।
तोचि साधु ओलखावा। देव तेथेंचि जाणावा ॥

अपने उपदेशों पर स्वयं चलकर हमारे लिए एक आदर्श प्रस्तुत करने वाले संत-सज्जन आज भी करोड़ों भारतीयों के मन को भक्ति, विश्वबन्धुत्व और प्रेम-सुधा से प्रेरित कर रहे हैं। उन्होंने राजा से लेकर रंक तक सभी को प्रेम का, सत्य और अहिंसा का एक ऐसा महान् सन्देश दिया, जिसमें सामाजिक चेतना एवम् समता का अमर अंकुर है। यही अंकुर पू० कस्तूरचन्दजी महाराज साहब और पू० हीरालालजी महाराज साहब के रूप में एक ऐसे भविष्य के लिए कार्यरत है, जो हमारे गौरवपूर्ण इतिहास के लिए उपयुक्त हों। दोनों संतों की ये विशेषताएँ रही हैं। ये दोनों ही मानवता के महान् सेवक और मालवधरा के दो जगमगाते रत्न हैं। उनके विचार मानसिक चेतना के लिए भी आज अनेकों को आकर्षित कर रहे हैं।



संदेश

मेरे परम तारक महामुनि

विक्रम सं० १९७८ का जयपुर नगर का यशस्वी वर्षावास सम्पन्न करके गुरुदेव वाद कोविद श्री नन्दलालजी महाराज, भावी उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज, गायन कला निधान श्री सुखलालजी महाराज, तपस्वी श्री छोटेलालजी महाराज, सेवाभावी श्री भंरू लालजी महाराज, ठा० ५ मेरी जन्मभूमि देवगढ़ (मदारिया) में पधारे।

जनता गुरुदेवश्री के प्रवचनामृत का एवं धर्म-ध्यान का बहुत लाभ ले रही थी, यह सब जानकर मैं भी दर्शन करने के लिए सेवा में जा पहुँचा।

सहसा मुनिश्री जी ने पूछ लिया कि—“यहाँ एक सेठ और तीन बच्चे मुनि-धर्म स्वीकार करने वाले थे, वे कहाँ हैं?”

मैंने उत्तर दिया—

“गुरुदेव ! वे मेरे पिता श्री मोड़ीरामजी गांधी और मेरे दो भाई थे, प्लेग की बीमारी में परलोक सिधार गये। केवल मैं ही धर्म के एवं आपकी कृपा से बच पाया हूँ।”

गुरुदेव ने तुरन्त फरमाया—“बस बाप का कर्जा बेटा चुकाता है, अतः तुम भी अब दीक्षा लेकर अपने पिता के कर्ज से मुक्त बनो।”

मैंने कहा—“जो आज्ञा।”

फिर क्या था अतिशीघ्र ही श्रावकाचार का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया गया। उस समय गुरुदेव श्री नन्दलालजी महाराज के पैर में एक फोड़ा भी हो गया था, एक तरफ इलाज चल रहा था, दूसरी तरफ मेरा अध्ययन और वैराग्य वृद्धि पा रहा था। उस समय देवगढ़ में तीनों समय धर्म की गंगा बह रही थी। स्थानीय तथा आसपास के गाँवों की जनता नदी पूर की तरह उमड़-उमड़ कर धर्म का लाभ ले रही थी।

यह कार्यक्रम लगभग डेढ़ महिने तक जलता रहा, इस अवधि में ही पं० गुरुदेव उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज ने मुझ पर असीम कृपा करके दीक्षा जैसे उच्च पद के लायक बना दिया। अपने अनेक कौटुम्बिक विघ्न-बाधाओं के अन्तराय कर्म को भी मिटा दिया। अन्त में एक वर्ष बाद वही मैं (प्रताप) आपके समीप मन्दसौर में पहुँच गया। सानन्द दीक्षा भी सम्पन्न हुई।

आज जो मैं आत्म-साधना कर रहा हूँ, यह सब आप गुरुदेव (उ० पं० श्री कस्तूरचन्दजी महाराज) का ही प्रबल प्रताप है। इसीलिए आप मालवरत्न उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज मेरे भवतारक हैं।

आप शुभ स्वस्थ दीर्घायु बनें और समाज-संघ एवं मुझको मार्गदर्शन देते रहें, यही मेरी प्रतिपल मंगलकामना है।

—मुनि प्रताप

विराट् विरल व्यक्तित्व

शुभ
कामना

जीवन को महान् बनाने के लिए इन गुणों की आवश्यकता होती है ।

गांभीर्य, धैर्य, वात्सल्य, क्षमा, करुणा ।

वास्तव में यह गुण जीवन को महान् बनाने में पर्याप्त है, वह जीवन महान् ही नहीं, धन्य भी हो जाता है। उन्हें ही हम 'महान्-पुरुष' कहते हैं ।

मेरी दृष्टि में आज भी ऐसे एक महान् पुरुष विराजमान हैं, जिनमें सहज ही उक्त गुणों का संगम हो गया है। वह हैं मालवरत्न, ज्योतिर्विद, स्थविर, भगवन्त, परमोपकारी, करुणासागर श्री कस्तूरचन्द्रजी महाराज ।

परम श्रद्धेय गुरुदेवश्री देह से भले ही दीर्घ न हों, किन्तु उनका मानस, उनकी दृष्टि एवं उनके विचार इतने विशाल हैं कि इनके सम्मुख विश्व भी छोटा है। उनके आध्यात्मिक विकास की ऊँचाइयाँ विराट्-म रूप से अक्षुण्ण हैं। मेरे जीवन की सुघड़ता का श्रेय आपको ही है।

मुझे वर्षों तक आपश्री की सेवा में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। मैंने अनुभव किया है कि आपके पास जो भी संतप्त और पीड़ित जब आया तब वह आपके पास से संतोष का समाधान लेकर ही गया है। किसी भी दीन-दुःखी को देखकर आपका मन द्रवित हो जाता है।

संघ एवं समाज पर आपश्री का प्रत्येक क्षण मधुर शासन ही रहा है। कठोरता, कटुता, संघर्ष तथा राग-द्वेष की पतन वृत्ति को गुरुदेवश्री पसन्द ही नहीं करते हैं। परस्पर संघ-स्नेह और शान्ति से ही रहने की सुझाव-सम्मति प्रदान करते रहते हैं।

आज इन करुणामयी गुरुदेवश्री के महा-विराट्-विरल-व्यक्तित्व की परमोज्ज्वल सेवा में अपनी लघुतम भावाञ्जलि सादर समर्पित करता हुआ, अपने स्वयं के लिए इस प्रयास को गौरवपूर्ण मान रहा हूँ।

—मूल मुनि

संदेश

सैद्धांतिक व्याख्याता को

अभिनन्दनीय समर्पण



जैनागम, विश्व एवं व्यक्ति जीवन की कुंजी है। इसके तात्त्विक रहस्य यथेष्ट रूप से मार्मिक हैं। इन सैद्धान्तिक व्याख्याओं को समुचित ढंग से अधिकृत-विज्ञ व्यक्ति ही दर्शा सकता है।

इस प्रकार की कठिनतम-दुरूह पहेलियों को चुटकियों में सुलझाने की सहज क्षमता जैनागमतत्त्वविशारद प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी महाराज में स्वतः ही परिलक्षित होती है। जैनागम की गहन गुत्थियाँ ही नहीं, बरन् जीवन के आगत जटिल जंजालों से भी परे करने की विलक्षण कला के दर्शन प्रवर्त्तकश्री जी में हो ही जाते हैं।

प्रवचन एवं वार्ताओं के दौर में आप सहज ही जिनवाणी की प्रतीति कराते रहते हैं। समय सूचकता आपके स्वभाव की विशेषता मानी जायेगी।

साधु-साध्वियों को आगम-वाचना देने में आपकी प्रसन्नता प्रशंसनीय है। आप ज्ञान-दान में कभी सकुचाते नहीं हैं।

‘मुणिणो सया जागरंति।’

के आप प्रतीक कहे जा सकते हैं। परावलम्बी जीवन को आप पसन्द नहीं करते हैं। आप सदा ही पुरुषार्थ की प्रेरणा दिया करते हैं।

महामना वरिष्ठ संत प्रवर्त्तक पंडितरत्न श्रद्धेय श्री हीरालालजी महाराज को उनकी दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के मंगल प्रसंग पर जिन-शासन प्रभावक के नाते अभिनन्दनीय समर्पण प्रस्तुत करता हूँ।

—मूल मुनि



युगल मुनियों के चरणों में भावांजलि

शुभ
कामना

□ धोर तपस्वी बक्ता श्री विमलमुनिजी महाराज



भारतीय ऋषि-मुनियों की अनेकानेक मौलिक विशेषताएँ इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित हैं। ऐहिक सुख-सुविधाओं का परित्याग कर शान्त, दान्त, एकान्त स्थान में शत-सहस्र वर्षों तक त्रय योगों की संयम की खरी कसौटी पर कसा व तपाया है। तदनन्तर ही मुनिवृन्द ने इस आर्य भूमि की चप्पा-चप्पा कंकरी को अपने ज्ञान सुधा से प्लावित किया है—

विशालता, उदारता, निर्लोभता, परमार्थता,
त्याग-तप-संयम, साधना की क्या कहूँ कथा।
स्याद्वाद पूर्ण शैली अहा ! कैसी अनुषम सत्यता,
आर्य सन्त की अनूठी महिमा स्व-पर की हरेत व्यथा ॥

महामुनियों ने अपने मन-मस्तिष्क को सदैव विशाल, विस्तृत एवं छुआछूत की बीमारी से पृथक रखा है। चाहे कोई भी जाति-पांति वाला क्यों न हो ? सभी को समान रूप से समझा है। उनका अमृतोपम उपदेश सभी के लिए समान रहा है। किसी एक पंथ की जंजीरों में नहीं बँधे रहे। बल्कि उनके लिए तो “वसुधैव कुटुम्बकम्” रहा है। वे मानव के अन्तः-स्थल को झंकृत करने वाले मलय समीर सदृश वाटिका से लेकर राज-प्रासाद तक समान रूप से अपना ज्ञान खजाना लुटाते रहे हैं।

अनवरत रत्नत्रय की कठोर साधना के पश्चात् उन्हें जो नवनीत प्राप्त हुआ, उसे उन्होंने उदारतापूर्वक “भर-भर मुट्ठी भर-भर देवे” इस कथनानुसार दिल खोलकर जन-साधारण को लाभान्वित किया है। ‘यह ज्ञान-विज्ञान एवं अनुभव मेरा है। मैंने कठोरतम साधना के बलवृत्ते इस निधि को प्राप्त किया है। मैं अन्य किसी को क्यों दूँ?’ ऐसी संकीर्ण एवं कुत्सित भावना उनके हृदय में कभी भी नहीं रही है।

वैसे तो आवश्यकतानुसार महामुनियों ने धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इस चतुष्टय पर गहन-गम्भीर विचार-विमर्श एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है। परन्तु धर्म और मोक्ष को मुख्यता देकर ही उनके उपदेश हुए और होते हैं। क्योंकि उनका दृष्टिकोण सदैव भौतिकता से परे आध्यात्मिकता

संदेश

की तरफ ही रहा है। यहाँ तक कि उनके जीवन के कण-कण और अणु-अणु में निर्लोभता एवं परमार्थता का प्रशस्त पीयूष पूरित रहा है। मानो 'स्व-पर हिताय-सुखाय' दृष्टि से ही उनके जीवन का निर्माण हुआ है। कहा भी है—

यही है भूमि ऋषियों की,
जहाँ कंचन बरसते थे।
विदेशी लोग सुन-सुन कर,
दर्शन को खूब तरसते थे ॥

श्रद्धेय उपाध्याय प्रवर मालवरत्न पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज एवं श्रद्धेय आगम तत्त्वविशारद् प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी महाराज उक्त गुणों की श्रेणी में सुशोभित हैं। आप दोनों महामनस्वी मुनियों की पावन सेवा में रहने का एवं चातुर्मास करने का मुझे कई बार स्वर्णिम अवसर मिला है। मेरी स्थूल आँखों ने आपको सन्निकटता से देखा है। आपका मधुर व्यवहार सभी संतों के प्रति समान रहा है। विशालता, उदारता, समता एवं दयालुता आप दोनों मुनियों की महान् विशेषताएँ हैं। संतों को किस तरह निभाना और किस तरह समझाना यह खूब प्रत्यक्ष मैंने देखा है।

अभिनन्दन ग्रन्थ समारोह के सन्दर्भ में मेरी अन्तरात्मा इन महा-मुनियों के तपःपूत जीवन की भूरि-भूरि प्रशंसा करती है। आप मुनियों से सदैव चतुर्विध संघ को मार्ग-दर्शन मिलता रहे—यही मेरी शुभेच्छा है।



महानता के तीन गुण

शुभ
कामना

परम श्रद्धेय, मालवरत्न, उपाध्याय, शासन सम्राट्, गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज के प्रति अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, जानकर अति प्रसन्नता है।

गुरुदेव के जीवन की महानता का वर्णन मेरी लेखनी नहीं कर सकती है, फिर भी लिखने को मन हो ही गया। आपके जीवन में अनेक महान्—अति महान् गुण हैं, क्षीरसागर की भाँति आप महान् हैं। क्षीरसागर के मुख्य तीन गुण हैं—

(१) मधुरता (२) गंभीरता (३) विशालता।

मधुरता—आपके कण-कण में व्याप्त है। आपके मुखार्विन्द से सदा ही अमृत-वाणी की वर्षा होती है। आपके प्रत्येक कार्य और प्रत्येक शब्द हित-मित और प्रिय होते हैं। आपका हर व्यक्ति, हर समाज एवं हर सम्प्रदाय के साथ मधुर व्यवहार है।

गंभीरता—विश्व में सागर से बढ़कर कोई गंभीरता में नजर नहीं आता, कितना भी पानी आए, सब अपने में समा लेता है। अपने अन्दर अनुल धन-राशि लिए हुए चुप-चाप सभी कुछ सह जाता है। ठीक उसी प्रकार आप भी कितनी ही सामाजिक ऊँची-नीची बातों को अपने में समा लेते हैं। आपके चेहरे पर कभी क्रोध नहीं आता। प्रतिपल संयम-साधना में तत्पर रहते हैं।

विशालता—आपका हृदय-मंदिर विशाल है, उसमें करुणा-मैत्री का स्रोत सदा प्रवाहमान है। दुःखियों के दुःख-दर्द को मिटाने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं। सम्प्रदायवाद की बू से भी आप परे हैं। जितना हृदय विशाल है, उतना ज्ञान भी विशाल है, सभी आगमों के ज्ञाता हैं और ज्योतिष पर आपका अच्छा आधिपत्य है।

ऐसे क्षीरसागर से भी महान् पूज्य गुरुदेव दीर्घायु होकर जिन-शासन के गौरव को उन्नत करते रहें, यही मेरे अन्तरात्मा की पुकार है।

आपका जीवन मधुरता-गंभीरता-विशालता का साक्षात् प्रतीक है।

जैन साध्वी
कमलावती
कोटा (राजस्थान)

संदेश

एक सच्चा हीरा

परम आदरणीय श्रद्धेय प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज साहब वास्तव में एक सच्चे हीरे हैं। जिन्हें पाकर श्रमण वर्ग ही नहीं अपितु पूरा समाज धन्य हो गया है।

चारित्र की दिव्य एवं अलौकिक प्रभा से अपनी आत्मा को तो आपने आलोकित किया ही, साथ ही अनेक आने वाली भव्यात्माओं को भी अपनी ज्ञान-गरिमा की आभा से आलोकित कर रहे हैं।

आपके मधुर व्यवहार एवं निश्चल प्रेम में एक अद्भुत आकर्षण शक्ति है कि आगन्तुक मानव आकर्षित हुए बिना नहीं रहता। गुलाब के खिलते हुए पुष्प में वह गन्ध है कि वह सभी को अपनी ओर खींचता वैसे ही आपकी मधुर वाणी की सौरभ को पाकर जनता आकृष्ट होती है।

विनय आपका एक सहज गुण है। सेवा-निरभिमानता एवं ऋजुता से आपका जीवन पुष्प महकता रहा है। मैंने प्रत्यक्ष देखा है—

ब्यावर में जब आचार्यदेव श्री खूबचन्दजी महाराज विराजमान थे तब आपने उनकी सेवा का अद्वितीय लाभ प्राप्त किया था। आपकी सेवा-भक्ति अवर्णनीय है। आचार्यदेव ने स्वयं फरमाया था कि—“मेरा हीरा सच्चा हीरा है।”

सचमुच आचार्यदेव की वाणी सत्य हुई, आज आप समाज के बीच एक हीरे के समान चमक रहे हैं, आपको पाकर समाज गौरवान्वित हो रहा है।

मैं अपने भक्ति के चन्द्र शब्द-सुमन अभिनन्दन के रूप में समर्पित करती हूँ।

—जैन साध्वी
कमलावती
कोटा (राजस्थान)



यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप सब मिलकर 'मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित करवाने की योजना कर रहे हैं।

आपका प्रस्तावित आयोजन सफल हो और यों आप एक संग्रहणीय अभिनन्दन ग्रन्थ को प्रकाशित कर सकें, इसके लिये मैं शुभ कामना करता हूँ।

दिनांक २७ जुलाई, १९७६
सीतामऊ (मालवा)

—डॉ० रघुवीर सिंह
(प्रसिद्ध इतिहासविद)
दिनांक १८-१०-१९७६

शुभ
कामना

सस्ता साहित्य मण्डल

प्रधान कार्यालय
एन-७७, कनाॅट सर्कस
नई दिल्ली-११०००१
१८-१०-७६

मान्यवर,
नमस्कार।

आपका १४ अक्टूबर का पत्र मिला। यह जानकर हर्ष हुआ कि आप मान्यवर श्री कस्तूरचन्दजी महाराज तथा श्री हीरालालजी महाराज के सम्मानार्थ मुनिद्वय अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। मैं आपके इस आयोजन का स्वागत करता हूँ और उसकी सफलता के लिए अपनी आंतरिक मंगल कामनाएँ भेजता हूँ।

कृतज्ञता-ज्ञापन हमारी भारत-भूमि की विशेषता है। मुनिद्वय ने जैनधर्म और समाज के संवर्द्धन के लिए जो सेवाएँ की हैं, वे निस्संदेह सराहनीय हैं। आपके इस अभिनन्दन में मैं पूरे हृदय से आपके साथ हूँ। वस्तुतः यह कार्य बहुत पहले हो जाना चाहिए था।

मेरी प्रभु से कामना है कि मुनिद्वय दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और धर्म के अभ्युदय के साथ-साथ समाज को धर्म प्रभावना के मार्ग पर चिरकाल तक अग्रसर करते रहें।

विशेष कृपा।

आपका स्नेहाकांक्षी
यशपाल जैन

संदेश

श्रद्धा के प्रतीक

□ निर्मलकुमार लोढ़ा (निम्बाहेड़ा)

भारतीय संस्कृति के पीछे संतों का बहुत बड़ा योगदान रहा हुआ है। इसी पवित्र भूमि पर महापुरुषों ने साधना द्वारा कर्म-शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। प्राप्त आत्म-ज्ञान द्वारा अज्ञान अन्धकार में भटकी हुई आत्माओं को सच्ची राह बताकर उनके जीवन को सुधारा। वही ज्ञान आज भी संत पुरुषों के पास सुरक्षित है एवं हमें समय-समय पर मिलता रहता है।

जैनागमतस्त्वविशारद् प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी महाराज का जन्म मालव की ऐतिहासिक नगरी दशपुर की रमणीय स्थली में हुआ।

जैनाचार्य श्री खूबचन्दजी महाराज के वैराग्य-वर्धक धर्मोपदेश को श्रवण कर आपने दीक्षा अंगीकार की। तप-संयम में वृद्धि करते हुए आप जिनशासन की प्रभावना कर रहे हैं। आप शांत स्वभावी, सरल एवं संगठनप्रिय हैं।

आपका अभिनन्दन करते हुए हमें अत्यन्त आनन्द एवं प्रसन्नता होती है। आप दीर्घायु हों एवं हमें मार्ग-दर्शन करते रहें।



पुष्पांजलि

□ पूनमचन्द जैन, कोटा

परम श्रद्धेय करुणासागर मालवरत्न उपाध्याय श्री १००८ पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब एवं जैनागमशास्त्रविशारद प्रवर्त्तक पंडितरत्न मुनि श्री हीरालालजी महाराज के पावन चरणों में मेरा शतशः वन्दन स्वीकार हो।

यह जानकर खुशी हुई कि मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ छप रहा है। ऐसे महान् उपकारी संतों के जीवन के पावन प्रसंग छप कर जनता के हाथों में आना ही चाहिये। जिससे अज्ञान अंधकार में भटकने वाले प्राणी सद्प्रेरणा प्राप्त कर जीवन में नयी चेतना व नया प्रकाश प्राप्त कर सकें। ऐसे ग्रन्थ भावी युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे।

महान् त्यागी संतरत्न युग-युग तक हमारे बीच विराज कर अपनी अनुपम साधना से हमें लाभान्वित करते हैं। अन्त में शासनदेव से प्रार्थना है कि ऐसे परम यशस्वी मुनिद्वय स्वस्थ एवं चिरायु होकर जिनशासन की गौरवान्वित करते रहें।



श्रद्धा के दो पुष्प

साधु चन्दन बावना, सीतल जाका अंग ।
तपन बुझावत और की, दे दे अपना रंग ॥

शुभ
कामना

समता धर्म के साधक स्व-पर-कल्याणकारी साधु-महात्मा तरण-तारण होते हैं। धर्मधुरीण, त्यागी सन्तों के प्रसाद से ही गृहस्थजनों में धार्मिक भाव जागृत रहता है। “उवसमसारं खु सामण्णं” में आस्था रखने वाले सन्तों का समागम सौभाग्य से ही प्राप्त होता है। मालवरत्न स्थविरवर उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज और आगमतत्त्वविशारद प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज ऐसे ही जंगम तीर्थ हैं, जो अपनी प्रेरकचर्या, तपश्चरण एवं सदुपदेशों द्वारा दीर्घकाल से जनसाधारण को सुपथ दिखाते आ रहे हैं। दोनों सन्तों ने किशोरावस्था में ही दीक्षा लेकर तप-त्याग के मार्ग को अपनाया था, और संयोग से दोनों का ही विशेष सम्बन्ध मालव भूमि के साथ रहा है। इन मुनिद्वय के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के उद्देश्य से यह अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है, जो एक श्लाघनीय उपक्रम है। महात्माद्वय के दीर्घायुष्य की कामना करते हुए मैं उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धा के दो पुष्प समर्पित करता हूँ।

—डा० ज्योतिप्रसाद जैन
लखनऊ-१

अभिवन्दनीय सौभाग्य

महामहिम मालवरत्न करुणासागर उपाध्याय गुरुदेव श्री कस्तूर चन्दजी महाराज साहब एवं परम श्रद्धेय प्रवर्तक पद विभूषित जैनागम-तत्त्वविशारद श्री हीरालालजी महाराज साहब के तपोमय, त्यागी-संयमी, यशस्वी जीवन से उत्प्रेरित होकर “मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ” प्रकाश में आ रहा है, बड़े ही गौरव का विषय है।

परमपूज्य द्वय महान् मुनिवरों का जीवन सूर्य के समान तेजस्वी, शशि के समान उज्ज्वल, सागर के समान गम्भीर, बादल के समान उदार, पानी के समान निर्मल, उद्यान के समान मनोरम, स्फटिक के समान स्वच्छ है।

जिनकी प्रेरणा का दिव्य प्रकाश प्राप्त कर अनेकों आत्माओं ने अपने जीवन का निर्माण किया है एवं कर रहे हैं।

महामनस्वी संयमी श्रमण आत्माओं का अभिनन्दन करने का सौभाग्य से ही अवसर प्राप्त होता है। मैं अपनी ओर से सभक्ति सश्रद्धा वन्दनांजलि पावन श्रीचरणों में अर्पित करती हूँ। साथ ही मुनिद्वय दीर्घायु प्राप्त कर समाज, संघ एवं प्रत्येक नर-नारी के सफल मार्ग-दर्शक बने रहें, यही मंगल कामना करती हूँ।

—साध्वी मदन कुँवर
खार (बम्बई)

संदेश

मुनि मणिमाला के दो रत्न

□ ताराचन्द भण्डारी (जालना)

जगतीतल पर जब-जब भी अन्धकार का आधिक्य हुआ, अन्ध रूढ़ियों व अनौतियों का बोल-बाला हुआ, भ्रष्ट व क्रूर अत्याचारों के बर्बर प्रताड़न से प्रताड़ित जनमानस झुलस गया तब-तब "तमसो मा ज्योतिर्गमय" की अनुभूति का अवलोकन इस देश ने कराया है।

जनमानस के दुःख हरण करने तथा उन्हें प्रेम के बन्धन में बांधकर सुख-शांतिमय जीवन व्यतीत करने का मार्ग दिखाने के लिए, मानवतन धारण कर विशिष्ट महापुरुषों का आविर्भाव घरातल के इस भूखण्ड पर होता रहा है। जिन्होंने अपने आलोक से जन-मन को आलोकित करते हुए भारतीय तत्त्व चेतना के स्वर मुखरित किए तथा पर की पीड़ा को कर्षणा की नजर से देखते हुए उन्हें उससे मुक्ति दिलाने वाला कल्याण मार्ग दिखाया। इस बात का इतिहास साक्षी है कि इस महान् देश की सभ्य परम्परा की महानता इसी में दृष्टिगोचर होती है कि उसमें स्वार्थ, विषयवासना तथा लोलुपता के तत्त्वों को कहीं भी महत्व नहीं दिया गया बल्कि सद्गुणों की ही उपासना उसका लक्ष्य रहा और इसीलिए यहाँ जिन-जिन महापुरुषों का आविर्भाव हुआ वे सत्-सद्गुणों के साक्षात् अवतार ही रहे हैं।

भारतीय संस्कृति में श्रमण संस्कृति का अपना निराला स्थान रहा है। जिन महापुरुषों का इस श्रमणधारा में आविर्भाव हुआ उन्होंने त्याग-विराग, कर्षणा, दान और सेवावृत्ति को सर्वाधिक महत्व दिया। आज भी इस धारा के अनुयायी उसी का अवलम्बन करते हुए इस परम्परा को अनुप्राणित रखने में सतत प्रयत्नशील है।

इस प्रवाह को अखण्ड प्रवाहित रखने का महत्वपूर्ण कार्य जिन महापुरुषों ने किया और वर्तमान में कर रहे हैं, उन मनीषी महापुरुषों की मणिमाला के ही श्रद्धेय पंडितरत्न मुनि श्री कस्तूरचन्दजी महाराज तथा शास्त्रविशारद पंडितरत्न मुनि श्री हीरालालजी महाराज रत्नगर्भा मालव-भूमि के दो मणिरत्न हैं। स्थानकवासी समाज की यह दो महान् विभूतियाँ हैं जो मानव मात्र के लिए वरदान स्वरूप हैं। मालवरत्न मुनिद्वय का दीर्घ संयमी जीवन, प्रशंसनीय शासन सेवा, अमृतत्व बोधागमिक 'विधा' की साधना, एवम् जिन साहित्य के अध्ययन में समरसता अपने आप में इतने महत्वपूर्ण हैं कि जो सदा सर्वदा अभिनन्दनीय रहे हैं और रहेंगे।

अन्त में प्रभु वीर से प्रार्थना करता हूँ कि त्याग-विराग की यह साक्षात् वीतरागी मूर्तियाँ दीर्घ-संयमी जीवन व्यतीत करते हुए संघ-समाज व राष्ट्र में शांति एवं "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना जाग्रत कर मानव जीवन की प्रेम-प्रकाश की ओर फल्लवित व विकसित करने की प्रेरणा देते रहें युग-युगान्तर तक। यही इस "मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ" के समा-योजन के पुनीत पावन मंगलमय वेला में मुनिद्वय के श्री चरणों में मैं अपनी भक्ति-भाव भरी पुष्पांजली वन्दना के स्वरोँ में अर्पित करते हुए अपने आप को धन्य मानता हूँ।

शुभकामना एवं



आशीर्वचन

□ मरुधरकेशरी प्रवर्तक श्री मिश्रीमल जी महाराज

(१)

संयमवय मुनि ज्ञान में, बड़े वृद्ध मुनिराज ।
दिव्य दिवाकर संघ में, सन्तन के सिरताज ॥

(२)

धीमी बोली धवल यश, गिरवापन गम्भीर ।
निपट निभाऊ संघ में, निर्मल गंगा नीर ॥

(३)

रखे शांतता हृदय में, और वही वचन प्रवाह ।
काया पण दुरी नहीं, योग त्रय सुख दाय ॥

(४)

हेर लेवो सारी जगह, जाकर आप जरूर ।
इसड़ी जग लाधे नहीं, जिसड़ी वहाँ किस्तूर ॥

(५)

तन चक्षु ज्योति नरम, ज्योतिष की जो राय ।
जो जावे जाके निकट, झटपट पूरे चाह ॥

(६)

हृद विचरे हर देश में, मुनिवर हीरालाल ।
प्रवर्तक पद है प्रगट, चौखी मुनि पद चाल ॥

(७)

इन दोनों का संघ में, अभिनन्दन अभिराम ।
संघ करेला सांतरो, राजी मन रतलाम ॥

(८)

द्वय मुनि दीर्घायु हो, दिन दिन धर्म उद्योत ।
करजो और फलजो सदा, जगा जैन की ज्योत ॥

(९)

दो सहस्र तैंतीस वर्ष, भादव तम पक्ष बीज ।
मिश्री कहे दोनों मुनि, चिरजिव रहे बीज ॥

अभिनन्दन-एकादशी

□ कवि श्री चन्दनमुनिजी महाराज (पंजाबी)

(१)

मधुर महक कस्तूरी-सी जो,
जग को देने वाला ।
“श्री कस्तूरचन्दजी” कैसा,
सुन्दर नाम निराला !!

(३)

पिता सेठ “श्री रतीचन्दजी”,
माता “फूली बाई” ।
ओसवाल - चपलोट-गोत की,
प्रगटाई पुण्याई ॥

(५)

उगनीसौ बासठ-कातिक की,
शुक्ला तेरस प्यारी ।
धूमधाम से “रामपुरा” में,
बने महाव्रत धारी ॥

(७)

दिव्य देह मुखमण्डल मालिक—
मुद्रा मुस्काती के ।
पण्डित प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी—
के हैं गुजराती के ॥

(९)

“मालवरत्न” कहाते हैं यों,
मालव प्रान्त जगाया ।
वैसे दया-धर्म का झण्डा,
जगह-जगह लहराया ॥

(२)

जन्म जेठ की पहली तेरस,
उगनीसौ उनचासा ।
शहर “जावरा” जनता की जब,
पूर्ण हुई अभिलाषा ॥

(४)

“खूबचन्द” आचार्य वर्य-सा,
पाकर गुरुवर प्यारा ।
दुनिया के आराम - धाम से,
इक दिन किया किनारा ॥

(६)

आगम-ज्ञाता बने, बने हैं—
ज्योतिष के भी ज्ञाता ।
दम, शम, संयम गहन गुणों का,
पार नहीं है आता ॥

(८)

त्यागी औ बैरागी सच्चे,
समता - सत्य - पुजारी ।
सन्त आप-सा विरला होगा,
कोई पर उपकारी ॥

(१०)

ज्ञानी ध्यानी अमृतवाणी,
शास्त्रों के व्याख्यानी ।
मिलना मुश्किल जगतीतल पर,
मुनिवर उनका सानी ॥

(११)

अर्द्ध खिले दो सुमन श्रद्धा के,
करके चरणन अर्पन ।
करता है अभिनन्दन वन्दन,
पंजाबी “मुनि चन्दन” ॥



श्रद्धा-सुमनांजलि

□ कवि श्री चन्दनमुनिजी महाराज (पंजाबी)

(१)

चमक दमक गुण हीरे जैसे,
जिनमें भरे कमाल ।
उच्चाचारी मंगलकारी,
“मुनिश्री हीरालाल” ॥

(३)

पौष सुदी इक, उगनीसौ का,
चौंसठ सम्बत आया ।
लेकर जन्म आपने जग में,
“मन्दसौर” चमकाया ॥

(५)

पढ़ने - लिखने खेल - कूद में,
पन्द्रह वर्ष बिताये ।
“लक्ष्मीचन्द” मुनीश्वरजी के,
दर्शन पावन पाये ॥

(७)

गोरा-काला अदना - आला,
बूढा था या बाला ।
झूम उठा था “रामपुरा” वह,
उत्सव देख निराला ॥

(९)

शास्त्रों का स्वाध्याय सतत ही,
प्रायः करते रहते ।
बाई, भाई को दुखदायी,
वचन कभी न कहते ॥

(११)

चरण कमल में श्रद्धा के दो,
करके सुमन समर्पण ।
“चन्दनमुनि” पंजाबी करता,
वन्दन औ अभिनन्दन ॥

(२)

हैं “जैनागम तत्त्व विशारद”,
सब के जो सुखकारी ।
पूज्य “प्रवर्तक” पद के धारी,
वाणी अमृत प्यारी ॥

(४)

“लक्ष्मीचन्द” पिताजी प्यारे,
मात “हगामकुंवर जी” ।
ओसवाल के दुगड़ गोत्र के,
आप दिव्य दिनकर जी ॥

(६)

मात-पिता से आज्ञा लेकर,
उनसे दीक्षा धारी ।
उगनीसौ उनयासी सम्बत्,
माघ सुदी त्रय प्यारी ॥

(८)

हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत सीखी,
सीखी है गुजराती ।
गहरा ज्ञान आगमों वाला,
चाह न जिसकी आती ॥

(१०)

भोजन, भाषन, शयन स्वल्प है,
चारों स्वल्प कषाय ।
ऐसे महामुनीश्वरों के गुण,
कोई कैसे गाय ॥



उपाध्याय ज्योतिर्विद श्री कस्तूरचंदजी महाराज के प्रति भारत की सम्पदा

□ गणेशमुनि शास्त्री

□

वन्दनीय अभिनन्दनीय है, सन्त सम्पदाएँ भारत की ।
मालवरत्न पूज्य मुनिवर लें, भेंट भावयुक्त कृत स्वागत की ॥

सूक्ष्म सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम, दृष्टि बनी रहती सन्तों की ।
सन्तों की शुभ सेवाओं से, शोभा होती सत्पन्थों की ॥

सन्त पन्थ है पन्थ सन्त है

सन्तमुना करते सुखपूर्वक, पीड़ा असमय समयागत की...

धन्य पिता श्री रतीचन्द जी, धन्य धन्य माँ फूली बाई ।
जन्मभूमि भी धन्य जावरा, रामपुरा में दीक्षा पाई ॥

धन्य धन्य गुरु खूबचन्दजी

जिनके द्वारा शिक्षा पाई, पंच महाव्रत समता - सत की....

यह मेरा यह तेरा ऐसा, नहीं आपने जाना - माना ।
स्वीकृत किया हुआ सेवाव्रत, बस निष्ठा से उसे निभाना ॥

आर्य ज्योतिषाचार्य प्रवर नित

भाव सहित अनुमोदन करते, औरों के शुभ कृत- कारित की....

'मुनि गणेश' शास्त्री क्या बोले, बोल रहा यश सदा आपका ।
न्यक्कृत बनता रहा आप से, बहुत बड़ा परिवार पाप का ॥

उपकृत सत्कृत संघ आप से

प्रतिकृति प्राप्त न होती हमको, ऐसे स्पष्ट लिखित मुनि खत की....



प्रवर्तक श्री
हीरालालजी
महाराज की



□ श्री गणेशमुनि शास्त्री

(१)

शारद सलिल समान समुज्ज्वल,
तत्त्व विशारद हीरालाल ।
पूज्य प्रवर्तक मुनिजी की ये,
जीवन रेखाएँ सुविशाल ॥

(२)

सम्बत् उन्नीसौ चौसठ के,
पौष मास का उज्ज्वल पक्ष ।
तिथि एकम शुभवार शनैश्चर,
मन्दसौर का स्थल प्रत्यक्ष ॥

(३)

दूगड़ लक्ष्मीचन्द्र सेठ के,
घर में पत्नी कुँवर हगाम ।
जन्म आपका जान जगत ने,
प्रकट किया था हर्ष प्रकाम ॥

(४)

पन्द्रह वर्षों के होते ही,
निकले संयम लेने को ।
मुनिवर लक्ष्मीचन्द्र पधारे,
पावन संयम देने को ॥

(५)

संस्कृत प्राकृत गुजराती फिर,
हिन्दी का अभ्यास किया ।
भाषाओं के माध्यम से ही,
जग को नव्य प्रकाश दिया ॥

(६)

भारत के ग्यारह प्रान्तों में,
विचरे जन हित करने को ।
आप उतरते गहराई में,
कहते डडे उतरने को ॥

(७)

हंसता हुआ चेहरा सुन्दर,
गौर वर्ण अति भव्य ललाट ।
ये सारे प्रकटित करते हैं,
मुनि जी का व्यक्तित्व विराट ॥

(८)

स्पष्टवादिता अनास्वादिता,
आल्हादितता लिए चलते ।
गुणी पुहष का आश्रय पाकर,
गुण-गण सुख पूर्वक पलते ॥

(९)

'जिओ और जीने दो' का ये,
देते हैं संदेश 'गणेश' ।
जिओ आप चिरकाल शुभेच्छा,
उपहृति मेरी एष विशेष ॥

□

गुरु-कस्तूर गुण-पञ्चीसी

□ श्री रमेशमुनि सिद्धान्ताचार्य

(१)

शस्य श्यामला मालव धरा-
की अमर-अनूठी कहानी है ।
आर्य संस्कृति - सभ्यता की,
इसने की अगवानी है ॥

(२)

इसकी गौरव गाथा गा कर
सुर - नर मुनिवर हृषति हैं ।
इतिहास के पन्ने खोल देखो
जहाँ सभी आश्रय पाते हैं ॥

(३)

प्रकृति की सुषमा चारों ओर,
फल - फूलों से हरी - भरी ।
धर्म - दर्शन की रंगस्थली,
है काव्य राशि पग-पग बिखरी ॥

(४)

कल्याण केन्द्र गुरु कस्तूरचन्द,
गुण - रत्नों का न किनारा है ।
सदा जयवंत भगवंत रहो,
बस यही हमारा नारा है ॥

(५)

उन्नत उदर गण धर जैसा,
आकर्षण करता जन - मानस है ।
अनुभव मेरा यही बताता,
जिसमें जानामृत सा रस है ॥

(६)

विशाल भाल भव्य जँचता,
चमक - दमक मन मोहक है ।
भुजा, भाल - वक्षस्थल
प्रबल पुण्याई के द्योतक है ॥

(७)

पार्थिव देह की बाह्य विभूति
जो वैर विरोध भुलाती है ।
भूली भटकी आत्माओं को
सत्वर सन्मार्ग में लाती है ॥

(८)

कैसी अनोखी तपोमूर्ति अहा,
यशस्वी - तेजस्वी ओजस्वी महा ।
दर्शन से आनन्द मकरन्द उभरे,
तास्विक मनस्वी ऋषि महा ॥

(९)

सम्यग्दर्शन के शुद्धारावक,
सम्यग् ज्ञान के शुद्ध साधक हो ।
सम्यक् चारित्र के पवित्र पालक
मोक्ष-मार्ग के विधायक हो ॥

(१०)

दीन दुखी दलितों के सेतु हो,
सुख घाम विश्राम हेतु हो ।
दयासिन्धु भवी - कुमुद इन्दु,
कर्म - अरि के लिए केतु हो ॥

(११)

है करुणामृत से हृदय पूरित,
है दानामृत से हस्त शोभित ।
वचनामृत से रसना रमणीय-
कमनीय आकृति करती लोभित ॥

(१२)

जैसी कथनी वैसी करणी,
और करणीवत् कथनी अहो !
रत्नत्रय की भव्य भरणी अरु
भव्यों के लिए तुम तरणी अहो ॥

(१३)

पवित्र चरित्र सरस सौरभ से,
समाज - वाटिका महकती है ।
भद्र प्रकृति के अमर देवता,
कीर्ति तुम्हारी दमकती है ॥

(१४)

स्याद्वाद - सिद्धान्त मर्मज्ञ हो,
धर्मज्ञ हो, शासन की शान हो ।
ज्ञान हो, भान हो, भगवान हो,
भव्यों के लिए तुम प्राण हो ॥

(१५)

विशालता - सरलता - उदारता,
ऋजुता गुण के तुम धनी हो ।
भण्डार हो कि आधार हो,
धरणी हो कि जननी हो ॥

(१६)

अरे ! ओ ! शान्ति के अग्रदूत,
जग पग - पग तुम्हें स्मरता है ।
तव चरणमणि का पाकर स्पर्श,
जीव शिवानन्द को वरता है ॥

(१७)

निलोप हो तुम माया-व्यथा से,
ममत्व भाव से कोसों दूर हो ।
अनासक्ति के कर्मठ साधक
साधना मार्ग में तुम शूर हो ॥

(१८)

भेद - कैद का भेद - छेद कर,
अपनाई जीवन में निश्चलता है ।
समुद्र इव गांभीर्यता और,
हिमवान इव अचलता है ॥

(१९)

अहिंसामय उपदेश - सन्देश,
जन जन को जागृत करता है ।
सत्यं शिवं जीवन तेरा,
जन - जन में प्रेरणा भरता है ॥

(२०)

संगठन स्नेह के तुम हिमायती,
कड़ी से कड़ी जोड़ने वाले हो ।
तुम्हारी शान के तुम ही हो,
और आग बुझाने वाले हो ॥

(२१)

महकता आध्यात्मिक जीवन पुष्प,
अनुभव में क्षीर सागर हो ।
श्रुत रत्नों से ज्योतिमान,
मानो शीतल सुधाकर हो ॥

(२२)

विमल ज्ञान के निर्मल निरंतर
कमल दल अमल योगी मस्त ।
गुण गरिमा - महिमा महान,
कौमुदी वत् करणी है स्वस्थ ॥

(२३)

धन्य पिता रतिलाल और,
धन्य माता कूख 'फूली' है ।
धन्य शहर जावरा हुआ,
धन्य धन्य महिमा खूली है ॥

(२४)

धन्य समाज हुआ तुमको पाकर,
चारों ओर कीर्ति चमक उठी है ।
धन्य मंगल दर्शन करके
छाई हर्ष की छटा अनूठी है ॥

(२५)

चन्द श्रद्धा सुमन से, चरण पूजूं में खास ।
'कस्तूर' गुरु प्रताप से 'रमेश' फले सब आश ॥

मालवरत्न ज्योतिषाचार्य पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द्रजी म० के पुनीत चरणों में

श्रद्धासुमन

□ श्री रंग मुनिजी महाराज

[तर्ज : म्हाने जयपुरिया की]

गुरुवर करुणा रा भण्डार, जिन शासन रा शृंगार ।
 म्हारे हिवड़ा में पूरा पूरा बसिया म्हारा गुरुवरजी २
 जय जय थारी नित्य बोलूँ ॥८॥

जन्म जावरा में पाया, रतिचन्द पिता कहलाया ।
 माता फूली बाई जाया, आनन्द पाया म्हारा गुरुवरजी ।
 जय जय थारी नित्य बोलूँ ॥९॥

तेरह वर्ष में जब आया, पूज्य खूबचन्द गुरु पाया ।
 रामपुरा में संयम पाया, मुनिराया म्हारा गुरुवरजी ।
 जय जय थारी नित्य बोलूँ ॥१०॥

केशर, किस्तूर की या जोड़, यांकी कौण करेला होड़ ।
 मोह, ममता, बन्धन तोड़, संयम धारियो म्हारा गुरुवरजी ।
 जय जय थारी नित्य बोलूँ ॥११॥

भणिया जेनागम प्रमाण, कीनो ज्योतिष को बहु ज्ञान ।
 मालव रत्न निधान, पद पाया म्हारा गुरुवरजी ।
 जय जय थारी नित्य बोलूँ ॥१२॥

ज्ञानी ध्यानी समतासागर, क्षमामूर्ति गुणरा आगर ।
 कलिमल नाशे दर्शन पाकर, लाभ कमाया म्हारा गुरुवर जी ।
 जय जय थारी नित्य बोलूँ ॥१३॥

अमृत जैसी गुरु की वाणी, दर्शन कर सुधरे जिन्दगानी ।
 चमके दमके है पुण्यवानी, भारी लाया म्हारा गुरुवर जी ।
 जय जय थारी नित्य बोलूँ ॥१४॥

नभ में चमके पूनम चन्द, जग में चमके किस्तूरचन्द ।
 यां की महिमा जग में छाई, सौरभ पाई म्हारा गुरुवरजी ।
 जय जय थारी नित्य बोलूँ ॥१५॥

शत शत बार करूँ मैं वन्दन, निर्मल भावां सँ अभिनन्दन ।
 शीतल गुरुवर जैसे चन्दन, अमृत पाया म्हारा गुरुवर जी ।
 जय जय थारी नित्य बोलूँ ॥१६॥

युग-युग जीवो गुरुवर ज्ञानी, करली सफल आप जिन्दगानी ।
 म्हाने भवसागर सँ तारो, पार उतारा म्हारा गुरुवरजी ।
 जय जय थारी नित्य बोलूँ ॥१७॥

सत्य अहिंसा रा पुजारी, निर्मल पंच महाव्रत धारी ।
 ज्योति ज्ञान री जगाई, राह दिखाई म्हारा गुरुवरजी ।
 जय जय थारी नित्य बोलूँ ॥१८॥

गुरुवर चरण शरण में आयो, श्रद्धा सुमन साथ में लायो ।
 मनडो "रंगमुनि" हरषायो, सुख पायो म्हारा गुरुवरजी ।
 जय जय थारी नित्य बोलूँ ॥१९॥

जैनागमतत्त्वविशारद प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज के
पुनीत चरण-कमल में

श्रद्धासुमन

□ श्री रंगमुनिजी महाराज

[तर्ज—सावणी छोटी कड़ी]

जिनकी महिमा फ़ैली चहुँ दिशि में भारी ।
हिलमिल कर सबही जय बोलो नरनारी ॥१॥
ये जन्म मालवा मन्दसौर में पाया ।
श्री लक्ष्मीचन्दजी तात दूगड़ कहलाया ॥
माता थी जिनकी हगाम रत्न कुक्ष घारी ॥१॥
जन्मत ही हर्षे मात - पिता परिवारी ।
उन्नीसौ चौसठ पोष शुक्ला शनिवारी ॥
शुभ नाम आपका हीरालालजी यश घारी ॥२॥
जब छाया जिगर वैराग्य संयम पद पाया ।
और पिता श्री भी वही मार्ग अपनाया ॥
उन्नीसौ गुण्यासी रामपुरा श्रेयकारी ॥३॥
कर गहन शास्त्र अम्यास ज्ञानी कहलाये ।
जैनागम तत्त्व विशारद का पद पाये ॥
पूज्य खूबचन्दजी गुणवान गुरु उपकारी ॥४॥
नहीं तनिक कभी अभिमान आप में देखा ।
है सरल स्वभावी पुरुषार्थी मैं देखा ॥
रहे मस्त आप संयम पालन हर बारी ॥५॥
जहाँ जहाँ भी विचरे किया बहुत उपकारी ।
मरुधर मालव, मेवाड़ व कन्या कुमारी ॥
पंजाब देश गुजरात फिर भय टारी ॥६॥
हैं श्रमण संघ के आप प्रवर्तक प्यारे ।
मनमोहन मूर्ति चमके तेज सितारे ॥
अभिनन्दन हिलमिल करती जनता सारी ॥७॥
है मेरे पर उपकार ज्ञान सिखलाया ।
आगम का जो भी ज्ञान आपसे पाया ॥
नहीं भूलूँगा उपकार स्मरण हर बारी ॥८॥
इस स्वर्ण जयन्ति पर करता अभिनन्दन ।
चरणों में मेरी स्वीकृत शत - शत वन्दन ॥
“रंगमुनि” श्रद्धा के सुमन करो स्वीकारी ॥९॥



ओ शासन के सम्राट् !

□ प्रियदर्शी श्री सुरेश मुनिजी महाराज

(तज्जं—दिल सूटने वाले....)

ओ शासन के सम्राट् गुरुवर, ध्यान तुम्हारा लगाऊँगा ।
हृदय मन्दिर में नाम सदा मैं, मन-वच-तन से घ्याऊँगा ॥२॥

इस शस्य-श्यामला मालव भूमि में, जन्म आपने पाया है ।
माता 'फूला' ने फूल दिया, पिता 'रतिचन्द' मन भाया है ॥
मैं हर्ष विभोर हो सदा आपके, गुण गौरव को गाऊँगा ॥१॥

कुल चौदह वर्ष की वय में आपने, संयम को स्वीकार किया ।
कार्तिक सुद तेरस 'रामपुरा', पूज्य 'खूबचन्द' धार लिया ॥
ज्योतिषाचार्य कस्तूर गुरु को कभी भूल नहीं पाऊँगा ॥२॥

जो भी आता आप शरण में, उससे मधुर व्यवहार करे ।
मिलनसार रहने की गुरुवर, प्यारी मिष्ट गिरा उचरे ॥
'मालव रत्न' 'करुणा सागर' की सेवा सदा बजाऊँगा ॥३॥

मानस स्थल गंभीर आपका, वाणी मिश्री सम मानो ।
देव पुरुष ये अवतरे हैं, प्रकाश ज्योतिर्मय जानो ॥
आशीष आप गुरु देना मुझको, आत्म ज्योति जगाऊँगा ॥४॥

जैन जगत के उजियारे, जयवंत गुरु उद्धार करो ।
कस्तूरी सम यश फैल रहा गुरु, अखण्ड आनन्द माल करो ॥
'मुनि सुरेश' आपके चरणों में, मैं हरदम शीश नमाऊँगा ॥५॥



जय ज्योतिर्धर की

□ सफल वक्ता अजीत मुनिजी 'निर्मल'

(तर्ज — जय बोलो महावीर....)

जय बोलो महामना गुणीवर की ।
 गुरु श्री कस्तूर मुनिवर की ॥८॥
 मालव की श्यामल शस्य धरा ।
 अवतार जावरा नगर वरा ॥
 चपलोद वंश उजागर की ॥९॥
 पितु 'रतिचन्दजी' गुणरागी ।
 मातेश 'फूली जी' बड़भागी ॥
 गुरु भ्राता 'केशरी' मनहर की ॥१०॥
 हुक्मेश गच्छ के 'खूवाचार्य' ।
 पाये गुरुवर त्यागी आर्य ॥
 'श्री नन्दमुनि जी' शिष्यवर की ॥११॥
 जिन पथ के सत्याग्रही आप ।
 उज्ज्वल जीवन से रंगा प्रताप ॥
 पावन मनीषी मंगल कर की ॥१२॥
 गणपति सम शोभित देह-भाल ।
 मन सिन्धु से भी अति विशाल ॥
 नैतिक सरगम के यशोधर की ॥१३॥
 ज्ञानलोक के धवल-पुंज ।
 शांति-समता के सुखद-कुंज ॥
 निष्णात पुरुष ज्योतिर्धर की ॥१४॥
 श्रद्धा के सुमन स्वीकार करो ।
 नव शक्ति-क्रांति अपार भरो ॥
 निर्मल 'अजीत' श्रेयस्कर की ॥१५॥

□

गुरुदेव 'कस्तूरचन्द' यश मलयाद्रि सम महके महा !

□ एक श्रद्धालु



(१)

ज्ञानाब्धि जैनाचार्य 'खूबचन्द' सुगुरु से सद्ज्ञान ले ।
संसार में क्या सार है इस तत्व को सम्मान दे ॥
अविलम्ब बन अणगार घर का त्याग सर्व परियहा ।
गुरुदेव कस्तूरचन्द यश मलयाद्रि सम महके महा ॥

(२)

निज मात-तात 'रु बंश को जिसने समुज्ज्वल है किया ।
सद्धर्म ध्वजा फहराने में जीवन को सार्थक कर दिया ॥
आलोक प्रेम प्रभाव जिनका सुजनगण गुण गा रहा ।
गुरुदेव कस्तूरचन्द यश मलयाद्रि सम महके महा ॥

(३)

वाणी सुधारस से भरी प्राणी पिये इक बेर जो ।
पद-पंकजों में आ गिरे, बिन बेर इनके फेर वो ॥
भवी जीव चातक हेतु जो घन-तुल्य गर्जे हैं अहा ।
गुरुदेव कस्तूरचन्द यश मलयाद्रि सम महके महा ॥

(४)

जैनागमों का ज्ञान शुचि गुरु-मुख अहो ! जिनने पिया ।
इस हेतु इनके हृदय में विश्राम करुणा ने लिया ॥
हर्यक्ष के सम हेरि इनको वादि गज मद ढा रहा ।
गुरुदेव कस्तूरचन्द यश मलयाद्रि सम महके महा ॥

(५)

अवलोक जिनकी शांत मुग्धा शांति भी चकरा गई ।
आवाल-वृद्धों के हृदय में जो सहर्ष समा गई ॥
तप-तेज के समक्ष समझो सूर्य भी फीका रहा ।
गुरुदेव कस्तूरचन्द यश मलयाद्रि सम महके महा ॥

(६)

‘आचार्य श्री हुक्मेश गच्छ’ के संत आप मनोज्ञ हैं ।
सुन्दर परीक्षक भी अहा ! कर्तव्य योग्य में योग्य हैं ॥
अवलोक अद्भुत तर्क शक्ति दुष्ट दल दहला रहा ।
गुरुदेव कस्तूरचन्द यश मलयाद्रि सम महके महा ॥

(७)

वात्सल्यता पा करके जिनकी शिष्य-वृन्द मोद मना रहा ।
कमनीय-कविता में सुयश विश्व जिनका गा रहा ॥
मुनिवृन्द जिनकी मान्यता मन मुदित हो अपना रहा ।
गुरुदेव कस्तूरचन्द यश मलयाद्रि सम महके महा ॥

(८)

सच्छास्त्र मुनियों को सिखाने में रखे जो स्फूर्ति है ।
मुनि मण्डल जिनको मानता सौजन्यता की मूर्ति है ॥
पद-पंकज में संघ समाज भृंग मन लुभा रहा ।
गुरुदेव कस्तूरचन्द यश मलयाद्रि सम महके महा ॥



मंगल कामना अर्पित है

□ चन्दन मुनि “साहित्य विशारद”

जय जय तेरी हम सब करते, करुणा सिन्धु हैं जयकार ।
जय हो मालवरत्न हमारे, गुण रत्नों के जो भण्डार ॥

जय हो जीवन गुरुवर तेरा मोह ममता के त्यागी हैं,
अन्तरमन निर्मल पानी सा, जितवाणी के रागी हैं,
धन्य - धन्य हो तुम को हरदम तपधारी अणगार ।
जय हो मालवरत्न हमारे गुण रत्नों के जो भण्डार ॥१॥

धीर वीरता के हैं सागर कस्तूर गुरुवर हैं महान,
बलिहारी हम जाते चरणों में उपाध्याय हैं मेरे गुणवान,
श्रमण संघ के सजग प्रहरी हिमायती हे हितकार !
जय हो मालवरत्न हमारे गुणरत्नों के जो भण्डार ॥२॥

हे त्यागमूर्ति सन्त शिरोमणी ! आप सदा ही अजय हैं,
गुण-गरिमा के हे महामानव ! क्षमा निधि तेरी जय है,
मृदुता सरलता से पूत जीवन, धन्य-धन्य हे मुनि शिणगार !
जय हो मालवरत्न हमारे, गुण रत्नों के जो भण्डार ॥३॥

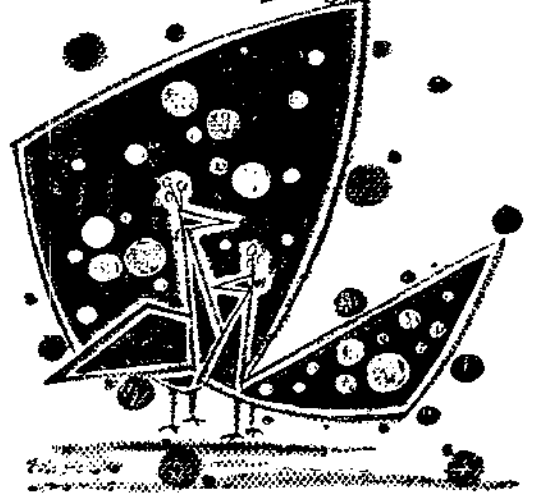
वाक्पटुता, मधुर वाणी आगम के तुम ज्ञाता हो,
निपुण हैं ज्योतिष विद्या में सहूजग के तुम भ्राता हो,
न्यायप्रियता से चन्दन धन्य, जिनकी महिमा का नहीं पार ।
जय हो मालवरत्न हमारे गुणरत्नों के जो भण्डार ॥४॥

दीर्घायु हों मेरे गुरुवर प्यारे, मंगलकामना अर्पित है,
अन्तःकरण की भाव भेटना, चरणों में आप समर्पित है,
युग-युग जीवो कस्तूर गुरुवर, दिव्य संजम ज्योति अवतार ।
जय हो मालवरत्न हमारे, गुण रत्नों के जो भण्डार ॥५॥

□

शुभ-शुभ वृद्धन

- बालकवि श्री सुभाषमुनि 'सुमन'
[तपस्वी श्री वृद्धिचन्दजी महाराज
के शिष्यरत्न]



(मनोहर छन्द)

महान मनस्वी प्यारा, करुणा का देवता जी ।
दया, सिन्धु गुरुवर, पर - उपकारी हैं ॥
धन्य तेरी जननी को, जन्म जहाँ पाया गुरु ।
हरषित फूलीबाई आप गुणधारी हैं ॥
रत्तीचन्द पिताजी के, नन्दन सुहाने प्यारे ।
महामना उपाध्याय, महिमा अपारी है ॥
कहत "सुभाष मुनि" गुरुवर कस्तूर जी ।
यथानाम तथागुण, आप हितकारी हैं ॥१॥

पाये गुरु खूबचन्द, छत्ती रिद्धी त्यागी महा ।
खूब किया ज्ञान ध्यान, संयम उजारी है ॥
ज्योतिर्विद् गुरुवर, जन - जन सुखकर ।
कामना रहित गुरु, ममता को मारी है ॥
जीवन पवित्र तेरा, गंगा सी निर्मल धारा ।
गुण गावो हर क्षण, हृदय में धारी हैं ॥
कहत "सुभाष मुनि" उपाध्याय कस्तूर के ।
प्रतिपल चरण में, वन्दना हमारी है ॥२॥

जन्म

बोहा

दिवाकर^१ नवरत्न^६ में, चतुर्विद दिशा जान ।
तत्त्व^६ नव में जेठ वदी, तेरस^{१३} रवि सुजान ॥१॥
जन्म लिया जिस दिन गुरु, हरषे थे नर नार ।
बटी बधाई सर्वत्र ही, होता मंगलाचार ॥२॥

दीक्षा

शीतल शीतल^१ चन्द है, निधि^० मिले सुख जान ।
षट्^६ काया प्रति पाल गुरु, नयन^२ बसे निर्वाण ॥३॥
कार्तिकशुक्ला त्रयोदशी,^{१३} गुरुदिन शुभ पहचान ।
दीक्षा लेकर घन्य हुवे, महा गुणी गुणवान ॥४॥

राधेश्याम

अभिनन्दन शत ! शत !! हे गुरुवर ! आज तुम्हारा करते हैं ।
चिरायु हों हे पूज्य प्रवर ! यह कामना जन मन करते हैं ॥१॥
दिग् दिगन्त में महक उठी, संयम की ज्योति यह प्यारी ।
प्रभावित होते उसे देखकर, महिमा गाते नर - नारी ॥२॥



अभिनन्दन हम करते हैं

□ बालकवि सुभाष मुनि “सुमन”

मनोहर छन्द

सरल स्वभावी मुनि, ज्ञानियों में आप गुणी ।
 माया और ममता को, मन से विसारी है ॥
 तप त्याग शूर महा, परम तेजस्वी मुख ।
 सद्गुण प्रकाशक, संयम सुधारी है ॥
 साधना का तेज सुन्दर, अलौकिक रमणीक ।
 वाणी मीठी मधु सम, कपट विसारी है ॥
 कहत “सुभाष मुनि” प्रवर्त्तक पद धारी ।
 उच्चता है जीवन में, आचार विचारी है ॥१॥

अहिंसा के उपदेशक, आगम के ज्ञाता महा ।
 परम दयालु गुरु, वैराग्य के धारी हैं ॥
 लक्ष्मीचन्द पिता गुरु, यथानाम तथागुण ।
 हगामजी धन्य हुई, धन्य महतारी है ॥
 सुदूर प्रदेश घूम, वीर वाणी प्रचारक ।
 गम्भीरता मेरु की सी, धीरता अपारी है ॥
 कहत “सुभाष मुनि” प्रवर्त्तक पद धारी ।
 विराटता जीवन में, महिमा विस्तारी है ॥२॥

आनवान शान देखो, दीपा रहे मुनिवर ।
 श्रमण संघ निष्ठा आप, त्यागमूर्ति भारी है ॥
 दीप्ति दमकती भारी, हीरा जैसी चमकति ।
 ऐसे मेरे प्रवर्त्तक, हीरालाल भारी हैं ॥
 हीरा के सदृश्य जीवन, कलिमल काम नहीं ।
 चरित्र पवित्र पूत, परम आचारी हैं ॥
 कहत “सुभाष मुनि” जैन तत्व विशारद ।
 पाद पद्म चरण में वन्दना हजारी है ॥३॥

राधेश्याम

जय जय जीवन तेरा है, जय जय करे नर नारी है ।
 जय जय करते सुर गण भी, वह संजम भी सुखकारी है ॥
 चहुँ दिशि में फँले कीरत, यह कामना हम सब करते हैं ।
 शतायु हों हे पूज्य प्रवर्त्तक ! यह भावना निशदिन करते हैं ॥

□

कस्तूर गुण-ज्ञान

□ मुनि विजय 'विशारद'

कस्तूर गुरुवर प्यारे हैं, जिन शासन की शान ।
करते हैं अभिनन्दन, अरु हम गाते गुण गान ॥८८॥

'फूली' माता के प्यारे दुलारे ।
'रतिचंद' जी के कुल उजियारे ॥
सौम्य सुहाने गुणिवर हो समता के निधान ॥९॥

ज्ञानी-महामुनि परम सौभागी ।
सम्पर्क पा कई आतम जागी ॥
धन्य पिता-माता है, अरु धन्य ज्ञान गुणखान ॥२॥

मालव के महा रत्न कहाते ।
कंकर को शंकर भी बनाते ॥
'सागर वर गंभीरा' करते हैं जग उत्थान ॥३॥

जैनागम के ज्ञाता गुरुवर ।
दीनों के रक्षक करुणा के सागर ॥
अहो ! मालव के भूषण, अहो मालव निधि महान ॥४॥

मधुरता का झरणा वचनों में झरता ।
हर-नर-जन को पावन करता ॥
हर्षित होकर वचनों का करते हैं जो पान ॥५॥

शुभ पद को तुम भूषित करते ।
विषले मानस में भी अमृत भरते ॥
'उपाध्याय' पद पाये अहो ! श्रमण संघ के प्राण ॥६॥

अद्भुत संयमी सच्चे मोती ।
जीवन में भर दो शुभ ज्योती ॥
उज्ज्वल मार्ग बनेगा, अपनाये जो सद्ज्ञान ॥७॥



प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज के प्रति

हीरक चालीसा

□ मुनि विजय 'विशारद'

(१)

महिमा मंडित मालव धरती, प्राचीन याद दिलाती है ।
जिस धरती की गौरव - गाथा, हर-जन वाणी गाती है ॥

(२)

हरियाली का सरस सुनहला, शीतलता का राज है ।
'मालव माँ का पेट है', यह हर नर की आवाज है ॥

(३)

जिसका चप्पा-चप्पा पावन, प्रभु वीर चरण से है ।
जिस भूमि की ख्याति, उसके डगर-डगर कण-कण से है ॥

(४)

जहाँ सभी मत पंथ-ग्रंथ का, देव तुल्य होता सम्मान ।
हर्ष सहित जहाँ गुणियों का, भक्ति से होता है गुणगान ॥

(५)

उसी भूमि की अतुल देन है, जहाँ हुए हैं ऋषि महान् ।
साधक तपी हुए हैं जहाँ पर, एक-एक ज्ञानी गुणखान ॥

(६)

महा मालव का 'मन्दसौर' है, नगर बड़ा ही भाग्यनिधान ।
धर्मनिष्ठ श्रद्धालु मानव, अर्थवान् रहते विद्वान् ॥

(७)

कर्त्तव्य-पालक श्रावक हैं जहाँ, नाम सुहाना 'लक्ष्मीचंद' ।
धर्मपत्नी श्री हगामबाई ने, पाया सुत छाया आनन्द ॥

(८)

शुक्ल पक्ष में जन्म हुआ तब, नाम दिया है 'हीरालाल' ।
जिसको पाकर परिवार हो गया, धन्य हो गया निहाल ॥

(९)

मात-पिता के संस्कारों से, हीरा हो गये संस्कारित ।
शुभ शिक्षा पाई है जिनने, जैन धर्म के आधारित ॥

(१०)

सात वर्ष की आयु में ही, प्रिय माताजी विदा हुई ।
अकथनीय वात्सल्य और, प्रीति भी जिनसे जुदा हुई ॥

(११)

बड़ी बहन थी 'कंचन', अरु छोटा भाई 'पन्नालाल' ।
काल ले गया उन दोनों को, दया न आई महा कराल ॥

(१२)

देख विदाई इन तीनों की, मन में छाया तब वैराग ।
आपने ही मन से वे बोले—जाग ! जाग !! मन ! ममता-त्याग ॥

(१३)

दिया किसी ने लालच जब, अपने अतुलित वैभव का ।
ओज पूर्ण उपदेश दिया जो, पाया आपने अनुभव का ॥

(१४)

अन्धकार में धक्का देती, महा विकट है यह माया ।
अब तक इसको नहीं समझा है, अरु ज्ञान भी नहीं पाया ॥

(१५)

हीरा ने विराग पथ पर, कदम बढ़ाकर की प्रवृत्ति ।
माया के बन्धन से ले ली, हर्षित हो स्वेच्छा निवृत्ति ॥

(१६)

ऐसे ही स्वर्णिम अवसर पर, 'नन्द गुरु' का चातुर्मास ।
जिनके अमृत उपदेशों से, छाया हर जन में उल्लास ॥

(१७)

दीपक की संगति पाकर के, अपर दीप पाता है प्रकाश ।
एक आत्मा के जगते ही, अपर आत्मा पाय विकास ॥

(१८)

दीक्षा की होते ही भावना, पूज्य पिता को जगा दिया ।
धार्मिकता की स्वच्छ लगन में, उन्हें भी जिसने लगा दिया ॥

(१९)

जिनकी प्रबल प्रेरणा से ही, सूत्रों का अभ्यास किया ।
प्रतिक्रमण कर लिया श्रमण का, अनेक स्थोक का ज्ञान लिया ॥

(२०)

त्रय महामुनि ने इसी वर्ष में, प्रिय संयम को स्वीकारा ।
उन्नीससौगुन्यासी का है, विक्रम सम्बत् अति प्यारा ॥

(२१)

गुरु प्रताप मेवाड़ भूषण हैं, इसी वर्ष के महा ज्ञानी ।
लक्ष्मीचंद-हीरा भी संयमी, धने तपस्वी गुण खानी ॥

(२२)

दीक्षा लेकर गुरु नन्द से, ज्ञान खजाना पाया है ।
श्रमण संघ का तुमने मुनिवर, गौरव अधिक बढ़ाया है ॥

(२३)

संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी अरु, गुजराती भाषा का है ज्ञान ।
जैन सूत्र आगम साहित्य में, बने आप मुनिवर विद्वान् ॥

(२४)

गतिशील अरु प्रयत्नशील भी, जीवन जग में है जगमग ।
संयम के ओ सबल सारथी ! सफल बने जग में पग-पग ॥

(२५)

शशि ज्योत्स्ना जैसे तुम्हारे, युगल नेत्र मन हरते हैं ।
अहिंसा-सत्य-प्रेम की वर्षा, निराबाध वे करते हैं ॥

(२६)

सौम्य सुहाना चेहरा पावन, करता है अति आकर्षित ।
देख-देख हर जन मानस हो जाता, गुणिवर अति हर्षित ॥

(२७)

शांति साधना सदा प्रिय है, पक्षपात का नहीं है नाम ।
हीरा-हीरा ही कहलाता, यथा नाम वैसे गुणधाम ॥

(२८)

धीरज सम्बल सबल आपका, संयम में पूरा पुरुषार्थ ।
ज्ञान-दर्श-चारित्र्य अतुलित, लगे जोड़ने प्यारा अर्थ ॥

(२९)

प्रकृति के हैं सरल सुधाकर, मृदुता के महनीय भण्डार ।
निर्मल सुरसरि सम जीवन है, पूरे पावन करुणागार ॥

(३०)

भव्य भाल पर तेज निखरता, ज्यों जानो भाष्कर का ओज ।
श्रमण संघ के शुभ्र समुद्र^१ में, जैसे खिल रहा सुखद सरोज ॥

(३१)

भूले - भटके पथिकों को, सदराह आपसे मिलती है ।
एक बार भी दर्शन करले, मुझित कलियाँ खिलती हैं ॥

(३२)

अन्धकार को दूर हटाने, ज्ञान आपने पाया है ।
धन्य आपके मात-पिता हैं, जीवन धन्य बनाया है ॥

(३३)

राजस्थान-गुजरात और भी, भ्रमण किया है उत्तर देश ।
बंगाल, आन्ध्र, पंजाब, केरला अति घूमे हैं मध्य प्रदेश ॥

(३४)

तमिलनाडु अरु कर्नाटक में, विहार किया है देश बिहार ।
जम्मू तक पहुँचाई है, अमृतमय वाणी प्रियकार ॥

(३५)

जैनागम विशारद हिम्कर, प्रवचन शैली है प्यारी ।
जो धारे जीवन में अ देने, बन जाता वह गुणघारी ॥

(३६)

मन के निर्मल, तन के निर्मल, निर्मल ऋजुता के सागर ।
नहीं ज्ञान से गर्वित होते, अहो ! मुनि गुण रत्नाकर ॥

(३७)

व्यक्तित्व और कृतित्व समन्वय, हुआ आपकी वाणी में ।
पवित्र-प्रेम पाने की आशा, करते हैं हर प्राणी में ॥

(३८)

रहे सदा जयवंत प्रवर्त्तक, यही कामना होती है ।
सफल भावना, सफल कामना, निश्चल मन की ज्योति है ॥

(३९)

उज्ज्वल गौरव समाज का है, जो करते हैं अभिनन्दन ।
मेरा भी ले लेवें मुनिवर ! चरणों में शत-शत वन्दन ॥

(४०)

प्रतिदिन-प्रतिपल अभिनन्दन, हर मुनि आपका करते हैं ।
'विजय मुनि' शुभ मंगलदायी, पवित्र-प्रेरणा बरते हैं ॥



वन्दन कृपा निधान

□ नवदीक्षित 'रतन मुनि'

(मेवाड़ मू० पं० श्री प्रतापमलजी म० के शिष्य)

(सर्ज—देख तेरे संसार.....)

धन्य-धन्य कस्तूर गुरुवर, गुणरत्नों की खान ।
जग में जीवन अति महान् ॥
करुणा सागर, विमल गुणाकर, करें सभी गुणगान ।
जग में जीवन अति महान् ॥टेरा॥

नगर 'जावरा' है अति प्यारा, जहाँ आपने जन्म है धारा ।
पिता 'रतिचन्द' कुल उजियारा, 'फूली माँ' का मोहनगारा ॥
उन्नीसौ-उनपचास मांही, लिया जन्म यहाँ आन ॥१॥

शुभ संस्कार पूर्व के भारी, ज्ञान प्राप्ति की रुचि तुम्हारी ।
गुरु 'खूबचन्द जी' अणगारी, उनकी शिक्षा तुमने धारी ॥
विनय-विवेक बुद्धि से गुरुवर पाया आगम ज्ञान ॥२॥

कई भाषाओं को पाया है, प्राकृत पर अति मन छाया है ।
ज्योतिष ज्ञान भी तुम पाया है, आगम निधि भी कहलाया है ॥
फिर भी गर्व कभी नहीं करते, जिन शासन की शान ॥३॥

धर्म प्रभावना बढ़ा रहे हो, पतित-पावन बना रहे हो ।
ठाठ सुहाना लगा रहे हो, अन्तर मन को जगा रहे हो ॥
'रतन मुनि' चरणों में करता वन्दन, कृपा निधान ॥४॥



महिमा महके

□ तपस्वी 'अभय मुनि'

(मेवाङ्गभूषण पं० श्री प्रतापमलजी म० के शिष्य)

(तर्ज—रेशमी सलवार.....)

महा मालव के रत्न बड़े उपकारी हैं।

महिमा जिनकी महके जगत् मञ्जारी है ॥टेर॥

नगर 'जावरा' प्यारा, 'पिता रतिचन्द' गुणधारी।

माता 'फूली' उजियारा, चपलोट गोत्र सुखकारी ॥

महा बलिहारी है ॥१॥

चौदह वर्ष की वय में, संसार की ममता त्यागी।

प्रिय पंच महाव्रतों के, बन गये आप अनुरागी ॥

ज्ञान भण्डारी हैं ॥२॥

गुरु खूबचन्द्र जी धारे, जो पूज्य प्रवर पद वाले।

जो महागुणी तेजस्वी, थे अद्भुत शक्ति वाले ॥

महिमा भारी है ॥३॥

आगम का ज्ञान सुहाना, गुरुवर ने विनय से पाया।

भूले-भटके पथिकों को, सच्चा राही है बनाया ॥

मंगलकारी हैं ॥४॥

अहो करुणा के सागर, मेरा वन्दन स्वीकारो।

हमको भी कस्तूर गुरुवर, है जग में शरण तिहारो ॥

'अभय' सुविचारी है ॥५॥



श्रमण संघ की थाती हैं.....

□ जिनेन्द्र मुनि 'काल्यतीर्थ'

मालव रत्न पूज्य प्रवर हैं,
ऊँचे मानव रत्न महान् ।
किये प्रयत्न आपने ऐसे,
जिससे हो जग का कल्याण ॥

जग कल्याण किया करते जो,
वे पाते पूजा का स्थान ।
पूजा स्थान प्राप्त कर लेना,
लिए सभी के कब आसान ॥

जग सम्पूर्ण प्रकाशित होता,
उदित सूर्य के हाथों से ।
विश्व सकल लाभान्वित होता,
मुदित सन्त की बातों से ॥

परहित जीवन जीने वाले,
परहित सब कुछ सहते सन्त ।
स्वहित तिरोहित कर परहित में,
सहिष्णुता का लेते पंथ ॥

जन-जन से सम्पर्क साधकर,
जग को सुखी बनाते सन्त ।
उनका वही भवान्त जगत के,
कष्टों का कर पाते अन्त ॥

ऐसे ज्ञानी मुनि का स्वागत,
करते हैं हम सब मिलकर ।
ऋतुराज का स्वागत करते,
ज्यों सारे सुमनस खिलकर ॥

श्रावक और श्राविकार्यें ये,
साधु-साध्वियाँ गाती हैं ।
श्री कस्तूरचन्दजी मुनिवर,
श्रमण संघ की थाती हैं ॥

वयोवृद्ध समृद्ध ज्ञान से,
वचन सिद्ध मुनिवर प्यारे ।
श्रद्धा पुष्प 'जिनेन्द्र' चढ़ाता,
परम प्रेम से स्वीकारें ॥

□

चरण-वन्दना

□ जिनेन्द्र मुनि 'काव्यतीर्थ'

हीरे तुल्य चमकने वाले,
मुनिवर हीरालाल महान् ।
आगम तत्त्व विशारद जिनका,
प्रवर्तकों में ऊँचा स्थान ॥

भूले-भटके पथिकों के हित,
मुनि होते हैं एक प्रकाश ।
अमरों और नरों का होता,
सत्य साधनों पर विश्वास ॥

छोटे बड़े सभी सन्तों का,
आप सदा करते सम्मान ।
इसीलिए है सबके मन में,
महामुनि का ऊँचा स्थान ॥

सरल सुगम्य विवेचन द्वारा,
देते जनता को प्रतिबोध ।
श्रोताओं को आया करता,
एक नया आमोद-प्रमोद ॥

आराधना अमर करते हैं,
सत्य साधना के हामी ।
विराधना के प्रबल विरोधी,
वीर मार्ग के अनुगामी ॥

देश समाज राष्ट्र के हित में,
लगा दिया जीवन सारा ।
एक त्याग के सम्मुख झुकता,
त्रिभुवन का तन-मन प्यारा ॥

श्रद्धांजलियाँ स्वीकृत करके,
हमको उपकृत आप करें ।
रही खामियाँ त्रुटियाँ जो भी,
उदारता से माफ करें ॥

'मुनि जिनेन्द्र' वन्दन करता,
श्री हीरा मुनि के चरणों में ।
सन्तों का शरणा होता है,
चारों मंगल शरणों में ॥

□

प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज

□ महासती मधुबाला

जय-जयकार है, खुशियाँ अपार हैं,

प्रवर्तकजी महाराज को, वन्दन बारम्बार है ॥टेरा॥

ओ...जन्म सन् उन्नीसौ चौंसठ, 'मन्दसौर' में पाया जी-२ ।
 'लक्ष्मीचन्द जी' पिता आपके, 'हगाम बाई' जाया जी-२ ॥१॥
 'दूगड़ बंश' में जन्म लिया है, 'हीरालाल' गुरु राया जी-२ ।
 धारा उत्तम संयम को, अब जीवन सफल बनाया जी-२ ॥२॥
 'रामपुरा' में दीक्षा लीनी, पिता श्री गुरु धारे जी-२ ।
 विद्या-सेवा - विनय से पाई, कल्याणी हितकारे जी-२ ॥३॥
 गाँव-गाँव और नगर-नगर में, अहिंसा धर्म फैलाते जी-२ ।
 जैन-तत्त्व अह दया का झंडा, घर-घर में फहराते जी-२ ॥४॥
 अभिनन्दन हम करते गुरुवर, सच्चा हीरा-हीरा जी-२ ।
 जीवन पावन 'मधु' बनाये, हीरा निखरा-निखरा जी-२ ॥५॥

□

मालवरत्न श्री कस्तूरचन्दजी महाराज

□ महासती मधुबाला

(तर्ज—शुभ फल पाओ रे.....)

गुरु गुण गाओ रे, गुरु गुण गाओ रे,

हिल-मिल चरणों में शीस झुकाओ रे ॥टेरा॥

जन्म लिया है शहर 'जावरा' खुशियाँ छाई भारी रे ।
 'रतिचन्द जी' पिता, मात 'फूली' उपकारी रे ॥१॥
 वैराग्य भाव को धार आप, संसार असार है जाना रे ।
 किया ज्ञान अभ्यास श्रेष्ठ संयम को माना रे ॥२॥
 शुभ वेला, शुभ पल में आप दीक्षा का ठाट लगाया रे ।
 खूबचन्द जी महाराज को गुरु बनाया रे ॥३॥
 विनय-वैयावृत्य और बड़ों की सेवा खूब ही कीनी रे ।
 धीर - वीर-करुणा सागर की पदवी दीनी रे ॥४॥
 गुण-वर्णन मेरी जबान ये, नहीं पूर्ण कर सकती रे ।
 'मधु कुँवर' फिर भी चरणों में, भावाञ्जलि धरती रे ॥५॥

□

व
न्द
ना

श्रमणसंघ के प्राण !

□ कांतिलाल बाफना

□ हस्तीमल बोहरा



पुण्योदय से पाये गुरुवर, महा गुणों की खान ।
हर्ष-हर्ष मेरे प्राण ॥

क्षमा के सागर, ज्ञान के आगर, चमके भाग्यवान ।
हर्ष-हर्ष मेरे प्राण ॥टेरा॥

‘रतिचन्द्र जी’ पिता तुम्हारे, माता ‘फूली’ के हैं प्यारे ।
देश मालवा के उजियारे, गुण गाते हैं मुनिगण सारे ॥
उसी धर्मभूमि की गुरु ने आज बढ़ाई शान ॥१॥

जग की माया नश्वर जानी, लघु वय में संघम की ठानी ।
गुरु मिले थे ज्ञानी-ध्यानी, अमृतमय थी जिनकी वाणी ॥
‘खूब गुरु’ को पाके आपका, जीवन हुआ महान् ॥२॥

गंभीर गुणों की खान तुम हो, भवियों के निधान तुम हो ।
पतितों के पतवार तुम हो, श्रमण संघ के प्राण तुम हो ॥
करते स्व-पर का देखो, जीवन का कल्याण ॥३॥

जन-जन को तुम जगा रहे हो, जिन शासन को दिया रहे हो ।
पाठ प्रेम का पढ़ा रहे हो, सन्देश धर्म का सुना रहे हो ॥
‘कांति-हस्ती’ शरण ले रहे, आज चरण की आन ॥४॥



मुनिद्वय अभिनन्दनम्



उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी के प्रशिष्य एवं साहित्यकार
श्री देवेन्द्र मुनिजी के शिष्य

□ श्री राजेन्द्रमुनि शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न



महाशयाः देव समामुनीशा,
भवन्ति विश्वस्य निधिः स्वरूपाः ।
अतः समस्ता उपकारिणस्ते,
हितोपदिष्टं विधिमाश्रयन्ते ॥१॥

भवन्ति सन्तस्तपसां निधीशा,
अतः सदाराध्यपदारविन्दाः ।
उपासनीया सततं जनेषु,
चारित्र्यचिन्तामणिचिन्तकास्ते ॥२॥

देवैः सदा स्तुत्यमहाधरेयम्,
ततोविशिष्टं भरतस्य वर्षम् ।
अथापि तस्मिन् नृपदेव प्रान्तं,
जाती तु हीरा, मृगनाभिसाधू ॥३॥

युगे युगे रत्नसमी मुनीशो,
विवर्द्धमानो भवतां हिताय ।
समाजधर्माधिक पुण्यभूमेः,
सदाभिरागां सुषमां वरिष्ठाम् ॥४॥



पूज्य श्री कस्तूरचन्द्रजी महाराज की सेवा में

□ कवि अभयकुमार “शौधेय” (मेरठ)

ओ मालव के संत रत्न,
विद्या वारिधि तुमको प्रणाम ।
ओ परम तपस्वी महःसंत,
शत शत प्रणाम ! शत शत प्रणाम !!

हे त्रैलोक्यश्रमण ! हे महास्थविर !
जिन दर्शन के अद्भुत पंडित !
हे श्रमण संघ के चूड़ामणि !
हे गौरवमय—महिमा मंडित !!

जाग उठी धरा अब करवट ले,
कस्तूरचन्द्र हे महाप्राण !
धारण कर चरण-धूलि तेरी,
करती प्रणाम ! शत शत प्रणाम !!
ओ मालव के संत रत्न,
विद्या वारिधि तुमको प्रणाम !!

□

पूज्य श्री हीरालालजी महाराज की सेवा में

□ कवि अभयकुमार “शौधेय”

जग-मग करता एक सितारा,
अम्बर छोड़ धरा पर आया ।
अंधकार मिट गया जगत का,
वह जब श्रमण संघ में आया ॥

‘हीरालाल’ नाम से पाई ख्याति,
जिन शासन का रत्न कहाया ।
दूर दूर तक धरा नाप कर,
इसने घर घर धर्म सुनाया ॥

महावीर का वीर सिपाही,
धर्म ध्वजा लेकर चलता है ।
जिधर उठाता चरण संतवर,
उधर पुण्य खिलता फलता है ॥

□

गुरु-गुण-गान

□ सती श्री ज्ञानवती जी

गुरु कस्तूर प्यारे हैं, शासन के सितारे हैं ।
 प्राण भक्तों के ये गुरु, पथ के उजियारे हैं ॥१॥
 ये मालव के हैं रतन, जावरा है इनका बतन,
 जग जान लिया झूठा, और सफल किया नर-तन ।
 रतिचन्द पिता, माता 'फूला' के दुलारे हैं...॥१॥
 ओ करुणा के सागर, मेरी छोटी सी गागर,
 कृपा करके भर दो, ओ सद्गुण के आगर ।
 भ्रमधर नय्या के, बस तुम ही किनारे हो...॥२॥
 अन्तर में प्रभा भर दो, तुम ज्ञान दिवाकर हो,
 सद्गुण को महका दो, तुम शान्ति सुधाकर हो ।
 ज्ञानवती के ये ही, गुरुदेव सहारे हो...॥३॥

□

करते श्रद्धा अर्पित आज

□ महासती श्री प्रीतिसुधाजी

करते श्रद्धा अर्पित आज,
 जिन शासन के दिव्य सितारे ।
 कस्तूरचन्द जी महाराज ॥ध्रुवपदा॥
 हृदय आप का अति निर्मल है,
 साथ में पुण्य का जोर प्रबल है,
 चरणों में नत जनता सकल है,
 सब की है एक आवाज ॥१॥
 स्फटिक सम शुद्ध मन है आपका,
 परचा देते अजब अनोखा,
 कइयों ने अनुभव से देखा,
 डूबते को बनते जहाज ॥२॥
 करुणा - सागर आप कहाते,
 दीनों का आश्रय हैं बनते,
 साधु-नियम में मजबूत रहते,
 कहलाते गरीब निवाज ॥३॥
 ज्ञान-क्रिया से जीवन सजाया,
 'उज्ज्वल' 'प्रीति' का विगुल बजाया,
 हो रहा अभिनन्दन महोत्सव सवाया,
 चिरायु हों ये संतराज ॥४॥

□

प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज अभिनन्दन शत-शत बार

□ कवि प्रियंकर

(१)

धरती हँसती है अम्बर भी, अभिनव गीत सुनाता है ।
हीरक मुनि के श्री चरणों में, कवि शुभ अर्घ चढ़ाता है ॥
अर्घ शान्ति का, प्रेम-दया, विश्वास-मनुजता श्रद्धा का ।
सत्य-अहिंसा-आत्म धर्म का, सर्वोदय-तप निष्ठा का ॥
खण्ड-खण्ड हो रहे जगत् को, मुनिश्री एक बनाते हैं ।
इसीलिए तो क्षितिज झूमता, दिग्पति शंख बजाते हैं ॥
अटल अहिंसा के व्रतधारी, करुणा धन तप-पूरित हैं ।
कविता नहीं हृदय की अञ्जलि, सादर आज समर्पित है ॥

(२)

एक सुई की नोक बराबर, भूमि बँधु को दे न सके ।
वे कौरव थे इतिहासों में, नाम स्वयं का कर न सके ॥
युद्धों से ही सभी समस्या, हल होती थी द्वापर में ।
जब कि स्वयं वामुदेव कृष्ण का, अनुशासन था घर-घर में ॥
किन्तु आज श्री हीरामुनिजी, शान्ति मार्ग बतलाते हैं ।
दया-धर्म और सत्य-अहिंसा, का सन्देश सुनाते हैं ॥
नरता का निर्मल्य अपरिमित, जन-गण मन को अर्पित है ।
कविता नहीं हृदय की अञ्जलि, मुनि चरणों में वंदित है ॥

(३)

शस्य - श्यामला भारतमाता, भूल गई अपने दुखड़े ।
हिसक भूल गये हिंसा का, जीव दया के रत्न जड़े ॥
उत्तर - दक्षिण-पूरव-पश्चिम, गगन धरा पाताल सभी ।
हीरक मुनि के वचनामृत से कण-कण रहता मुखर अभी ॥
संत-शिरोमणि, शान्ति-मूर्ति, मुनि हीरालाल सुहाते हैं ।
हीरक-प्रवचन की इस निधि का, मंगल कोष लुटाते हैं ॥
सत्य-अहिंसा-शान्ति-दया ही, महासन्त का अमृत है ।
कविता नहीं हृदय की अञ्जलि, संत-चरण में अर्पित है ॥

□

मालवरत्न श्री कस्तूर

□ बी० विमल कुमार रांका, नौमाज बाला

मालव रत्न श्री कस्तूर की गाथा रही है,
 गौरवमयी महा महत्ती यश धारी ।
 जन्मे जावरा शहर पिता रत्तीचन्दा
 और थी फूली चाई आप की मात महतारी ॥
 वय तेरह के होते ही स्वीकारी खुद ने
 जैन भगवती मन भावनी संयमी दीक्षा ।
 बढ़ प्रगति पथ करत धर्म अभ्यास
 ली हमेशा ही सात्विक भोजनी भिक्षा ॥
 कस्तूरी ज्यों मृगनाभि रहती स्थित त्यों
 शास्त्र ज्ञान इनके हृदय गहन सबने माना है ।
 हिन्दी, प्राकृत पढ़, संस्कृत पढ़े फिर ज्योतिष,
 ज्ञान हासिल करना भावना इनने मन ठाना है ॥
 संयमी रश्मियाँ करते विकसित जैनी सन्ता,
 मग की यश वीरति जग में बढ़ अनुपम जगाई ।
 बन यशस्वी कर्म धीरा गुरु खूब की,
 जग में खूब चमक जैनत्व की दुन्दुभि महती बजाई ॥
 हो आज भी हे मुनि जी हिम्मत में,
 हिमालय गंगा से पावन अनमोल निधि जैन जगति में ।
 मानता आप को तीर्थ घाम सारा ही मालव,
 और हो श्रमण पूरे संयम त्याग और ईश भक्ति में ॥
 हे कर्मवीर, हे समता रस सागर कितना भी
 यशगान करूँ तो कम ही है [यह] तुम्हारा ।
 होवे जब ग्रन्थ में, छप कर तुम्हारा,
 अभिनन्दन श्रद्धा से नत मस्तक हो चरणों में हमारा ॥



गुरुदेव श्री कस्तूरचंदजी महाराज के गुणगान

□ दीलतसिंह तलेसरा, भादविभा निवास, बाटेसर महादेव, उदयपुर
 ओ जिन शासन के ताज, कस्तूर 'महाराज',
 बड़े उपकारी - मैं बार - बार - बलिहारी ॥२॥

जावरा-शहर में जनम जो पाया, मात फूलां के गोद में आया,
 "रतीचन्द" ने प्यार लड़ाया, घर-घर खुशियां भारी ॥१॥ ओ०

बालपणा में वैराग्य छाया, सर्व कुटुम्ब को दूर हटाया,
 खूबचन्द के शरणे आया, शिक्षा-ग्रहण जारी ॥२॥ ओ०

आत्म - बलसुं ज्ञान रमाया, संयम क्रिया में ध्यान लगाया,
 शुद्ध-चारित्र्य से ज्ञान सुणाया, द्योतिष कला अति भारी ॥३॥ ओ०

अन्य जाती को राहा बताया, नगर-नगर में आप पधारधा,
 सब को अपना भक्त बनाया, किया बहुत उपकारी ॥४॥ ओ०

पोषणशाला में पगल्या होते, जग-जन-को आप दर्शन देते,
 मंगलीक देते-ताजीम देते, चरणां झुके नर नारी ॥५॥ ओ०

वृष अवस्था-सुखी बिताते, रतनपुरी में निव लगाते,
 शिष्य मण्डली सेवा करते, धन्य-धन्य-महिमा थारी ॥६॥ ओ०

दीलत सिंह हैं दास तुम्हारा, वन्दन लीजो गुरु हमारा,
 भक्तों के हो तुम रखवारा, गुगजुग जीओ बलिहारी ॥७॥ ओ०

□

प विस

दीन - बंधु इनही गुरुवर की सहाय कीजे,
 समाज में विजय कीजे, इनही के नाम की ।
 इनही की ताकत सों, समाज को सुधरियो काज,
 इनही की शासन सों, संघ ने मौज की ॥

"कस्तूर" को इकबाल, सौ गुनो बढ़ावे प्रभू,
 तरक्की होय समाज में, सब ही काम की ।
 मुनिगण शिष्य की, उमर दराज कीजे,
 आयु दीर्घ कीजे श्रु "कस्तूर" महाराज की ॥१॥

□

कोई कह्यो रे गुरु दर्शन की, आवन की मन भावन की,
 आप न आवे लिख नहि भेजे, बाण पड़ी ललचावन की ॥१॥

ए दोई नेण कह्यो नहि मानें, नदियां बहे जैसे सावन की,
 कहा करूँ कछु बस नहि मेरा, पांख नहि उड़ जावन की ॥२॥

वृधापन में रोगी म्हेँ तो, साथ मिले भला आवन की,
 दीलत कहे गुरु कद मिलेगो, दर्शन देय मुख हंसन की ॥३॥

□

गाय-भेंस-पशुओं की चमड़ी, आती सौ - सौ - काम ।
 हाथीदांत तथा कस्तूरी, बिकती मंहगे-दाम ॥

प्रवचनकार : जैनागमतत्त्वविशारद
प्रवर्तक श्री हीरालालजी नहाराज के गुणगान

□ दीलतसिंह तलेसरा, भादविया निवास, बाटेसर महादेव, उदयपुर

बोहा

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भव जलधि जहाज ।
आप तिरें पर तारहीं, गुंसे श्री मुनिराज ॥

कवित्त

गुरु "हीरा" देव समान दिखे चतुर,
और ज्ञानवान, उत्तम निगाह वाले हैं ।
सूत्रों के जानकार, भाषण के शानदार,
संयम के उजले, क्रिया पालन वाले हैं ॥
धर्म के हित काज, केई गाँव परस आप,
पर उपकारी संत, शान्त स्वभाव वाले हैं ।
सब ही जनता के साथ, सनेह बरसावें आप,
धन्य हीरालाल तूं, बापू "लक्ष्मी" के लाले हैं ॥

बोहा

प्रेम "हीरा" न छुपे, जां घट भया प्रकाश ।
दाबी - दूबी ना रहे, कस्तूरी की वास ॥
काली-कलूटी-रात का, परिणाम प्रभात है ।
ज्यादा कड़ी गर्मी का, परिणाम बरसात है ॥
कंकर और पत्थरों को, नजर अंदाज मत करो ।
देखो उन्हीं में से, निकलता "जवाहरात" है ॥
जग, जश, लिधो-मोकलो, जग सहलिधो जाण ।
जग-ने-वश किंकर किधो, अमृत जीवां बखाण ॥
आयु बढ़े कीर्ति बढ़े, जन - जन देत आशीष ।
"गुरु हीरा" कुशल रहें, सहय करे जगदीश ॥

□

श्री कस्तूरचन्दजी महाराज साहब के चरण-कमल में समर्पित

□ राजमल महेता बी. ए. साहित्यरत्न, ज्योतिष विशारद (कुशलगढ़)

कस्तूरी सम हैं सुवासित, मालव रत्न सुखधाम हैं ।
 वयोवृद्ध समता रसधारी, श्री को कोटि कोटि प्रणाम हैं ॥
 प्रियदर्शी, मधुमूर्ति, दर्शन सदा सुखकारी हैं ।
 ज्योति पुंज ज्योतिष के ज्ञाता, महिमा जिनकी भारी हैं ॥
 सदा प्रसन्न सौम्यवदन, दर्शन की बलिहारी है ।
 मंगलमूर्ति मंगलकारी, पुण्यवान उपकारी हैं ॥
 मालवरत्न सन्तपद शृषण, संतन में सरताज हैं ।
 दर्शन कर श्री चरण में, पुलकित आज समाज है ॥
 महेता के मनभावन पवन, सौम्याकृति सुखकारी हैं ।
 कोटि कोटि वन्दन श्री चरण में, ज्योतिपुञ्ज धारी हैं ॥

□

“द्वय मुनि अभिनन्दन”

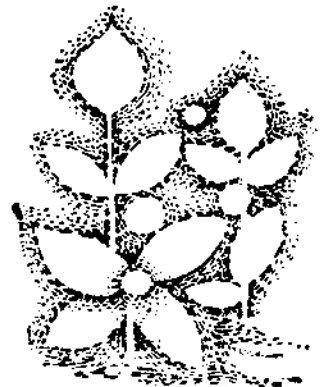
□ शान्तिलाल मेहता

द्वय मुनि को नतमस्तक हो साधारण सी भेंट है,
 स्वीकार करेंगे वंदना, अर्चना के ये शब्द हैं ।
 द्वय मुनि, गरीबों अनाथों के सरताज हैं,
 द्वय मुनि को नतमस्तक हो साधारण सी भेंट है ॥
 सागर सम विशाल हृदय और कार्य क्षेत्र है,
 दया पालो कह दिया तो बेड़ा पार है ।
 द्वय मुनि को नतमस्तक हो साधारण सी भेंट है ॥
 अभागों के भाग्य हैं, पतितों के उद्धारक हैं,
 प्राणीमात्र के प्रति प्रेम और दया के प्रतिपालक हैं ।
 द्वय मुनि को नतमस्तक हो साधारण सी भेंट है ॥
 त्याग और अपरिग्रह का पाठ सभी को पढ़ाते हैं,
 संगठन में लाने का एक ही महान लक्ष है ।
 द्वय मुनि को नतमस्तक हो साधारण सी भेंट है ॥
 जो भी शरण में आता है उद्धार उसका करते हैं,
 तरण, तारण जहाज सम जीवन है ।
 द्वय मुनि को नतमस्तक हो साधारण सी भेंट है ॥

तृतीय खंड



मालवभूमि :-
धार्मिक, ऐतिहासिक
एवं सांस्कृतिक गरिमा



मालव इतिहास : एक विहंगावलोकन

विद्यावारिधि डा० ज्योति प्रसाद जैन, लखनऊ

[हमारे अभिनन्दनीय गुरुदेव ज्योतिर्विद् श्रद्धेय श्री कस्तूर चन्दजी महाराज एवं प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज की जन्मभूमि मालव प्रदेश रहा है। मालव, जैनधर्म-संस्कृति एवं इतिहास की क्रीडा-भूमि रही है। जैन संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन में मालवभूमि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अभिनन्दनीय पुरुषों की अभिनन्दन वेला में जन्म-भूमि के गौरव को स्मृतिपथ में लाना भी अनिवार्य है। इस दृष्टि से इस खण्ड में प्रस्तुत है—जन्मभूमि मालव की धार्मिक एवं सांस्कृतिक गरिमा का विरल शब्द-चित्र।]

—सम्पादक

मध्य प्रदेश का जो भूभाग आज मालव या मालवभूमि नाम से जाना जाता है, वह वस्तुतः भारतवर्ष का नाभिस्थल है, और राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टियों से ही नहीं, सांस्कृतिक दृष्टि से भी इस महादेश का प्रमुख एक केन्द्र रहता आया है। अति प्राचीनकाल में यह भूभाग अवन्तिदेश के नाम से विख्यात था और अवन्तीपुरी अपरनाम उज्जयिनी (उज्जैन) उसकी राजधानी थी। जैनपुराण एवं कथा साहित्य में तथा आगमिक ग्रन्थों में अवन्तीदेश और उज्जयिनी नगरी के अनेक उल्लेख एवं सुन्दर वर्णन प्राप्त होते हैं।

शुद्ध इतिहासकाल में, महावीरकालीन (छठी शती ईसा पूर्व के) भारत के सोलह "महाजनपदों" में अवन्ति एक प्रमुख एवं शक्तिशाली महाजनपद था और उज्जयिनी की गणना उस काल की दश मह राजधानियों एवं सप्त महापुरियों में थी। यह एक राजतंत्र था, और उसका एकच्छत्र शासक अवन्तिपति महासेन चण्ड-प्रद्योत था, जो उग्र प्रकृति का, युद्धप्रिय, शूरवीर, प्रतापी एवं शक्तिशाली स्वेच्छाचारी नरेश था। परन्तु भगवान महावीर के तथा स्वयं अपनी महारानी सती शिवादेवी एवं वत्स देश की राजमाता सती मृगावती के प्रभाव से अन्ततः सौम्य हो गया था और धर्म की ओर भी उन्मुख हुआ था। शिवादेवी और मृगावती सगी बहनें थीं और वैशाली के लिच्छवि गणाधिप महाराज चेटक की पुत्रियाँ थीं, और इस प्रकार महावीर जननी त्रिशला प्रियकारिणी की बहनें (अथवा भतीजियाँ) थीं। प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता वत्सराज उदयन की लोक-कथा-प्रसिद्ध प्रेयसी थी। अपने तपस्याकाल में भी महावीर एकदा उज्जयिनी पधारे थे, और जब वह नगर के बाहर अतिमुक्तक श्मशान में प्रतिमायोग से ध्यानस्थ थे तो स्थाणुरुद्र ने उन पर नानाविध भयंकर

उपसर्ग किये थे। उक्त उपसर्गों का इन योगिराज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो महारुद्र ने उनकी स्तुति की, अपनी संगिनी उमा सहित भक्ति में उल्लसित हो नृत्य किया और भगवान को 'महति' एवं 'महावीर' नाम दिये।^१ केवलज्ञान प्राप्ति के उपरान्त भी भगवान का समवसरण उज्जयिनी में आया बताया जाता है। जिस दिन भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए उसी दिन चंडप्रद्योत का भी निघन हुआ और उसका पुत्र पालक उज्जयिनी के सिंहासन पर आसीन हुआ। जैन परम्परा में उज्जयिनी का महत्त्व उसी काल में इतना बढ़ गया था कि प्राचीन जैन ग्रन्थों में महावीर-निर्वाणोपरान्त की जो राज्य कालगणना प्राप्त होती है, वह मुख्यतया इसी नगर को केन्द्र मानकर दी गई है।

मगध के नन्द सम्राट् महानंदिन ने, जो सर्वक्षत्रान्तक कहलाया, पालक के वंशजों का उच्छेद करके अद्वन्ति को मगध साम्राज्य में मिला लिया और उज्जयिनी को मगध साम्राज्य की उपराजधानी बनाया। चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त मौर्य ने जब मगध से नन्दों की सत्ता को समाप्त कर दिया तो उन्होंने बृद्ध महापद्मनन्द को सुरक्षित अपने धन-जन सहित अन्यत्र चले जाने की अनुमति दे दी थी, और ऐसा लगता है कि उसने अपना अन्तिम समय उज्जयिनी में ही बिताया था। उसकी मृत्यु के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य ने इस नगरी को पुनः साम्राज्य की उपराजधानी बना लिया। राज्य का परित्याग करके मुनिरूप में अपने आम्नायगुरु भद्रबाहु श्रुतकेवली का अनुगमन करते हुए श्रवणबेलगोल (कर्णाटक) जाते समय भी यह राजर्षि चन्द्रगुप्त इस नगर से होकर गया था। एक अनुश्रुति के अनुसार तो श्रुतकेवली ने द्वादशवर्षीय दुष्काल की भविष्य वाणी उज्जयिनी में ही की थी। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी बिन्दुसार अभिषेक के शासनकाल में राजकुमार अशोक उज्जयिनी का वायसराय (राज्यपाल) रहा था। वहाँ रहते हुए ही उसने विदिशा की एक श्रेष्ठिकन्या से विवाह किया था—उसी का पुत्र राजकुमार कुणाल था। अशोक के शासनकाल में कुणाल उज्जयिनी का राज्यपाल रहा, और अशोक की मृत्यु के उपरान्त जब कुणाल का पुत्र सम्प्रति मगध साम्राज्य के बहुभाग का उत्तराधिकारी हुआ तो उसने उज्जयिनी को ही अपनी राजधानी बनाया। सम्राट् सम्प्रति के गुरु आर्य सुहस्ति थे जिनकी प्रेरणा से उसने अनगिनत जिनमन्दिर बनवाये। अनेक धर्मोत्सव किये, तथा धर्म की प्रभावना, प्रचार एवं प्रसार के लिए नानाविध प्रयास किये, जिनके कारण उस धर्मप्राण नरेश की यशोगाथा इतिहास में अमर हो गई। उसका पुत्र शालिशुक्त भी धर्मात्मा एवं धर्म प्रभावक था।

सम्प्रति मौर्य के निघन के कुछ काल उपरान्त कलिंग चक्रवर्ती सम्राट् खारवेल ने अद्वन्ति देश पर अधिकार किया और अपने एक राजकुमार को यहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया, जो लगता है कि खारवेल के निघन के उपरान्त स्वतंत्र हो गया। उसी का

१ उत्तरपुराण पर्व ७४, श्लो० ३३१-३३७ (गुणभद्र)।

पुत्र था पौत्र संभवतया महेन्द्रादित्य गर्दभिल्ल था, जिसका पुत्र उज्जयिनी का सुप्रसिद्ध वीर विक्रमादित्य (ई० पू० ५७) था ।

मौर्यवंश की स्थापना के कुछ वर्ष पूर्व ही, ई० पू० ३२६ में यूनानी सम्राट् सिकन्दर महान ने भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों पर आक्रमण किया था । उस काल में उस प्रदेश में कई छोटे-छोटे राजतन्त्र और दर्जनों गणतन्त्र स्थापित थे । इन्हीं गणराज्यों में एक “मल्लोइ” (मालव) गण था । ये मालव जन बड़े स्वाभिमानी, स्वतन्त्र-चेता और युद्धजीवी थे । यूनानियों की अधीनता में रहना इन्हें नहीं रुचा, अतएव सामूहिक रूप से स्वदेश का परित्याग करके वे वर्तमान राजस्थान में पलायन कर गये । वहाँ टोंक जिले में उनियारा के निकट अब भी प्राचीन मालव नगर के अवशेष हैं । कालान्तर में वहाँ से भी निर्गमन करके वे अन्ततः उज्जयिनी क्षेत्र में बस गये । यह घटना सम्प्रति मौर्य के समय घटी प्रतीत होती है । खारवेल की विजय के समय अवन्ति में इन्हीं युद्धवीर मालवजनों की प्रधानता हो गई लगती है, अतएव उसका जो राजकुमार राज्य प्रतिनिधि के रूप में रहा वह मालवगण के प्रमुख के रूप में होगा । गर्दभिल्ल के दुराचारों से त्रस्त होकर आचार्य कालक सूरि ने शककुल के शक-शाहियों की सहायता से उस अत्याचारी शासक का उच्छेद किया । किन्तु अब स्वयं शक लोग यहाँ जम गये और विजय के उपलक्ष्य में एक संवत् भी ई० पू० ६६ में चला दिया । स्वतन्त्रता प्रेमी मालवगण यह सहन न कर सके और गर्दभिल्ल-पुत्र वीर विक्रमादित्य के नेतृत्व में संगठित होकर उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम छेड़ दिया । परिणामस्वरूप, ई० पू० ५७ में वे उज्जयिनी से शकों का पूर्णतया उच्छेद करने में सफल हुए, विक्रमादित्य को गणाधीश नियुक्त किया, सम्वत् प्रचलित किया जो प्रारम्भ में कृत, (कार्तिकादि होने के कारण) तथा मालव सम्वत् कहलाया और कालान्तर में विक्रम सम्वत् के नाम से लोक प्रसिद्ध हुआ तथा सिक्के भी चलाये जिन पर “मालव-गणानां जय” जैसे शब्द अंकित हैं । तभी से यह प्रदेश मालवभूमि या मालवा नाम से प्रसिद्ध होता गया । विक्रमादित्य के आदर्श सुराज्य में उसकी महती अभिवृद्धि हुई । विक्रमादित्य की एक आदर्श जैन नरेश के रूप में प्रसिद्धि हुई है ।

कुछ काल तक मालवा पर विक्रमादित्य के वंशजों का राज्य रहा, जिसके उपरान्त सौराष्ट्र के शक क्षहरात नहपान एवं उसके उत्तराधिकारी चष्टनवंशी शक क्षत्रपों और प्रतिष्ठान के शातवाहन नरेशों के मध्य उज्जयिनी पर अधिकार करने की होड़ चली । भद्रचष्टन ने उस पर अधिकार करके प्रचलित शक संवत् (७८ ई०) चलाया तो कुछ समय पश्चात् शातवाहनों ने अधिकार करके उक्त संवत् के साथ “शालिवाहन” विशेषण जोड़ दिया । ईसा की तीसरी-चौथी शती में इस प्रदेश पर वाकाटकों का शासन रहा । तदनन्तर गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने उज्जयिनी को अपने साम्राज्य की उपराजधानी बनाया । उसकी सभा में कालिदास, सिद्धसेन, क्षपणक प्रभृति नवरत्नों ने इस नगरी को ज्ञान-विज्ञान एवं संस्कृति का उत्तम केन्द्र बना दिया । वराहमिहिर जैसे ज्योतिषाचार्य भी यहीं हुए । गुप्त साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर भी छठी शती

में गुप्तों की एक शाखा मालवा में शासन करती रही जिसमें हूण नरेश तोरमाण को प्रबोधने वाले आचार्य हरिगुप्त और राजर्षि देवगुप्त जैसे जैन सन्त हुए। इसी बीच मन्दसौर का वीर यशोधर्मन भी कुछ काल के लिए अप्रतिम प्रकाश पुंज की भांति चमक कर अस्त हुआ। सातवीं शती में मालवा कन्नौज के हर्षवर्धन के साम्राज्य का अंग हुआ, जिसके उपरान्त भिन्नमाल के गुर्जर प्रतिहार नरेशों का यहाँ अधिकार हुआ।

ऐसा लगता है कि ८वीं शती ई० के मध्य के लगभग धारानगरी को राजधानी बनाकर मालवा में परमारों ने अपना राज्य स्थापित किया। कहा जाता है कि उपेन्द्र नामक वीर राजपूत इस वंश का संस्थापक था। आचार्य जिनसेन पुत्राट ने अपनी हरिवंश पुराण की रचना ७८३ ई० धारा से नातिदूर वर्धमानपुर (बदनावर) में की थी। और उस समय के 'अवन्ति-भूभृति' का उन्होंने उल्लेख किया है, जो उपेन्द्र या उसका उत्तराधिकारी हो सकता है। प्रारम्भ में परमार राजा गुर्जर प्रतिहारों के सामन्तों के रूप में बढ़े लगते हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शती में सिन्धुल वाम्पतिमुंज, भोज, जयसिंहदेव जैसे प्रायः स्वतन्त्र, प्रतापी विद्यारसिक एवं कवि हृदय नरेश रत्न इस वंश में हुए, जिनके समय में महसेन, धनिक, धनपाल, माणिक्यनंदी, नयनंदि, अमितगतिमूरि, महापण्डित प्रभाचन्द्र, श्रीचन्द्र, प्रभृति अनेक दिग्गज जैन साहित्यकारों ने भारती के भण्डार को भरा। भोज का शारदासदन तो दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया। साहित्य एवं कला साधना की यह परम्परा परमार नरेशों के प्रश्रय में १३वीं शती पर्यन्त चलती रही। आचार्यकल्प पं० आशाधर एवं उनका साहित्यमण्डल उक्त शती के पूर्वार्ध में विद्यमान था।

तेरहवीं शती के अन्त के लगभग दिल्ली के सुल्तानों का मालवा पर अधिकार हुआ और चौदहवीं के अन्त के लगभग मालवा के स्वतन्त्र सुल्तानों की सत्ता मण्डपदुर्ग (माण्डू) में स्थापित हो गई, जिसके अंतिम नरेश बाज बहादुर को समाप्त करके १५६४ ई० में अकबर महान् ने मालवा को मुगल साम्राज्य का एक सूबा बना दिया। उपरोक्त मालवा के सुल्तानों के समय में भी अनेक जैनधर्मानुयायी राज्यकार्य में नियुक्त रहे, मण्डन मन्त्री जैसे महान साहित्यकार हुए, जैन भट्टारकों की गदियाँ भी मालवा में स्थापित हुईं और मन्दिर-मूर्तियाँ भी अनेक प्रतिष्ठित हुईं। मुगल शासनकाल में स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

मुगलों के पराभव के उपरान्त मालवा पर मराठों का अधिकार हुआ और उत्तर मराठा युग में इन्दौर, ग्वालियर आदि कई मराठाराज्य स्थापित हुए, कुछ राजपूत राज्य भी थे, जो सब अंग्रेजी शासनकाल में सीमित अधिकारों के साथ बने रहे। १९४७ ई० में स्वतन्त्रता प्राप्ति के फलस्वरूप मालवा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भारत के मध्य प्रदेश राज्य का अंग बना।

इसमें सन्देह नहीं है कि मालवभूमि प्रारम्भ से ही वर्तमान पर्यन्त, भारतीय संस्कृति का ही नहीं जैनधर्म एवं जैन संस्कृति का भी एक उत्तम गढ़ रहता आया है। जैन आचार्यों, सन्तों, कलाकारों, श्रीमन्तों एवं जनसाधारण ने इस भूमि की संस्कृति एवं समृद्धि के संरक्षण और अभिवृद्धि में प्रभूत योग दिया है।



मालवा : एक भौगोलिक परिवेश

□ डा० बसंतसिंह

मालवा अपने स्थल विन्यास तथा ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक उपलब्धियों के कारण ऐतिहासिक समय से ही एक भौगोलिक इकाई के रूप में जाना जाता रहा है।

इस प्रदेश का सम्पूर्ण क्षेत्रफल लगभग १५०,००० वर्ग कि० मी० है। २५-१० से २७-७० उत्तरी अक्षांशों एवं ७५-४५ और ७६-१४ पूर्वी देशान्तरों के मध्य तथा प्रायद्वीप के सबसे उत्तरी भाग में फैला हुआ यह प्रदेश भारतीय संघ के तीन राज्यों अर्थात् मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं महाराष्ट्र के भू-भाग को आवृत किये हुए है। मध्य प्रदेश के १८ जिले तथा राजस्थान के बांसवाड़ा-झालावाड़-प्रतापगढ़ तथा चित्तौड़गढ़ जिलों और महाराष्ट्र के धुलिया एवं जलगाँव जिलों के सम्पूर्ण अथवा आंशिक भाग इसमें सम्मिलित किये जाते हैं। मालवा प्रदेश की कुल जनसंख्या लगभग १२ मिलियन है। इसका निर्माण बुन्देलखण्ड नीस-बसाल्ट तथा गोंडवाना शैलों एवं लावा से हुआ है। कर्क-रेखा मालवा के लगभग मध्य से होकर गुजरती है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मालवा शब्द का प्रादुर्भाव संस्कृत के दो शब्दों 'मा' (MA) और 'लव' (LAV) से हुआ प्रतीत होता है। संस्कृत साहित्य में प्रथम का आशय देवी लक्ष्मी तथा द्वितीय का तात्पर्य भू-भाग से है। दोनों का सम्मिलित अर्थ सम्पदादायिनी लक्ष्मी के निवास-स्थान से लिया जाता है। उपर्युक्त नामकरण यहाँ की उपजाऊ भूमि को देखते हुए किया गया होगा। प्रो० राजबली पाण्डे ने मालवा प्रदेश को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में स्थित मल्ल राष्ट्र का एक भू-भाग बताया है। उनके कथनानुसार मल्ल से ही मलय और अन्त में मालवा शब्द का प्रादुर्भाव हुआ। पाणिनी के साहित्य में भी मालवों का प्रसंग अप्रधिजिवीन के नाम से आता है। जो सिकन्दर महान के आक्रमण के समय तक रावी तथा चिनाव नदियों के संगम के उत्तरी भाग में रहते थे। कालान्तर में उन लोगों ने चम्बल तथा नर्मदा नदियों के आबाद क्षेत्रों तथा राजस्थान में बस गये और आधुनिक मालवा का नामकरण हो पाया।

प्रारम्भिक बौद्ध एवं जैन साहित्यों, हिन्दू कथाओं, रामायण तथा महाभारत में भी मालवों का सम्मानित प्रसंग आता है। बुद्ध काल में तो मालवा अपनी वास्तु कला (Architecture and Sculpture) की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ बताया गया है। ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व मालवा पर मौर्य साम्राज्य का आधिपत्य था। इसके

अतिरिक्त विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त (द्वितीय), हर्ष, राजा भोज (द्वितीय), दिलावर खाँ गोरी, होशंगशाह, महमूद खिलजी, बाबर, बहादुरशाह, हुमायूँ, शेरशाह सूरी तथा सुजातखाँ आदि ने भी मालवा पर समय-समय पर शासन किया है।

सन् १६६० के आसपास मराठों ने मालवा में प्रवेश किया और बाजीराव पेशवा, होल्कर तथा सिन्धिया आदि ने लगभग ५० वर्षों तक मालवा को खूब रौंदा और कर वसूल करते हुए समाप्त हो गए। इसके पश्चात् अंग्रेजों ने सारे देश की भाँति मालवा में भी स्थायी प्रशासन प्रदान किया जो भारत की स्वतन्त्रता के पूर्व तक चलता रहा।

सन् १९४७ में भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् दो बार राज्यों का गठन किया गया। पहली बार सन् १९४८ में इन्दौर तथा भोपाल जैसी स्वदेशी रियासतें भारतीय संघ में मिलाई गई, मालवा का विभाजन हुआ। मध्यप्रदेश, मध्य भारत, महाकौशल, भोपाल का निर्माण हुआ। झालावाड़, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ राजस्थान में तथा खानदेश बम्बई प्रेसीडेन्सी में सम्मिलित हुए। सन् १९५६ में दूसरी बार पुनः राज्यों का पुनर्गठन हुआ और फलस्वरूप सम्पूर्ण मालवा प्रदेश को तीन राज्यों—मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा महाराष्ट्र में सामिल कर दिया गया।

प्राकृतिक बनावट

मालवा प्रदेश भारतीय प्रायद्वीप के सबसे उत्तर में स्थित है। इस प्रदेश के उत्तर-पूर्वी भाग में बुन्देलखण्ड नीस अधिकता से पाई जाती है। जोहरबाग तथा धार क्षेत्रों के जंगली क्षेत्रों में आर्चियन समय की चट्टानें पाई जाती हैं। इसके अधिकांश भाग में बसाट चट्टानें पाई जाती हैं। नीमच से पूर्व में सागर तक विन्ध्याचल पहाड़ियाँ फैली हैं। ये पहाड़ियाँ कैमूर के साथ-साथ भानपुरा, झालरापट्टन, नोबर, भोपाल तथा सागर जिलों में सतह पर दिखाई देती हैं। ये पहाड़ियाँ नर्मदा नदी के उत्तर में एक दीवाल का निर्माण करती हैं। होशंगाबाद के दक्षिण में प्राप्त सतपुड़ा में गोंडवाना की चट्टानें पाई जाती हैं। इस प्रदेश के दक्षिण में डकन, लावा तथा नर्मदा की जलोढ़ मिट्टियाँ पाई जाती हैं, जिनके उपजाऊपन के लिए मालवा जगत्प्रसिद्ध है। डकन-लावा की गहराई ६०० से लेकर १५०० मीटर तक है। इसका निर्माण पृथ्वी के आंतरिक लावा प्रवाह से हुआ है। यह मिट्टी इस समय परिपक्वावस्था में पाई जाती है।

भू-संरचना की दृष्टि से मालवा प्रदेश को निम्न प्राकृतिक विभागों में बाँटा जा सकता है।

उपविभागों का नाम : मालवा पठार

(१) विस्तार एवं नदी तंत्र—भोपाल गुना, विन्ध्याचल पहाड़ियाँ तथा मच्छलप घाट के बीच में फैला है। इसकी सामान्य ऊँचाई ५००-६०० मीटर है। माही-चम्बल, काली-सिन्ध, पारवती तथा बेतवा नदियों का ऊपरी भाग इसमें प्रवाहित होता है।

(२) पश्चिमी विन्ध्यान पहाड़ियाँ—इस उपविभाग में तीव्र ढाल है। ६५० कि०

मी० लम्बा तथा ५०० से ६०० मीटर तक की ऊँचाइयों में स्थित है। नागदा, सिंगार, चोटी तथा गोमानपुर प्रधान ऊँची चोटियाँ हैं।

(३) पश्चिमी नर्मदा ट्रफ—उदयपुरा और कुक्षी के बीच उपजाऊ भूमि पाई जाती है। यहाँ का ढाल क्षैतिज परन्तु सान्तर है। उदयपुरा के नीचे हाडियातर होशंगाबाद मैदान पाया जाता है। इसके दक्षिण में क्वार्टजाइट की पहाड़ियाँ फैली हैं।

(४) पश्चिमी सतपुड़ा—नर्मदा तथा ताप्ती जल विभाजक इसके पश्चिमी भाग का निर्माण डकन ट्रैप से हुआ है, यहाँ २०-४० कि० मी० चौड़ी असमान तथा सान्तर पहाड़ियाँ पाई जाती हैं। पूर्वी भाग का निर्माण, तालचीट, वरार तथा विजौरी प्रगों में हुआ है। इसमें कोयला धारक चट्टानें पायी जाती हैं।

प्रवाह तन्त्र

मालवा प्रदेश में पंचमढ़ी सबसे ऊँचा स्थान है। यहाँ अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में प्रवाहित होने वाले जल प्रवाह स्थित हैं। नर्मदा, ताप्ती तथा माही प्रथम कोटि और चम्बल तथा बेतवा यमुना नदी में मिलकर दूसरी कोटि की नदियाँ हैं।

टाल्मी ने नर्मदा को 'नमडोज' के नाम से पुकारा है। जबकि पुराणों में इसको 'रेवा' नाम से सम्बोधित किया गया है। यहाँ होशंगाबाद में ३०० मीटर ऊँचे अनेकानेक जलप्रपात, दीपिकाएँ तथा गह्वर पाये जाते हैं। विन्ध्याचल एवं सतपुड़ा की पहाड़ियों से बहुसंख्या में सहायक नदियाँ इसमें आकर मिलती हैं। माही नदी को पुराणों में मनोरमा नदी के नाम से पुकारा गया है। धार जिले के लगभग ६१७ मीटर की ऊँचाई से निकलकर यह नदी १६० कि० मी० मध्य प्रदेश में प्रवाहित होती हुई इंगरपुर तथा बांसवाड़ा के मध्य सीमा बनाती है। इस प्रदेश की तीसरी प्रसिद्ध नदी चम्बल है। यह इन्दौर जिले के ४४ मी० ऊँचे मानपुर स्थान से निकलती है जो विन्ध्यान कगार के उत्तरी भाग में स्थित है। यह नदी ३२५ कि० मी० की लम्बाई तक एक गार्ज से प्रवाहित होती है। इस नदी का सबसे अधिक उपयोग चम्बल घाटी परियोजना बनाकर किया जा रहा है। गम्भीर, छोटी काली सिन्ध, नेवाज, परवान, पारवती, चमला तथा देतम चम्बल की प्रमुख लेकिन बरसाती नदियाँ हैं।

जलवायु, मिट्टी एवं वनस्पति

यहाँ की जलवायु उष्ण मानसूनी किस्म की एवं स्वास्थ्यवर्धक है। रातें शीतल एवं दिन गर्म होते हैं। यहाँ पर विन्ध्यान तथा सतपुड़ा के पूर्व-पश्चिम समानान्तर होने के कारण अरब सागर की मानसून इन्हीं के समानान्तर प्रवाहित होती है। इस प्रदेश में मुख्य रूप से तीन-शीत, ग्रीष्म एवं वर्षा-ऋतुएँ अनुभव की जाती हैं। इनका विस्तार भारतीय ऋतुओं की भाँति देखा जाता है। ग्रीष्म महीनों में मानसून हवाएँ अधिक तेज एवं दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की तरफ प्रवाहित होती है। यहाँ की औसत वर्षा ११० से०मी० है जबकि न्यूनतम एवं अधिकतम ८ से०मी० से २१० से०मी० तक है। होशंगाबाद

में ११५, सागर में ११७ तथा भोपाल में १२६ से० मी० वर्षा अंकित की जाती है। जुलाई से सितम्बर तक सबसे अधिक तथा पूरे वर्ष की ६०% वर्षा होती है। वर्षा के दिनों को छोड़कर वायुमण्डल सामान्य रूप से शुष्क एवं स्वच्छ रहता है। इसमें भी प्रातः की अपेक्षा सन्ध्या समय अधिक शुष्क होता है। ग्रीष्म काल में धूल की आंधियाँ तथा जाड़े के दिनों में कभी-कभी कुहरा पड़ता है। पंचमढ़ी में जुलाई में लगभग २१ दिन कुहरा पड़ता है।

लगभग सम्पूर्ण प्रदेश में काली मिट्टी पाई जाती है। इसमें चूने के कंकड़ तथा कैल्सियम, कार्बोनेट के टुकड़े मिले हुए पाये जाते हैं। ग्रीष्म में इसमें दरारें पड़ जाती हैं तथा वर्षाकाल में चिपचिपी हो जाती है। फास्फेट, नाइट्रोजन तथा वनस्पति अंशों की सामान्य रूप से कमी है। इस प्रदेश की मिट्टी को (१) गहरी काली (२) मध्यम काली (३) धुधली काली (४) लाल काली मिश्रित (५) लाल-पीली मिश्रित तथा जलोढ़ आदि किस्मों में बाँटा जा सकता है।

इनके क्षेत्रों तथा सम्मिलित पदार्थों को निम्न तालिका में दिखाया गया है—

मिट्टी का नाम	मिश्रित पदार्थ	उत्पन्न होने वाली फसलें	क्षेत्र
१. गहरी काली	बालू मिश्रित	कपास	होशंगाबाद, सतपुड़ा पठार आदि
२. मध्यम काली	चूने के कंकड़, कैल्सियम, कार्बोनेट	लगभग सभी भारतीय फसलें	सागर, सीहोर, नीमच, रायसीन, मन्दसौर, साजापुर आदि
३. धुधली काली	१५% मृत्तिका	चावल, कपास	बेतूल, झाबुआ, रतलाम, बाँसवाड़ा
४. काली एवं लाल मिश्रित	चूना कंकड़ रहित, बालू मिश्रित, नाइट्रोजन, फास्फोरिक एसिड, चूना तथा जीव पदार्थ रहित	अधिकांश फसलें सिंचाई से उत्पन्न	प० गुना, झालावाड़ तथा साजापुर
५. जलोढ़ मिट्टी		लगभग सभी फसलें	नदियों की घाटियों में प्राप्त

मालवा प्रदेश में मुख्य रूप से रसवन्ता किस्म की वनस्पति पाई जाती है। इसके अतिरिक्त पतझड़ किस्म के वन भी दक्षिणी भाग में फैले हुए हैं। श्री ए० जी० चैम्पियन के अनुसार उत्तरी भाग में शुष्क पतझड़ वन पाया जाता है। इन वनों की स्थिति के अनुसार पहाड़ी वन, नदीय वन तथा पठारी वनों में बाँटा जा सकता है।

इन वनों में सलई, खजूर, महुआ, जामुन, हरी टीक तथा बाँस मुख्य रूप से पाये जाते हैं। इनको आर्थिक उपयोग में लाने के लिए वैज्ञानिक ढंग से प्रयास किये जा रहे हैं।

खनिज संसाधन

मालवा प्रदेश जिस प्रकार उपजाऊ कृषि युक्त मिट्टी के लिए प्रसिद्ध है उसी प्रकार अनेक प्रकार की खनिज सम्पदा भी इस प्रदेश में पाई जाती है। कोयला, मैंगनीज तथा अभ्रक विशेष महत्वपूर्ण खनिज हैं। ताँबा घाटी तथा बेतूल क्षेत्र; कोयला धार, झाबुआ, बाँसवाड़ा तथा झालावाड़ में अयस्क अधिकता से पाई जाती है। झाबुआ और बाँसवाड़ा, उदयपुर तथा पश्चिमी निमार में मैंगनीज की खानें अधिक पाई जाती हैं। झाबुआ में ही अभ्रक तथा देवास, होशंगाबाद, बाँसवाड़ा तथा झालावाड़ में ताम्र अयस्क की अनेक खानें हैं। गुना तथा विदिशा में बान्साइट पाई जाती है। चूना का पत्थर, मिट्टी, संगमरमर, कालसाइट, जिन्क, ग्रेफाइट की भी आर्थिक खदानें मालवा प्रदेश में पाई जाती हैं। खनिज संपदा के साथ-साथ मालवा-प्रदेश जल-संसाधन की दृष्टि से भी बड़ा घनी है। नर्मदा, चम्बल, माही तथा काली सिन्ध नदियाँ इस प्रदेश की प्राकृतिक संपदा हैं जिनका उपयोग जल-विद्युत उत्पादन एवं सिंचाई के कार्यों में किया जाता है। जल-विद्युत परियोजनाओं में चम्बल घाटी विकास निगम तथा माही परियोजनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त परियोजनाओं के माध्यम से मध्य प्रदेश तथा राजस्थान अपने-अपने प्रमुख नगरों में औद्योगिक विकास पर भी जोर दे रहे हैं।

जनसंख्या व मानव बसाव

मालवा प्रदेश कम घना (८१ व्यक्ति प्र० वर्ग कि० मी०) बसा हुआ है। जनसंख्या का वितरण भी असमान है। होशंगाबाद, राजपुर, उज्जैन तथा रतलाम आदि क्षेत्र जहाँ अधिक घने बसे हैं वहीं पर विन्ध्यान तीव्र ढाल एवं सतपुड़ा का वनाच्छादित भाग जनविहीन है। इन्दौर, भोपाल तथा रतलाम एवं उज्जैन क्षेत्रों का घनत्व क्रमशः ४४, ६७ तथा १०८ व्यक्ति प्र० वर्ग कि० मी० है। यहाँ की ८१% जनसंख्या ग्रामीण है, जो २७६५० गाँवों में निवास कर रही है। जल प्राप्ति के स्थानों पर संहत् तथा मालवा पठार पर अर्ध संहत् बस्तियाँ पाई जाती हैं। आदिवासियों की बस्तियाँ ऐसे क्षेत्रों में पाई जाती हैं जहाँ पहुँचना बड़ा कठिन है। इस प्रदेश के अधिकांश शहरों का प्रादुर्भाव गाँवों से हुआ है। अधिकांश शहर नदियों के तटों अथवा प्राचीन राजपथों पर स्थित हैं। शहरों का विकास विगत दो दशकों में अधिक हुआ है। उज्जैन (२०८५६१), इन्दौर (५६०६३६), खण्डवा (१८५४०३), भोपाल (३०४५५०), सिहोर (३६१३६) मालवा प्रदेश के कतिपय शहर हैं। मुसलमानों के शासनकाल में मालवा के अधिकांश शहरों को अपने विनाश अथवा ह्रास का सामना करना पड़ा था।

कृषि उपज

इस प्रदेश के लोगों के जीविकोपार्जन का मुख्य साधन कृषि है। इस प्रदेश की लगभग ६६% भूमि पर खेती की जाती है। ज्वार इस प्रदेश की सर्वप्रमुख फसल है। ज्वार

४०% के बाद गेहूँ ३१% तथा कपास १४% के नाम आते हैं। इस प्रदेश में भी दो फसलें पैदा की जाती हैं जिसमें से खरीफ की फसलें समस्त कृषि भूमि के लगभग ६३% पर पैदा की जाती है।

उद्योग

औद्योगिक दृष्टि से मालवा प्रदेश मुगलों के शासनकाल से ही बहुत प्रसिद्ध रहा है। मुगल साम्राज्य में गुजरात के पश्चात् इसका दूसरा औद्योगिक महत्व था। कपड़ा, चीनी तथा धातुओं एवं खनिजों पर आधारित अनेकानेक उद्योग वहाँ विकसित हुए थे। परन्तु यहाँ के अधिकांश उद्योग ग्रामीण एवं लघु कुटीर व्यवसायों के रूप में विकसित हुए हैं। अब चम्बल-विद्युत केन्द्र तथा पुनासा परियोजनाओं का विकास हो चुका है। इनसे उज्जैन, इन्दौर, भोपाल तथा खण्डवा आदि में नव-निर्मित औद्योगिक प्रतिष्ठानों का विकास हो रहा है। इनके साथ-साथ इन्दौर, उज्जैन, रतलाम, धार, मन्दसौर तथा देवास में ताप-विद्युत घरों की भी स्थापना की गई।

मालवा प्रदेश में कृषि पर आधारित उद्योगों में से सूती वस्त्र व्यवसाय सबसे महत्वपूर्ण है। कुल मिलाकर मालवा प्रदेश में १८ मिलें हैं, जिनमें से अधिकांश इन्दौर में स्थित है। इन मिलों में २५,००० श्रमिक कार्य करके ३०७ मिलियन मीटर कपड़े का उत्पादन करते हैं। हथकरघा उद्योग प्रदेश में सर्वत्र बिखरा हुआ है। कपास ओटने की ७० मिलों में लगभग ५००० श्रमिक दिन-रात कार्य कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त कपास दबाने की भी १४ मिलें हैं। मन्दसौर, उज्जैन, रतलाम, सीहोर तथा राजगढ़ की चीनी मिलों में २७०० मीटरी टन उत्पादन होता है। तेल निकालने की लगभग ७० मिलें, उज्जैन, धार, रतलाम, सागर, देवास तथा मन्दसौर आदि शहरों में कार्य कर रही हैं। इटारसी, झालावाड़ तथा मन्दसौर में वनों पर आधारित उद्योगों को विकसित किया जा रहा है। इनमें कागज बोर्ड, लकड़ी चीरने तथा सिल्क उद्योग अधिक उल्लेखनीय हैं। मध्य प्रदेश के होशंगाबाद, रतलाम तथा इन्दौर शहरों में कागज की फैक्टरियाँ संस्थापित की गई हैं। सीहोर में कार्डबोर्ड फैक्टरी तथा इन्दौर में ६ रेशम की मिलें कार्य करने लग गई हैं। भोपाल, रतलाम, नीमच में हड्डियों को पीसने की मिलें स्थापित की गई हैं जिनमें प्रतिदिन ३० टन हड्डी का चूरा होता है। भोपाल तथा उज्जैन में भारी इन्जीनियरिंग एवं विद्युत उपकरणों से सम्बन्धित उद्योग भी स्थापित किये गये हैं। इन्दौर तथा भोपाल में दुग्ध उद्योग भी प्रारम्भ किये गये हैं। मालवा प्रदेश के अन्य उद्योगों में औषधि, साबुन, रसायन, दियासलाई, कोकरी, जूता, लकड़ी, ईट तथा सीमेन्ट उद्योग विशेष उल्लेखनीय है।

परिवहन

दिल्ली-मद्रास, दिल्ली-बम्बई तथा कलकत्ता-बम्बई को जोड़ने वाले अधिकांश परिवहन मार्ग मालवा प्रदेश से होकर गुजरते हैं। प्रमुख रेलवे लाइन (बम्बई-कलकत्ता) जो इलाहाबाद होती हुई बनाई गई है, इस प्रदेश में से होकर गुजरती है। इटारसी इस प्रदेश का सबसे बड़ा रेल जंक्शन है। यहाँ पर बम्बई-कलकत्ता तथा मद्रास-दिल्ली

रेल मार्ग आपस में कटते हैं। सागर, बीना, गुना भी इस प्रदेश का बड़ा रेलमार्ग है। दिल्ली-मथुरा, बड़ौदा-बम्बई प्रमुख रेल लाइन भी इस प्रदेश से गुजरती है। मालवा प्रदेश के प्रमुख नगरों से होकर न केवल बड़ी रेल लाइन बल्कि छोटी लाइनें भी अनेक शहरों को आपस में समीप लाती हैं। इसके प्रतिकूल कुछ जिलों जैसे—झाबुआ तथा खरगाँव में रेल सेवाएँ उपलब्ध भी नहीं हैं। अनेक जिलों में रेल सेवायें नाम मात्र की हैं। धार-राजगढ़, बाँसवाड़ा-प्रतापगढ़, अचनेरा-झालावाड़ ऐसे ही जिले हैं। इस प्रदेश में प्रत्येक १०० वर्ग कि० मी० पर केवल १४२ कि० मी० रेलमार्ग का औसत आता है।

यहाँ सड़क सेवायें अधिक उपलब्ध हैं। इस प्रदेश से होकर राष्ट्रीय महत्त्व की सड़कें नं० ३ (बम्बई-दिल्ली) नं० २६ (सागर-खरवन दोन) तथा नं० १२ (सामपुर-भोपाल तथा बरेली) गुजरती है। मालवा में सड़कों का योग १३०० कि० मी० है। उपर्युक्त राष्ट्रीय सड़कों के अतिरिक्त राज्य स्तर की भी अनेक सड़कें इस प्रदेश की परिवहन सेवा में लगी हैं। इनमें से महु-नीमच (२६० कि० मी०) इन्दौर-उज्जैन-झालावाड़ (२३६ कि० मी०) तथा देवास-भोपाल-सागर (२३५ कि० मी०) सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं।

मालवा प्रदेश के परिवहन मार्गों में वितरण पर स्थल की बनावट का सुस्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। यहाँ की अधिकांश सड़कें सतपुड़ा पहाड़ियों तथा नर्मदा घाटी के समानान्तर बनाई गई हैं। नर्मदा के उत्तर में अधिकांश सड़कें उपगमन मार्ग हैं, परन्तु झाबुआ, धार तथा पश्चिमी नीमच में सड़क सेवाएँ अच्छी हैं। नर्मदा घाटी में सड़कों का घनत्व कम है। हर्दा, हरसूद, खण्डवा, पश्चिमी बाँसवाड़ा, बड़वानी, उदयपुरा, रेहली, बेतूल, पश्चिमी गुना आदि क्षेत्रों में बहुत कम पहुँच है। मालवा में कुल मिलाकर १०५२६ कि० मी० पक्की तथा ५५२८ कि० मी० कच्ची सड़कें हैं। इनका घनत्व क्रमशः ७ कि० मी० तथा ५ कि० मी० प्रति १०० वर्ग कि० मी० है।

मालवा प्रदेश पश्चिम में बम्बई तथा उत्तर में दिल्ली से जुड़ा हुआ है। इन्दौर तथा भोपाल वायुमार्गों द्वारा बम्बई तथा दिल्ली और देश के अन्य हवाई मार्ग से जुड़े हुए हैं।

समस्याएँ एवं भविष्य

मालवा प्रदेश में कतिपय बहुत महत्वपूर्ण समस्यायें हैं। मिट्टी की उर्वरा शक्ति समाप्त होने ऊसर निर्माण, खर-पतवार वृद्धि, जल जमाव, वृक्षों के कटाव, अनियंत्रित चरागाही एवं घासों को जलाने आदि से उत्पन्न भूमि अपरदन की समस्या सबसे बड़ी है। भूमि प्रबन्ध एवं परिस्थितिकी सन्तुलन (Ecological Balance) फिर से बनाना आज की सबसे बड़ी योजना है। अनावृष्टि एवं फसल विनाश, उत्पादन वृद्धि, गहरी खेती, आये दिन के अकाल आदि जैसी समस्याओं पर विजय पाने के लिए सिंचाई परियोजनाओं की समुचित व्यवस्था इस प्रदेश की माँग है। नदियों की बाढ़ नियंत्रण एवं अतिरिक्त जल का उपयोग, जल-विद्युत उत्पादन एवं सिंचाई कार्यों का करना यहाँ की जनोपयोगी योजनायें होंगी। वनों एवं कृषि पर आधारित उद्योगों के विकासार्थ

परिवहन संसाधनों की प्रगति की तरफ से भी मुंह नहीं मोड़ा जा सकता है। नर्मदा पर प्रस्तावित अनेक बाँध जब तैयार हो जावेंगे तब जबलपुर से नवगाँव तक कृत्रिम झीलों की एक कड़ी बन जावेगी। इन झीलों से सिंचाई एवं गमनागमन के लिए पर्याप्त जल प्राप्त होने लगेगा। सड़क विकास परियोजना (१९६१-८१) के अन्तर्गत बरेली-भोपाल, इन्दौर-झाबुआ तथा नादिया-नागपुर, बेतूल-होशंगाबाद, खण्डवा-इन्दौर, रतलाम तथा नीमच को मिलाती हुई राष्ट्रीय महत्त्व की सड़कों का निर्माण विचाराधीन है। बम्बई-इन्दौर, इन्दौर-भोपाल, खण्डवा-इन्दौर के मध्य रेल लाइनें दोहरी की जाने का विचार है।

उपर्युक्त विकास कार्यों के पूरा हो जाने पर इटारसी में उर्वरक एवं कागज उद्योग को स्थापित करके लाभप्रद ढंग से चलाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अनेक जगहों पर लाख, गोंद, स्ट्राबोर्ड तथा वनों पर आधारित अनेक उद्योग स्थापित किये जा सकते हैं। इन्दौर में दुग्ध, चीनी, अल्युमीनियम, फाउण्ट्री तथा फोर्जप्लान्ट, रोलिंग मिलों तथा कापर सल्फेट आदि व्यवसायों का भविष्य उज्ज्वल है। जबकि उज्जैन में कृषि यंत्रों, भोपाल में हार्डवेयर, नागदा में अल्युमीनियम, सल्फेट, ब्लीचिंग पाउडर, कास्टिक सोडा, होशंगाबाद में कागज बोर्ड, कांक्रिट पाइप तथा उर्वरक के कारखाने स्थापित किये जा सकते हैं। सम्पूर्ण मालवा में हैन्डलूम व्यवसाय को बढ़ावा दिया जा सकता है। इसके साथ-साथ विश्व के नवीनतम उद्योग पर्यटन व्यवसाय को भी साँची, पंचमढ़ी तथा अन्य स्थानों पर विकसित किया जा सकता है।

□

प्राचीन भारतीय मूर्तिकला को मालवा की देन

□ डॉ० भगवतीलाल राजपुरोहित

[१२, वीर दुर्गादास मार्ग, उज्जैन (म० प्र०)]

किसी भी देश की संस्कृति का दर्पण वहाँ की कला होती है। भारतीय कला भी यहाँ के युगयुगीन जीवन का दर्पण है। धर्म तथा दर्शन, अर्थ तथा काम, सौन्दर्य तथा कुरूपता, बौद्धिकता एवं सहृदयता, मानव-प्रकृति तथा दृश्य-प्रकृति, राजा तथा प्रजा, युद्ध एवं शान्ति, स्वामी तथा मजदूर, जड़ एवं चेतन, दर्शनों की गम्भीरता तथा विदूषकी हास्य-व्यंग्य, सदाचार का आदर्श तथा विषयों का चरम विलास, योग तथा भोग, चरम निराशा एवं प्रखर कलाविलास इत्यादि निखिल जगत की प्रवृत्तियों तथा उपलब्धियों का अंकन भारतीय कला में, वैदिक, बौद्ध तथा जैन कलाओं में अबैर रूप से हुआ है। भारतीय सौन्दर्य के प्रतिमानों में भेद नहीं था, भारतीय जीवन के आदर्श तथा यथार्थ सब धर्मों में एक जैसे थे—यही कारण है कि धर्मभेद होते हुए भी वैदिक, बौद्ध तथा जैन कला में ये समान रूप से रूपायित हुए हैं। कलाकार जब दृढ़ समाधि होता है तो उसकी कला धर्म से परे, साधारणीकरण की परिधि में पहुँच जाती है जहाँ प्रत्येक सहृदय को अलौकिक आनन्द प्राप्त हो सके, वह रस दशा में पहुँच सके। नाट्य-प्रदर्शन के समान कला भी समस्त समाज के आनन्द के लिए निमित्त होती थी और द्रष्टा का उसमें डूब जाना ही उसकी सफलता का सार माना गया है। भारतीय दर्शनों के समान यहाँ के साहित्य तथा कला का आदर्श भी 'परमानन्द' की उपलब्धि रहा है। यहाँ श्रेष्ठ कला वह नहीं मानी गयी जो विलासिता की ओर उन्मुख करे। यही भारतीय एवं पश्चिमी कला में मूल अन्तर है—

विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला मता ।

लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला ॥

भारतीय मूर्तिकला कला का यह आदर्श एवं उपर्युक्त सम्भार लिए सजी, सँवरी तथा कलाकारों की अनवरत साधना की मूर्त सुन्दरता इनके माध्यम से हम तक पहुँच सकी।

इस देश की सभ्यता के ज्ञान के साथ ही यहाँ की कला से भी हमारा परिचय होता है। सिन्धु-सभ्यता से धातु एवं मिट्टी की बनी अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हुईं परन्तु उस काल की मालव-सभ्यता से ऐसी कोई स्मरणीय, मूर्ति उपलब्ध नहीं हो सकी। इसके बाद सदियों का अन्तराल है। मालवा ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय कला में

मध्यकालीन ऐसे उदाहरण उपलब्ध नहीं हुए जो सिन्धु सभ्यता से मौर्य युग तक की कला-परम्परा व्यक्त कर सकें ।

मौर्य युग कला की समृद्ध परम्परा के साथ भारत भूमि पर अवतीर्ण होता है । देश के विभिन्न भागों से मौर्ययुगीन अद्वितीय कला के अवशेष उपलब्ध होते हैं । यह कला दो रूपों में प्रकट हुई—राजकीय एवं लोक-कला । विदिशा के निकट साँची से सम्राट् अशोक के द्वारा उच्छ्रित एक पाषाणस्तम्भ प्राप्त हुआ है । सारनाथ के समान यह भी सिंहशीर्षक है जहाँ चार सिंह पीठ सटाए बैठे हैं । शीषे-गोल चौकी की दीवाल पर चुगते हंसों की पंक्ति है जो रामपुरवा शीर्षक के सदृश है । बाराबर पर्वत के पाषाण से निर्मित इस स्तम्भ-मूर्ति की ओप अनोखी है जो समकाल में तो व्यापक प्राप्य है परन्तु उससे पहले तथा बाद में दुर्लभ रही । अशोकयुगीन एक खण्डित गजमूर्ति उज्जयिनी के निकट सोढंग^१ से उपलब्ध हुई जो अब विक्रम विश्वविद्यालय के पुरातत्व संग्रहालय में सुरक्षित है ।

राजकीय शिल्प से हटकर मौर्ययुगीन लोककला की परम्परा का प्रमाण इस युग की महाकाय यक्षमूर्तियों से प्राप्त होता है जो मथुरा से उड़ीसा, वाराणसी से विदिशा तथा पाटलिपुत्र से शूर्पारक तक के सुविस्तृत क्षेत्र में पाई जाती हैं । इनका अपना व्यक्तित्व है जो अलग से पहचाना जा सकता है । अतिमानवी महाकाय ये मूर्तियाँ खुले आकाश के नीचे स्थापित की जाती थीं । ये यक्ष-प्रतिमाएँ इस देश में व्यापक यक्ष-पूजा का साक्षात् प्रमाण हैं । वैदिक, बौद्ध एवं जैन तीनों धर्मों में इनके प्रति समान आस्था थी और धर्म से परे तीनों धर्मों से सम्बद्ध कला में इनका पर्याप्त अंकन हुआ है । जिस प्रकार मथुरा जिले के परखम ग्राम से प्राप्त यक्ष-प्रतिमा सुप्रथित है उसी प्रकार बेसनगर से प्राप्त यक्ष की १२ फीट ऊँची प्रतिमा अपनी महाकायता एवं सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है । जिस प्रकार पटना के दीदारगंज की यक्षी की प्रतिमा अप्रतिम है उसी प्रकार बेसनगर से प्राप्त यक्षी भी अपनी उपलब्धि में अकेली है ।

ये यक्षमूर्तियाँ महाकाय, समुन्नत तथा बलिष्ठता एवं हृदय की द्योतक हैं । चतर्मुख-दर्शन होने पर भी सम्मुख-दर्शन से युक्त इन प्रतिमाओं के वेष में सिर पर पगड़ी, उत्तरीय जिसे वक्ष पर बाँधा गया, धोती जो कटि में मेखला से बाँधी है, कानों में भारी कुंडल, गले में भारी कंठा, छाती पर चपटा तिकोना हार तथा बाहुओं पर

१ सोढंग—उज्जयिनी के समीपवर्ती इस ग्राम का नाम प्राचीन ताम्रपत्रों में बार-बार आए 'सोदंग' शब्द का विकार प्रतीत होता है । यह भी सम्भव है कि षोढंग नामक किसी विदेशी के नाम पर यह गाँव बसाया गया हो और उसका अपभ्रंश सोढंग हो गया हो । चीनी तुकिस्तान से प्राप्त लेखों में यह नाम अनेक बार प्रयुक्त हुआ है । प्राचीन युग में उज्जयिनी में अनेक विदेशी लोग रहते थे ।—दृष्टव्य डी० सी० सरकार द्वारा संपादित 'सलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स' १९६५, पृ० २४४, ४६, ४८ इत्यादि ।

भुजबन्ध हैं। ये मूर्तियाँ स्थूल अथवा घटोदर हैं। यक्षमूर्तियों की इस परम्परा का स्रोत अज्ञात है परन्तु जिस रूप तथा मात्रा में ये उपलब्ध हैं इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनकी समृद्ध परम्परा रही जो साहित्य में ही उपलब्ध है, मूर्त रूप में नहीं। सम्भवतः इससे पूर्व ये मूर्तियाँ मिट्टी अथवा काठ की बनती रही होंगी जो कालान्तर में नष्ट हो गयीं। इस युग के सम्पूर्ण साहित्य में यक्ष के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। भासकृत प्रतिज्ञा-योगन्धरायण के अनुसार वासवदत्ता उज्जयिनी में यक्षिणी की पूजा के लिए जाती है। हाँ, यक्ष-मूर्तियों की यह ऋद्ध-परम्परा शुंगकाल में अधिक व्यापक हो गयी।

शुंग युग में भरहुत तथा साँची के स्तूपों की वेदिकाएँ बनीं, तोरण द्वार बने और उन पर कलात्मक सौन्दर्य बिखर गया। बौद्धधर्म के प्रति जो आस्था जन-हृदय में विद्यमान थी वह पाषाणों पर उभरी परन्तु जनभावना में यक्ष-नाग इत्यादि जो लोकदेवता आसीन थे वे भी उसके साथ ही आकार ग्रहण करने लगे। फलतः यह मिश्रित कला भरहुत तथा साँची दो केन्द्रों में एक साथ पूर्ण वैभव के साथ प्रकट हुई। इस युग में अलंकरण की अनेक परतें प्रकट हुईं। लक्ष्मी, पूर्णघट, उत्तरकुरु, धर्मचक्र, त्रिरत्न, कल्पवृक्ष, मकर, कच्छप, यक्ष-यक्षी, वृक्ष, स्तूप, अशोक स्तम्भों पर प्राप्त होने वाले वृषभ, सिंह, अश्व, हस्ती आदि पशुओं की पूजा, विविध देवी-देवता, देवप्रासाद, पुष्पमाला, कल्पलता, सरोवर इत्यादि अनेक अंकन धार्मिक मान्यता के साथ ही शोभाकारक भी थे।

शुंग-युग में विदिशा तथा साँची कला-वैभव से खचित हो गये। मथुरा से प्रतिष्ठान जाने वाले महापथ पर यह व्यापारिक केन्द्र था। विदिशा में विष्णु-मंदिर, गरुडध्वज तथा मकरध्वज एवं निधियों के द्योतक शंख तथा पद्म से शोभित कल्पवृक्ष का भी सुन्दर अंकन हुआ है। वस्तुतः यह कल्पवृक्ष, वटवृक्ष के रूप में अंकित हुआ है जिसकी झूलती जड़ों के मध्य निधि से पूर्ण एक पात्र, दो थैले, तथा शंख एवं पद्म दिखाए गए हैं। ५ फीट ८ इंच ऊँचा यह कुबेर के ध्वजस्तम्भ का शीर्षभाग अब कलकत्ता संग्रहालय में है।^२ साहित्य के सन्दर्भ में इस वटवृक्ष का विशेष महत्त्व है।

कालिदासकृत मेघदूत में विदिशा के 'ग्राम चैत्यों' का उल्लेख है। चैत्य पर यक्ष का निवास होता था। यह चैत्य या तो भवन के रूप में होता था अथवा वृक्ष। यह वृक्ष वटवृक्ष होता था। 'वटयक्ष' की चर्चा साहित्य में होती रहती है। स्पष्ट ही विदिशा का 'ग्रामचैत्य' यक्ष अथवा उसके अधिपति कुबेर के ही वासस्थान होने से मेघदूत में व्यक्त हुए हैं। प्रश्न उठता है कि विदिशा में ही उसका उल्लेख क्यों किया गया? इसका उत्तर हमें कला के इतिहास से प्राप्त होता है। विदिशा ई० पू० तीसरी सदी से ही, अशोक के समय से ही यक्ष एवं कुबेर की मूर्ति-स्थापना का केन्द्र रहा है। वहाँ मौर्य-शुंग युगीन खुले आकाश के तले खड़ी महाकाय मूर्तियाँ अनेक उपलब्ध होती हैं। प्रमुख

२ आनन्द के० कुमारस्वामी, यक्ष, भाग २, पृ० ७२ तथा प्लेट १ एवं ४६ (चित्र १-२)

वणिकपथ पर स्थित होने से वहाँ वैश्यों की बस्ती थी जिसे वैश्य नगर (बेसनगर) कहते थे। व्यापारियों की बस्ती में धन के देवता कुबेर एवं यक्ष की व्यापक पूजा-अर्चना अस्वाभाविक नहीं है। यही कारण है कि वहाँ इनकी महाकाय मूर्तियाँ पधरायी गयीं, इनके आयतन बने, ध्वजस्तम्भ बने, इन ध्वजस्तम्भों के शीर्षभाग पर विशाल एवं ऋद्धि प्रकट करते कल्पवृक्ष (वटवृक्ष) बने। वटवृक्ष पर यक्षों का वास होने से यहाँ के जनों की उस पर विशेष आस्था थी। पूर्वोक्त वटवृक्ष के नीचे शंख एवं पद्म भी अंकित हैं। कालिदास के मेघदूत (२।१७) में स्पष्ट संकेत है कि अलका में यक्ष के भवनद्वार के दोनों ओर शंख तथा पद्म का अंकन है—

द्वारोपान्ते लिखितवपुषी शंखपद्मौ च दृष्ट्वा ।

ये शंख एवं पद्म चरम निधियों के प्रतीक हैं। कर्नाटक के प्राचीन मंदिरों के द्वार के दोनों ओर इनकी मानवी आकृतियाँ अब भी देखी जा सकती हैं। लक्ष्मीपति विष्णु के दो हाथों में शंख एवं पद्म का चित्रण भी निधिसम्पन्नता का द्योतन है। विदिशा में इन कल्पवृक्षों के अंकन के साथ ही विष्णु का आयतन एवं गरुडध्वज भी उच्छ्रित था जिसकी वणिजों के नगर में स्थिति अचरज नहीं। कालिदास ने चैत्य का संकेत कर अपने युग के विदिशा की समूची सम्यता का उल्लेख कर दिया है—कला, समाज, अर्थ, धर्म सब कुछ व्यक्त हो गया।

साँची के सर्वाधिक महत्त्वशाली तीन स्तूपों में महास्तूप के चार तोरणद्वार अत्यन्त अलंकृत हैं। तृतीय स्तूप का एक तोरण है। इन तोरणों के सिरे पर, दो भारी स्तम्भों पर तीन-तीन धरणें हैं जिनके दोनों सिरे आवर्त से अलंकृत हैं। बीच में गजारोही तथा अश्वारोही हैं। यक्ष मूर्तियाँ तथा हाथी एवं सिंह के अग्रभाग हैं। उभयतः मुखीयक्षी, चामरग्राही यक्ष है। यहाँ बौद्धधर्म एवं लोकधर्म का समाहार हो गया है। कुछ ऐसा शिल्प है जिसकी पर्याप्त आवृत्ति हुई एवं कुछ में बुद्ध की जीवन घटनाएं, यक्ष मूर्तियाँ, पशुपक्षी, लता-फूल-पत्तियाँ इत्यादि का अंकन हुआ है। पीपल अथवा अश्वत्थ के रूप में सम्बोधि का अंकन कर पूजा के मनहर दृश्य उत्कीर्ण कर दिए हैं। बड़ेरियों के बीच बीनी यक्ष-मूर्तियाँ अंकित हैं। यहाँ उकेरे गए पशु वास्तविक तथा काल्पनिक दोनों प्रकार के हैं। पशुओं में अज, वृषभ, उष्ट्र, गज, सिंह एवं सिंहव्याल हैं। पूर्वी द्वार पर उदीच्यवेषधारी शक-तुषार अंकित हैं। यहाँ सपक्ष सिंह भी अंकित हैं जो भारत के बाहर भी पर्याप्त उकेरे गये। यहाँ फूल-पत्तियों का पर्याप्त अलंकरण है, विशेषतः कमल का।

दक्षिणी द्वार पर श्री लक्ष्मी का अंकन है जिसका दो गज घटाभिषेक कर रहे हैं। बीच की बड़ेरी पर स्तूप का दर्शन करने के लिए रथारूढ़ अशोक का अंकन हुआ है जिसके पीछे गजारोही एवं पदाति हैं। इसी द्वार के स्तम्भ की दूसरी बगड़ी पर अशोक द्वारा निर्मित, अश्वत्थ के चतुर्दिक बोधिधर प्रदर्शित हैं। परन्तु मुर्झाए बोधि को देख अशोक बेसुध बताये गये हैं। बीणा बजाती मिथुन मूर्ति भाजा के अनुरूप है। कल्पवृक्ष के नीचे मिथुन-नृत्य-दर्शन का आनन्द प्रदर्शित है।

उत्तरी द्वार तोरण की ऊपर की बड़ेरी पर दोनों ओर यक्ष एवं सपक्ष सिंह अंकित हैं। नीचली बड़ेरी पर सर्वोत्तम अंकन हुआ है। यहाँ नगरीय वास्तु, वेश, आभरण तथा अश्वयुक्त रथ एवं बाँए स्तम्भ पर जेतवन का दृश्य भरहुत के समान अंकित है। प्रसेनजित, पानगोष्ठी, वीणावादन इत्यादि भी अंकित हैं। स्तम्भ के बाहरी भाग पर अंकित सुवर्णयष्टि पर चार खूंटियों पर झूलती सुवर्णमालाएं आकर्षक रूप में व्यक्त हुई हैं। यहाँ बौद्ध एवं लोक धर्म का अद्भुत समन्वय हुआ है।

पूर्वी द्वार के तोरण के उत्कीर्णन में तरलता की अधिकता है। बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण तथा नगर की परिखा, प्राकार एवं द्वार प्रदर्शित हैं। दाहिने स्तम्भ भाग के सामने विविध लोक उत्कीर्ण हुए हैं। इस पर महाकपि जातक भी सफलता से अंकित हुआ है। उत्तरकुरु के स्वर्गीय आनन्दमय जीवन का भी वहाँ पर्याप्त अंकन हुआ है। दक्षिण तथा पश्चिमी द्वारों की कला ने परवर्ती माथुरी कुषाण शैली को प्रथापित किया है।^३ दक्षिण द्वार का निर्माण विदिशा के गजदन्त-कलाकारों ने किया था तथा उनकी ही बारीक कला उस पर अंकित हुई है। इसके निर्माण में उज्जयिनी के श्रेष्ठि वर्ग का भी योगदान रहा।

द्वितीय स्तूप की वेदिका पर अनेक दृश्य अंकित हैं। यक्ष-यक्षी, अश्वमच्छ, किन्नरमिथुन तथा सर्वाधिक कमल शोभित हैं। ये ईसवी पूर्व दूसरी सदी के अन्त में निर्मित हुए हैं। यहाँ एक मनोरम अंकन में कमलवल्लरी प्रदर्शित है जिसमें दो गजों द्वारा घटाभिषेक की जाती हुई लक्ष्मी, नीचे यक्षमिथुन जिनमें से यक्ष के हाथ में पद्म-प्रदर्शित है जो स्वभावतः उसकी चरम ऋद्धि का प्रतीक है। ये दोनों कमल-पत्र पर खड़े हैं जो उनके जलप्रेम को प्रकट करता है। नीचे अगले दोनों पैर उठाए सिंह, और भी नीचे वैसे ही दो अश्व तथा सबसे नीचे कच्छप है जिसके मुख से लहराती निकली कमल लता में उपर्युक्त दृश्य क्रमशः अंकित हैं। यहाँ कमल का अनन्त रूप में अंकन हुआ है। उत्तरकुरु का अंकन यहाँ भी हुआ है। किनारों का भी मनहर अंकन है। यही किन्नर बाद में हमशीर्ष देवता बना जो विष्णु के अवतार के रूप में अर्चित हुआ। इन्हें अश्वमुखी यक्ष-यक्षी भी कहा जाता रहा।

तृतीय स्तूप के द्वार पर यक्ष-यक्षिणी, अश्वारोही, त्रिरत्न, धर्मचक्र इत्यादि उत्कीर्ण हैं।

विदिशा के निकट उदयगिरि पहाड़ी पर कनिष्क को कई मौर्य-शुंगयुगीन अवशेष प्राप्त हुए थे जिनमें से कई लुप्त हो गए तथा कई ग्वालियर संग्रहालय में सुरक्षित हैं।^४ एक ८ फीट ६ इंच ऊँचा गोल स्तम्भ खण्ड मौर्ययुगीन ओपरहित होने पर भी अशोक के कई अन्य स्तम्भों से आकृति में मिलता है तथा पाषाण भी वही।

३ डॉ० वामुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृ० २०५

४ द्विवेदी बन्धु, मध्यभारत का इतिहास, भाग १, पृ० ३२८-२९

कमलाकृति अर्धभग्न, रस्सी का कण्ठा, ऊपर सादी पट्टी, तब गोल चौकी, जिसके चारों ओर बैल, हाथी, सपक्ष ऊँट, सपक्ष अश्व, जिराफ, दाढीयुक्त मानवमुख, सपक्ष सिंह इत्यादि उभरे हैं। लुहांगी पहाड़ी से प्राप्त स्तम्भ-शीर्ष भी ओपरहित होने पर भी मौर्य युगीन ही माना गया है। इसका शीर्ष रमपुरवा के स्तम्भशीर्ष के समान अलंकृत है तथा उस पर दो सिंह एवं दो हाथी एक के बाद एक बैठे थे जिनके अब केवल पैर बचे हैं।

उज्जयिनी में गढ़ के उत्खनन में प्राप्त स्लेट पत्थर पर उत्कीर्ण मूर्ति मौर्ययुगीन कला का श्रेष्ठ उदाहरण है। साँची के दक्षिण में लगभग १२ फीट लम्बे विशालकाय अश्व एवं उसके निकट एक नाग राजा की भव्य मूर्ति है। इसके हाथ तथा मुख खण्डित हैं। निकट ही फिरोजपुर ग्राम में नाग राजा तथा रानी की मानवाकार मूर्तियाँ पड़ी हैं। ऐसी अनेक मूर्तियाँ हैं जो आकर्षक हैं। द्विवेदीबन्धु के अनुसार^५ ये मूर्तियाँ तीसरी सदी में निर्मित हुई प्रतीत होती हैं।

विदिशा के प्रासादोत्तम विष्णु मन्दिर के अवशेषों के निकट से पूर्वं गुप्तकालीन विष्णु की भग्न प्रतिमा प्राप्त हुई है। बाँयें हाथ में सिंहमुखी गदा है। प्रभामण्डल भी है। बेसनगर से स्तम्भ शीर्ष भी उपलब्ध होता है^६ जो मकरांकित है। मकरध्वज अथवा मकरकेतन के मन्दिर के उल्लेख उज्जयिनी तथा पाटलिपुत्र के सन्दर्भ में भी प्राप्त होते हैं।

उदयगिरि की वीणागुहा में शिवलिंग पर उभरी शिवमुख प्रतिमा गुप्तकाल से पहले की है। क्योंकि इसमें केवल तृतीय नेत्र ही प्रदर्शित है अन्य चन्द्रकला इत्यादि रुद्धि प्रदर्शित नहीं है जो गुप्तकालीन खोह तथा भूमरा के एकमुख शिवलिंगों में प्राप्त होती है। इस प्रतिमा की सौम्य मुद्रा हृदयाकर्षक है। सिर पर जटा जूड़े के रूप में बँधी है तथा कुछ केश गले तक झूल रहे हैं। गले में मणियों का कण्ठा भी है।

कालिदास ने जिस अष्टमुख शिव की अर्चना की है, उसकी अकेली मूर्ति दशपुर (मन्दसौर) से प्राप्त हुई है। ७-८ फीट ऊँचे शिवलिंग पर चार मुख ऊपर तथा चार उनके नीचे त्रिनेत्रमय उत्कीर्ण हैं। मुख अण्डाकार एवं सौम्य हैं।

बाघ-गुहाओं के द्वार के आसपास बोधिसत्व, कुबेर, यक्ष, द्वारपाल इत्यादि की विशाल प्रतिमाएँ निर्मित हैं। ये तब की हैं जब बुद्ध-प्रतिमा के लक्षण पूर्णतया निश्चित नहीं हुए थे। अर्थात् ये गुप्तकाल से पूर्व की ही प्रतीत होती हैं।

गुप्त युग की कला में शील, शक्ति तथा सौन्दर्य का अद्भुत समन्वय है। अब आकृतियाँ सर्वथा स्वाभाविक हो गयीं। कलाकारों की छेनी ने जो सन्तुलन इस काल में प्रस्तुत किया वह न तो इससे पूर्व था और न बाद में रहा। अब मूर्तियाँ न तो शृंगकाल जैसी चपटी रहीं, न कुषाणकाल जैसी गोल, बल्कि गांधार शैली जैसी अंडाकार प्रकृत

५ विनोद बन्धु, मध्यभारत का इतिहास, भाग १, पृ० ४८२

६ वही, पृ० ६२४

हो गयी। अब कलाकार उन्हें कला के प्रतिष्ठित सौन्दर्य भावों से नहीं, सीधे प्रवाहित जीवन से लेने लगा।^७ जीवन की सरसता मूर्तिमती होने लगी। अलंकरण में न्यूनता आ गयी। स्वाभाविक सौन्दर्य विह्वल पड़ा। उदयगिरि की गुहा में वराह की १२ फीट ८ इंच ऊँची विशालकाय प्रतिमा अनायास पृथ्वी उठाते हुए शक्ति के प्रमाण सी प्रतीत होती है। छठी गुहा में चतुर्भुज विष्णु की दो प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। ५, ६, १०, ११ तथा १२वीं गुहा में भी विष्णु की खड़ी प्रतिमाएँ निर्मित हैं। परन्तु १३वीं गुहा में शेषशायी विष्णु की बारह फीट लम्बी प्रतिमा उत्कीर्ण है जिसमें सिर कोहनी से उठे हाथ की हथेली पर टिका है। प्रतिमा अत्यन्त सौम्य एवं मनोहर है। इसमें परितः गरुड़ प्रभृति अनुचर भी प्रदर्शित हैं। १६वीं गुहा में समुद्रमंथन प्रदर्शित है। बेसनगर से उपलब्ध नृसिंह की मूर्ति भी आकर्षक है।^८ उज्जैन के निकट कायथा से भी सूर्य की एक मनोहर मूर्ति प्राप्त हुई है।

उदयगिरि की तीसरी गुहा में स्कन्द की सुन्दर प्रतिमा है जिसके एक हाथ में दण्ड अथवा शक्ति तथा दो सिर हैं। दुमैन से प्राप्त प्रतिमा लघु पर आकर्षक है। तथैव कोटा से भी प्राप्त हुई है। उदयगिरि की ६वीं एवं १७वीं गुहा में गणेश की मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। ६वीं एवं १७वीं गुहा में ही द्वादश-करा महिषमर्दिनी की प्रतिमा भी सुन्दर है। मन्दसौर में उड़ते गन्धर्व की प्रतिमा में भी आकर्षण है। इसी काल की यक्ष-यक्षी प्रतिमा विदिशा से प्राप्त हुई है।

बाघ एवं साँची में प्रदर्शित इस काल की बुद्ध प्रतिमाएँ गुगानुरूप हृदयग्राहिणी नहीं बन पायीं।

उदयगिरि की बीसवीं गुहा में अवशिष्ट नागछत्र से प्रतीत होता है कि वहाँ पार्श्वनाथ की प्रतिमा रही होगी। कुछ वर्ष पूर्व विदिशा से तीन प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं—तीर्थंकर पुष्पदन्त की दो प्रतिमाएँ तथा चन्द्रप्रभु की एक प्रतिमा। इन प्रतिमाओं पर 'महाराजाधिराज रामगुप्त' का नाम भी उत्कीर्ण है।^९ मन्दसौर के खिलचीपुर तथा बाघ के द्वारपालों का अंकन भी अतोखा है।

गुप्तकाल तथा परमार युग के मध्यकाल की कला का मालवा में सतत क्रम प्राप्त नहीं होता। भोपाल के निकट भोजपुर में ७वीं-८वीं सदी की एक बुद्ध प्रतिमा है जो आभूषण मंडित भी है। धमनार की गुहाओं में भी बुद्ध की कई अज्ञात मुद्राएँ अंकित हैं। ग्यारसपुर में बुद्ध की भूमिस्पर्श मुद्रा प्रदर्शित है। मन्दसौर से पूर्व में लगभग १२ मील दूर अफजलपुर में उत्तर गुप्तकालीन पर्याप्त प्रतिमाएँ बिखरी पड़ी हैं। काले पत्थर से बनी इन मूर्तियों में अतोखा आकर्षण है। वहाँ भावसार के धर के आँगन में एक विशाल मूर्ति का मुख भाग दिखाई देता है जिसे मयूरध्वज की मूर्ति

७ डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका, पृ० ६६

८ विक्रमस्मृति ग्रन्थ, पृ० ६६७

९ बड़ीदा प्राच्य शोध संस्थान का जर्नल, पृ० २५२

कहा जाता है। यह मूर्ति पर्याप्त अलंकृत है। एक अन्य बाड़े में कई मूर्तियाँ पड़ी हैं। जिनमें काले चिकने पाषाण की शालभञ्जिका आकर्षक है। इस गाँव का प्राचीन नाम मड है जो मठ का अपभ्रंश प्रतीत होता है। यहाँ गाँव के दक्षिण में गोजाना गाँव तक विशाल भवनों की नीवें दिखाई देती हैं जो वहाँ मठ स्थिति की पुष्टि करती हैं। यहाँ के पाषाणों का उपयोग मन्दसौर दुर्ग के निर्माण में किया गया था। अवशिष्ट पत्थरों का ग्रामीण-जनों ने अपने घरों में उपयोग कर लिया। यहीं एक प्राचीन वापी भी है। यह स्थान प्राचीन काल में पर्याप्त प्रसिद्ध था और दशपुर का अभिज्ञान बन गया था। क्योंकि एक और दशपुर विदर्भ में दलिचपुर के निकट था जो ८१० ई० में दान में दे दिया गया था। यह आज दसुर कहलाता है। विदर्भ के दशपुर से इस मालवा के दशपुर की भिन्न प्रतीति के लिए इसके पास के प्रसिद्ध 'मठ' को संयुक्त कर इसे मठ दशपुर कहा जाने लगा जिससे एक निश्चित नगर का ही ज्ञान हो सके। इस संयुक्त नाम का ही अपभ्रंश आज का मन्दसौर शब्द है—मठदशपुर→मडदसउर→मँडदसौर→मन्दसौर। सुप्रसिद्ध इतिहासविद् महाराज कुमार डॉ० रघुवीरसिंहजी का भी यही अभिमत है। इस सुप्रसिद्ध मठ के समीप गोजाना गाँव के पूर्ववर्ती कूप के तट पर अष्टभुजी विष्णु तथा पार्वती की एक मनोरम प्रतिमा है। विष्णु की प्रतिमा लगभग तीन फुट ऊँची एवं हल्के काले स्निग्ध पत्थर से निर्मित है जिसे सिन्दूर से पोत दिया गया है। यह परमारयुगीन प्रतीत होती है। मूर्ति के हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म, खांडा, धनुष इत्यादि हैं। निकटवर्ती चबूतरे पर वटमूल में शिव, पार्वती, नाग, यक्ष तथा शालभञ्जिकाओं की हृदयाकर्षक प्रतिमाएँ हैं।

परमार युग में मूर्तिकला पुनः व्यापक रूप से लोकप्रिय हुई। इस काल में पर्याप्त मन्दिर एवं मूर्तियाँ सरजी गयीं। पहले जितनी बौद्ध प्रतिमाएँ निर्मित होती थीं उससे अधिक अब जैन प्रतिमाएँ निर्मित होने लगीं।

मेषदूत के देवगिरि (वर्तमान देवडूंगरी) के निकट मडगाँव के उत्तर में एक प्राचीन देवालय में दशावतार की मनोरम प्रतिमाएँ भित्ति में खचित हैं। वराह, नृसिंह इत्यादि की प्रतिमाएँ अत्यन्त मनोहर बन पड़ी हैं। प्रधान प्रतिमा चतुर्भुज विष्णु की है जिसे महिलोचित परिधान पहनाकर ग्रामवासी देवी के रूप में पूजते हैं। ग्राम्यों ने विष्णु को उनका मोहिनी रूप दे दिया, अज्ञान में भी सच्चाई की रक्षा हो गयी। बदनावर में बैजनाथ मन्दिर के चत्वर पर वराह की मनोरम प्रतिमा है। ऐसी एक प्रतिमा सीतामऊ के निकट गाँव लदूना के तालाब के तट पर है।

भेलसा में चतुर्भुज विष्णु की प्रतिमा ८-९वीं सदी की है। सिर के पीछे प्रभामण्डल है, गले में वैजयन्तीमाला। उज्जैन से आठ किलोमीटर दूर कमेड़ (यह शब्द सम्भवतः कमठ का अपभ्रंश है) में १०वीं सदी की चतुर्भुज प्रतिमा शोभित है। माण्डू से प्राप्त एक विष्णु प्रतिमा उड़ते गरुड़ पर सवार है जिसके बामोरु पर लक्ष्मी आसीन है। धमनार के धर्मनाथ मन्दिर के द्वार पर लक्ष्मीनारायण की प्रतिमाएँ हैं। धार से भी

लक्ष्मी सहित विष्णु की प्रतिमा उपलब्ध हुई है। ग्यारसपुर के हिंडोला द्वार पर दशावतार की प्रतिमाएँ हैं। धमनार के उपर्युक्त मन्दिर में भी दशावतार का आकर्षक अंकन हुआ है। बड़ोह तथा करोहन् से भी वराह प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।

हिरण्यकशिपु का हनन करते नृसिंह की एक प्रतिमा टोंगरा में प्राप्त होती है। कोहला के वराह मन्दिर में वराह के अतिरिक्त नृसिंह की भी प्रतिमा है। सुनारी तथा बड़ोह में विष्णु के एक अवतार बुद्ध को भी शिलांकित किया गया है। धमनार के पूर्वोक्त मन्दिर में शेषशायी विष्णु की प्रतिमा प्रदर्शित है जिसकी नाभि-कमल पर ब्रह्मा विराजमान हैं। नारायण पर मधु तथा कैटभ आक्रमण करते हैं परन्तु उन्हें वे नष्ट कर देते हैं। माण्डू की लोहानी गुहा के निकट से शेषशायी की सुन्दर प्रतिमा प्राप्त हुई है। जिस पर १२५८ संवत् उत्कीर्ण है। धार से ब्रह्मा एवं दशावतार सहित शेष की प्रतिमा प्राप्त हुई है। इसी प्रकार झारडा से शेषशायी विष्णु की एवं अनन्तशय्या की दूधाखेड़ी से प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।

प्राचीन मन्दिरों की भित्ति तथा स्तम्भों पर रामायण एवं महाभारत के दृश्य अंकित पाए जाते हैं। रामायण का ऐसा ही दृश्य सन्धाना से उपलब्ध हुआ है। बड़ोह के गडरमल मन्दिर में कृष्ण-यज्ञोदा का अंकन है। हुमैन के प्राचीन मन्दिर में भी कृष्णकथाएँ अंकित हैं। मोड़ी के पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप में कृष्णजीवन से सम्बद्ध अनेक दृश्य उत्कीर्ण हैं।^{१०}

परमार मूलतः शैव थे। इस काल में अनेक शैव प्रतिमाएँ निर्मित हुईं। शिव की वाम-जंघा पर आसोन पार्वती की प्रतिमाएँ मालवा के प्रायः सभी प्राचीन स्थलों में देखी जा सकती हैं। उज्जैन में तो ये विपुल मात्रा में मिलती हैं। झालरापाटन में परमारयुगीन नृत्यशिव की सुन्दर प्रतिमा प्राप्त होती है। धमनार के पूर्वोक्त मन्दिर में ताण्डव करते शिव अंकित हैं। इनके पास नन्दी एवं नृत्य करती देवियाँ भी प्रदर्शित हैं—नन्दी सहित पार्वती, गरुडासीन वैष्णवी, ऐरावतासीन इन्द्राणी, हंसासीन ब्रह्माणी। उज्जैन से उपलब्ध नृत्यशिव की एक प्रतिमा ग्वालियर संग्रहालय में प्रदर्शित है। यह पाँच फीट ऊँची तथा दशभुजात्मक प्रतिमा गजासुर का वध करती बतायी गयी है। रामगढ़ के शिव मन्दिर में भी दशभुज शिव की प्रतिमा प्राप्त होती है। वे त्रिभुवन में नृत्य करते प्रदर्शित हैं जिनके समक्ष समस्त देववर्ग भी बौना प्रदर्शित है।

उज्जैन के निकट आगर में नन्दी पर आसीन शिव-पार्वती की प्रतिमा प्राप्त होती है। ग्यारसपुर से भी शत्रुहन्ता शिव की प्रतिमा प्राप्त होती है। त्रिपुरारि शिव झारडा में प्रदर्शित हैं। उदयपुर पहाड़ी की ढलान पर एक विशाल पाषाण पर अपूर्ण शिव प्रतिमा बनी है। इसके छः हाथ हैं यह २६ फीट ऊँची एवं १२ फीट ७ इंच चौड़ी है। चरण नृत्यमुद्रा में हैं जिसके नीचे कोई राक्षस कुचला जा रहा है। गले में नाग,

१० डॉ० के० सी० जैन, मालवा यू. द एजेज, पृ० ४५५.

जिसका फण वक्ष पर प्रदर्शित है। जटा मुकुट रूप में है। स्थानीय लोग इसे रावण बताते हैं परन्तु ये भीमशंकर हैं। मोड़ी के मन्दिर में लकुलीश की प्रतिमा है। ग्यारसपुर में कटरमल भैरव की प्रतिमा है जिनके हाथ में कटार है। मोड़ी में भी भैरव प्रतिमा है जिसके बायीं ओर उनका वाहन श्वान खड़ा है।

विक्रम संवत् १२१० की एक ब्रह्मा की प्रतिमा बाघ से प्राप्त होती है। मामोन में भी ब्रह्मा की प्रतिमा प्राप्त होती है। लदूना के तडाग के तट पर ब्रह्मा की प्रतिमा थी जिसे तस्कर चुरा ले गये। धौली तथा दूढेरी में भी अन्य देवों के साथ ब्रह्मा भी अंकित हैं। उज्जैन के बिलोहीपुरा में एक पत्थर पर अन्य मूर्तियों के साथ ब्रह्माणी की प्रतिमा भी रखी है।

गन्धवास में पाँच फीट ऊँची खड़े सूर्य की प्रतिमा है। झारड़िया के देवालय मण्डप में सूर्यप्रतिमा अंकित है। १०वीं सदी की चन्द्रप्रतिमा का सिर भेलसा में प्राप्त है।

उज्जयिनी के विश्वविद्यालयीन पुरातत्व संग्रहालय में अनेक प्रतिमाएँ शोभित हैं। खड्वांगधारी शिव, नटराज, खण्डित शिवप्रतिमा, गयासुर संहार करती शिवप्रतिमा, योगरत शिव, चतुर्भुजी भैरव, चतुर्मुखी शिवप्रतिमा जिसकी मुखमुद्रा सौम्य है, नन्दी पर आरूढ़ शिव-पार्वती, ताण्डव करते शिव एवं लास्य करती पार्वती की संयुक्त प्रतिमा, तापसी पार्वती, चामुण्डा (कालभैरव के निकट से प्राप्त) तथा चामुण्डा की एक अन्य प्रतिमा शहर से प्राप्त हुई है। सप्तमातृका, वैष्णवी, ब्रह्माणी, सप्तमातृका, गणपति, नृत्यगणपति, कार्तिकेय इत्यादि की प्रतिमाएँ यहाँ से प्राप्त होती हैं। क्षिप्रा नदी से चषक लिए अश्वारोही की सचमुच सुन्दर प्रतिमा प्राप्त हुई है। विष्णु, सूर्य, बुद्ध, महावीर तथा देवियों की कई प्रतिमाएँ यहाँ से उपलब्ध हुई हैं।

भेलसा, गंधरावल, मोड़ी, झारड़िया, सुहानिया, झारडा तथा घमनार से विविध देवियों की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। सुहानिया से अग्नि तथा वायु की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। मन्दिर के द्वार गंगा तथा यमुना के अंकन से युक्त हैं जैसे विदिशा की वराह प्रतिमा के साथ इनका अंकन हुआ है।

ई० सन् १०३४ में मनथल द्वारा निर्मित वाग्देवी की प्रतिमा पहले धारा की भोजशाला में थी और अब ब्रिटिश संग्रहालय में सुशोभित है। यह राजा भोज के शासनकाल में निर्मित हुई थी। यह चतुर्भुजी प्रतिमा अर्धंग मुद्रा में खड़ी है। मुकुट तथा कुण्डल, हार एवं करधनी पहने इस प्रतिमा की मनोहर काया कुशल कलाकार के हाथों हृदय समाधि में सरजी गयी। इसका अद्भुत सौन्दर्य तथा सन्तुलन का छन्द अद्वितीय है। शिवराम मूर्ति इसे भोजकालीन श्रेष्ठ प्रतिमा का उदाहरण मानते हैं। इसी आकृति की एक सरस्वती प्रतिमा बदनावर के वैद्यनाथ मन्दिर के प्रांगण में प्रदर्शित है।

नई दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में प्रदर्शित दशभुजा दुर्गा दभोई दुर्ग से प्राप्त है। वह वाग्देवी की प्रतिमा के ही समान सुन्दर है। धार से उपलब्ध श्वेत संगमरमर की मनोरम पार्वती-प्रतिमा भी अनोखी है। यह उदयादित्य के समय निर्मित हुई थी। सुहानिया, ग्यारसपुर, उदयपुर इत्यादि में परमारयुगीन गणेश प्रतिमाएँ हैं। बडोह में नृत्यगणेश की प्रतिमा है, उज्जैन के समान। भोजपुर में अनेक प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ का शिवलिंग साढ़े सात फीट ऊँचा है। साथ ही यहाँ कुबेर की भी प्रतिमा प्राप्त होती है। घुसई से हरिहर की प्रतिमा प्राप्त होती है। पाली से उपलब्ध एवं झालावाड़ में प्रदर्शित अर्धनारीश्वर की प्रतिमा भी सुन्दर है। ग्यारसपुर, पछवाली इत्यादि स्थानों से त्रिमूर्ति की आकर्षक प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। झालरापाटन में एक अष्टभुजी प्रतिमा है, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा सूर्य—चार देवता एक शरीर-रूप में अंकित हैं।

कागपुर से आठवीं सदी की मयूरासीन कार्तिकेय प्रतिमा, उज्जैन से कपिल मुनि की प्रतिमा, उज्जैन से ही नागयुग्म की प्रतिमा उपलब्ध हैं। मोड़ी से कल्पवृक्ष तथा कामधेनु का अंकन प्राप्त है। दूदाखेड़ी तथा झारड़ा से भी कामधेनु की लघु प्रतिमा प्राप्त होती है।

परमार युग में मनोहर जैन पाषाण प्रतिमाएँ निर्मित हुईं। उनके शरीर सन्तुलित तथा मुखमुद्रा आकर्षक हैं। ममोन से तीर्थंकर की ८ फीट १० इंच ऊँची प्रतिमा प्राप्त होती है। परिचर के रूप में दो यक्ष व्यक्त हुए हैं तथा लघुरूप में कई तीर्थंकर प्रदर्शित हैं। मस्तक के पीछे प्रभामण्डल है। कागपुर से चौमुख की अनोखी प्रतिमा प्राप्त हुई है। भोजपुर के जैन मंदिर में २० फीट ऊँची आदिनाथ की प्रतिमा है। साथ ही इन्द्र सहित पाश्र्वनाथ भी प्रदर्शित हैं। गंधावल में अधिकांश जैन प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं जिनमें से कुछ १० फीट तक ऊँची हैं। ऊन के जैन मंदिरों से भी १२-१३वीं सदी की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। चैनपुर में १३ फीट ३ इंच ऊँची तीर्थंकर प्रतिमा प्राप्त होती है। चन्देरी के जैन मन्दिर में पाश्र्वनाथ की प्रतिमा सं० १२५२ की तथा तीर्थंकर की अन्य प्रतिमा संवत् १३१६ की है। वहीं १२६१ संवत् की पद्मावती देवी की प्रतिमा भी है। झारड़ा में जैन देवियों की दो प्रतिमाएँ एक वृक्ष के नीचे चबूतरे पर सिंहासनासीन हैं। उनके आठ भुजाएँ हैं। संवत् १२२६ में निर्मित प्रथम प्रतिमा अधिक पूर्ण है। इसके हाथ में विटप, धनुष, अंकुश, पाश, अक्षसूत्र इत्यादि हैं। तीन हाथ खण्डित हैं। एक वृषभ नीचे खड़ा है तथा अनुचर भी प्रदर्शित हैं। द्वितीय प्रतिमा १२२६ संवत् की है। इसका सिर नहीं है, नष्ट हो गया है। इन दोनों प्रतिमाओं के पयोधर पीन होने से ग्रामवासी इन्हें 'बोवावारी माता' कहते हैं। ऐसी प्रतिमाओं को भोज 'सुस्तनी सुस्तना प्रतिमा' कहता है (शृंगार प्रकाश, पृ० २६५)।

उज्जैन के दिगम्बर जैन संग्रहालय में कुल ५१६ प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं जिनमें से ५६ लेखयुक्त हैं। आदिनाथ या ऋषभनाथ की ३७ प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दनाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुविधिनाथ, शान्तिनाथ,

मुनि सुव्रतनाथ, नेमिनाथ के साथ ही सर्वाधिक पार्श्वनाथ एवं महावीर की प्रतिमाएँ हैं। पद्मासन में ध्यानस्थ पार्श्वनाथ की एक सुन्दर प्रतिमा है जिसके दोनों ओर यक्ष तथा यक्षिणी हैं। इनकी देहयष्टि आकर्षक है। हाथी पर राजपुरुष, चंवरधारी इत्यादि हैं। यह गुना से लायी गयी है। प्रतिमा को सप्तफण छाया किए हैं। पार्श्वनाथ की यहाँ ६४ प्रतिमाएँ हैं। जैन देवियों की भी यहाँ अनेक सुन्दर प्रतिमाएँ हैं। बदनावर की चक्रेश्वरी प्रतिमा अपनी भग्नाकाया में भी अद्वितीय है। इन प्रतिमाओं में यक्ष-यक्षी, नाग, वृक्ष इत्यादि का भी मनोहर अंकन हुआ है।^{११}

परमार युग में कला एवं साहित्य के मर्मज्ञ नृपों की मालवा में अद्वितीय परम्परा रही है जिनमें मूर्धन्य भोज का कलाबोध परवर्ती युग में भी अपमान बन गया—बोधे कलानां नवभोजराजः। इस भोज ने अनेक मन्दिर तथा उनमें प्रतिमाएँ स्थापित करवाईं जिनका अभिज्ञान असम्भव हो रहा है। केवल पूर्वोक्त वाग्देवी प्रतिमा उसके कलाबोध का प्रमाण बन जाती है। भोज अपने शृंगार प्रकाश में प्रतिमा की सौम्य काया के सृजन पर बल देता है। वह यह भी मानता है कि ऐसी प्रतिमा की रचना सरल नहीं है—

सौम्या मूर्तिः प्रतिमाया इति । अहो दुःखं रूपं लेख्यस्य ।

करुणापूरित अंकन भी उस काल में कम आकर्षक नहीं होते थे। पाषाण पर वासुदेव का उत्कीर्णन, पूर्वोक्त सुस्तनी प्रतिमाओं का उभार, भित्ति पर कामदेव की रचना एवं ध्वज पर हनुमान का आलेख.....सबकी ओर भोज का संकेत हुआ है।^{१२} (शृंगार प्रकाश, पृ० २०४)।

ऐसे कलापारखी राजा की रचना शृंगारमंजरी कथा में भी कला सम्बन्धी अद्भुत सामग्री भरी है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार कलाकोष के निर्माण में इस कृति का कम महत्त्व नहीं रहेगा। ऐसे भोज तथा उसकी रसिक वंशमाला के राज्यकाल में यदि ग्रन्थों तथा भवनों के समान अनन्त-अनन्त आकर्षक मूर्तियाँ भी रची जाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं। पुनः परमार युग तो जैनधर्म को भी उतना ही आदर देता था जितना ब्राह्मण धर्म को। उस काल में सब धर्मों को सम्यक् राज्याश्रय प्राप्त था। यही कारण है कि इस काल में सब धर्मों से सम्बद्ध हर प्रकार की मनोहर मूर्तियों का सृजन हुआ।

यह वह काल है जब इतर प्रदेशों में भी मूर्तिकला के प्रति आकस्मिक अपेक्षा-भाव आगया था। यद्यपि इस काल में अन्यत्र भी मूर्ति रचना हुई पर जिस मात्रा तथा जिस आकर्षण से युक्त मालवा में मूर्तियाँ रची गयीं। वह न इससे पूर्व दिखाई देती है एवं न बाद में।

भारतीय मूर्तिकला को मालवा के दाय का यह संक्षिप्त सर्वेक्षण व्यक्त करता है

११ मालवा : एक सर्वेक्षण, पृ० ६५

१२ द्रष्टव्य—लेखक का लेख, भोज का कलाबोध, मध्यप्रदेश सन्देश, ७ जून १९७५

कि शुंगकाल, गुप्तकाल तथा परमारयुग में मालवा ने भारतीयकला की जो ऋद्धि की है वह उपेक्षणीय नहीं हो सकती। मूर्तिकला के विदिशा, साँची तथा परितः क्षेत्र, उज्जयिनी, धारा एवं परितः क्षेत्र केन्द्र रहे हैं। यहाँ देवता एवं प्रकृति का ही चित्रण नहीं हुआ अपितु राजा एवं प्रजा को एक साथ भी प्रस्तुत किया गया है। साँची में प्रजा एवं राजा, साधना और श्रम, राजधर्म तथा लोक धर्म का जैसा समन्वय पाया जाता है वह अन्यत्र सरलता से सुलभ नहीं है। प्रतिमा-विज्ञान का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक जो विकास यहाँ हुआ वह परवर्ती काल में अन्य प्रदेशों के लिए भी अनुकरणीय रहा। भोज के युग की वाग्देवी की प्रतिमा का अनुकरण परवर्तीकाल में भी होता रहा यद्यपि अनुकर्ता उस स्तर तक सफलता नहीं पा सके। स्वयं भोज ने समरांगणसूत्रधार में मूर्ति विषयक पर्याप्त विवरण प्रस्तुत कर कलावन्तों को उस ओर प्रेरित किया है।^१



१ न जाने क्यों, श्वेताम्बर मूर्तिकला की ओर लेखक की दृष्टि नहीं जा सकी है, जबकि कला की दृष्टि से उसका भी अपना विशिष्ट स्थान है।
—सम्पादक

मालव-संस्कृति को जैनधर्म की देन

डॉ० बसन्तोलास बंग, एम. ए., पी-एच. डी.

मालव भूमि की महत्ता, उसके समृद्ध जन-जीवन, प्राकृतिक रमणीयता, उर्वर-धरा और सौन्दर्य पूर्ण-स्थलों के कारण तो है ही; साथ ही, उसमें बसी उज्जयिनी (उज्जैन), माहिष्मति (महेश्वर), दशपुर (मन्दसौर), धारानगरी (धार), विदिशा (नाम परिवर्तन के पूर्व भेलसा), गन्धर्वपुरी (गन्धावल) ओंकारेश्वर (मान्धाता) और सांची जैसी पुरातन, ऐतिहासिक और धार्मिक नगरियों ने भी उस महत्ता को महिमा-मय बना दिया है। इनमें उज्जयिनी नगरी अति प्राचीन है। आज भी यह कहना असम्भव है कि उज्जैन को सर्वप्रथम किसने बसाया था। वेदों, संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों, उपनिषदों और पुराणों में अनेकों स्थलों पर इसकी महिमा के गान गाये गये हैं। जैन और बौद्ध साहित्य में भी इसका गौरव यथावत् स्थापित है। भारत के मानवाकार मानचित्र में मालवा उसका मध्यस्थान और उज्जैन को नाभिदेश की संज्ञा दी गई है। इसीलिये आध्यात्मिकों ने इसे 'मणिपूर चक्र' के नाम से भी सम्बोधित किया है। उज्जयिनी प्रत्येक कल्प में भिन्न-भिन्न नामों से जानी जाती रही।^१ इसीलिये इसका एक नाम प्रतिकल्पा भी रहा। इसके अतिरिक्त भी इसे प्राचीन साहित्य मनीषियों ने कई नाम दिये, जो इतिहास की करवटों के साथ परिवर्तित होते रहे।^२

इतिहास और अन्य प्रमाणों के आधार पर 'मालव-जनपद' प्राचीन 'अवन्ती देश' का समृद्ध भाग रहा है। अवन्तिका इस जनपद की प्रमुख नगरी थी और 'अवन्तिजा' इसकी प्रमुख भाषा। शासन सत्ताओं के परिवर्तन के साथ मालव जनपद की सीमा-रेखाएँ भी बदलती रही हैं। परन्तु भौगोलिक दृष्टि से इसकी सीमा निर्धारित करना सदैव ही सम्भव रहा है। मालवा और राजपूताना के मध्य अरावली की पर्वत-मालाएँ और घने जंगलों से आच्छादित भू-क्षेत्र तथा अरावली के वायव्यकोण में सिन्ध और अन्य नदियों से घिरा हुआ उपजाऊ भाग तथा दक्षिण में लाल पत्थरों की खदानों

१ उज्जयिनी के एक से छः कल्पों में क्रमशः स्वर्णमंगा, कुशस्थली, अवन्तिका, अमरावती, चूड़ामणि, पद्मावती नाम रहे हैं।

२ कनकशृङ्गा, कुमुदवती, विशाला, प्रतिकल्पा, भोगवती, हिरण्यवती, आदि नामों के उल्लेख भी मिलते हैं।

से नीचे की ओर का ढाल क्षेत्र उस सीमा तक चला गया है, जहाँ समतल भूमि आरम्भ होती है। पूर्व से पश्चिम तक फैली विन्ध्यमेखलाओं का विस्तार, जो दक्षिणापथ से इसे विलग करता है—मालव-जनपद की भौगोलिक सीमा रेखा का अंकन करता है।^१ इसीलिये इसे मालवा का पठार भी कहा गया है। मालवा और उज्जैन के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने अनेकों संदर्भों में कई मत व्यक्त किये हैं।^२ प्राचीन मुद्राओं, शिलालेखों एवं पुरातत्त्वीय सामग्री ने तथा संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य ने भी मालव महिमा और उज्जयिनी के पुरातन इतिहास पर नये सिरे से प्रकाश डाला है। पौराणिक गाथाओं तथा बौद्ध व जैन कथाओं में इसके रोचक वर्णन भरे पड़े हैं।

मालवा के प्रथम सम्राट् भरत थे—शैव और वैष्णवों के समान ही मालवा की चिकनी मिट्टी में जैनधर्म की जड़ें भी गहराई तक पहुँची हुई हैं। इसका उल्लेख जैनधर्मग्रन्थों और उनकी परम्परागत मान्यताओं में उपलब्ध होता है। मालवा की प्राचीन नगरी उज्जयिनी महर्षि सान्दीपनि का विद्यापीठ रहा है। इस विद्याकेन्द्र की प्राचीनता का बोध कराने वाली यह मान्यता जैनियों में विद्यमान है कि 'कल्प काल में सभ्य और कर्मठ जीवन व्यतीत करने की शिक्षा सर्वप्रथम अन्तिम मनु नाभिराय के पुत्र प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव ने दी थी।^३ इसी शिक्षा का परिणाम था कि देश में नगरादि की स्थापना प्रारम्भ हुई और ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष कहा जाने लगा।^४ ऋषभदेव की आज्ञानुसार इन्द्र ने भारतवर्ष में बावन देशों की रचना की थी। अवन्ती देश का नाम सुकोशल था और जिसकी राजधानी अवन्तिका थी। कालान्तर में यही उज्जयिनी के नाम से प्रख्यात हुई।^५ ऋषभदेव द्वारा इन्द्र से बावन देशों की रचना करवाने के पश्चात् अनेकों क्षत्रिय-पुत्र इनके शासक बनाये गये। परन्तु जब राजकुमार भरत ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक साम्राज्य के रूप में स्थापित किया, तब सर्वप्रथम उन्होंने जो छह खण्ड पृथ्वी जीती थी, उसमें अवन्ती देश भी सम्मिलित था। इसीलिये अवन्ती के प्रथम सम्राट् चक्रवर्ती भरत ही माने गये।^६

१ इम्पीरियल गेजेटियर 'इंडिया' (३४३८)

२ सर जॉन मालकम का 'सेन्ट्रल इण्डिया', पार्टीजर का 'एन्थोन्ट इण्डिया', मार्शल की 'गाइड सांची', टॉलमी का 'एन्थोन्ट इण्डिया', जूलियन का 'ट्रैटसांग', केम्बेव फ्लीट का 'एपिग्राफिका इण्डिका', टर्नर का 'महावंश', फाहियान का 'भारत वर्णन', 'गेजेटियर' तथा 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका'—आदि में अशोक, गुप्तकाल, बौद्ध और जैन धर्म की पृष्ठभूमि, मालवा का रमणीय और समृद्ध जन-जीवन तथा उज्जयिनी की सुन्दरता एवं महत्ता पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया गया है।

३ संक्षिप्त जैन इतिहास (सूरत), प्रथम भाग।

४ महापुराण (अन्तिम) १५.६।१५

५ जिनसेनाचार्य कृत 'महापुराण' (इन्दौर संस्करण)

६ महापुराण, पृ० १०७६

रक्षाबन्धन त्यौहार का जन्म मालवा में—जैन मान्यतानुसार रक्षाबन्धन त्यौहार का जन्म मालवा की प्रसिद्ध नगरी उज्जयिनी में माना गया है। हरिवंशपुराण और हरिषेण कथाकोष की कथा प्रसंगों के अनुसार दिगम्बर जैनाचार्य अकम्पन स्वामी का अपने संघ सहित मालवा की राजधानी उज्जयिनी में आगमन हुआ था। उस समय उज्जयिनी में श्रीधर्म नाम का न्यायप्रिय राजा राज्य करता था। उनके जिनबलि आदि मंत्रियों के द्वारा साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाने के कारण 'रक्षाबन्धन' त्यौहार का जन्म माना गया है।^१

मालवा पर अहिंसा धर्म का प्रभाव—अहिंसा धर्म के प्रचार और उसके गहरे प्रभाव का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हमें 'यशोधर चरित्र' में मिलता है। मालवा देश के राजा यशोधर बलि-प्रथा को राजाज्ञा से सम्पूर्ण राज्य में प्रतिबन्धित कर, स्वयं दया धर्म को प्रजा सहित स्वीकार कर लेते हैं।^२ पाण्डव वीर अर्जुन की पूर्व जन्मस्थली उज्जैन ही थी। अर्जुन अपने तीन जन्म पूर्व उज्जैन की एक धर्मभीरु राजकुमारी सुमित्रा के रूप में था, जिसने एक जैन मुनि से धर्मोपदेश सुन व्रत ग्रहण किया था, परन्तु वह उसे पूर्ण भावना सहित केवल एक दिन ही ग्रहण कर पाई थी कि उसकी मृत्यु होगई। पश्चात् वह उज्जयिनी के ब्राह्मण परिवार में पुत्र रूप में जन्मी और अपने कौशल से राजमंत्री बन गई। उसके शासन से प्रजा सुखी थी। पश्चात् वृद्धावस्था में उसने तप किया और स्वर्ग में देवता बन गई। वहाँ आयु पूर्ण करने पर पाण्डवों में अर्जुन के रूप में जन्मी।^३ यह सब जैन मुनियों की तप, व्रत और साधना पद्धति अपनाने का ही प्रभाव था।

धर्मवीरों तथा रणवीरों की भूमि—जैनधर्मग्रन्थों में यह उल्लेख है कि मालवा अनेकों धर्मवीर जैन मुनियों का प्राचीन केन्द्र रहा है। अकम्पनाचार्य जैसे अनेक मुनिराज यहाँ आते रहे हैं। मगध के राजपुत्र नागकुमार के काल में भी यहाँ प्रभावशाली जैन मुनियों का बाहुल्य था। उसी समय मालवा की राजधानी उज्जयिनी में पाँच सौ उद्भट योद्धा रहते थे। जब जैन मुनियों से नागकुमार के महाप्रतापी होने की बात कही, तो वे सभी मुनियों के साथ चल पड़े। मार्ग में उन्होंने अपनी शक्ति और पराक्रम

१ हरिवंशपुराण—२०।१-६, हरिषेण कथाकोष (कथा क्रमांक—११)

जब मंत्रीमण मुनि हत्या को उद्यत हुए तो राजा ने उन्हें निर्वासित कर दिया, तब संघ की रक्षा हेतु 'रक्षाबन्धन' त्यौहार मनाया गया।

२ यशोधर चरित्र (१।२२) में उल्लेख है कि राजा यशोधर अपने जीवन के अन्तिम समय में राजपाट पुत्र यशोधर को सौंपकर स्वयं जैन मुनि हो जाते हैं। उस समय बलि-प्रथा का तीव्र-तम प्रभाव था। न केवल पशु वरन् नर भी यज्ञ में होम दिये जाते थे। परन्तु जैन मुनियों की अहिंसा धर्मयुक्त शिक्षा का यशोधर पर गहरा प्रभाव पड़ा और उसने राजाज्ञा से बलि-प्रथा पर रोक लगा दी। परिणामस्वरूप उसकी प्रजा भी जैनधर्मानुयायी बन गई।

३ करकण्डुचरित (कारजा) १०।१८-२२ विस्तृत कथा प्रसंग हेतु देखिये :—
'उप्यणु उ अज्जुणु होवि साइ । फलु एहउ पुत्ति विहाणे होइ ॥'

के अद्भुत चमत्कार दिखलाये और नागकुमार की अपराजेय शक्ति, पराक्रम, और वीरता से प्रभावित हो वापस लौट आये। उस समय उज्जयिनी में जयसेन राजा राज्य करता था। उसकी पुत्री मेनकी किसी को भी अपने योग्य वर न पाकर, विवाह के लिये तत्पर नहीं थी। परन्तु नागकुमार की वीरता का परिचय पाकर, वह उससे विवाह करने को राजी होगई।^१ मालवा के शासक धर्मनिष्ठ और वीर थे। तेइसवें जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के तीर्थस्थल में हुए चम्पा नरेश करकण्डु के चरित्र में एक प्रकरण द्वारा उक्त कथन की पुष्टि भी होती है, जिसमें राजा अरिदमन का चरित्र वर्णन करते हुए मुनिराज बताते हैं कि—अनेकों कष्टों, बाधाओं और कठिनाइयों को सहन कर अरिदमन अपनी रानी से सकुशल आ मिला था।^२ चौबीसवें तीर्थंकर महावीर के मालव देश की प्राचीन नगरी उज्जयिनी में आकर अतिमुक्तक नामक श्मशान में ध्यानस्थ होने का उल्लेख मिलता है, जहाँ रुद्र नामक व्यक्ति द्वारा उन पर घोर उपसर्ग किया गया। महावीर अपने ध्यान में दृढ़ एवं निश्चल रहे। रुद्र का रौद्ररूप उनको विचलित नहीं कर सका। पाशविक-शक्ति आत्म-शक्ति के सम्मुख नतमस्तक होगई। रुद्र महावीर के चरणों में जा गिरा तभी से महावीर “अति वीर” कहलाए। इसी समय उज्जैन में चण्डप्रद्योत नामक राजा था। उसके पश्चात् महावीर के ‘निर्वाण-दिवस’ पर पालक नामक राजा सिंहासनारूढ़ हुआ।^३

मौर्यकालीन जैन संघ का केन्द्र—चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में मालवा का निर्ग्रन्थ-जैन संघ, श्रुतकेवली भद्रबाहु की अध्यक्षता में प्रख्यात था। स्वयं सम्राट् चन्द्रगुप्त उनके उपदेश सुनते थे और उनके मुख से बारह वर्ष के अकाल की बात सुनकर स्वयं भी दिगम्बर मुनि हो गये थे। वे निर्ग्रन्थ संघ के साथ दक्षिण भारत भी गये थे।^४ उज्जयिनी में शेष रहे निर्ग्रन्थ श्रमण, अकाल की यातनाओं से पथभ्रष्ट हो, अपना दिगम्बर वेष छिपाने की दृष्टि से एक वस्त्र खण्ड रखने लगे। जिन्हें ‘अर्ध-फालक’ कहा गया। अतः यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि निर्ग्रन्थ जैन संघ में भेद की भावना भी मालव नगरी उज्जयिनी में जन्मी। उज्जयिनी में निर्ग्रन्थ संघ का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। चाहे उसमें भेद उत्पन्न हो गये हों।^५ जैन श्रुतों के उद्धार

- १ नागकुमारचरित (कारजा), ७।३ पृष्ठ ७२-७३ पर विस्तृत कथा प्रसंग में उल्लेख है कि—बाइसवें जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि के तीर्थस्थल (मगध) के राजपुत्र नागकुमार महाभाग थे।
- २ करकण्डुचरित (कारजा) ८।१-२५, पृष्ठ ७१-७८ पर करकण्डु के सम्बन्ध में पूछे गये एक प्रश्न के उत्तर में मुनिराज राजा अरिदमन की कथा विस्तार से सुनाते हैं और निरूपित करते हैं कि यह उसके पुण्य और साहस का परिणाम था कि वह अपनी रानी से आ मिला।
- ३ हरिवंशपुराण, पर्व ६०, श्लोक ४८८, में महावीर के एकान्त विचरण कर साधनालीन होने का उल्लेख है। उन्होंने बारह वर्ष तक साधनामय जीवन व्यतीत किया था।
- ४ संक्षिप्त जैन इतिहास, भाग-२, खण्ड-१, जैन शिलालेख संग्रह की भूमिका।
- ५ काणे कमैमोरेशन ग्हात्युम (पूना) पृष्ठ-२२८-२३७ के अनुसार निर्ग्रन्थ संघ में दिगम्बर-श्वेताम्बर का भेद पैदा हुआ था।

हेतु कलिंग सम्राट् खारवेल ने निर्ग्रन्थ श्रमणों का सम्मेलन बुलाया था, उसमें मथुरा, उज्जैन और गिरिनगर के निर्ग्रन्थ श्रमण ही विशेष रूप से आमंत्रित थे।^१

मालवभूमि पर शकों का आधिपत्य—मालवा पर शकों के आधिपत्य का उल्लेख 'कालकाचार्य कथानक' एवं 'यशोधर चरित्र' में हुआ है। उस समय मालवा पर गर्दभिल्ल का राज्य था, जो खारवेल का वंशज था। गर्दभिल्ल दुश्चरित्र था। उसने 'खण्ड वस्त्रधारी' जैन सम्प्रदाय के कालक नामक आचार्य की रूपवती साध्वी बहन सरस्वती को अपने अन्तःपुर में बुला लिया। कालकाचार्य इस बात को सहन न कर सके और शक राजाओं को उत्तेजित कर गर्दभिल्ल पर आक्रमण करवा दिया। शकराज विजयी हुए और उनका आधिपत्य मालवा और उज्जयिनी पर हो गया। पश्चात् कालकाचार्य ने बहन सरस्वती का उद्धार किया और प्रायश्चित्त लेकर वह पुनः जैन साध्वी बन गई।^२

मालवा पर विक्रमादित्य का अधिकार—आन्ध्रवंशीय राजा अपने निकट सम्बन्धी गर्दभिल्ल के पतन को सहन नहीं कर सके और आन्ध्रभृत्य गौतमीपुत्र शातकर्णि शकों से जूझ पड़े। इस समय शकों की राजधानी भृगुकच्छ (भड़ोंच) थी, और उज्जैन के निकट का उनका राज्य विस्तार था।^३ वे शक्तिशाली थे। शातकर्णि पराजित हुए, परन्तु उन्होंने कुटिल बुद्धि से काम लिया। उन्होंने नरवाहन का कोष धार्मिक कार्यों में व्यय करवा कर, खाली कर दिया और पुनः आक्रमण कर उसे पराजित किया। तब मालवा और उसकी राजधानी उज्जयिनी मुक्त हुई।^४ जैन-साहित्य विक्रमादित्य की विजय एवं पराक्रमी गाथाओं से भरा पड़ा है। वह जैनधर्म के प्रति सहिष्णु था और जैनों ने शक विजय पर प्रारम्भ विक्रम सम्बत् अपनाया था। कई कथानक इस कथन की पुष्टि करते हैं कि विक्रमादित्य स्वयं जैनधर्म के उपदेशक थे। इससे यह प्रमाणित होता है कि विश्व विख्यात सम्राट विक्रम का जैनधर्म के प्रति कितना लगाव था।^५

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और जैनाचार्यों का केन्द्र—चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य गुप्त साम्राज्य का प्रतापी राजा था। उसने मालव विजय कर उज्जयिनी को अपने अन्तर्गत ले लिया। उसकी राजसभा में क्षपणक (दिग्म्बर जैनाचार्य) को सम्मान प्राप्त था। जैन शास्त्रों के अनुसार वे सिद्धसेन नामक आचार्य थे, जिन्होंने महाकाली

१ जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भाग-१३, पृ० २३६।

२ कालकाचार्य कथानक—प्रभावक चरित्र (बम्बई), पृष्ठ ३६-४६

३ शातकर्णि के समय नरवाहन (नहवाण या नहपान) वहाँ का शक राजा था।

४ स्व० काशीप्रसाद जायसवाल ने गौतमीपुत्र शातकर्णि को उज्जैन में आकर बसने और वहाँ का राजा बनने का उल्लेख किया है। यही शातकर्णि विक्रमादित्य के नाम से प्रख्यात हुए। (देखिये—जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भाग १६)

५ संक्षिप्त जैन इतिहास (सूरत) भाग-२, खण्ड २, पृष्ठ ६६, पार्श्वनाथ चरित्र (भवदेवसूक्त) सर्ग ३ व जैन सेवियर पार्श्वनाथ (वाल्मिजीय यू० एस० ए०) ७४-८३

के मन्दिर में चन्द्रगुप्त को चमत्कृत कर, जैनधर्म में दीक्षित कर लिया था। इसी समय दिगम्बर जैन मुनियों का संघ भद्लपुर (बीसनगर) से उज्जैन में स्थानान्तरित हुआ था।^१ पश्चात् उज्जैन दिगम्बर जैन भट्टारकों की केन्द्रीय नगरी भी बनी और यहाँ पच्चीस जैन दिगम्बराचार्य चार सौ उन्तीस वर्ष की अवधि में प्रख्यात हुए।^२

परमार वंशीय राजाओं द्वारा जैनाचार्यों का सम्मान—परमारवंशीय राजाओं की राजधानी धारा नगरी (धार) थी परन्तु राजा भोज ने उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाया था। इस वंश के कई राजा विद्या, कला और साहित्य के ज्ञाता और रसिक थे। उन्होंने अनेकों जैनाचार्यों को राजकीय सम्मान और प्रतिष्ठा प्रदान की थी।^३ मुंज के समान भोज ने भी जैनधर्म और आचार्यों को सर्वाधिक सम्मान दिया। श्री प्रभाचन्द्राचार्य को विशेष रूप से सम्मानित किया। दिगम्बराचार्य श्री शान्तिसेन ने भोज के दरबार में कई विद्वानों एवं पण्डितों को वाद-विवाद में पराजित किया था। एक अन्य आचार्य विशालकीर्ति के शिष्य मदनकीर्ति ने उज्जयिनी में अन्य वादियों को परास्त कर 'महा प्रामाणिक' की पदवी प्राप्त की थी। इस प्रकार मध्ययुग तक जैनधर्म का प्राबल्य मालवा में और विशेषकर उज्जयिनी में रहा।^४

उज्जैन नगर की प्राचीन वैभवसम्पन्नता कालचक्र के थपेड़ों और मध्यकाल से अंग्रेजी शासन तक के राजनैतिक परिवर्तनों की चपेट में आज धूलि-धूसरित भले ही होगई हो, परन्तु इसके भग्नावशेषों से आज भी इसके गौरवशाली अतीत की वे गाथाएँ, जिनमें इसके उत्तुंग राजप्रासाद, विशाल-पथ, रम्य और सुन्दर जिन मन्दिर, आकर्षक उद्यान, विश्व का व्यापारिक केन्द्र, अपार धन-सम्पदा, स्वर्ग की परी के समान शस्य-श्यामला-धरा, मरकत मणियों से जड़े नगर पथ, चन्द्रकान्त मणियों से आभासित आवास, रत्नजडित क्यारियों से बहने वाली सुरभित सुमनों की मदमस्त सौरभ, पर-सुखापेक्षी नगरवासी, सुशील व पतिभक्ता रमणियाँ, ऐसी-नयनप्रिय नगरी, जो सूर्य रश्मियों को भी लज्जित करदे—अनुगुंजित हो रही है।^५ उज्जयिनी का प्राचीन

१ संक्षिप्त जैन इतिहास (सूरत) तथा रत्नकरण्ड श्रावकाचार—भूमिका—जीवन चरित्र (पृष्ठ १३३।१४१)

२ जैन हितैषी, भाग ६, अंक ७-८, पृष्ठ २८-३१

३ राजा मुंज ने घनपाल, पद्यगुप्त व घनञ्जय जैसे विद्वानों को दरबार में सम्मानित किया। जैनाचार्य महासेन उनका स्नेह और आदर पा चुके थे। घनपाल के भाई शोभन भी जैनधर्म में दीक्षित हुए, परन्तु घनपाल उज्जैन में जैनधर्म का गहन प्रभाव देखकर धारा चले गये। शोभन फिर भी पूर्णरूपेण प्रभावित रहे। आचार्य अमितगति इस समय के प्रख्यात जैन यतियों में से एक थे।

४ भारत के प्राचीन राजवंश, मध्यप्रान्तीय जैन स्मारक, हिन्दी विश्वकोष और विद्वद्रत्नमाला, चतुर्विंशति प्रबन्ध, जैन हितैषी, देखिये।

५ हरिवेण कथाकोष (कथा क्रमांक ३), महाकवि पुष्पदन्त कृत 'यशोधर चरित्र', कनकामरकृत 'करकण्डुचरित', आदि में उज्जयिनी का दिग्दर्शन है।

विद्यापीठ महर्षि सान्दीपनि की कुटिया में 'कृष्ण-सुदामा' की पवित्र मित्रता का स्मरण कराता है। राजकुमार चन्द्रप्रभ और उनके गुरु कालसंदीय क्रमशः सत्रह एवं अठारह भाषाओं के ज्ञाता थे। वे धनुर्विद्या में निपुण और महावीर स्वामी के निकट जैन मुनि हो गये थे।^१ वैसे उज्जयिनी नगरी संसार प्रसिद्ध रही है। उसने विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न धर्म-धाराओं को आत्म-सात् कर न केवल मालवा की यशोगाथा बरन् भारत की कीर्तिपताका को विश्व-आकाश में फहराया है।

दक्षिण भारतीय जैन साहित्य में उज्जयिनी का यशोगान—तमिल साहित्य के दो महाकव्यों में "शीलप्पदिकारम्" की रचना एक जैनधर्मावलम्बी राजकुमार ने की थी। इसके छोटे परिच्छेद में उज्जयिनी का वैचित्र्यपूर्ण उल्लेख है। जिससे ज्ञात होता है कि एक समय था, जब उज्जयिनी नगरी उत्तर भारत की प्रमुख नगरी थी। अवन्ती नरेश ने चोलराज का स्वागत मणिमुक्ताओं से जड़े हुए तोरण द्वार बनवाकर किया था, जिसकी बनावट देखते ही बनती थी।^२

जैन शिलालेखों में मालवा और उज्जयिनी—श्रवण बेलगोला (मैसूर) के चन्द्रगिरि पर्वत पर शक संवत् ५२२ के एक शिलालेख में आचार्य भद्रबाहु को उज्जयिनी में अवस्थित बताया है। उन्हें अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता और त्रिकालदर्शी कहा गया है। उन्हीं ने १२ वर्ष के अकाल पड़ने की घोषणा की थी।^३ सन् ११२२ के एक सिद्धेश्वर मन्दिर (कल्लूर गुडेड) के शिलालेख में आचार्य सिंहनन्दी का वर्णन है। इसमें उल्लेख है कि उज्जैन के राजा महीपाल ने इक्ष्वाकु नरेश पद्मनाभ को पराजित किया था। इस कारण उनके दो पुत्र दक्षिण भारत चले गये और आचार्य सिंहनन्दी की सहायता से वहाँ उन्होंने 'गंग राज्य' की स्थापना की।^४

गुणाढ्य की 'वडुकहा', मेस्तुंगाचार्य की 'प्रबन्धचिन्तामणि', बौद्ध जातक तथा जैन पुराणों में समाहित अनेकों कथानकों में मालवा प्रदेश और उज्जयिनी नगरी के जैन मतावलम्बी श्रेष्ठ समाज की कथा गाथाओं और वैभव सम्पन्नता का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त मालवा और उसकी प्राचीन नगरियों से सम्बन्धित सामग्री का संकलन, सम्पादन, प्रकाशन और युक्तियुक्त विश्लेषण की अपेक्षा रखता है, जिससे कि अतीत के गर्भ में विस्मृत मालवा संस्कृति पुनः प्रकाश में आ सके।

मालवा विविध धर्म-सम्प्रदायों का प्रवर्तन केन्द्र भी रहा है। परन्तु जैनधर्म की दृष्टि से मालवा भूमि की उर्वरा शक्ति उतनी ही प्रबल रही, जितनी अन्यान्य धर्मों और धार्मिक विचारधाराओं के लिये। कालचक्र का अनवरत् प्रवाह इस धरती को भी स्पर्श करता रहा है और अपने अमिट चिन्ह छोड़ता रहा है, जिनके अवशेष

१ हरिषेण कथाकोष (श्री भद्रबाहु की कथा देखिये)

२ "दि शीलप्पदिकारम्" (आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस) पृष्ठ १२२-१२३

३ जैन शिलालेख संग्रह, पृष्ठ २

४ सेल्फेयर : 'मिडिल जैनज्म'

आज भी अपनी गौरव-गाथा गुंजा रहे हैं। आज का उज्जैन नगर अपने अतीत की गौरवशाली परम्परा का प्राणवान प्रतिनिधित्व भले ही न करे, परन्तु मालवा की मिट्टी का कण-कण और उज्जयिनी स्थित क्षिप्रा की लोल-लहरियाँ अपनी मन्द-मन्थर गति से ज्ञान, दर्शन, तप, चारित्र्य और मोक्ष की मानव-पिपासा को परितृप्त करने में पूर्णरूपेण सक्षम हैं।^१



१ प्रस्तुत लेख में मध्यप्रदेश शासन के सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय द्वारा प्रकाशित "उज्जयिनी दर्शन" नामक परिचय पुस्तक में प्रकाशित श्री कामताप्रसाद जैन के लेख के अतिरिक्त अन्य सामग्री से भी सहायता ली गई है।

विशेष—मुप्तवंशीय सम्राटों के सम्बन्ध में लेखक की धारणाएँ प्रचलित ऐतिहासिक धारणाओं से कुछ भिन्न प्रतीत होती हैं, साथ ही ऐतिहासिक आचार्यों के सम्बन्ध में भी मत-भिन्नता है।

—सम्पादक

मालवा में जैनधर्म : ऐतिहासिक विकास

डॉ० तेजसिंह गौड़, एम.ए., पी-एच.डी.

भारतीय इतिहास में मालवा का अपना एक विशिष्ट स्थान है। भारत के इस नाभिस्थल पर प्राचीनकाल से ही यहाँ के सभी प्रमुख धर्म पल्लवित होते रहे हैं। जहाँ तक जैनधर्म का प्रश्न है, सर्वप्रथम मालवा में जैनधर्म के अस्तित्व का दिगम्बर परम्परा से पता चलता है कि भगवान महावीर स्वामी अपने साधनामय जीवन में उज्जैन पधारे थे। वे उज्जयिनी के अतिमुक्तक नामक इमशान भूमि में आकर ध्यान मग्न हुए थे, उस समय रुद्र नामक व्यक्ति ने उन पर घोर उपसर्ग किया था, परन्तु वह अपने ध्यान में दृढ़ और निश्चल बने रहे। रुद्र की रौद्रता उनको तपस्या से विचलित न कर सकी।^१ त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित में चण्डप्रद्योत, जो कि अवन्ति नरेश था, के जैनधर्मावलम्बी होने का विवरण मिलता है। विवरण संक्षेप में इस प्रकार है कि सिन्धु सौवीर के राजा उदायी के पास जीवंत स्वामी की प्रतिमा थी। किसी प्रकार वह प्रतिमा चण्डप्रद्योत ने हस्तगत कर ली। इसी से उदायी ने चण्डप्रद्योत पर आक्रमण कर उसे बन्दी बना लिया। दशपुर में चातुर्मास हुआ और यहीं जीवंतस्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कर एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया गया लेकिन इस युग के अभी तक कोई पुरातात्विक अवशेष प्राप्त नहीं होते हैं।

मौर्यकालीन मालवा में जैनधर्म—सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे अंतिम समय में जैनसाधु होकर दक्षिण चले गये थे। दक्षिण भारत की श्रमणबेलगोला की गुफा में जैनधर्म सम्बन्धी शिलालेख प्राप्त हुए हैं। इनमें 'चन्द्रगुप्त' नामक राजा का उल्लेख आता है जिसका सम्बन्ध विद्वानों ने चन्द्रगुप्त मौर्य से स्थापित किया है। चन्द्रगुप्त ने जैनधर्म में दीक्षा ली, इसका उल्लेख भद्रबाहु चरित, आराधना कथाकोश, पुण्यास्रव कथाकोश आदि ग्रन्थों में पाया जाता है। द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष तथा मुनियों के दक्षिण जाने की कथा अन्यान्य ऐतिहासिक तथ्यों से प्रामाणिक सिद्ध होती है।^२ तब यह भी प्रमाणित हो जाता है कि इस समय मालवा में जैनधर्म अच्छी अवस्था में था तथा निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था।

१ उत्तरपुराण ३३१।७४

२ The Age of Imperial Unity, Vol. II, page 417.

अशोक की मृत्यु के उपरान्त मौर्य साम्राज्य दो भागों में बँट गया था।^१ पूर्वी राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी और वहाँ दशरथ राज कर रहा था। पश्चिमी राज्य की राजधानी उज्जयिनी थी और वहाँ सम्प्रति का राज्य था।^२ सम्प्रति का जैन साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान है। जैन अनुश्रुति के अनुसार सम्राट् सम्प्रति जैनधर्म का अनुयायी था और उसने अपने प्रियधर्म को फँलाने के लिये बहुत प्रयत्न किया था। परिशिष्ट पर्व में लिखा है कि रात्रि के समय सम्प्रति को यह विचार उत्पन्न हुआ कि अनार्य देशों में भी जैनधर्म का प्रचार हो और जैनसाधु स्वच्छन्द रीति से विचर सकें। इसके लिये उसने इन देशों में जैनसाधुओं को धर्म प्रचार के लिये भेजा। साधुओं ने राजकीय प्रभाव से शीघ्र ही जनता को जैनधर्म और आचार का अनुगामी बना लिया। इस कार्य के लिये सम्प्रति ने अनेक लोकोपकारी कार्य भी किये। गरीबों को भोजन बाँटने के लिये अनेक दानशालाएँ खुलवाईं। अनेक जैन ग्रन्थों में लिखा है कि धर्म-प्रचार के लिये सम्प्रति ने अपनी सेना के योद्धाओं को साधुओं का वेश बनाकर प्रचार के लिये भेजा था।^३ इस युग के उल्लेखनीय आचार्यों में आचार्य भद्रबाहु एवं आर्य सुहस्तिस्वरि का नाम लिया जा सकता है। भद्रबाहु द्वारा रचित आगमिक साहित्य इस युग की विशेष देन है।

शक कुषाण युगीन मालवा में जैनधर्म—इस समय भी मालवा में जैनधर्म पर्याप्त उन्नतावस्था में था। इसका आभास हमें आचार्य कालक के कथानक से मिलता है। आचार्य कालक ने शकों को अवंती पर आक्रमण करने के लिये आमंत्रित किया था जिसका एकमात्र कारण यह था कि अवंतीनरेश गर्दभिल्ल ने आचार्य कालक की भगिनी जैनसाध्वी सरस्वती का बलात् अपहरण कर लिया था। सभी प्रयत्नों के बावजूद जब गर्दभिल्ल ने सरस्वती को मुक्त नहीं किया तो बाध्य होकर आचार्य कालक ने शकों को आमंत्रित किया कि वे गर्दभिल्ल के दर्प को चूर्ण कर दे। युद्धोपरांत मालवा में शकों का राज्य स्थापित हो गया था।

इस घटना में जनता का भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कालकाचार्य को सहयोग रहा ही होगा। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इस काल में जैनधर्म की स्थिति उत्तम रही होगी। क्षपणक विक्रम के नवरत्नों में से एक थे। इनके रचे हुए न्यायावतार, दर्शनशुद्धि, सम्मतितर्कसूत्र, और प्रमेयरत्नकोष नामक चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

इस युग में अनेक युगप्रधान आचार्य भी हो चुके हैं जिनमें भद्रगुप्ताचार्य,

१ Asoka : V. A. Smith, page 70.

२ मौर्य साम्राज्य का इतिहास, पृष्ठ ६५३

३ (क) The Age of Imperial Unity, page 418

(ख) मौर्य साम्राज्य का इतिहास, पृष्ठ ६४८-४९

आर्य वज्र, तथा आर्यरक्षितसूरि के नाम गिनाये जा सकते हैं। आगम साहित्य को आर्यरक्षितसूरि ने चार भागों में विभक्त करके जैनधर्म की दृष्टि से इस युग के ऐतिहासिक महत्त्व को और भी बढ़ा दिया है। आर्यरक्षितसूरि का आगम साहित्य का विभाजन^१ इस प्रकार है—

- | | |
|------------------|------------------|
| (१) करणचरणानुयोग | (२) गणितानुयोग |
| (३) धर्मकथानुयोग | (४) द्रव्यानुयोग |

इसके साथ ही आचार्य आर्यरक्षितसूरि ने अनुयोगद्वारा सूत्र की भी रचना की जो जैनदर्शन का प्रतिपादक महत्त्वपूर्ण आगम माना जाता है। यह आगम आचार्यप्रवर की दिव्यतम दार्शनिक दृष्टि का परिचायक है।^२

गुप्तकालीन मालवा में जैनधर्म—भारतीय इतिहास में गुप्तकाल स्वर्णयुग के नाम से चिर-परिचित है। यह युग सर्वांगीण विकास का था। गुप्त राजा वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम और स्कन्दगुप्त तीनों के सिक्कों पर 'परम भागवत' खुदा होना गुप्तों की उस धर्म में विशेष निष्ठा सूचित करता है।^३ किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य धर्मों की स्थिति नगण्य थी अथवा कि राजा दूसरे धर्मों का आदर नहीं करते थे। गुप्त राजा सभी धर्मों को समान आदर की दृष्टि से देखते थे। इसका प्रमाण यह है कि इस काल में लगभग सभी धर्मों के अच्छी स्थिति में होने के प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

मालवा में जैनधर्म के लिये यह युग अपना विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि इसी युग में जैनधर्म से सम्बन्धित पुरातात्विक सामग्री मिलना प्रारम्भ होती है। इतिहास प्रसिद्ध नगर विदिशा के पास उदयगिरि की पहाड़ी में बीस गुफाएँ हैं, जो इसी युग की हैं। इनमें से क्रम से प्रथम एवं बीसवें नम्बर की गुफाएँ जैनधर्म से सम्बन्धित हैं। पहले नम्बर की गुफा में एक लेख खुदा हुआ है जिससे सिद्ध होता है कि यह गुफा गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल की है।^४ बीसवें नम्बर की गुफा में भी एक पद्यात्मक लेख खुदा हुआ है जिसके अनुसार इस मूर्ति की प्रतिष्ठा गुप्त सम्वत् १०६ (ईस्वी सन् ४२६ कुमारगुप्त का काल) में कार्तिक कृष्णा पंचमी को आचार्य भद्रान्वयी आचार्य गोशर्म मुनि के शिष्य शंकर द्वारा की गई थी। इस शंकर ने अपना जन्म स्थान उत्तर भारतवर्ती कुरुदेश बतलाया है।^५ लेख का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

- १ श्रीमद् राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ पृष्ठ ४५६
- २ वही, पृष्ठ ४५६
- ३ गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ ३२१
- ४ भारतीय संस्कृति के जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ३११
- ५ वही, पृष्ठ ३११

“सिद्धों को नमस्कार ! श्री संयुक्त गुण समुद्रगुप्तान्वय के श्रेष्ठ राजाओं के वर्द्धमान राज्य शासन के १०६वें वर्ष और कार्तिक महिने की कृष्णा पंचमी के दिन गुहा द्वार में विस्तृत सर्पफण से युक्त शत्रुओंको जीतने वाले जिनश्रेष्ठ पार्श्वनाथ जिनकी मूर्ति शम-दमवान शंकर ने बनवाई जो आचार्य भद्र के अन्वय का भूषण और आर्य कुलोत्पन्न गोशर्म मुनि का शिष्य तथा दूसरों द्वारा अजेय रिपुघ्न मानी अश्वपति भट्ट संघिल और पद्मावती के पुत्र शंकर इस नाम से लोक में विश्रुत तथा शास्त्रोक्त यतिमार्ग में स्थित था और वह उत्तर कुरुवों के सदृश उत्तर दिशा के श्रेष्ठ देश में उत्पन्न हुआ था, उसके इस पावन कार्य में जो पुण्य हुआ हो वह सब कर्मरूपी शत्रु समूह के क्षय के लिये हो।” अभिलेख में वर्णित आचार्य भद्र और उनके अन्वय के प्रसिद्ध मुनि गोशर्म के विषय में अभी कुछ भी ज्ञात नहीं है फिर भी इतना इनके विषय में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये युगप्रधान आचार्य थे।

इस युग की जैनधर्म सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि अभी हाल में ही हुई है। प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी ने अपने एक लेख “राम गुप्त के शिलालेखों की प्राप्ति”^१ में विदिशा के समीप बेसनदी के तटवर्ती एक टीले की खुदाई करते समय प्राप्त गुप्त-कालीन जैन तीर्थंकरों की दुर्लभ तीन प्रतिमाओं पर प्रकाश डाला है। ये तीनों प्रतिमाएँ बलुए पत्थर की बनी हैं। इन तीनों प्रतिमाओं की चरण चौकियों पर गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत भाषा में लेख उत्कीर्ण थे। एक मूर्ति का लेख तो पूर्णतः नष्ट हो चुका है। दूसरी मूर्ति का लेख आधा बचा है और तीसरी मूर्ति का लेख पूरा सुरक्षित है। इसके आधार पर प्रो० वाजपेयी ने गुप्तकालीन एक विवादास्पद समस्या पर नवीन प्रकाश डाला है। समस्या गुप्तनरेश रामगुप्त की ऐतिहासिकता की है। इस नरेश का उल्लेख साहित्य में तो मिलता है तथा इसके तांबे के सिक्के भी बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं। स्वयं प्रो० वाजपेयी ने इस नरेश के सिक्कों पर विस्तार से प्रकाश डाला है, किन्तु अभी तक कोई भी ऐसा अभिलेख प्राप्त नहीं था जिसमें कि रामगुप्त को गुप्तनरेश के रूप में वर्णित किया गया हो। इन मूर्तियों के अभिलेखों के आधार पर इन मूर्तियों का निर्माण “महाराजाधिराज श्री रामगुप्त के शासनकाल” में हुआ। इन प्रतिमाओं के सम्बन्ध में प्रो० वाजपेयी ने लिखा है कि एक प्रतिमा पर आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का और दूसरी पर नवें तीर्थंकर पुष्पदन्त का नाम लिखा है। मूर्तियों की निर्माण शैली ईस्वी चौथी शती के अंतिम चतुर्थांश की कही जा सकती है। इन मूर्तियों में कुषाणकालीन तथा ईस्वी पाँचवीं शती की गुप्तकालीन मूर्तिकला के बीच के युग के लक्षण दृष्टव्य हैं। मथुरा आदि से प्राप्त कुषाणकालीन बौद्ध और तीर्थंकर प्रतिमाओं की चरण चौकियों पर सिंहीं जैसा अंकन प्राप्त होता है वैसे इन मूर्तियों पर लक्षित है। प्रतिमाओं का अंग विन्यास तथा सिरों के पीछे अवशिष्ट

प्रभामण्डल भी अंतरिमकाल के लक्षणों से युक्त है। इसमें उत्तर गुप्तकालीन अलंकरण का अभाव है।

लिपिविज्ञान की दृष्टि से भी ये प्रतिमा लेख ईस्वी चौथी शती के ठहरते हैं। इन लेखों की लिपि गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के उन लेखों से मिलती है जो सांची और उदयगिरि की गुफाओं में मिले हैं।

इन तीर्थंकर प्रतिमाओं के आधार पर प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी ने विवादास्पद गुप्त नरेश रामगुप्त पर पर्याप्त प्रकाश डालकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि समुद्रगुप्त के पश्चात् रामगुप्त सम्राट् हुआ था। किन्तु अभी इस मत को मान्यता नहीं मिली है साथ ही अभी यह भी निराकरण होना शेष है कि इन प्रतिमाओं के लेखों में उल्लिखित वही रामगुप्त है अथवा कोई अन्य।

इसके अतिरिक्त इस काल की एक और दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर। जैनग्रन्थों में इन्हें साहित्यिक एवं काव्यकार के अतिरिक्त नैयायिक और तर्कशास्त्रियों में प्रमुख माना है। सिद्धसेन दिवाकर का जैन इतिहास में बहुत ऊँचा स्थान है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदाय उनके प्रति एक ही भाव से श्रद्धा रखते हैं। किवदन्ती है कि एक बार राजा चन्द्रगुप्त ने इनसे कल्याण मंदिर स्तोत्र का पाठ करने का आग्रह किया। राजा के आग्रह पर इन्होंने कल्याण मंदिर स्तोत्र का पाठ किया। पाठ समाप्त होते ही उज्जयिनी के महाकाल मंदिर में शिवलिंग फट गया और उसके मध्य से पार्श्वनाथ की मूर्ति निकल आई।^१

पं० सुखलालजी^२ ने सिद्धसेन दिवाकर के विषय में इस प्रकार लिखा है, “जहाँ तक मैं जान पाया हूँ, जैन परम्परा में तर्कविद्या के, और तर्कप्रधान संस्कृत वाङ्मय के आदि प्रणेता हैं सिद्धसेन दिवाकर।”

सिद्धसेन का सम्बन्ध उनके जीवन कथानकों के अनुसार उज्जयिनी और उसके अधिपति विक्रम के साथ अवश्य रहा है, पर यह विक्रम कौनसा है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। अभी तक के निश्चित प्रमाणों से जो सिद्धसेन का समय विक्रम की पांचवीं और छठी शताब्दी का मध्य जान पड़ता है, उसे देखते हुए अधिक सम्भव यह है कि वह राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय या उसका पौत्र स्कन्दगुप्त रहा होगा। जो विक्रमादित्य रूप से प्रसिद्ध हुए। सभी नये-पुराने उल्लेख यह कहते हैं कि सिद्धसेन जन्म से ब्राह्मण थे।

सिद्धसेन ने गद्य में कुछ लिखा हो तो पता नहीं है। उन्होंने संस्कृत में बत्तीसियाँ रची हैं, जिनमें से इक्कीस अभी लभ्य हैं। उनका प्राकृत में रचा ‘सन्मतिप्रकरण’ जैनदृष्टि और मन्तव्यों को तर्क शैली से स्पष्ट करने तथा स्थापित करने वाला जैन

१ संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी, पृष्ठ ११७

२ स्व० बाबू श्री बहादुरसिंह जी सिधी स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ १०, ११, १२

वाङ्मय में सर्वप्रथम ग्रन्थ है जिसका आश्रय उत्तरवर्ती सभी श्वेताम्बर-दिगम्बर विद्वानों ने लिया है। सिद्धसेन ही जैन-परम्परा का आद्य संस्कृत स्तुतिकार है।^१ सिद्धसेन दिवाकर ने तत्त्वार्थाधिगमसूत्र की टीका भी बड़ी विद्वत्ता से लिखी है। इस ग्रन्थ के मूल लेखक को दिगम्बर सम्प्रदाय वाले उमास्वामि और श्वेताम्बर सम्प्रदाय वाले उमास्वाति बतलाते हैं।^२ सिद्धसेन का कल्याणमंदिर स्तोत्र ४४ श्लोकों में है। यह पार्श्वनाथ भगवान का स्तोत्र है। इसकी कविता में प्रसाद गुण कम है और कृत्रिमता एवं श्लेष की भरमार है परन्तु प्रतिभा की कमी नहीं है। इसकी महत्ता का पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। इसके अंतिम भिन्न छन्द के एक पद्य में इसके कर्ता का नाम कुमुदचन्द्र सूचित किया गया है; जिसे कुछ लोग सिद्धसेन का ही दूसरा नाम मानते हैं। दूसरे पद्य के अनुसार यह २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की स्तुति में रचा गया है। भक्तामर के सदृश होते हुए भी यह अपनी काव्य कल्पनाओं व शब्द योजना में मौलिक ही है। हे जिनेन्द्र ! आप उन भक्तों को संसार से कैसे पार कर देते हैं, जो अपने हृदय में आपका नाम धारण करते हैं ? हाँ जाना, जो एक मशक भी जल में तैर कर निकल जाती है, वह उसके भीतर भरे हुए पवन का ही तो प्रभाव है। हे जिनेश ! आपके ध्यान से भव्य पुरुष क्षणमात्र में देह को छोड़कर परमात्म दशा को प्राप्त हो जाते हैं, क्यों न हो ? तीव्र अग्नि के प्रभाव से नाना धातुएँ अपने पाषाण भाव को छोड़कर शुद्धसुवर्णत्व को प्राप्त कर लेती है।^३ सिद्धसेन दिवाकर द्वारा रचित वर्द्धमान-द्वात्रिंशिका दूसरा स्तोत्र है। यह ३२ श्लोकों में भगवान वर्द्धमान महावीर की स्तुति है। इसमें कृत्रिमता एवं श्लेष नहीं है। प्रसाद गुण अधिक है। भगवान महावीर को शिव, बुद्ध, हृषीकेश, विष्णु एवं जगन्नाथ मानकर प्रार्थना की गई है।^४ इन दोनों स्तोत्रों में सिद्धसेन दिवाकर की काव्यकला ऊँची श्रेणी की है।

राजपूतकालीन मालवा में जैनधर्म—यदि गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल है, तो राजपूतकाल मालवा में जैनधर्म के विकास तथा समृद्धि के दृष्टिकोण से स्वर्णकाल रहा है। इस युग में कई जैन मंदिरों का निर्माण हुआ। इसके प्रारम्भिक काल में बदनावर में जैनमंदिर विद्यमान थे। इसका विवरण डॉ० हीरालाल जैन^५ इस प्रकार देते हैं कि जैन हरिवंशपुराण की प्रशस्ति में इसके कर्ता जिनसेनाचार्य ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि शक संवत् ७०५ (ईस्वी सन् ७८३) में उन्होंने वर्द्धमानपुर के पार्श्वालय (पार्श्वनाथ के मंदिर) की अन्नराजवसति में बैठकर हरिवंशपुराण की रचना की और उसका जो भाग शेष रहा उसे वहीं के शांतिनाथ मंदिर में बैठकर पूरा

१ The Jain Sources of the History of Ancient India, page 150-51

२ संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी, पृष्ठ ११६

३ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ १२५-२६

४ संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी

५ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ३३२-३३३

किया। उस समय उत्तर में 'इन्द्रायुध', दक्षिण में कृष्ण के पुत्र श्री वल्लभ व पश्चिम में वत्सराज तथा सौरमंडल में वीरवराह नामक राआओं का राज्य था। यह वर्धमानपुर सौराष्ट्र का वर्तमान बड़वाण माना जाता है। किन्तु मैंने अपने लेख में सिद्ध किया है कि हरिवंशपुराण में उल्लिखित वर्धमानपुर मध्यप्रदेश के धार जिले में बदनावर है जिससे १० मील की दूरी पर दोस्तरिका होना चाहिए; जहाँ की प्रजा ने जिनसेन के उल्लेखानुसार उस शांतिनाथ मंदिर में विशेष पूजा-अर्चा का उत्सव किया था। इस प्रकार वर्धमानपुर में आठवीं शती में पार्श्वनाथ और शांतिनाथ के दो जैन मंदिरों का होना सिद्ध होता है। शांतिनाथ मंदिर ४०० वर्ष तक विद्यमान रहा। इसके प्रमाण हमें बदनावर से प्राप्त अच्छुप्तादेवी की मूर्ति पर के लेख में प्राप्त होते हैं, क्योंकि उसमें कहा गया है कि संवत् १२२६ (ई० सन् ११७२) की वैशाख कृष्णा पंचमी को वह मूर्ति वर्धमानपुर के शांतिनाथ चैत्यालय में स्थापित की गई।

विदिशा क्षेत्र में भी जैनधर्म इस युग में उन्नतावस्था में था जिसका प्रमाण है वहाँ उपलब्ध जैनमंदिर व मूर्तियाँ। ग्यारसपुर नामक स्थान पर जैन मंदिर के भग्नावशेष मिले हैं। मालवा में जैन मंदिरों के जितने भग्नावशेष मिले हैं, उनमें प्राचीनतम अवशेष यहीं पर है जो विन्यास एवं स्तम्भों की रचना शैली में खजुराहो के समान है। फर्गुसन ने इनका निर्माणकाल १०वीं सदी के मध्य निर्धारित किया है।^१ इस काल के और भी अनेक अवशेष इस क्षेत्र में मिले हैं। साथ ही यदि इन सब अवशेषों का विधिवत संकलन एवं अध्ययन किया जाय तो जैन वास्तुकला के एक दीर्घरिक्त स्थान की पूर्ति हो सकती है।^२

राजपूतकालीन खजुराहो शैली के कुछ जैन मंदिर खरगोन जिले के 'ऊन' नामक स्थान में मिले हैं। इन मंदिरों की उपलब्धि से यह प्रमाणित हो जाता है कि इस समय इस क्षेत्र में जैनधर्म अपनी उन्नति के शिखर पर था। ऊन में बैसे (१) हिन्दू और (२) जैन मंदिरों के दो समूह प्राप्त हुए हैं। जो कला की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। यहाँ बहुत बड़ी मात्रा में जैन मूर्तियाँ भी मिली हैं जिन पर वि० सं० ११८२ या ११६२ के लेख अंकित हैं जिससे यह विदित होता है कि यह मूर्ति आचार्य रत्नकीर्ति द्वारा निर्मित की गई थी।^३ यहाँ के मंदिर पूर्णतः पाषाण खण्डों से निर्मित हैं, चिपटी छत व गर्भगृह, सभामंडपयुक्त तथा प्रदक्षिणापथ रहित हैं जिससे इनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। भित्तियों और स्तम्भों पर सर्वांग उत्कीर्णन है, जो खजुराहो की कला से समानता रखता है।^४

११वीं सदी के जैन मंदिरों के कुछ अवशेष नरसिंहगढ़ जिला राजगढ़ (ब्यावरा)

१ History of Indian and Eastern Architecture, Vol. II, page 55.

२ वही, पृ० ५५

३ Progress Report of Archaeological Survey of India, W. C. 1919, page 61.

४ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ३३६

से ७ मील दक्षिण में विहार नामक स्थान पर भी उपलब्ध हुए हैं। यहाँ जैन मंदिरों के साथ ही हिन्दू, बौद्ध व इस्लाम धर्म के अवशेष भी मिले हैं।^१ इसके अतिरिक्त डॉ० एच० व्ही० त्रिवेदी ने निम्नांकित स्थानों पर राजपूतकालीन जैन मंदिर के प्राप्ति की सूचना दी है :—

(१) बीजवाड़ा जिला देवास, (२) बीथला जिला गुना, (३) बोरी जिला झाबुआ, (४) छपेस जिला राजगढ़ (ब्यावरा) (५) गुरिला का पहाड़ जिला गुना (६) कड़ोद जिला धार (७) पुरा गुलाना जिला मंदसौर एवं (८) बईखेड़ा जिला मंदसौर। बईखेड़ा श्वेताम्बर मतावलम्बियों का तीर्थस्थान भी है। यहाँ चित्तौड़ की चौबीसी के मुख्य मंदिर के द्वार स्तम्भों की कला से मिलती-जुलती कला विद्यमान है। चित्तौड़ की चौबीसी मुख्य मंदिर का काल १०वीं-११वीं शताब्दी है और यही समय यहाँ के द्वार स्तम्भों का भी है। “बईपारसनाथ” तीर्थ के सम्बन्ध में किंवदन्ती है कि यहाँ जो प्रतिमा है वह पहले एक बिम्ब में थी। एक सेठ की गाय जंगल में चरने के लिये जाती थी। उस गाय का दूध प्रतिमा पी लेती थी। सेठ व उसके परिवार वाले आश्चर्य करते थे कि गाय का दूध कहाँ जाता है? एक बार सेठ को स्वप्न हुआ कि मेरा (पार्श्वनाथ का) मंदिर बनवाकर प्रतिष्ठा करवाओ। इस पर उस सेठ ने बईखेड़ा ग्राम में उक्त मंदिर बनवाया और बड़ी धूमधाम से प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई। यहाँ के मंदिर का सभामण्डप चित्रांकित है। इस काल में इतने मंदिरों की प्राप्ति ही इस बात को प्रमाणित कर देती है कि जैनधर्म इस समय में अपनी श्रेष्ठ स्थिति में रहा होगा। धार में भी इस समय के अनेक मंदिरों का उल्लेख मिलता है।

जिस प्रकार इस युग में अनेक जैन मंदिरों के निर्माण के उल्लेख के साथ ही साथ उनके अवशेष मिलते हैं, ठीक उसी प्रकार इस युग में अनेक जैन विद्वान भी हो चुके हैं जिन्होंने अपनी विद्वत्ता से राजपूत काल के गौरव को बढ़ाया है उनमें से प्रमुख जैनाचार्यों एवं विद्वानों का परिचय उनके द्वारा लिखे गये ग्रन्थों सहित निम्नानुसार दिया जा सकता है—

(१) जिनसेन—ये पुत्राट संघ की आचार्य परम्परा में हुए। ये आदिपुराण के कर्त्ता, श्रावक धर्म के अनुयायी एवं पंचस्तूपान्वय के जिनसेन से भिन्न हैं। ये कीर्तिषेण के शिष्य थे।

इनका “हरिवंश” इतिहास प्रधान चरित काव्य श्रेणी का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की रचना वर्धमानपुर वर्तमान बदनावर जिला धार में की गई थी। दिगम्बर सम्प्रदाय के कथासंग्रहों में इसका स्थान तीसरा है।

(२) हरिषेण—पुत्राट संघ के अनुयायियों में एक-दूसरे आचार्य हरिषेण हुए हैं,

उनकी गुरु-परम्परा मौनी भट्टारक श्री हरिषेण, भरतसेन, हरिषेण इस प्रकार बैठती है। आपने कथाकोष की रचना वर्धमानपुर या बड़वाण-बदनावर में विनायक पाल राजा के राज्यकाल में की थी। विनायकपाल प्रतिहार वंश का राजा था, जिसकी राजधानी कन्नौज थी। इसका ६८८ वि० सं० का एक दान पत्र मिला है। इसके एक वर्ष पश्चात् अर्थात् ६८९ शक संवत् ८५३ में कथाकोष की रचना हुई। हरिषेण का कथाकोष साढ़े बारह हजार श्लोक परिमाण का बृहद् ग्रन्थ है।

(३) मानतुंग—इनके जीवन के सम्बन्ध में अनेक विरोधी विचारधारायें हैं। इनका समय ७वीं या ८वीं सदी के लगभग माना जाता है।

इन्होंने भक्तामर स्तोत्र का प्रणयन किया जिसका श्वेताम्बर एवं दिग्म्बर दोनों ही सम्प्रदाय वाले समान रूप से आदर करते हैं। कवि की यह रचना इतनी लोकप्रिय रही कि इसके प्रत्येक अन्तिम चरण को लेकर समस्या पूर्त्यात्मक स्तोत्र काव्य लिखे जाते रहे। इस स्तोत्र की कई समस्या पूर्तियाँ उपलब्ध हैं।

(४) आचार्य देवसेन—मार्गशीर्ष सुदि १० वि० सं० ६६० को धारा में निवास करते हुए पार्श्वनाथ के मन्दिर में 'दर्शनसार' नामक ग्रन्थ समाप्त किया। इन्होंने 'आराधना सार' और 'तत्त्वसार' नामक ग्रन्थ भी लिखे। 'आलाप पद्धति' 'नयचक्र' आदि रचनायें आपने धारा में ही लिखीं अथवा अन्यत्र यह रचनाओं पर से ज्ञात नहीं होता।

(५) आचार्य महासेन—ये लाड़ बागड़ संघ के पूर्णचन्द्र थे। आचार्य जयसेन के प्रशिष्य और गुणाकरसेन सूरि के शिष्य थे। इन्होंने 'प्रद्युम्न चरित' की रचना ११वीं शताब्दी के मध्य में की। ये मुंज के दरबार में थे तथा मुंज द्वारा पूजित थे। न तो इनकी कृति में ही रचना काल दिया हुआ है और न ही अन्य रचनाओं की जानकारी मिलती है।

(६) अमितगति—ये माथुर संघ के आचार्य थे। माधवसेन सूरि के शिष्य थे। वाक्पतिराज मुंज की सभा के रत्न थे।

विविध विषयों पर आपके द्वारा लिखी गई कृतियाँ उपलब्ध हैं—

(क) सुभाषित रत्न संदोह की रचना वि० सं० ६६४ में हुई। इसमें ३२ परिच्छेद हैं, जिनमें प्रत्येक में साधारणतः एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है। इसमें जैन नीतिशास्त्र के विभिन्न दृष्टिकोणों पर आपाततः विचार किया गया है; साथ-साथ ब्राह्मणों के विचारों और आचार के प्रति इसकी प्रवृत्ति विसंवादात्मक है। प्रचलित रीति के ढंग पर स्त्रियों पर खूब आक्षेप किये गये हैं। एक पूरा परिच्छेद २४ वेश्याओं के सम्बन्ध में है। जैनधर्म के आप्तों का वर्णन २८ वें परिच्छेद में किया गया है।

(ख) धर्म परीक्षा बीस साल अनन्तर लिखा गया है। इसमें भी ब्राह्मण धर्म पर आक्षेप किये गये हैं और इससे अधिक आख्यानमूलक साक्ष्य की सहायता ली गई है।

(ग) पंचसंग्रह—विक्रम सं० १०७३ में मसूतिकापुर वर्तमान मसूदबिलोदा में जो धारा के समीप है, बनाया गया था। (घ) उपासकाचार (च) आराधना सामायिक पाठ (छ) भावनाद्वात्रिशतिका (ज) योगसारप्राभृत। जो उपलब्ध नहीं हैं, वे ग्रन्थ हैं— (१) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (२) चन्द्रप्रज्ञप्ति (३) सार्धद्वयद्वीपप्रज्ञप्ति (४) व्याख्या-प्रज्ञप्ति।

(७) माणिक्यनन्दी—ये धारा निवासी थे और वहाँ दर्शनशास्त्र का अध्ययन करते थे। इनकी एकमात्र रचना 'परीक्षामुख' नाम का एक न्यायसूत्र ग्रन्थ है जिसमें कुल २०७ सूत्र हैं। ये सूत्र सरल, सरस और गम्भीर अर्थ के द्योतक हैं।

(८) नयनन्दी—ये माणिक्यनन्दी के शिष्य थे। इनकी रचनायें—(१) सुदर्शन-चरित—एक खण्ड काव्य है, जो महाकाव्यों की श्रेणी में रखने योग्य है। (२) सकल-विहिविहाण—विशाल काव्य है। इसकी प्रशस्ति में इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। उसमें कवि ने ग्रन्थ बनाने के प्रेरक हरिसिंह मुनि का उल्लेख करते हुए अपने पूर्ववर्ती जैन, जनेतर और कुछ समसामयिक विद्वानों का भी उल्लेख किया है। समसामयिकों में श्रीचन्द्र, प्रभाचन्द्र और श्रीकुमार का उल्लेख किया है।

राजा भोज, हरिसिंह के नामों के साथ बच्छराज और प्रभुईश्वर का भी उल्लेख किया है। कवि ने वल्लभराज का भी उल्लेख किया है जिसने दुर्लभ प्रतिमाओं का निर्माण कराया था। यह ग्रंथ इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्व का है। कवि के दोनों ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में हैं।

(९) प्रभाचन्द्र—माणिक्यनन्दी के विद्या-शिष्यों में प्रभाचन्द्र प्रमुख रहे। ये माणिक्यनन्दी के 'परीक्षामुख' नामक सूत्र ग्रन्थ के कुशल टीकाकार हैं। दर्शन-साहित्य के अतिरिक्त ये सिद्धान्त के भी विद्वान थे। आपको भोज के द्वारा प्रतिष्ठा मिली थी। आपने विशाल दार्शनिक ग्रन्थों के निर्माण के साथ-साथ अन्य अनेक ग्रंथों की भी रचना की। इनके ग्रंथ इस प्रकार हैं—

- (१) प्रमेयकमलमार्तण्ड—दर्शनग्रंथ है जो कि माणिक्यनन्दी के परीक्षामुख की टीका है। यह ग्रंथ राजा भोज के राज्यकाल में लिखा गया।
- (२) न्यायकुमुदचन्द्र—न्याय विषयक ग्रंथ है।
- (३) आराधना कथाकोश—गद्य ग्रंथ है।
- (४) पुष्पदंत के महापुराण पर टिप्पणी।
- (५) समाधितंत्र टीका (ये सब राजा जयसिंह के राज्यकाल में)।
- (६) प्रवचनसरोज भास्कर।
- (७) पंचास्तिकायप्रदीप
- (८) आत्मानुशासन तिलक।
- (९) क्रियाकलाप टीका।
- (१०) रत्नकरण्ड टीका।

(११) बृहत् स्वयंभूस्तोत्र टीका ।

(१२) शब्दाम्भोज टीका ।

ये सब ग्रंथ कब और किसके राज्यकाल में लिखे गये कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है । इन्होंने देवन्दी की तत्त्वार्थवृत्ति के विषम पदों की एक विवरणात्मक टिप्पणी लिखी है । इनका समय ११वीं सदी का उत्तरार्द्ध एवं १२वीं सदी का पूर्वार्द्ध ठहरता है । इनके नाम से अष्टपाहुड पंजिका, मूलाचार टीका, आराधना टीका आदि ग्रंथों का भी उल्लेख मिलता है, जो उपलब्ध नहीं हैं ।

(१०) आशाधर—ये संस्कृत साहित्य के पारदर्शी विद्वान थे । ये मांडलगढ़ के मूल निवासी थे । मेवाड़ पर मुसलमान बादशाह शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमण से त्रस्त होकर मालवा की राजधानी धारा में अपने एवं अपने परिवार की रक्षार्थ अन्य लोगों के साथ आकर बस गए । ये जाति के बघेरवाल थे । पिता सल्लक्षण एवं माता का नाम श्रीरत्नी था । पत्नी सरस्वती से एक पुत्र छाहड़ हुआ । इनका जन्म वि० सं० १२३४-३५ के आस-पास अनुमानित है । नालछा में ३५ वर्ष तक रहे और उसे अपनी साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र बनाया । इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) सागरधर्माभूत—सप्त व्यसनों के अतिचार का वर्णन है । श्रावक की दिनचर्या और साधक की समाधि व्यवस्था आदि का वर्णन इसमें है । (२) प्रमेयरत्नाकर—स्याद्वाद विद्या की प्रतिष्ठापना । (३) भरतेश्वराभ्युदय—महाकाव्य में भरत के ऐश्वर्य का वर्णन है । भरतेश्वराभ्युदय को सिद्धचक्र भी कहते हैं क्योंकि इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में सिद्धि पद आया है । (४) ज्ञान दीपिका । (५) राजमति विप्रलम्भ—खण्ड काव्य है । (६) अध्यात्म रहस्य—योग ग्रन्थ है । (७) मूलाराधना टीका । (८) इष्टोपदेश टीका । (९) भूपाल चतुर्विंशतिका टीका । (१०) क्रियाकलाप । (११) आराधनासार टीका । (१२) अमरकोश टीका । (१३) काव्यालंकार टीका । (१४) सहस्रनाम स्तवन टीका । (१५) जिनयज्ञकल्प-सटीक इसका दूसरा नाम प्रतिष्ठासारोद्धार धर्माभूत का एक अंग है । (१६) त्रिषष्टि स्मृतिशास्त्र सटीक (१७) नित्यमहोद्योत अभिषेक पाठ—स्नान शास्त्र । (१८) रत्नत्रय विधान (१९) अष्टाङ्ग हृदयी द्योतिनी टीका—वग्भट के आयुर्वेद ग्रन्थ अष्टाङ्ग हृदयी की टीका । (२०) धर्माभूत मूल और (२१) भव्यकुमुदचन्द्रिका—धर्माभूत पर लिखी गई टीका ।

(११) श्रीचन्द्र—श्रीचन्द्र धारा के निवासी थे । लाड़ बागड़ संघ के आचार्य थे । इनके ग्रंथ इस प्रकार हैं :—(१) रविषेण कृत पद्मचरित पर टिप्पण (२) पुराणसार (३) पुष्पदंत के महापुराण पर टिप्पण (उत्तरपुराण पर टिप्पण) (४) शिवकोटि की भगवती आराधना पर टिप्पण । पुराणसार वि० सं० १०८० में, पद्मचरित की टीका वि० सं० १०८७ में, उत्तरपुराण का टिप्पण वि० सं० १०८० में राजा भोज के राज्यकाल में रचा । टीका प्रशस्तियों में श्रीचन्द्र ने सागरसेन और प्रवचनसेन नामक दो सैद्धांतिक विद्वानों का उल्लेख किया है । ये दोनों धारा निवासी थे । इससे स्पष्ट

विदित होता है कि उस समय धारा में अनेक जैन विद्वान् और आचार्य निवास करते थे। इनके गुरु का नाम श्रीनन्दी था।

(१२) कवि धनपाल—ये मूलतः ब्राह्मण थे। लघुभ्राता से जैनधर्म की दीक्षा ली। पिता का नाम सर्वदेव था। वाक्पतिराज मुंज की विद्वत्सभा के रत्न थे। मुंज द्वारा इन्हें 'सारस्वती' की उपाधि दी गई थी। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। मुंज के सभासद होने से इनका समय ११वीं सदी निश्चित है। इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे, जो इस प्रकार हैं—(१) पाइलच्छी नाममाला—प्राकृत कोश (२) तिलक मञ्जरी—संस्कृत गद्य काव्य (३) अपने छोटे भाई शोभन मुनि कृत स्तोत्र ग्रंथ पर एक संस्कृत टीका। (४) ऋषभपंचाशिका—प्राकृत (५) महावीर स्तुति (६) सत्यपुरीय (७) महावीर उत्साह—अपभ्रंश और (८) वीरशुई।

(१३) कवि दामोदर—वि० सं० १२८७ में ये गुर्जर देश से मालवा में आये और मालवा के सल्लखणपुर को देखकर संतुष्ट हो गये। ये मेडेत्तम वंश के थे। पिता का नाम कवि माल्लूण था, जिसने दल्ह का चरित्र बनाया था। कवि के ज्येष्ठ भ्राता का नाम जिनदेव था। कवि दामोदर ने सल्लखणपुर में रहते हुए पृथ्वीधर के पुत्र रामचन्द्र के उपदेश एवं आदेश से तथा मल्ह के पुत्र नागदेव के अनुरोध से नेमिनाथ चरित्र वि० सं० १२८७ में परमार वंशीय राजा देवपाल के राज्य में बनाकर समाप्त किया।

(१४) मेरुतुंगाचार्य—इन्होंने अपना प्रसिद्ध ऐतिहासिक सामग्री से परिपूर्ण ग्रंथ "प्रबन्ध चिन्तामणि" विक्रम सं० १३६१ में लिखा। इसमें पाँच सर्ग हैं। इसके अतिरिक्त विचार श्रेणी, स्थविरावली और महापुरुष चरित या उपदेश शती जिसमें ऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान तीर्थकरों के विषय में जानकारी है, की रचना की।

परमार काल में जैनधर्म तथा सारस्वतों के दृष्टिकोण से डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन^१ का कथन है कि मुंज के सम्बन्ध में प्रबन्ध चिन्तामणि आदि जैन ग्रंथों में अनेक कथाएँ मिलती हैं। नवसाहसांकचरित के लेखक पद्मगुप्त, दशरूपक के लेखक धनञ्जय, उसके भाई धनिक, जैन कवि धनपाल आदि अनेक कवियों का वह आश्रयदाता था। जैनाचार्य महासेन और अमितगति का यह राजा बहुत सम्मान करता था। इन जैनाचार्यों ने उसके काल में अनेक ग्रंथों की रचना की। मुंज स्वयं जैनी था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता किन्तु वह जैनधर्म का प्रबल पोषक था, इसमें सन्देह नहीं है। उसका उत्तराधिकारी और भाई सिधुल या सिधुराज कुमार नारायण नवसाहसांक (६६६-१००६ ई०) भी जैनधर्म का पोषक था। प्रद्युम्न चरित के कर्ता मुनि महासेन का गुरुवत् पोषक था। अभिनव कालिदास, कवि परिमल का नवसाहसांकचरित्र इसी राजा की प्रशंसा में लिखा गया है।

१ भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृष्ठ १६७ से १६९

मुंज का भतीजा और सिन्धुल का पुत्र भोज (१०१०-१०५३ ई० तक) भारतीय लोक कथाओं में प्राचीन विक्रमादित्य की भाँति ही प्रसिद्ध है। भोज भी जैन-धर्म का पोषक था। उसके समय में धारा नगरी दिग्म्बर जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र थी और राजा भोज जैन विद्वानों और मुनियों का बड़ा आदर करता था। सरस्वती विद्या मन्दिर के नाम से उसने एक विशाल विद्यापीठ की स्थापना की थी। उसने जैन मंदिरों का भी निर्माण करवाया बताया जाता है। ऊपर बताये गये विद्वानों में से अनेक दिग्गज जैनाचार्यों ने उससे सम्मान प्राप्त किया था। आचार्य शांतिसेन ने उसकी राज सभा में अनेक अजैन विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। भोज का सेना-पति कुलचन्द्र भी जैनी था। धनंजय, धनपाल, धनिक आदि गृहस्थ जैन कवियों ने इसके आश्रय में काव्य साधना की थी। भोज के उपरान्त जयसिंह प्रथम (१०५३-६० ई०) राजा हुआ। उसके उत्तराधिकारी निर्बल रहे। उनमें नरवर्मनदेव (११०४-११०७ ई०) महान योद्धा और जैनधर्म का अनुरागी था। उज्जैन के महाकाल मन्दिर में जैनाचार्य रत्नदेव का शैवाचार्य विद्या शिववादी के साथ शास्त्रार्थ उसी समय हुआ। इस राजा ने जैन गुरु समुद्रघोष और श्री वल्लभ सूरि का भी सम्मान किया था। उसके पुत्र यशोवर्मनदेव ने भी जैनधर्म और जैन गुरुओं का आदर किया। जिनचन्द्र नामक एक जैनी को उसने गुजरात प्रान्त का शासक नियुक्त किया था। १२वीं-१३वीं शताब्दी में धारा के परमार नरेश विन्ध्यवर्मा और उसके उत्तराधिकारियों में सुभट वर्मा, अर्जुन-वर्मा, देवपाल और जैतुंगदेव ने पं० आशाधर आदि जैन विद्वानों का आदर किया था।

रत्नमण्डनगणिकृत ज्ञांज्ञण प्रबन्ध और पृथ्वीधर चरित्र तथा उपदेश तरंगिणी से ज्ञात होता है कि परमार राजा जयसिंहदेव तृतीय (ई० सन् १२६१-८०) के मंत्री पेथड कुमार ने मांडव में ३०० जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया और उन पर सोने के कलश चढ़वाये थे। इसी प्रकार अठारह लाख रुपये की लागत का “श्री शत्रुंजयावतार” नाम का विशाल मन्दिर बनवाया था। पेथड के पुत्र ज्ञांज्ञण ने बहुत-सी धर्मशालाएँ, पाठशालाएँ, जैनमन्दिर स्थान-स्थान पर बनवाए और एक बहुत विशाल ग्रंथालय स्थापित किया था। ७०० जैन मन्दिरों की संख्या केवल जैन ह्वेताम्बरों की थी। चाँदाशा नाम के धनी व्यापारी ने ७२ जिन देवालय और ३६ दीपस्तम्भ मांडव नगर में बनवाये थे। धनकुबेर श्रीमाल भूपाल लघु शांतिचन्द्र जावड़शा ने ऋषभदेव, शांति-नाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के सौंघशिखरी पाँच जिन देवालय बनवाए और उनमें एक ग्यारह सेर सोने की तथा दूसरी बाईस सेर चाँदी की और शेष पाषाण की जिन प्रतिमाएँ साधु रत्नसूरि की आज्ञा से स्थापित कराई थीं। इस उत्सव में ११ लाख रुपये व्यय किये। एक लाख रुपये तो केवलमुनि के मांडव नगर प्रवेश के समय व्यय किये थे। इस प्रकार और भी प्रमाण इस बात की पुष्टि करने वाले मिलते हैं कि ई० सन् १३१० यानि मुसलमानों के आने तक परमार राजाओं की राजधानी मांडव एक समृद्ध नगर था, जिसका विध्वंस बाद में मुसलमानी शासन काल में हुआ और

सदियों के बने हुए देवालयों तथा अन्य इमारतों की सामग्री का रूपान्तरित करके यावनी तक्षणकला की तर्ज की मौजूदा आलीशान इमारतें मुसलमानी समय में निर्माण हुईं जिससे हिन्दू राजत्वकाल की एक भी इमारत जमीन के ऊपर अभग्न न रही।^१

मुस्लिमकालीन मालवा में जैनधर्म:—राजपूत काल में जैनधर्म मालवा में अपनी उन्नति के शिखर पर था। राजपूतों के पतन के पश्चात् मालवा मुस्लिम शासकों के अधिकार में आ गया। इस काल में न केवल जैनधर्म अपितु अन्य धर्मों को भी हानि उठानी पड़ी फिर भी जहाँ अनेक मन्दिर और मूर्तियाँ ध्वस्त हुईं वहीं दूसरी ओर इनका निर्माण भी हुआ लेकिन कम संख्या में। जैन मन्दिरों को मस्जिदों के रूप में भी परिवर्तित किया गया। जिसके उदाहरण उज्जैन^२ के बिलोटीपुरा स्थित बिना नींव की मस्जिद एवं आगर की^३ होशगशाही मस्जिद है। उज्जैन के जैन मन्दिर का परिवर्तन दिलावर खाँ गोरी ने किया था तथा आगर का उसके पुत्र होशंग गोरी ने।

यद्यपि इस युग में मन्दिरों के ध्वंस की जानकारी मिलती है किन्तु इस युग में ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि अनेक जैन मतावलम्बी मांडव के सुलतान के यहाँ उच्च पदों पर कार्यरत थे तथा अनेक जैन मतावलम्बियों ने साहित्य को अमूल्य देन दी है। ऐसे ही अधिकारियों, विद्वानों, मुनियों का और उनके द्वारा रचित साहित्य का विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है:—

१—**तारण स्वामी**—ये तारणपंथ के प्रवर्तक आचार्य थे। इनका जन्म पुहु-पावती नगरी में सन् १४४८ में हुआ था। पिता का नाम गढ़ा साव था। वे दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी के दरबार में किसी पद पर कार्य कर रहे थे। आपकी शिक्षा श्री श्रुतसागर मुनि के पास हुई। आपने कुल १४ ग्रन्थों की रचना की जो इस प्रकार हैं:—(१) श्रावकाचार (२) माला जी (३) पंडित पूजा (४) कलम बत्तीसी (५) न्याय-समुच्चयसार (६) उपदेश शुद्धसार (७) त्रिभंगीसार (८) चौबीस ठाना (९) ममलपाहु (१०) सुन्नस्वभाव (११) सिद्ध स्वभाव (१२) रवात का विशेष (१३) छद्मस्थ वाणी और (१४) नाममाला।

२—**मंत्री मंडन**—मंडन दिलावर खाँ गोरी के पुत्र अमलखान या होशंग गोरी का प्रधानमंत्री था। होशंग गोरी ने ई० सन् १४०५ से १४३२ तक मालवा पर स्वतंत्र शासक के रूप में शासन किया।

मंडन प्रधानमंत्री तो था ही किन्तु इसके अतिरिक्त वह एक उद्भट विद्वान भी था। श्री मोहनलाल दुलीचन्द देसाई ने कवि महेस्वर के 'काव्य मनोहर' नामक ग्रन्थ के आधार पर मंडन के विषय में लिखा है कि व्याकरण में जाग्रत, नाटक एवं अलंकार

१ विक्रम स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ५६८-६६

२ संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी

३ आगर का इतिहास, पृष्ठ ८६

का विशेषज्ञ, संगीत में अतुल प्रवीण, गम्भीर शास्त्र युक्त, चातुर्य की एकमात्र निवास भूमि, अतुल सद्गुणों से उन्नति करने वाला श्रीमालवंश का निर्मल बुद्धि मंडन विराजता है।^१

महेश्वर कवि के काव्य मनोहर के सर्ग १ और २ में मंडन के विषय में लिखा है कि मंडन ज्ञांज्ञण संघवी के दूसरे पुत्र बाहड़ का छोटा पुत्र था। वह व्याकरण, अलंकार, संगीत, तथा अन्य शास्त्रों का महान विद्वान था। विद्वान व्यक्तियों पर इसका बड़ा प्रेम था। इसके यहाँ विद्वानों की सभा लगी रहती थी, जिसमें उत्तम कवि अच्छे काव्यों की, प्रबन्धों की और प्राकृत भाषा के कवियों की उदार कथाओं की स्तुति करते थे और नैयायिक, वैशेषिक, भाट्ट, वेदान्ती, सांख्य, प्रभाकर, बौद्धमत के महान विद्वान उपस्थित रहकर इसकी प्रशंसा करते थे। गणित, भूगोल, शकुन, प्रश्न भेद, मुहूर्त और वृहत जातक में निष्णात, देश ऋतुकाल, प्रकृति रोग, व्रण चिकित्सा आदि के लक्षणों के ज्ञाता, असाध्यसाध्यादि रसक्रिया में निपुण वैद्य, साहित्यविद्, नायक नायिका भेद को जानने वाले इसकी सभा में उपस्थित रहते थे। उत्तम-उत्तम गायिकाएँ, गायक आदि इसके यहाँ आते रहते थे और इसकी संगीत शास्त्र की अद्वितीय योग्यता को देखकर अवाक् रह जाते थे। यह सबको भूमि, वस्त्र, आभूषण, धन आदि दान में देता था। याचकों को भी यह दान करता था।^२

मंडन के ग्रंथ शृंगारमंडन और सारस्वतमंडन के आधार पर डा० पी० के० गौडे^३ ने निम्नांकित जानकारी मंडन के विषय में प्रकाशित की है:—

शृंगार मंडन—इसमें कुल १०८ श्लोक हैं जो शृंगार रस से सम्बन्धित हैं।

(१) श्लोक क्रमांक १०२ मालवा के शासक से सम्बन्धित है जिसकी राजधानी मण्डप दुर्ग या मांडू थी।

(२) उपर्युक्त मालवा की राजधानी का शासक आलमसाहि था।

(श्लोक क्रमांक १०३)

(३) आलमसाहि ने गुजरात तथा दक्षिण की लड़ाइयों में विजय प्राप्त की थी।

(श्लोक क्रमांक १०४)

(४) ज्ञांज्ञण (मंडन का पितामह) श्रीमालवंश का था। यह सोन गिरान्वय का मंत्री कहलाता था जैसा कि काव्यमंडन के श्लोक क्रमांक ५५ में बताया गया है। इसके छः पुत्र थे जिनके नाम काव्यमंडन में बताये गये हैं।

(श्लोक क्रमांक १०५)

(५) इन पुत्रों में बाहड़ एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था।

(श्लोक क्रमांक १०६)

१ जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ४७६

२ वही, पृष्ठ ४८२

३ The Jain Antiquary, Vols. IX, No. II of 1943, XI No. 2 of 1946.

(६) बाहड़ के पुत्र मंडन ने “सारस्वत मंडन” और “काव्यमंडन” की रचना की। (श्लोक क्र० १०७)

(७) मंडन ने इस शृंगार विषयक शतश्लोकी ग्रन्थ की रचना की। (श्लोक क्र० १०८)

(८) शृंगार मंडन की पांडुलिपि सं० १५०४ (ई० सन् १४४८) के कार्तिक माह में काव्य मंडन की प्रतिलिपि, जो कि भाद्रपद में की गई थी, के वाद की गई है।

(९) काव्य मंडन और सारस्वत मंडन की रचना शृंगार मंडन के पूर्व की गई।

सारस्वत मंडन—इस ग्रन्थ में मंडन के वंश, गच्छ तथा पिता के नाम के अतिरिक्त और भी जानकारी मिलती है—

(१) मंडन जैन था। उसका सम्बन्ध सोनगिर खरतर गच्छ से था। वह संघ-पति भी था। उसको सर्वविद्याविशारद कहा गया है—जो कि उसके ग्रन्थ काव्य मंडन, शृंगार मंडन, सारस्वत मंडन और संगीत मंडन से प्रमाणित होता है।

(२) वह मांडू के शासक आलम या अल्म का प्रधानमंत्री था। सारस्वत मंडन में निश्चित रूप से कहा गया है कि वह आलमसाहि का महाप्रधान था। यह विवरण प्रदर्शित करता है कि जब सारस्वत मंडन की रचना की गई तब वह मालवा के आलमसाहि का प्रधानमंत्री था। सम्भवतः इसी समय उसने काव्य मंडन की रचना की, क्योंकि शृंगार मंडन में दोनों ग्रन्थों का संदर्भ है।

(३) उसके पिता भी उसी की तरह संघेश्वर या संघपति थे।

(४) मंडन के पिता का पद्म नामक भाई था। पद्म को भी अमात्य कहा गया है।

डाक्टर गौडे ने आलमसाहि की पहिचान दिलावर खाँ के पुत्र होशंग गौरी से की है।

काव्य मंडन ग्रंथ के आधार पर डाक्टर गौडे मंडन के विषय में निम्नांकित जानकारी और देते हैं—

(१) मंडन ने अपने ग्रंथ ‘काव्य मंडन’ के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में ‘वीतराग परेश’ और अन्त में ‘जिनेन्द्र’ का सन्दर्भ दिया है जिससे विदित होता है कि काव्य मंडन का लेखक जैन था।

(२) मंडन ‘महाजिन’ का अनुयायी था।

(३) जब मांडवगढ़ में आलमसाहि नामक राजा राज्य कर रहा था, उस समय ‘काव्य मंडन’ ग्रन्थ की रचना की गई।

मंडन द्वारा रचित ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—

(१) **काव्य मंडन**—इसमें पांडवों की कथा का वर्णन है।

- (२) शृंगार मंडन—यह शृंगार रस का ग्रन्थ है, इसमें १०८ श्लोक हैं।
- (३) सारस्वत मंडन—यह सारस्वत व्याकरण पर लिखा गया ग्रन्थ है। इसमें ३५०० श्लोक हैं।
- (४) कादम्बरी मंडन—यह कादम्बरी का संक्षिप्तिकरण है, जो सुलतान को सुनाया गया था। इस ग्रन्थ की रचना सं० १५०४ में हुई थी।
- (५) चम्पू मंडन—यह ग्रन्थ पांडव और द्रौपदी के कथानक पर आधारित जैन संस्करण है। रचना तिथि सं० १५०४ है।
- (६) चन्द्रविजय प्रबन्ध—ग्रन्थ की रचना तिथि सं० १५०४ है। इसमें चन्द्रमा की कलाएँ, सूर्य के साथ युद्ध और चन्द्रमा की विजय का वर्णन है।
- (७) अलंकार मंडन—यह साहित्य शास्त्र का पांच परिच्छेद में लिखित ग्रन्थ है। काव्य के लक्षण, भेद और रीति, काव्य के दोष और गुण, रस और अलंकार आदि का इसमें वर्णन है। इसकी भी रचना तिथि सं० १५०४ है।
- (८) उपसर्ग मंडन—यह व्याकरण रचना पर लिखित ग्रन्थ है।
- (९) संगीत मंडन—यह संगीत से सम्बन्धित ग्रन्थ है।
- (१०) कविकल्पद्रुमस्कंध—इस ग्रन्थ का उल्लेख मंडन के नाम से लिखे ग्रन्थ के रूप में पाया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मंडन न केवल एक प्रधानमंत्री था वरन् वह चहुँमुखी प्रतिभा का धनी भी था। मंडन पर स्वतंत्र रूप से शोध कर इस प्रतिभाशाली विद्वान मंत्री के साहित्य को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है।

३—धनदराज—यह मंडन का चचेरा भाई था। इसने शतकत्रय (नीति, शृंगार और वैराग्य) की रचना की। नीतिशतक की प्रशस्ति से विदित होता है कि ये ग्रन्थ उसने मंडपदुर्ग में सं० १४९० में लिखे।

४—भट्टारक श्रुतकीर्ति—ये नन्दी संघ और सरस्वती गच्छ के विद्वान थे। त्रिभुवनकीर्ति के शिष्य थे। अपभ्रंश भाषा के विद्वान थे। आपकी उपलब्ध सभी रचनायें अपभ्रंश भाषा के पद्धडिया छन्द में रची गई हैं। आपकी चार रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

(१) हरिवंशपुराण—जेरहट नगर के नेमिनाथ चैत्यालय में वि० सं० १५५२ माघ कृष्ण पंचमी सोमवार के दिन हस्त नक्षत्र के समय पूर्ण किया।

(२) धर्मपरीक्षा—इस ग्रन्थ को भी वि० सं० १५५२ में बनाया क्योंकि इसके रचे जाने का उल्लेख आपने दूसरे ग्रन्थ परमेष्ठिप्रकाशसार में किया है।

(३) परमेष्ठिप्रकाशसार—इसकी रचना वि० सं० १५५३ की श्रावण गुरु पंचमी के दिन मांडव के दुर्ग और जेरहट नगर के नेमिस्वर जिनालय में हुई।

(४) योगसार—यह ग्रंथ वि० सं० १५५२ मंगसिर माह के शुक्ल-पक्ष में रचा गया। इसमें गृहस्थोपयोगी सैद्धांतिक बातों पर प्रकाश डाला गया है। साथ में कुछ मुनिचर्या आदि का भी उल्लेख किया गया है।

५—संग्रामसिंह सोनी—यह मालवा के सुलतान महमूद खिलजी के समय में खजांची के पद पर कार्यरत था। संग्रामसिंह सोनी श्वेताम्बर मतानुयायी जैन (ओसवाल) था। महमूद खिलजी के द्वारा राणा कुम्भा और दक्षिण के निजाम के साथ लड़े गये युद्धों में संग्रामसिंह सोनी ने मदद की और कीर्ति अर्जित की। संग्रामसिंह सोनी केवल राजनीतिक व्यक्ति ही नहीं था, वरन् वह एक विद्वान भी था। इसने बुद्धिसागर नामक ग्रंथ की रचना भी की थी। इसने एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ व्यय करके अलग-अलग स्थानों पर ज्ञान भण्डारों की स्थापना की थी। इसको बादशाह ने “नवद-उल-मुल्क” की उपाधि दी थी। यह वही संग्रामसिंह सोनी है जिसने मक्सी पार्श्वनाथ तीर्थ के मन्दिर का निर्माण करवाया था।

इस समय के अन्य उल्लेखनीय जैन राज्याधिकारियों में मंडन के वंश का मेघ गयासुद्दीन खिलजी का मंत्री था। जिसे “फक्र-उल-मुल्क” की उपाधि प्राप्त थी। इसका भतीजा पुंजराज भी उच्च पद पर था। यह हिन्दुआ राय वजीर कहलाता था और बड़ा विद्वान था। सन् १५०० में उसने “सारस्वत प्रक्रिया” नामक व्याकरण की रचना की थी और उसकी प्रेरणा पर ईश्वर सूरि ने “ललितांग चरित” की रचना की थी। जीवणशाह, गोपाल आदि का नाम भी उल्लेखनीय है।

मांडवगढ़ में एक लाख जैन घरों की आवादी थी जिसमें सात लाख जैनी निवास करते थे। ऐसी किंवदन्ती है कि यहाँ जब भी कोई नया जैनघरमावलम्बी रहने आता तो उसको प्रत्येक घर से एक स्वर्णमुद्रा एवं एक ईंट दी जाती थी जिससे रहने के लिये मकान बन जाता था और आने वाला लखपति बन जाता था। इसी से मांडव की सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है।



विशेष—मालवा में जैनधर्म के वैभव की झांकी यहाँ केवल सार रूप में ही प्रस्तुत की गई है। जैनकला को तो लगभग इस लेख में छोड़ ही दिया है। मालवा की जैन कला और जैन साहित्य तथा मालवा के जैनाचार्य पर तो स्वतंत्र रूप से शोध करने की आवश्यकता है। जैनाचार्यों पर यदि स्वतंत्र रूप से कार्य किया जाता है तो जैन साहित्य और अनेक जैनाचार्यों के लुप्त इतिहास का प्रकटीकरण सम्भव है। —संपादक

साहित्य एवं कला की पुण्यभूमि—मालवा

□ मुनि रमेश 'साहित्यरत्न'
(मेवाड़भूषण जी महाराज के प्रमुख शिष्य)

मालव धरती गहन मंभीर ।
डग-डग रोटी पग-पग नीर ॥

सदियों से इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर उपर्युक्त लोकोक्ति आज भी शंखनाद करती हुई सुनाई दे रही है। मेरी समझ में इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति अथवा आदर्शवादिता का कुछ भी पट नहीं है, अपितु एक वास्तविक सत्य का समावेश है। मालवा की पुण्यभूमि का गौरव-सम्पन्न इतिहास किसी से भी छुपा हुआ नहीं है। इस भौतिक युग में भी आर्य संस्कृति-सभ्यता का श्लाघनीय नेतृत्व प्रस्तुत करता हुआ वह आन-बान-ज्ञान से जी रहा है जिसकी मजबूत बुनियाद सुसंस्कारों पर आधारित रही है। प्रकृति के नयनाभिराम दृश्यों, धार्मिक स्थानों, ऐतिहासिक स्थलों, शिल्पकलाओं के मन लुभावने कलापों, खनिज भंडारों से पूर्ण तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों में अगुवा भारत माँ का प्यारा देश मालवा (म० प्र०) आज भारत का साझीदार बनकर आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में प्रगतिशील एवं विख्यात हो चुका है।

आपने कई बार देखा व सुना है—जब समय-समय पर पड़ोसी-प्रान्त प्रकृति के प्रकोप व दुष्काल की क्रूर दृष्टि के शिकार बनते रहे हैं, बार-बार लोमहर्षक प्रहार उन्हें सहने पड़े और अपार धन-जन को भी खोना पड़ा है। कारण कि प्रकृति की प्रतिकूलता उनके लिए सिरदर्द रही है। परन्तु शस्य-श्यामला इस धरा के लिए इतिहास ऐसा नहीं बताता है। यहाँ प्रकृति सदैव प्रसन्न रही है। दुष्काल की सदैव पराजय और सुकाल के सुखद नगाड़े बजते रहे हैं। यही कारण है कि प्रतिवर्ष यहाँ समवर्षा होती है। हरीतिमा से परिव्याप्त इस विशाल धरा पर विध्याचल, सतपुड़ा जैसी विशालकाय पर्वतमाला, चम्बल, नर्मदा, महीसागर, क्षिप्रा जैसी बड़ी नदियाँ, सुदूर तक फैले हुए घने जंगल सैकड़ों मील के लम्बे-चौड़े उपजाऊ मैदान अन्य सैकड़ों सहायक छोटी नदियों की कलकल धारा, सरोवरों की सुन्दरता एवं नवनिर्मित चम्बल बांध जो सचमुच ही समुद्र की स्पर्धा कर रहा है। जिनके गर्भ में खनिज सम्पत्ति का अक्षुण्ण कोष भरा पड़ा है। जब पड़ोसी देश के मित्रगण दुष्काल के चपेट से परेशान होते हैं, तब वे अपने परिवार एवं पशु-धन के साथ इसी भूमि पर आते हैं। इसीलिए

मालवा देश को माँ की गोद कहा गया है। जहाँ अमीर-गरीब और भूखे-प्यासे सभी को आश्रय एवं संरक्षण मिलता है।

रेलमार्गों की भरमार से मालवा के बहुत से भागों का आसानी से भ्रमण सम्भव हो गया है। मध्य-प्रदेश-राज्य-परिवहन सेवा ने इस प्रदेश की यात्राओं को अधिक सुगम बना दिया है। व्यापारिक क्षेत्र में भी यह प्रदेश उत्तरोत्तर विकास कर रहा है। कृषि, पशुपालन, व्यापार, कल-कारखाने व्यावहारिक जीवन के मुख्य साधन हैं।

संस्कृति का साक्षात् सदन

प्राचीनकाल से यहाँ धर्म, दर्शन, संस्कृति, सभ्यता, साहित्य एवं शिल्पकलाओं के अनूठे नमूने देखने को मिलते हैं। मंदिर-मस्जिद-मीनारों की शिल्प कलाकृति एवं किलों की अनोखी बनावट सचमुच ही विस्मय में डालने वाली है। प्राचीन जैन साहित्य के भण्डार भरे पड़े हैं जो हमारी अनुपम निधि है। सदियों से भ्रमण संस्कृति एवं वैदिक संस्कृति की अमिट धारा प्रवाहित रही है। सह-अस्तित्व की पवित्र भावना को लेकर दोनों धाराएँ उत्तरोत्तर प्रगतिशील, विचारशील एवं जन-जन के लिए प्रेरक रही है।

इस प्रदेश में वैष्णव, शैव, जैन, मुस्लिम धर्म की संस्कृतियाँ न केवल पनपीं, अपितु आज भी इस प्रदेश में इनके धार्मिक स्थान उनकी गौरव-गरिमा का गुणगान कर रही है। वस्तुतः यहाँ के निवासियों के मन-मस्तिष्क पर धर्म-दर्शन का पर्याप्त प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है। साथ ही साथ यहाँ के भव्य स्थानों में सामूहिकरूप में आबाल वृद्ध धर्माराधना करते हुए मिलते हैं।

जहाँ-तहाँ आपको इस रमणीय धरा पर अनेकों प्राचीन कलात्मक स्थल मिलेंगे—उज्जैन, धारा नगरी, तीर्थ स्थली मक्षी दशपुर (मन्दसौर), मांडुजी का किला, अँकारेश्वर, अर्वाचीनता के प्रतीक जैसे—इन्दौर-भोपाल, रतलाम जहाँ नवीनता एवं प्राचीनता का सुन्दर-संगम परिलक्षित होता है।

निःसन्देह प्राकृतिक विपुल वैभव-से भरे-पूरे इस मालवा देश के अनुपम सौन्दर्य का दर्शन कर प्रत्येक बुद्धिजीवी का मन बाग-बाग होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार इस पुण्यभूमि की प्रशंसा करने में देवगण भी पीछे नहीं रहते हैं, जैसा कि—

गायति देवा किल गीतकानि ।

धन्यास्तु ते मालव-भूमि भागे ॥

कर्मवीर और धर्मवीरों की पुण्यभूमि

समय-समय पर इस तपोपूत भूमि ने कई बार सत्ता की खींच-तान में उतार-चढ़ाव के कटुक-मधुर झटके सहे हैं। फिर भी इस तपोभूमि की गौरवशाली गोद में कर्म प्रिय जैसी कुछ महान् विभूतियों का अवश्य योगदान रहा है। जैसे—परदुःख

भंजक, न्यायप्रिय विक्रमादित्य, सरस्वतीपुत्र सम्राट् भोज, धर्मानुरागी सम्राट् दशार्णभद्र, कवि-कुल-भूषण कालिदास, कवि माघ बल्लभाचार्य, तो श्रमण संस्कृति के ज्योतिधर महामनस्वी आचार्य मानतुंग, आ० श्री शिवलाल जी महाराज, कविकुलभूषण स्व० आ० श्री त्रिलोक ऋषि जी महाराज (रतलाम), अखण्ड यशोदधि शास्त्रविशारद् स्व० आ० श्री मन्नालालजी महाराज (रतलाम), आदर्शत्यागी सपरिवार संयमी स्व० श्री तपस्वी रतनचन्द्रजी महाराज इन्हीं के पुत्र रत्न स्व० गुरुजी श्री जवाहरलाल जी महाराज, स्व० कविकोविद श्री हीरालाल जी महाराज, वाद-कोविद स्व० गुरुदेव श्री नन्दलालजी महाराज, स्व० श्री उत्तमचन्द जी महाराज (कंजाड़ा), आगमोद्धारक स्व० आ० श्री अमोलक ऋषिजी महाराज (भोपाल), अनेक ग्रन्थों के महान् लेखक प्रसिद्ध वक्ता जगत्त्वल्लभ जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौधमलजी महाराज (नीमच), प्रज्ञाधनी सलाहकार स्व० श्री केशरीमलजी महाराज (जावरा), दीर्घ द्रष्टा साहित्य प्रेमी स्व० उपाध्याय श्री प्यारचन्द जी महाराज (रतलाम), प्र० पं० श्री भगवानलाल जी महाराज (मन्दसौर), स्थविर पद-विभूषित शासन सम्राट् मालवरत्न पूज्य गुरुदेव ज्योतिर्धर श्री कस्तूरचन्दजी महाराज (जावरा), मालवकेशरी श्री सौभाग्यमलजी महाराज (खाचरोद), आगम विशारद् पं० श्री हीरालालजी महाराज (मन्दसौर) । इसी प्रकार महाभाग्यवंता महासती श्री रंगुजी महाराज, महातपस्वी श्री केशरकुंवरजी महाराज, ओजस्वी वक्ता श्री बड़े हगामकुंवरजी महाराज (संजीत), प्रसिद्ध वक्ता श्री मेहताबकुंवरजी महाराज, स्व० श्री मेनकुंवरजी महाराज, तपस्वी श्री रूपकुंवरजी महाराज एवं चिरायु श्री केशरकुंवर जी महाराज (जावरा वाले) आदि अगणित साधकों की पादधूलि से यहाँ का चप्पा-चप्पा पवित्र हो चुका है । विशेषतः मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी की विहार-स्थली, द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण वासुदेव की शिक्षास्थली रही है । चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के उपदेश का इस भूमि को सौभाग्य प्राप्त हो चुका है । जिन्होंने केवल अपने कार्य क्षेत्र का विस्तार ही नहीं किया, अपितु मानव-समाज की अमिट सेवाएँ की हैं । साहित्य-कला एवं संस्कृति में जिनके सत्कर्त्तव्य आज इतिहास के धवलपृष्ठों पर अमर बन चुके हैं । जिनकी साहित्यिक एवं धार्मिक देन सदियों तक मार्ग-दर्शन करती रहेगी ।



मालव-संस्कृति में धार्मिकता के स्वर

□ श्रीचंद्र जैन, एम.ए., एल-एल.बी. (उज्जैन)

मालव की प्राचीनता

मालव एक परम पुनीत जनपद है। जिसकी अर्चना-वन्दना में कई युगों से कवि समुद्यत रहे हैं। इस पावन प्रदेश का प्रत्येक भाग धार्मिक दृष्टि से प्रशस्त है, न कभी यह अकाल से पीड़ित रहा, और न कभी इससे किसी का अहित हुआ।

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में इस मालव की प्रशस्तियाँ विविध रूपों में गाई गई हैं। समस्त धर्म यहाँ फले-फूले एवं अनेक सांस्कृतिक चेतनाएँ प्रबुद्ध बनकर इस प्रदेश की सहजशील धार्मिकता को व्यापकता प्रदान करती रही है।^१

मालव (मालवा) का पुरातन इतिहास बड़ा गौरवमय रहा है एवं इसका प्राकृतिक वैभव आज भी मनोरम तथा नैसर्गिक एवं आनन्ददायक है।

विविध शासनों से प्रभावित होने के कारण इस प्रदेश की सीमाएँ समय-समय पर परिवर्तित होती रही हैं। और इन परिवर्तनों से इस उदात्त भूखण्ड की गौरवान्वित लोक संस्कृति अधिक अलंकृत हुई है। जिस प्रकार दिनकर का व्यापक आलोक विश्व को परिव्याप्त कर उसके कण-कण को प्रकाशित करता है। इसी प्रकार इस बंदनीय मालव की गरिमा से संसार की ऋद्धि-सिद्धियाँ विशेषतः चमत्कृत हुई हैं। इस रम्य प्रदेश की रमणीयता से प्रभावित होकर संत प्रवर कबीरदास ने प्रमुदित होकर एक दिन गाया था—

देश मालवा गहन गम्भीर।

डग-डग रोटी पग-पग नीर ॥

घन-धान्य से परिपूर्ण इस भूमि का वैभव रत्नगर्भा धरित्री के लिए अत्यधिक गरिमामय है। अमीर-गरीब दोनों का यहाँ सम्मान-सत्कार उपलब्ध है। दूसरे शब्दों

- १ गृह-गृह में होता है, अर्चन !
गृह-गृह में देवों का वंदन !
गृह-गृह में अर्घ्य वृष नव पूजन !
गृह-गृह में संगीत निर्गुंजन !
प्रिय उल्लास हास कुल कुंजन !
मेरे 'मालव' को अभिनन्दन !!

(मालव गौरव—श्री मदनलाल वर्मा)

में कहा जा सकता है, इस पुण्यभूमि की गोद में संत, अमीर और दीन-हीन सभी समान भाव से बैठते हैं एवं अपनी आत्मिक सुख-शांति को प्राप्त कर स्वयं को भाग्यशाली मानते हैं।

इस सूभाग की भौगोलिक सीमाएं

डा० चिंतामणि उपाध्याय के कथनानुसार "मालव" शब्द उन्नत भूमि का सूचक है। विंध्य पर्वत के उत्तरी आँचल में फैला हुआ विस्तृत पठार सम्पूर्ण मध्य भारत में उन्नत खण्ड बनकर अपनी भौगोलिक सीमा निर्धारित करता है। "मलय" शब्द की तरह मालव भी उच्च भूमि अथवा पहाड़ी क्षेत्र के भाग को प्रगट करता है। यही पठार मालव की स्वाभाविक सीमा का बोध कराता है। फिर भी समय-समय पर राजनैतिक हलचलों के कारण मालव सीमाएँ बदलती रही हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने आधुनिक मालव के विस्तार एवं सीमाओं के सम्बन्ध में विचार प्रगट करते हुए लिखा कि मध्य भारतीय एजेन्सी से सम्पूर्ण भू-भाग के साथ ही मालवा का क्षेत्र विस्तार दक्षिण में नर्मदा तक, उत्तर में चम्बल तक, पश्चिम में गुजरात एवं पूर्व में बुन्देलखण्ड तक माना जाएगा। स्मिथ महोदय द्वारा मालव प्रदेश की सीमाओं का जो उल्लेख किया गया है, वह अंग्रेजों द्वारा राजनैतिक एवं प्रशासकीय दृष्टि से निर्मित मध्य-भारत क्षेत्र की व्यापकता को लिए हुए है। किन्तु मालव की भौगोलिक स्थिति का यहाँ केवल स्थूल रूप से ही परिचय होता है।^१

डा० श्याम परमार इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि स्थूल रूप से अनेक विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि मालवगण के आगमन के पश्चात् इस जनपद का नाम मालव अथवा मालवा पड़ा।सन्देह नहीं, इस जनपद के प्राचीन होने के अन्य प्रमाण भी उपलब्ध हैं। सिकन्दर के आक्रमण के समय मालवों का उसके साथ युद्ध हुआ था। मद्र और पौरव जाति के साथ मालवों का उल्लेख बृहद् संहिता में इस प्रकार आया है।^२

श्री राहुल सांकृत्यायन के अनुसार "मल्ल" से मालव शब्द आया है। बुद्ध के समय और उसके भी बहुत पहले मालव अर्थात् जनपद कहलाता रहा। अनेक ग्रन्थों में मालव शब्द का उल्लेख आया है। महाभारत में प्रसिद्ध कीचक और उसकी भगिनी सुदेष्णा मालवकुमारी से उत्पन्न बताये गये हैं। अश्वपति कैंकय की कन्या सावित्री मालवी थी जिसे यम द्वारा मालव नाम के सौ पुत्र होने का वरदान प्राप्त था।

मालव जाति की प्राचीन मुद्राएँ राजपूताने के कुछ भागों में मिली हैं जो ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी की सिद्ध हुई हैं। उनमें से अधिकांश मुद्राओं पर "मालव नाम जय" अथवा 'जय मालव नाम जय' लिखा है। कुछ मुद्राओं पर मालव जाति के राजाओं के नाम भी हैं। पाणिनी ने ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व मालवों का उल्लेख किया है।

१ मलावी लोक गीत एक विवेचनात्मक अध्ययन (पृष्ठ संख्या ३०)

२ अम्बर मद्र कमाल व पौरुवकच्छार दंडपिगलका।

माणहल हूण को हल शीतक माण्डव्य भूत पुराः ॥

डा० आर० डी० बनर्जी ने मालवों को पंजाब के निवासी बताया है। जो बाद में आकर अवन्ति जनपद में बस गये। प्रगट है कि मालव जाति अत्यन्त प्राचीन है और उसकी प्राचीनता के साथ ही मालव अथवा मालवा शब्द की प्राचीनता असंदिग्ध है।

संस्कृति का स्वरूप एवं जैन संस्कृति

संस्कृति मानवता का प्रतीक है। इन्सानियत का आदि धर्म है। संस्कारिता की जननी है। राष्ट्रीयता का अविनश्वर स्वर है। उत्थान का आन्तरिक रूप है। अध्यात्मवाद का अमर प्रतीक है एवं विश्व-मंत्री तथा सार्वभौमिकता का अभिन्न अंग है।

संस्कृति प्रत्येक राष्ट्र की आध्यात्मिक वाणी है जिसके माध्यम से धार्मिकता के स्वर निरन्तर मुखरित होते रहते हैं। जिस देश की सांस्कृतिक चेतना धूमिल हो जाती है उसे नष्ट होने में कुछ भी विलम्ब नहीं लगता। अतएव संस्कृति सर्वोपरि है तथा इसका संरक्षण नितान्त आवश्यक है।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि संस्कृति तथा सभ्यता एक-दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं। इनमें पर्याप्त भेद है। संस्कृति आत्मा है और सभ्यता शरीर। चिन्तन, विचारधारा, आध्यात्मिकता, उन्मेष आदि संस्कृति के परिचायक हैं। जबकि वेश-भूषा, भोजन व्यवस्था, रहन-सहन आदि सभ्यता के अन्तर्गत हैं। परिणामस्वरूप देश-काल आदि से प्रभावित सभ्यता शीघ्र परिवर्तित हो जाती है। लेकिन संस्कृति अपरिवर्तनशील कही गई है। इस कथन से हम यों भी कह सकते हैं कि—“सभ्यता की तुलना में संस्कृति अधिक स्थिर है तथा सहसा इसमें परिवर्तन संभाव्य नहीं है। फिर भी एक लम्बे आयाम के उपरान्त संस्कृति भी परिवर्तित हो जाती है।”

संस्कृति शब्द ‘सम्’ उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डु कृ त्र) धातु से बनता है। जिसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है। आज की भाषा में यह अंग्रेजी शब्द “कलचर” का पर्यायवाची शब्द माना जाता है। संस्कृति शब्द का प्रयोग कम से कम दो अर्थों में होता है। एक व्यापक और दूसरे संकीर्ण अर्थ में। व्यापक अर्थ में उक्त शब्द का प्रयोग किया जाता है। व्यापक अर्थ के अनुसार संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस व्यवहार का नाम है, जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। इस अर्थ में संस्कृति को सामाजिक प्रथा (कस्टम) का पर्याय भी कहा जाता है। संकीर्ण अर्थ में संस्कृति एक वांछनीय वस्तु मानी जाती है और संस्कृत व्यक्ति एक इलाध्य व्यक्ति समझा जाता है। इस अर्थ में संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय समझी जाती है जो व्यक्ति को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाती है। नर-विज्ञान के अनुसार संस्कृति और सभ्यता शब्द पर्यायवाची है।

हमारी समझ में संस्कृति और सभ्यता में अन्तर किया जाना चाहिए। सभ्यता का तात्पर्य उन आविष्कारों, उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक-राजनैतिक साधनों से समझना चाहिए जिनके द्वारा मनुष्य की जीवन-यात्रा सरल एवं उसकी स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होता है। इसके विपरीत संस्कृति का अर्थ चिन्तन-कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएँ

समझनी चाहिए जो मानव के व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी होते हुए उसे समृद्ध बनाने वाली है।मोक्ष-धर्म अथवा पूर्णत्व की खोज भी संस्कृति का अंग मानी जाएगी। हिन्दू तथा भारतीय संस्कृति का सबसे उदात्त रूप संस्कृत महाकाव्यों तथा बौद्धधर्म की शिक्षाओं में प्रतिफलित हुआ है।^१

जैन संस्कृति की गरिमा एवं उपलब्धियाँ

संस्कृति एवं धर्म इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि हम धर्म का व्यापक अर्थ लें तो संस्कृति किसी न किसी रूप में इसमें समाहित हो जाती है। दूसरे रूप में संस्कृति संस्कारों से संबंधित है। ये संस्कार धर्म निबद्ध होने से संस्कृति के अभिन्न अंग भी माने जाते हैं। इस प्रकार ये दोनों (संस्कृति और धर्म) एक-दूसरे में इस भाँति गुंथे हुए हैं कि इन्हें पृथक् करना सहज नहीं है। यह भी एक विचारधारा प्रवाहित है कि प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति धर्ममूलक होती है तथा धार्मिकता ही सांस्कृतिक चेतना को स्थायित्व प्रदान करती है।

स्वामी श्री करपात्री जी 'संस्कृति-विमर्श' शीर्षक निबन्ध में धर्म और संस्कृति में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि धर्म और संस्कृति में इतना भेद है। धर्म केवल शास्त्रोक्त समाधिगम्य है और संस्कृति में शास्त्र से अविहद्ध लौकिक धर्म भी परिणत हो सकता है। युद्ध-भोजनादि में लौकिकता अलौकिकता दोनों ही हैं। जितना अंश लोकप्रसिद्ध है, उतना लौकिक है जितना शास्त्रोक्त समाधिगम्य है उतना अलौकिक। अलौकिक अंश धर्म है। संस्कृति में दोनों का अन्तर्भाव है।^२

जैन संस्कृति पूर्णरूपेण आध्यात्मिक है। सांसारिक अभिवृद्धि नगण्य है। मानव-जीवन की सफलता का चरमबिन्दु मोक्ष है; अतः इसकी उपलब्धि के लिए बाह्याडम्बर निरन्तर त्याज्य बताये गये हैं।

जैन संस्कृति सरोज की पाँच पाँखुड़ियाँ हैं—

(१) अहिंसा (२) मानव का अनन्य महत्त्व (३) बाहर नहीं अन्दर की ओर (४) कर्मवाद (५) अपरिग्रहवाद।^३

इन पाँचों पाँखुड़ियों का स्वरूप एक शब्द विश्व कल्याण में सन्निहित है अथवा अहिंसा में ये पाँच अनुस्यूत हैं।

यहाँ पर विशेषतः उल्लेख्य है कि जैन संस्कृति जन्म से जाति-व्यवस्था की विरोधी है तथा कर्म को ही प्राधान्य दिया गया है, जैसा कि—

मनुष्य ब्राह्मण के योग्य कर्म करने से ही ब्राह्मण होता है, क्षत्रिय के कर्म से

१ हिन्दी साहित्य कोष, भा० १, पृष्ठ ८६८

२ कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ ३६

३ मरुधर केशरी अभिनन्दन ग्रन्थ, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ६

क्षत्रिय कहलाता है, वैश्य के कर्म द्वारा ही वैश्य होता है, शूद्र भी कर्म से ही होता है ।^१

सार्वभौमिक कल्याण की विराट् भावना जैन संस्कृति की आधारभूमि है । अतएव इसका व्यापक महत्त्व सर्वत्र स्वीकृत है । सन्त कबीर ने जातिवाद को कपोल कल्पित माना है और पूछा है—तुम कैसे ब्राह्मण हो गये और हम शूद्र कैसे कहलाये; हम कैसे खून रह गये, और तुम कैसे दूध हो गये ?^२

जैन संस्कृति की यही गरिमा और यही इसकी विशिष्ट उपलब्धि है कि इसमें प्रत्येक जीव के कल्याण की साँसें जीवित हैं, उद्वेलित हैं । यह पुनीत एवं प्राचीनतम श्रमण संस्कृति है जो विराट् विश्व के कल्याण को सर्वोपरि मानती है तथा आत्मोद्धार में ही उल्लसित होती रहती है । कर्म की प्रधानता देकर जन-जन को इसने सजग बनाया है । संघर्षों से जूझने की अपार शक्ति भी दी है । सर्वोत्तम जन्म मानव है । अतएव विषय वासना से दूर रहकर आत्म-कल्याण की ओर सदा श्रद्धा और तन्मयतापूर्वक प्रयत्नशील रहना चाहिए । यही अध्यात्मवाद है । यही अन्तरात्मा का वास्तविक स्वरूप है और यही नरभव का साफल्य है । जैन कवियों ने एवं आचार्यों ने अपने काव्य की इसी दृष्टिकोण से सफलता आँकी है ।

मालवा में धार्मिकता के स्वर

पीयूष की भाँति जन-जन की कल्याणकारिणी मालव संस्कृति बड़ी निर्मल, धार्मिक, उदात्त, उर्वर, कला परिपूर्ण एवं सिद्ध सन्त प्रश्रयदायिनी तथा साधनास्थली रही है । वस्तुतः भाव सौन्दर्य, कलात्मकता, प्राकृतिक सुन्दरता, नैसर्गिक मनोरमता, धिरकती सौम्यता तथा पारस्परिक समन्वयता उसी घरा की गोद में अधिक प्रतिष्ठित होती है, जहाँ जीवन की सुविधाएँ उन्मुक्त अवस्था में प्राप्त हों । मालव-भूमि इस सन्दर्भ में प्रणम्य और पूजित है तथा विविध साहित्य प्रशंसित भी है ।

संबंधमसम्मेलन

यहाँ जैन, बौद्ध, वैष्णव, शाक्य, शैव आदि अनेक धर्म फले-फूले हैं । चंडप्रद्योत युगीन उज्जयिनी, मौर्य युगीन उज्जयिनी, शुंग शक विक्रमादित्य-शातवाहन युगीन उज्जयिनी, गुप्त तथा हर्षवर्धन युगीन उज्जयिनी, प्रतिहार और परमार युगीन उज्जयिनी आदि शीर्षक अध्यायों में डाक्टर शोभा कानूनगो ने अपने प्रकाशित शोध प्रबन्ध 'उज्जयिनी का सांस्कृतिक इतिहास' में सप्रमाण यह सिद्ध किया है कि मालवा में अनेक धर्म-सम्प्रदाय विभिन्न शासकों के शासनकाल में पुष्पित और फलित हुए हैं । उक्त धर्मों का

१ कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।

वइसो कम्मुणा होइ, सुदो हवइ कम्मुणा ॥

(उत्त० २५/३३)

२ तुम कत ब्राह्मण, हम कत सूद ।

हम कत लोह, तुम कत दूध ॥

(कबीर ग्रन्थावली)

प्रचार-प्रसार केवल जनता में ही नहीं था, अपितु शासकों एवं शासन के प्रमुख अधिकारियों ने भी (इनमें दीक्षित होकर) इन सम्प्रदायों को गौरवान्वित किया था ।^१

यह सहज गम्य है कि मालवा में जैनों का प्रमुख स्थान रहा है। समय-समय पर यहाँ पर्याप्त मात्रा में जैन-धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ एवं हजारों साधु-सन्तों ने यहाँ की धरती को पावन किया है। भगवान महावीर यहाँ पधारे थे तथा जैन पुराणानुसार जैन-धर्म विषयक अनेक घटनाएँ भी इस पुण्य भूमि पर घटित हुई हैं। यहाँ का सती दरवाजा एक जैन नारी के सतीत्व की सफल परीक्षा से सम्बन्धित है। मैनासुन्दरी ने विधिवत् नवपद (नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं, नमो नाणस्स, नमो दंसणस्स, नमो चरितस्स, नमो तवस्स) की आराधना करके अपने पति श्रीपाल का कोढ़ दूर किया था। इस प्रकार की अनेक जैन धार्मिक आस्थाएँ मालव से जुड़ी हुई हैं। उज्जैन, मकसी-पाश्र्वनाथ, धारानगरी, मांडव-दशपुर इत्यादि अनेकों जैन तीर्थ हैं जो श्रमण संस्कृति के सजीव प्रतीक रहे हैं। जहाँ भव्यात्माएँ धर्माराधना करके जीवन को सफल बनाते हैं।

धार्मिकता के चिरनिनादित स्वरों के ये गौरवमय माध्यम

धर्म शब्द “धृ” धातु से बना है जिसका अर्थ है—धारण या पालन करना। किन्तु प्राचीन वैदिक साहित्य के अनुशीलन से प्रगट होता है कि इसका प्रयोग अनेक अर्थों में होता आया है। किन्तु अधिक स्थानों में धार्मिक विधियों और धार्मिक क्रिया संस्कारों के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।

धर्म का लक्षण है अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति वह प्राप्ति जिसके द्वारा हो सकती है, वही धर्म है। महाभारत में ‘अहिंसा परमो धर्मः’ (अनुशासन पर्व) अनुशस्य परमोधर्मः (वनपर्व ३७३, ७६) अहिंसा परम धर्म है। दया परम धर्म कहा गया है। जैनधर्म में भी धर्म के निम्न लक्षण बताये गये हैं—धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा, संयम

१ इस सन्दर्भ में निम्न ग्रन्थ विशेषतः पठनीय है :—

- | | |
|---|---------------------------|
| १ मालव : एक सर्वेक्षण | (सं० डा० वि० श्री वाकणकर) |
| २ उज्जयिनी का सांस्कृतिक इतिहास | (डा० शोभा कानूनगो) |
| ३ उज्जयिनी में वैष्णव धर्म | (डा० एलरिक बारलो शिवाजी) |
| ४ प्राचीन एवं मध्यकालीन मालवा में जैनधर्म | (डा० तेज सिंह गौड) |
| ५ उज्जयिनी दर्शन | (डा० सूर्य नारायण व्यास) |
| ६ विक्रम स्मृति ग्रंथ | (डा० रमाशंकर त्रिपाठी) |
| ७ संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी | (पं० अज किशोर) |
| ८ राजेन्द्र सूरि स्मारक ग्रन्थ | (अगरचंद नाहटा) |
| ९ मालव में युगान्तर | (डा० रघुवीरसिंह) |
| १० जैन साहित्य का इतिहास | (नाथूराम प्रेमो) |

और तप ये धर्म के लक्षण हैं। जिसका मन सदा धर्म में लगा रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।^१

आचार्य कुन्दकुन्द ने भी 'चारित्तं खलु धम्मो' (प्रवचनसार) और 'धम्मो दया विसुद्धो' (बोध पाहुड २५) चारित्र्य ही निश्चय में धर्म है। इस प्रकार धर्म का विविध स्वरूप कहा है। आचार्य समन्तभद्र ने अपने रत्नकरंड श्रावकाचार में धर्म का जो स्वरूप बतलाया है वह इस प्रकार है—

जो कर्म बन्धन का नाशक है, और प्राणियों को संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुखों में स्थापित करता है।^२

उक्त कथन से नीचे लिखे तथ्य उद्घटित होते हैं—

(१) संसार में दुःख है, जिसे सुख कहा जाता है या माना जाता है, वह सुख वास्तविक सुख नहीं है यद्यपि उसे सुख की संज्ञा दी जाती है तब भी वह उत्तम सुख नहीं है।

(२) संसार के दुःखों से छुटकारा और उत्तम सुख की प्राप्ति कर्म बन्धन का नाश किये बिना सम्भव नहीं है।

(३) अतएव सच्चा धर्म वही है जो कर्म बन्धन का नाशक है। जिससे कर्म बन्धन होता है, वह सच्चा धर्म नहीं है।

(४) अतः धर्म से सच्चा धर्म जुदा ही है। धर्म नाम से ही प्रत्येक धर्म सच्चा धर्म नहीं माना जा सकता। धर्म शब्द की व्युत्पत्ति और यह व्याख्या सर्वाचार्य सम्मत जैन व्याख्या है। शेष सब व्याख्याएँ प्रकारान्तर से उसी का पोषण करती हैं।^३

इन पृष्ठों में इन्हीं साधनों एवं माध्यमों की संक्षिप्त चर्चा की जा रही है जो धार्मिकता के स्वरों को मुखरित करते हैं, वे निम्न हैं—

- (१) व्रतोत्सव एवं अनुष्ठान।
- (२) देव-गुरु-धर्मोपासना एवं वंदना-अर्चना आदि।
- (३) सामायिक तथा प्रतिक्रमण।
- (४) पर्व आदि दिनों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयोजन।
- (५) धार्मिक कथा पठन एवं श्रवण।
- (६) अणुव्रत एवं महान्व्रत समारोह (दीक्षा)।
- (७) शास्त्र स्वाध्याय, चिंतन एवं मनन।
- (८) विविध प्रत्याख्यान।

१ धम्मो मगल मुक्किट्टुं, अहिंसा सज्जमो तवो।

देवा वि तं नमसंति, जस्स धम्मो सया मणो ॥

(वशवै० १।१)

२ देशयामि समीचीनं, धर्मकर्मनिवर्हणम्।

संसार दुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥

—रत्नकरंड श्रावकाचार

३ पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री सिद्धान्ताचार्य : धर्म शब्द का स्वरूप और व्याख्या

—जैन सिद्धान्त भास्कर

- (६) यथाशक्ति तप एवं जप साधना ।
 (१०) व्यसन परिहार प्रतिज्ञा ।
 (११) नियमित रूप से प्रार्थना, व्याख्यान, श्रवण एवं ज्ञान चर्चा ।

ऊपर बताये गये साधनों के अतिरिक्त और भी ज्ञान वृद्धि के प्रचुर साधन मौजूद हैं। जिनकी आराधना करने पर निःसन्देह ज्ञान की अभिवृद्धि होती है एवं संसार की विभीषिका से संतप्त आत्माओं का उद्धार भी निहित है। धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन एवं अनुशीलन-परिशीलन आत्म-मुमुक्षुओं के लिए सुखद-सुगम सोपान है। जो मालवा के धार्मिक स्थानकों में, उपाश्रयों में, संस्थाओं में, एवं साधु-साध्वियों में सुगमता से उपलब्ध हो सकता है या सीखा जा सकता है। अनेक जैन सन्तों के नामों पर स्थापित ज्ञान-मन्दिर, शास्त्र-भण्डार एवं स्वाध्याय भवन आदि ज्ञान चेतना के स्थाई रूप हैं। लोक जीवन की धूमिल धारणा को कई रूपों में धार्मिकता के भव्य रंगों से अलंकृत करती है। भव्य जनों के मधुर कण्ठों से मुखरित भजन-स्तवन आत्मोत्थान की पर्याप्त प्रेरणा देते हैं। गीत-गान की यह परिपाटी शीतल-समीर धारा के समान सन्तप्त मानव को सदा शान्त करती है।

धार्मिक अवसरों पर जो जागरण करने की व्यवस्था है वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह भ्रमित जन को एकाग्र चित्त, व्यग्र मानव को शान्त और अव्यवस्थित चेतन को व्यवस्थित करती है। मालव के कई जैन उपासना गृहों में जैन भक्तजन भक्तामर, कल्याण मन्दिर, चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र, महावीराष्टक आदि स्तोत्रों का बड़ी तन्मयतापूर्वक अखण्ड पाठ किया करते हैं। यह परिवारी विमोहित आत्मा को सन्मार्ग का पथिक बनाने में परम सहायक मानी गई है।

जैन कथा, लोक-गाथा एवं लोक नाट्यों आदि के अतिरिक्त जैन सूत्रों में धार्मिक शिक्षणपरक कई दृष्टान्त चित्रों की स्वस्थ परम्परा रही है। इनमें नारकीय जीवन की यातनापरक चित्रों की बहुलता मिलती है ताकि उनको देखकर प्रत्येक मानव अपने जीवन को अच्छा बनाने का प्रयत्न करे। नारकीय जीवन सम्बन्धी चित्रों में मुख्यतया पाप, अन्याय, अत्याचार, छल, प्रपंच, ईर्ष्या, द्वेष, क्लेश तथा अनैतिक कार्यों के चित्र चित्रित किये हुए मिलते हैं। मनोरंजन के माध्यम से भी धार्मिक शिक्षण प्रदान करने के कई तरीके हमारे यहाँ प्रचलित रहे हैं।

इस प्रकार विविध रूपों में अभिव्यक्त इन धार्मिकता के स्वरों से मालव की सांस्कृतिक चेतना चिरकाल से जीवंत बनी है। प्राचीन मालवा का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि यह धरा श्रमण-धर्म परम्परा को धारण करके ही सार्थक बनी है।



मालवा के श्वेताम्बर जैन भाषा-कवि

□ साहित्य वाचस्पति श्री अगरचन्द्र नाहटा, बोकानेर

मालव प्रदेश के साथ जैनधर्म का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है, विशेषतः उज्जयिनी और दशपुर (मन्दसौर) के तो प्राचीन जैन उल्लेख बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। मध्यकाल में धार, नलपुर, नरवर, सारंगपुर, देवास, मांडवगढ़ आदि स्थानों के भी उल्लेख जैन साहित्य में मिलते ही हैं। वहाँ जैनधर्म का अच्छा प्रचार रहा है। समृद्धिशाली व धर्म-प्रेमी जैन श्रावकों के वहाँ निवास करने के कारण विद्वान जैनाचार्यों और मुनियों का विहार भी मालवा में सर्वत्र होता रहा है। इन स्थानों में रहते हुए उन्होंने अनेकों ग्रंथ भी बनाये हैं। खेद है कि अभी तक मालव प्रदेश के जैनधर्म के प्रचार वाले केन्द्र स्थानों के जैन इतिहास की कोई खोज नहीं की गई। उधर के जैन ज्ञान भंडार भी अभी तक अज्ञात अवस्था में पड़े हैं। अतः मालवा में बने हुए बहुत से जैन ग्रन्थ अभी तक प्रकाश में नहीं आ पाये। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों के मालव प्रदेश में अनेक हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहालयों में होंगे। उनका अन्वेषण भली-भांति किया जाना चाहिए। इन्दौर और उज्जैन के जैन ज्ञान भण्डारों की तो थोड़ी जानकारी मुझे है। इन्दौर के दो जैन भण्डारों के सूची-पत्र भी मैंने देखे थे और उज्जैन के एक यति प्रेम-विजयजी के जैन भण्डार का सूची-पत्र तो छपा भी था, पर सुना है, अब यह सब ग्रन्थ सुरक्षित नहीं रहे। मांडवगढ़ का जैन इतिहास तो बहुत ही गौरवशाली है। पर वहाँ के प्राचीन जैन मन्दिर और ज्ञान भण्डार सब नष्ट हो चुके हैं। धार में भी जैनों का अच्छा प्रभाव था, वहाँ कुछ पुरानी मूर्तियाँ तो हैं, पर ज्ञान भण्डार जानकारी में नहीं आया। उज्जैन के आस-पास में बिखरे हुए जैन पुरातत्त्व का संग्रह पं० सत्यधरजी सेठी ने किया है, पर जैन ज्ञान भण्डारों के सम्बन्ध में अभी तक किसी ने खोज नहीं की। उज्जैन के सिधिया ओरियंटल इन्स्टीट्यूट में एक यतिजी का संग्रह आया है और अभी तक और भी कई यतियों और श्रावकों के संग्रह इधर-उधर अज्ञातावस्था में पड़े हैं जिनकी जानकारी अभी तक प्रकाश में नहीं आई है।

जैनाचार्यों और मुनियों के सम्बन्ध में यह कहना बहुत कठिन है कि वे मालवा के कवि थे क्योंकि वे तो भ्रमणशील संत थे। वे कभी राजस्थान से गुजरात जाते हैं तो कभी राजस्थान से मालवा जाते हैं। इस तरह अनेक प्रान्तों में धर्म-प्रचार के लिए घूमते रहते हैं। जहाँ धर्म-प्रचार विशेष होता दिखाई देता है एवं श्रावकों का विशेष

अनुरोध होता है वहीं वे वर्षाकाल के ४ माह ठहरते हैं। उनका जीवन बहुत संयमी होने से वे बहुत सा समय पठन-पाठन ग्रंथ रचने व लिखने में लगाते रहे हैं। इसलिए एक ही कवि की एक रचना राजस्थान में हुई है, तो दूसरी गुजरात में और तीसरी मालवा में, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वे अमुक प्रांत के कवि हैं। बहुत से साधु-साध्वियों का जन्म एवं दीक्षा तो मालवा में हुई पर उनका विहार क्षेत्र—राजस्थान, गुजरात में ही अधिक रहा। १६वीं शताब्दी में विशिष्ट परिस्थितियों के कारण कुछ जैन यति स्थायी रूप से या अधिकांश रूप से एक स्थान पर अपना उपासरा बनाकर रहने लगे। अब उन यतियों के अधिकांश उपासरे खाली पड़े हैं, अर्थात् उनके शिष्य-प्रशिष्य की संतति नहीं रही। हाँ यह अवश्य सम्भव है कि वहाँ उनके ग्रन्थ भण्डार अभी तक पड़े हों। पर मालवा के ऐसे यतिजनों के ग्रन्थ भण्डारों की अभी तक खोज ही नहीं हुई। अतः मालवा प्रदेश में रचित जैन साहित्य की बहुत ही कम जानकारी प्रकाश में आयी है।

दिगम्बर सम्प्रदाय में साधु-साध्वी तो बहुत ही कम रहे पर श्रावकों में स्वाध्याय का क्रम बराबर चलता रहा। इसलिए जहाँ-जहाँ भी दिगम्बर जैन मन्दिर हैं वहाँ थोड़े-बहुत हस्तलिखित शास्त्र अवश्य ही मिलेंगे। उनकी भी खोज की जानी आवश्यक है।

प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी और गुजराती इन पाँचों भाषाओं में मालवा प्रदेश में काफी जैन साहित्य रचा गया है। अतः एक-एक भाषा के साहित्य की स्वतंत्र रूप से खोज की जानी आवश्यक है। दिगम्बर, श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के स्थानकवासी सम्प्रदाय का भी मालवा प्रदेश में गाँव-गाँव में निवास है। बहुत से ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों की अंतिम प्रशस्तियों में ग्राम नगरों के नाम दिये हैं पर उनमें प्रदेश का उल्लेख नहीं मिला। अतः वे ग्राम किस प्रदेश के हैं, यह ठीक से नहीं कहा जा सकता। क्योंकि एक ही नाम वाले कई ग्राम नगर भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भी पाये जाते हैं। अतः प्रस्तुत लेख में मालव प्रदेश के जिन-जिन स्थानों के रचित साहित्य की निश्चित जानकारी मिली है उन्हीं का विवरण दिया जायगा।

प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी और दिगम्बर साहित्य की चर्चा इस लेख में नहीं की जा रही है। क्योंकि इसकी खोज में काफी समय व श्रम अपेक्षित है। अतः केवल श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के उन कवियों की रचनाओं का ही विवरण इस लेख में देना सम्भव होगा कि जिन्होंने मालव प्रदेश के किसी ग्राम नगर में रचे जाने का स्पष्ट उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है।

यहाँ एक और भी स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक समझता हूँ कि मालव प्रदेश की बोली साधारण-सी भिन्नता रहते हुए भी राजस्थानी ही रही है। प्राचीनकाल में तो बहुत व्यापक प्रदेश की भाषा एक प्राकृत ही रही। फिर उसमें से अपभ्रंश का विकास हुआ। पर उसमें भी प्रान्तीय भेद, कम से कम साहित्यिक रचनाओं में तो अधिक स्पष्ट नहीं है। इसी तरह अपभ्रंश से जिन प्रान्तीय भाषाओं का विकास हुआ उनमें भी पहले अधिक अन्तर नहीं था। क्रमशः वह अन्तर ज्यों-ज्यों अधिक स्पष्ट

होता गया त्यों-त्यों प्रांतीय भाषाओं के नाम अलग से प्रसिद्ध होते गये। जिस भाषा को विद्वानों ने प्राचीन राजस्थानी या मरु-गुर्जर का नाम दिया है वह मालवा में भी चालू रही है। मालवा के अधिकांश जैन श्वेताम्बर श्रावक तो राजस्थान से ही वहाँ गये हुए हैं। वैसे राजस्थान और मालवा की सीमाएँ भी मिली हुई हैं। कई ग्राम-नगर तो शासकों के आधिपत्य को लेकर कभी मालवा में सम्मिलित हो गये तो कभी राजस्थान में। इसलिए श्वेताम्बर जैन भाषा कवियों ने मालवा में रहते हुए भी जो काव्य रचना की है, उसकी भाषा राजस्थानी से भिन्न नहीं है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से विचार करने पर राजस्थान, गुजरात और मालवा की भाषा एकसी रही है। बोलचाल की भाषा में तो “बारह कोसे बोली बदले” की उक्ति प्रसिद्ध ही है। आगे चलकर मालवा की बोली पर निकटवर्ती प्रदेश की बोली हिन्दी का प्रभाव भी पड़ा। अतः वर्तमान मालवी बोली राजस्थानी और हिन्दी दोनों से प्रभावित लगती है। फिर भी उसमें राजस्थानी का प्रभाव ही अधिक है। इसीलिए भाषा वैज्ञानिकों ने मालवी को राजस्थानी भाषा समूह की बोलियों के अन्तर्गत समावेशित किया है।

मालवा प्रदेश में रचित जिन श्वेताम्बर भाषा कवियों और उनकी रचनाओं का विवरण इस लेख में दिया जा रहा है। उनका आधार ग्रंथ जैन गुर्जर कवियो भाग १-२-३, नामक ग्रंथ है। जो गुजराती लिपि में जैन श्वेताम्बर कान्फेस, बम्बई से ३०-४० वर्ष पहले छपे थे और इन ग्रन्थों को कई वर्षों के श्रम से अनेक जैन ज्ञान भण्डारों का अवलोकन करके जैन साहित्य महारथी स्वर्गीय मोहनलाल दुलीचन्द देसाई ने तैयार किया था। उन्होंने इसी तरह प्राकृत संस्कृत के जैन साहित्य और जैन इतिहास का विवरण अपने ‘जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास’ नामक ग्रंथ में दिया है पर खेद है इन महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थों का उपयोग जैनेतर विद्वानों की बात तो जाने ही दें, पर जैन विद्वान भी समुचित रूप से नहीं कर रहे हैं। गुजराती लिपि और भाषा में होने से कुछ जैन विद्वानों को इनके उपयोग में कठिनाई हो सकती है पर गुजराती लिपि तो नागरी लिपि से बहुत कुछ मिलती-जुलती सी है। केवल आठ-दस अक्षरों को ध्यान से समझ लिया जाय तो बाकी सारे अक्षर तो नागरी लिपि जैसे ही हैं। अतः हमारे विद्वानों को ऐसे महत्त्वपूर्ण जैन ग्रन्थों से अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

मालवा के श्वेताम्बर जैन राजस्थानी कवियों में सबसे पहला कवि कौन और कब हुआ तथा उसने कौन-सी रचना की यह तो अभी अन्वेषणीय है। साधारणतया विद्या-विलासी महाराजा भोज के सभा पण्डित एवं तिलोक मंजरी के रचयिता महाकवि धनपाल का जो ‘सत्यपुरीय महावीर उत्साह’ नामक लघु स्तुति काव्य मिलता है। उसमें अपभ्रंश के साथ कुछ समय तक लोक भाषा के विकसित रूप भी मिलते हैं। उससे मालवी भाषा के विकास के सूत्र खोजे जा सकते हैं। उसके बाद में १५वीं सदी तक भी मालवा प्रदेश में बहुत से जैन कवि हुए हैं पर उनकी रचनाओं में रचना स्थान का उल्लेख नहीं होने से यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया जा सका है।

सोलहवीं शताब्दी से मालवा के ग्राम नगरों में रचे जाने की स्पष्ट सूचना देने वाली रचनाएँ मिलने लगती हैं। अतः वहीं से श्वेताम्बर जैन कवियों और उनकी रचनाओं का विवरण देना प्रारम्भ कर रहा हूँ। करीब ४०० वर्षों तक यह परम्परा ठीक से चलती रही है। अतः इस लेख में १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ से १६वीं शताब्दी तक की ३०० वर्षों के मालवा में रचित श्वेताम्बर जैन भाषा साहित्य का संक्षिप्त उल्लेख किया जायेगा।

१. सम्वत् १५०७ में ओसवंशीय आनन्द मुनि ने धर्म लक्ष्मी महतरा भाख नामक ५३ पद्यों का ऐतिहासिक काव्य बनाया जो कि 'जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय' नामक ग्रंथ में प्रकाशित भी हो चुका है। इसमें रत्नाकरगच्छ के रत्नसिंह सूरि के समुदाय की धर्मलक्ष्मी महतरा का ऐतिहासिक परिचय दिया जाता है। वे विहार करती हुई मांडवगढ़ पहुँचती हैं, उसका वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

मांडवगढ़ गिरि आवीया अे ननिहि मनोरथ लाहि ।
 श्री धर्म लक्ष्मी मुहतर वांडुउ, सफल जन्म तुम्ह होहि ॥३६॥
 भाग्य विशेषिइ पुहतां श्री रत्नसिंह सूरिद ।
 श्रीधर्मलक्ष्मी मुहतर साचिहु, पेखवि अति आणंद ॥३७॥
 इण अवसरि नित महा महोत्सव, श्री संघपति उल्लास ।
 मालवदेस नयरि गठि मंदिर पूरई वंछित आस ॥३८॥
 हंस गमणि मृग लोयणि सुन्दरि, अहवि करइ सिंगार ।
 हसमसि नारि वधावइ मोती, इण परि रंग अपार ॥३९॥
 दिये उपदेश अस्योम अनोपम, बूझइ जाण-अजाण ।
 भल विदवास तथा चित चमकइ, महिमा मेरु समान ॥४०॥

अन्त में कवि ने रचनाकाल, स्थान व मांडवगढ़ के श्रावकों का उल्लेख करते हुए लिखा है :—

गुरुआ अे आचार, कीधा गुण नवि वीसरई अे ।
 जाणती अे गुरु उवयार, श्रीधर्मलक्ष्मी मुहतरा अे ॥
 मंडवू अे नयर प्रवेसि, संवत् (१५०७) पनरसतोतरइ अे ।
 श्री मुहतर अे भास करेसि, ओसवंसि आनंद मुनि ॥
 श्री संघ अे सि अनदिन मंडण भीम सहोदर अे ।
 सोती अे भोजा तन, संघपति माणिक पय नमइ अे ॥
 धामिणि अे दो आसीस, श्री रयणसिंह सूरि परिवार सहा ।
 जीवुं अे कोडी वरीस, श्री धर्मलक्ष्मी मुहतरा ऐ ॥
 दूहा—श्री धर्मलक्ष्मी मुहतरा, अविचल जी ससिभाण ।
 अह निसि अेह गुण गाइतां, रिद्धि वृद्धि कल्याण ॥

२. सम्वत् १५१६ में खरतरगच्छ की पिटपलक शाखा के स्थापक विद्वान जैनाचार्य जिनवर्द्धनसूरि के शिष्य न्यायसुन्दर उपाध्याय ने विद्या विलास नरेन्द्र चौपाई की रचना नरवर में की। ३५७ पद्यों का यह चरित्र-काव्य अभी अप्रकाशित है। इसके वे अंतिम तीन पद्य नीचे दिये जा रहे हैं जिनमें कवि ने ग्रन्थ का नाम, गुरु व अपना नाम तथा रचनाकाल एवं स्थान का उल्लेख किया है—

इणि परि पूरउ पाली आऊ । देवलोक पहुतउ नर राउ ॥
 खरतरगच्छि जिनवर्धन सूरि । तासु सोस बहु आणंद पूरि ॥
 श्री अ न्याय सुन्दर उवझाय । नरवर किध प्रबन्ध सुभाग ॥
 संवत् पनर सोल (१५१६) वरसंमि । संघ वयण अे विहिया सुरंमि ॥
 विद्या विलास नरिद चरित्र । भविय लोय कहूँ अेव पवित्र ॥
 जे नर पढई सुणई सांभलई । पुष्य प्रभाव मनोरथ फलई ॥

३. सम्वत् १५६१ में कवि ईश्वर सूरि ने ललितांग चरित्र नामक सुन्दर काव्य दशपुर (मन्दसौर) में बनाया। काव्य की दृष्टि से यह बहुत उल्लेखनीय एवं मनोहर है। इसकी प्रशस्ति में कुछ ऐतिहासिक तथ्य भी प्राप्त हैं। इसकी भाषा भी कुछ अपभ्रंश प्रभावित है। इसे अवश्य प्रकाशित करना चाहिये। पाटण भण्डार में इसकी प्रति है। इसमें छन्दों का वैविध्य भी उल्लेखनीय है। प्रशस्ति देखिये—

महि महति मालव देश, घणा कणय लच्छि निवेस ।
 तिह नयर मंडव दुग, अहि नवउ जाण कि सग्ग ॥
 तिह अनुल बल गुणवंत, श्री ग्यास सुत जयवंत ।
 समरथ साहस धीर, श्री पातिसाह निसीर ॥
 तसु रज्जि सकल प्रधान, गुरु हव रयण निधान ।
 हिन्दुआ राय वजीर, श्री पुंज मयणह धीर ॥
 श्रीमाल वंश वयंश, मानिनी मानस हंस ।
 सोना राय जीवन पुत्र, बहु पुत्र परिवार जुत्र ॥
 श्री मलिक माकर पहि, हय गय सुदूढ बहु चहि ।
 श्री पुंज पुज नरीन्द्र, बहु कवित केलि सुछंद ॥
 दश पुरह नयर मझारि, श्री संघ तणइ आधारि ।
 श्री शांति सूरि सुपसाई, दुह डुरिय दूर पुलाई ॥
 सेसि रसु विक्रम काल (१५६१), ए चरिय रचिउ रसाल ।
 जां ध्रुव रवि ससि नभर, तहाँ जयउ गच्छ संडेर ॥
 वाचंत वीर चरित्त, विच्छरउ जगि जय किति ।
 तसु मणुअ भव धन धन्न, श्री पासनाह प्रसन्न ॥

इसका अपर नाम 'रासक चूड़ामणि पुण्य प्रबन्ध' भी दिया है। इसमें गाथा, दूहा, षटपद, कुण्डलिया, रसावला वस्तु, इन्द्रवज्रा, अडिल्ल, सूर बोली, वर्णन बोली, यमक बोली, सोरठी आदि १६ तरह के छन्द प्रयुक्त हैं।

४. सम्वत् १५६५ के भादवा सुदि ७ गुरुवार को मण्डप दुर्ग में मलधार गच्छ के कवि हीरानन्द ने 'विद्या-विलास पवाड़ों' नामक चरित-काव्य बनाया। उसकी प्रति भण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट पूना के संग्रह में है।

५. १७वीं शताब्दी के आगमगच्छीय कवि मंगल मणिक ने उज्जयिनी में रहते हुए दो सुन्दर लोक कथा काव्य बनाये। जिनमें से प्रथम विक्रम राजा और खापरा चोर रास की रचना सम्वत् १६३८ के माघ सुदी ७ के रविवार को पूर्ण हुई। दूसरी रचना-अम्बड़ कथानी चौपाई का प्रारम्भ तो सम्वत् १६३८ के जेठ सुदी पांचम गुरुवार को कर दिया गया था पर उसकी पूर्णाहुति सम्वत् १६३९ के कार्तिक सुदी १३ के दिन उज्जयिनी में हुई। इसकी प्रशस्ति में भट्टी खास निजाम और भानु भट्ट एवं मित्र लाडजी का उल्लेख किया है। मित्र लाडजी दरिया गुणी की प्रार्थना और मुनि लाडस के आदर के कारण ही इस रास की रचना की गई है।

उजेणीइ रही चोमासि, कथा रची अे शास्त्र विभासि ।
 वितोद बुधि वीर रस बात, पण्डित रसिक मांहि विख्यात ॥५७॥
 भरी खान नदू ज जाम पसाय, विद्या भणी भानु मेर पाय ।
 मित्र लाडजी सुणि वा कालि, वाची कथा विडालधीं राजि ।
 कहई वाचकय मंगल माणिकय, अम्बड़ कथा रसई आधिकय ॥
 ते गुरु कृपा तणो आदेश, पूरा सात हुआ आदेश ॥५८॥

६. सम्वत् १६६२ के वैशाख सुदी १५ गुरुवार को उज्जैन में तपागच्छीय कवि प्रेमविजय ने १८५ दोहों का 'आत्म-शिक्षा' नामक उपयोगी ग्रन्थ बनवाया जो प्रकाशित भी हो चुका है।

संवत् सोल वासठ (१६६२), वैशाख पुन्यम जोय ।
 वार गुरु सहि दिन भलो, अे संवत्सर होय ॥
 नगर उजेणीयां वली, आत्म शिक्षा नाम ।
 मन भाव धरी ने तिहां, करी सीधां वंछित काम ॥
 अेकशत अेशी पांच अे, इहा अति अभिराम ।
 भणे सुणे जे सांभणे ते, लहे शिव ठाम ॥१८५॥

७. सम्वत् १६७२ के मगसिर सुदी १२ को उज्जैन में कवि कृपासागर ने नेमिसागर उपाध्याय निर्वाण रास १० ढालों, १३५ पद्यों का बनाया। यह एक ऐतिहासिक काव्य है। इसके प्रथम पद्य में उज्जैन के अवन्ती पार्श्वनाथ का स्मरण किया गया है। रचना सम्वत् व स्थान का उल्लेख इस प्रकार है—

सम्बत सोल बिहत्तरइ, नयर उजेणी मझार जी।
मगसिर सुदि वारस दिने, थुणिकु श्री अणगारोजी।

जैन गुर्जर कवियो भाग १ पृष्ठ १८४ के अनुसार यह रास प्रकाशित भी हो चुका है।

८. इसी बीच सम्बत् १६६१ में तपागच्छीय कवि विजयकुशल के शिष्य ने शील रत्न रास की रचना की। इस रास का प्रारम्भ उज्जैन के निकटवर्ती सामेर नगर में किया गया था। पूर्णाहुति मगसी पार्श्वनाथ के प्रसाद से हुई है।

मालव देश मनोहर दीडि मोहि मन।
शेलडी स्याल्य गोधुम विणा, ओहवऊ हेश रतन्न ॥११॥
श्री मगसी पास पसाऊलि, कीधउ रास रतन्न।
भविक जीव तने सांभली, करयो शील जतन्न ॥१२॥
सामेर नगर सोहामणु, नयर ऊजाणी पास।
वाडी वन सर शोभतुं जिहां छि देव नीवास ॥१३॥
सम्बत सोल ओकसठि कीधऊ रास रसाल।
शील तणा गुर्णमि कहि मूकी आल प्रपाल ॥१४॥

९. सम्बत् १६७६ के सावण वदी ६ गुरुवार को दशपुर में विजय गच्छ के कवि मनोहरदास ने 'यशोधर चरित्र' काव्य बनाया, जिसकी प्रति बड़ीदा सेन्द्रल लायब्रेरी में है।

सम्बत सोल छहतरई सार। श्रावणवदि षष्ठि गुरुवार ॥
दशपुर नवकण पास पसाय। रच्यो चरित्र सबइ सुखदाय ॥
द्विजयगच्छि गुण सूरि सूरिद। जस दरसण हुई परमाणंद ॥
श्रीमुनि देवराज सुखकन्द। तास शिष्य मल्लिदास मुनिन्द ॥
तस पद पंकज सेवक सदा। मनोहरदास कहई मुनि मुदा ॥
जा मन्दिर अवनी चिर रहई। तां लागि ओ चरित्र गह गहई ॥
राय जसोधर तणो चरित्र। सांभलतां हुई पुण्य पवित्र ॥
ओ चरित्र नरनारी भणई। तेहनइ लिच्छमी घर आंगणई ॥

१०. सम्बत् १६९३ के जेठ वदी १३ गुरुवार को सारंगपुर गुजराती लोकागच्छीय कवि रामदास ने दान के महात्म्य पर पुण्यपाल का रास बनाया। इसमें चार खण्ड हैं, कुल गाथाएँ ८२३ हैं।

सम्बत सोल त्रयाणुवा (१६९३) वर्षे, मालव देश मझारि।
सारंगपुर सुन्दर नगरे, जेठ वदि तेरसरे वृहस्पतिवार ॥
पुण्यपाल चरित सोहामणो, सांभले जे नर सुजाण।
ऋद्धि समृद्ध सुख-सम्पदा, ते पगि पगि पामेरे कोडि कल्याण ॥

११. सम्बत् १७३० के विजयदशमी गुरुवार को मालवा के शाहपुर में 'सती मृगांकलेखारास' तपागच्छीय कवि विवेक विजय ने चार खण्डों वाला बनाया। उसमें ३५ ढालें हैं।

श्री वीर विजय गुरु सुपसायो, मृगांक लेखा रास गायो रे।
 श्री ऋषभदेव संघ सानिद्धे, सरस सम्बन्ध सवायो रे।
 सुखीयाने सुणंता सुख वाद्धे, विरह टले विजोगो रे।
 विवेकविजय सती गुण सुण्यां पांगे वंछित भोगा रे।
 सम्बत सतरंतीवा (१७३०) वरषे, विजय दशमी गुरुवार रे।
 साहपुर सो भीत मालवे रास रच्यो जयकार रे।

१२. सम्बत् १७१८ के वैशाख सुदी १० को भोपावर में शान्तिनाथजी के प्रसाद से तपागच्छीय कवि श्री मानविजय ने नव तत्व रास बनाया जो १५ ढालों में है।

सम्बत सतर अठारई, वैशाख सुदि दशमी सार।
 श्री शान्तीसर सुदसाय, पुर भोपावर मांहि ॥

मालवा प्रदेश में कतिपय जैन तीर्थ भी हैं जिनमें मगसी पारसनाथ श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों के मान्य हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनेक कवि जिन्होंने इस तीर्थ की यात्रा की थी उन्होंने यहाँ के पार्वनाथ के कई स्तुति-काव्य बनाये हैं। उनमें से विजयगच्छीय श्री उदयसागरसूरि रचित 'मगसी पार्वनाथ स्तवन' की कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं—

इस पाससामी सिद्धि गामी, मालव देसई जाणीयइ।
 मगसिय मंडण दुरित खंडण, नाम हियडइ आणीयई।
 श्री उदयसागर सूरि पाँय प्रणमइ अहनिस पास जणंद अे।
 जिनराज आज दया दीठ तु मन हुवई आणद अे।

पृष्ठ ५३० में सुबुद्धि विजय के मगसीजी पार्व १० भव स्तवन का विवरण जे० गु० का० भा० ३ में है।

कई रचनाओं का रचना स्थान संदिग्ध है जैसे १५वीं शताब्दी के अन्त या १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में रचे एक महावीर स्तवन का विवरण जैन गुर्जर कवियों भाग—१ पृष्ठ ३३ में छपा है। उसमें यान विहार का अन्त में उल्लेख है जिसे श्री देसाई ने उज्जैन में बताया है। पर उद्धरित पदों में मालव या उज्जैन का कहीं उल्लेख नहीं है। कवि का नाम भाव सुन्दर बतलाया है वह भी संदिग्ध है। क्योंकि वहाँ इस नाम का दूसरा अर्थ भी हो सकता है। प्रारम्भ में सोमसुन्दर सूरि को स्मरण किया है अतः स्तवन प्राचीन है। अंतिम पद्य में यान विहार पाठ छपा है। देसाई ने ऊपर के विवरण में यान विहार दिया है। पता नहीं शुद्ध पाठ कौनसा है। उज्जैन में इस नाम का कौनसा विहार या मंदिर है—यह मुझे तो पता नहीं है। देसाई ने इसे उज्जैन में बताया है, इसका आधार अज्ञात है।

पद्य रचनाओं की तरह राजस्थानी गद्य में लिखी हुयी मालव प्रदेश की कुछ गद्य रचनाएँ मिली हैं जिनमें से एक का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

१६वीं शताब्दी के खरतरगच्छीय मुनि मेरुसुन्दर बहुत बड़े गद्य लेखक हुए हैं। उन्होंने मांडवगढ़ में रहते हुए कई जैन ग्रन्थों की भाषा टीकाएँ 'बालावबोध' के नाम से लिखी हैं जिनमें से 'शीलोपदेशमाला बालावबोध' सम्बत् १५२५ में मांडव दुर्ग के श्रीमाल जातीय संघपति धनराज की अभ्यर्थना से रचा गया है। यथा—

श्री मेरुसुन्दर गणेशगुणभक्ति परायणः ।
 नाना पुष्यजनाकीर्णं दुर्गं श्री मांडवाभिधे ॥
 उदार चरित खयात श्रीमाल ताति सम्भवः ।
 संघाधिप धनराजो विजयो सति दया पर ॥
 तस्याभ्यर्थनया भव्यजनोपकृतिदेतवे ।
 शीलोपदेश मालाया बालावबोधो मया रचितः ॥
 तत्क^५'२ व्रत^५ चंड^१मिते वर्षे हर्षेण मेरुणा रचितः ।
 तावन्नन्दतु सोज्यं भाव जिन वीर तीर्थमिदं ॥

मांडवगढ़ में १६वीं शताब्दी में काफी जैन मंदिर थे। उन मंदिरों का विवरण खरतरगच्छीय कवि खेमराज ने मंडपाचल चैत्य परिपाटी में दिया है। २३ पद्यों की इस ऐतिहासिक रचना को मैं प्रकाशित भी कर चुका हूँ। आदि अन्त के पद्य नीचे दिये जा रहे हैं जिसमें इसे 'फाग बंधी' शैली में रचे जाने का उल्लेख किया है।

पास जिणसर पय नमिय, कामिय फल दातारो ।
 फाग बंधिहउं संथुणिसु, जिणविर बिब अपारो ॥
 इणिपरि चैत्य प्रवारी रची मांडवगढ़ि हरि सिद्धि ।
 संचोय सुकृत भंडार सुगुरु सोमधर्मगणि सीसिहि ॥
 फाग बंधि जे पुष्यवंत नारी नर गावई ।
 खेमराज गणि भणई तेई यात्रा फल पावई ॥

मालव प्रदेश ने अनेक जैन आचार्यों, मुनियों कवियों तथा धनीमानी श्रावकों को जन्म देने का श्रेय प्राप्त किया है। उन सबकी खोज की जाय तो एक बड़ा शोध प्रबन्ध तैयार हो सकता है। केवल एक मांडवगढ़ के जैन इतिहास की भी इतनी बड़ी सामग्री प्राप्त है कि उस पर भी महत्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध लिखा जा सकता है। डा० सुभद्रादेवी क्राउभे ने मांडवगढ़ के जैन इतिहास की अच्छी सामग्री इकट्ठी की थी। और कुछ लेख भी लिखे हैं, पर वे शोध प्रबन्ध का काम पूरा नहीं कर सकी हैं। वे अब काफी वृद्ध हो चुकी हैं अतः उनकी संग्रहीत सामग्री ही उनसे प्राप्त करके यदि प्रकाशित करदी जाय तो कोई भी व्यक्ति उस पर शीघ्र ही शोध प्रबन्ध तैयार कर सकेगा। मांडवगढ़ के महान् साहित्यकार मंत्री मंडन तथा मंत्री संग्रामसिंह एवं जावड आदि सम्बन्धी मेरे भी कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं। इसी तरह धारा नगरी के जैन इतिहास और साहित्यकार सम्बन्धी मेरा लेख कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है।

१७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में वृत्तमगच्छ में एक मालवी ऋषि हो गये हैं। मालव प्रदेश में उत्पन्न होने के कारण ही उनका नाम 'मालवी ऋषि' पड़ गया। उनके जीवन से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक घटना मालव इतिहास का एक आवृत पृष्ठ खोलती है। इसके सम्बन्ध में मेरा एक लेख पूर्व प्रकाशित हो चुका है।

सम्बत् १६१६ के भादवा मास की पंचमी को मालव ऋषि की सज्जाय रची गयी है जिसमें उक्त घटना का उल्लेख है। इस रचना के कुछ पद्य यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं।

मालवीय ऋषि महिमा बडुरे जे हुई संघ लेई देसि।
मालवदेश महिय देवास ग्राम निधि जेहनी परसिद्धि जाणीइ अे।
तेहनउ देस-घणी ऋद्धि छाई जास घणी, सिल्लादी नरायव साणी अे॥

१६वीं शताब्दी में मालवा के आजणोढ गांव के सोलंकी रावत पदमराय की पत्नी सीता के दो पुत्र हुए जिनमें ब्रह्मकुमार का जन्म सम्बत् १५६८ के मगसिर सुदि १५ गुरुवार को हुआ था। वे अपने बड़े भाई के साथ द्वारका तीर्थ की यात्रा करने को सम्बत् १५७६ में गये। वहाँ से गिरनार जाने पर रंगमंडन मुनि से दोनों भाइयों ने जैन दीक्षा ग्रहण की। उनमें से आगे चलकर ब्रह्ममुनि पार्श्वचन्द्र सूरि की परम्परा में विनयदेव सूरि नामक आचार्य बने। ये बहुत अच्छे कवि थे। सम्बत् १५६४ से १६३६ के बीच इन्होंने चार प्रत्येकबुद्ध चौपाई, सुधर्मा गच्छ परीक्षा, सुदर्शन सेठ चौपाई, नेमिनाथ विवाहला आदि बहुत से काव्य रचे। यद्यपि उन रचनाओं में रचना-स्थान का उल्लेख नहीं है पर ये ब्रह्ममुनि मालव के जैनेतर कुटुम्ब में जन्म लेकर जैन आचार्य बने। इसलिए इनका उल्लेख यहाँ कर देना आवश्यक समझा। इनकी जीवनी सम्बन्धी मनजी ऋषि रचित दो रचनायें प्राप्त हैं। इनमें से प्रथम रचना विजयदेव सूरि 'विवाहलो' की कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं।

मालव देश सोहामणो, गाम नगर पुर ढाम।
श्रावक वसइ व्यवहारियाए, लिइ जिणवर नूं नाम॥१४॥
आजणोठ नयर सोहामणूं, घणा राउत ना ढाम।
पदमो राउत तिहां वसइ, नारि सीता दे नाम॥१५॥
सीता दे कुखि इं अवतर्या, धन ब्रह्मरिषि गुरुराय।
भविक जीव प्रतिबोधता, आव्या मालव देश॥कि०॥१६॥

खोज करने पर और भी बहुत सी ऐसी रचनायें मिलेंगी जो मालव प्रदेश के साहित्य और इतिहास की जानकारी में अभिवृद्धि करेंगी।

मध्य प्रदेश सन्देश के ता० ५ अगस्त १९७२ के अंक में तेजसिंह गौड़ का प्राचीन मालव के जैन विद्वान और उनकी रचनायें नामक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य के रचयिता जैन विद्वानों का विवरण दिया गया है। अतः प्रस्तुत लेख अपूर्ण रह गया है। उसकी पूर्ति के लिए यह खोज पूर्ण लेख बड़े परिश्रम से तैयार करके प्रकाशित किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में अभी और खोज की जानी आवश्यक है क्योंकि मालव प्रदेश से जैनधर्म का बहुत प्राचीन और घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अतः वहाँ प्रचुर साहित्य रचा गया होगा। वास्तव में यह विषय एक पी-एच० डी० के शोध प्रबन्ध का है। □

भगवान महावीर और मालवपति दशार्णभद्र

□ संकलनकर्ता—मुनि भास्कर (रत्न)

अनेकान्तवाद के सफल उपदेशक युगदृष्टा चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर ने एकदा बिहार प्रान्त एवं उत्तर प्रदेश के छोटे-मोटे ग्राम-नगर-पुर-पाटन आदि को चरणों से पावन करते हुए, धर्मोपदेश द्वारा भवी रूपी सरोजों को विकसित करते हुए, एवं मिथ्यात्व को तितर-बितर करते हुए हरे-भरे माता पदवी से विभूषित जैसा कि—

“देश मालवा गहन गम्भीर, डग-डग रोटी पग-पग नीर।”

इस कहावत के अनुसार उस महामहिम मालव धरती पर प्रथम चरण धरा। दूसरा भी इसी क्रमानुसार चरण धरते हुए दसपुर (मन्दसौर) के उस रमणीय शोभावर्धक उद्यान में आ विराजे। वन पालक ने अविलम्ब यह मंगल सूचना जनप्रिय सम्राट् दशार्णभद्र को दी—“नाथ ! आज सारे नगर निवासियों का भाग्योदय हुआ है। आप जिन भगवान के नाम की सायं-प्रातः अर्चा-चर्चा करते हैं, क्षण-क्षण पल-पल जिनकी आप प्रतीक्षा करते हैं एवं जिनके विषय में पूछ-ताछ भी आप निरन्तर किया करते हैं। वे दीनों के प्रतिपालक, करुणा, क्षमा के भंडार, अहिंसा के अवतार, दुःखी-दरिद्रों के उद्धारक, उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शन के धारक, सर्वजनहिताय, सर्व जीव सुखाय, स्वयं तिरने वाले, एवं दूसरों को तारने वाले ज्ञातपुत्र भगवान महावीर अपने शिष्य समुदाय सहित इस शोभावर्धक उद्यान में पधारे हैं। बस यही शुभ सूचना देने के लिए मैं आपकी सेवा में आया हूँ।”

खुश खबर सुनकर नृप दशार्णभद्र का मन-मयूर भक्ति के वशीभूत होकर जोरों से नाच उठा, झूम उठा। तत्क्षण सिंहासन से उतरा, अपने कमनीय कोमल अंगों को सम्यक् प्रकार से संकोच कर प्रभु महावीर को वहीं से विधिवत् वन्दन-नमन कर पुनः सिंहासन पर आसीन हुआ और सूचनादायक को सहर्ष विपुल जीवनोपयोगी धनराशि देकर विदा किया। आज प्रभु की धर्म देशना से दशपुर की रंग-स्थली, तीर्थस्थली बन चुकी थी। उसी उद्यान के सन्निकट साफ-सुथरे विशाल भू-भाग पर देवताओं ने समवसरण की रचना की थी। जिसमें हजारों नर-नारियों का समूह चारों ओर से उमड़ पड़ा था। नभ मार्ग से देव देवी परिवार भी सोल्लास धरा पर उतर रहे थे, तो तीसरी ओर से पशु-पक्षी की पंक्तियाँ भी एक के बाद एक उसी ओर वाणी-सुधापान हेतु भागी आरही थी। इस प्रकार दशपुर का पवित्र प्रांगण प्रभु के पदार्पण से धन्य-धन्य

हो उठा। भगवन्त ने उत्कृष्ट निनाद से मिष्ट-शिष्ट मेघघोष की तरह गम्भीर सभी जगह सुनाई देनेवाला, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के विभिन्न सन्देशों का एक ही साथ एक बात में निराकरण करने वाला दिव्य प्रवचन प्रारम्भ किया। मानो प्रवचन के महान् लाभ से कोई वंचित न रह जाय, इस कारण प्राणी-प्राणी और ज्ञानी-ध्यानी में दौड़ा-दौड़ एवं होड़ा-होड़-सी लगी थी।

दशार्णभद्र ने भी सोचा—“मुझे भी अतिशीघ्र प्रभु दर्शन के लिए जाना है। क्योंकि प्रभुदर्शन, वाणी, चरणस्पर्श, सेवा भक्ति एवं महा सांगलिक का सुनना पुण्यवंत को ही मिलता है। अतः ऐसा सुनहरा मौका मुझे सहज में ही मिला है। धर बैठे गंगा आई, फिर प्यासा क्यों रहूँ और कर्मदल-मल को दूर करूँ? अतएव क्षणमात्र का भी प्रमाद न करते हुए मुझे सेवा में पर्युपासना में पहुँचना अत्यन्त अत्युत्तम रहेगा। दूसरे ही क्षण अपर विचारों की तरफें उठ खड़ी हुईं “क्या सीधी-सादी पोशाक में जैसा खड़ा हूँ, वैसा ही चला जाऊँ? नहीं-नहीं। यह तो सामान्य वैभव का दिग्दर्शन-प्रदर्शन होगा। साधारण वेश में तो नगर के प्रत्येक नर-नारी जा ही रहे हैं। मुझमें और साधारण जन में परिधान-वाहन का अन्तर तो होना ही चाहिए।

मुझे पूर्वकृत पुण्य प्रताप से अपार धनराशि, दास-दासी एवं द्विपद-चतुष्पद आदि सभी प्रकार की सम्पत्ति मिली हैं। उसका उपयोग करना ही तो श्रेयस्कर होगा। वनी एक दिन तो इस सम्पदा का विनाश सुनिश्चित है। अतएव प्रभु दर्शन के बहाने सम्प्रति सम्पत्ति का सांगोपांग रूप से प्रदर्शन करना समयोचित ही रहेगा। इससे समीपस्थ राजा-महाराजाओं पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा और यत्र-तत्र-सर्वत्र सभी को ऐसा मालूम हो जायेगा कि नृप दशार्णभद्र के पास अटूट खजाना विद्यमान है। आगन्तुक जन समूह भी मेरे विपुल-वैभव का सहज में ही दर्शन भी कर सकेगा और अनुभव भी उनको ऐसा हो जायेगा कि—नृप दशार्णभद्र के सिवाय इतना विशाल आडम्बर और ठाट-बाट के साथ अन्य कोई भी सम्राट् आज दिन तक भगवान् महावीर के दर्शन के लिए नहीं आया। ‘एक पन्थ अनेक काज’ काम का काम, नाम का नाम और दर्शन के बहाने वैभव का प्रदर्शन जहाँ-तहाँ मेरे नाम की माला फिरने लगेगी। बस सम्पूर्ण लाव-लशकर के साथ जाने की नृप ने ठान ली। उत्साह उमंग के साथ-साथ राजा के मन-मस्तिष्क में भरी नदी की तरह अभिमान का वेग भी बढ़ने लगा। “भारी से भारी तैयारी करो” चतुरंगिणी सेनापतियों को नृप की ओर से शीघ्र आदेश मिला। तदनुसार सुवर्णाभूषणों से भूषित हजारों हाथी-घोड़े-रथों की पंक्तियाँ आ खड़ी हुईं। जिनमें नृप दशार्णभद्र का गजरत्न मानो देवेन्द्र सवारीवत् और प्रमुखा रानी का भी इन्द्राणीवत् भास रहा था। इस प्रकार हजारों पैदल सेना से परिवृत हुए, समस्त परिवार से घिरे हुए गाने-बजाने की जयघोष से दशों-दिशाओं को पूरित करते हुए नृप आगे बढ़ने लगे। जनता असीम वैभव का दर्शन का आश्चर्योदधि में डूब रही थी। इतना वैभव! हमारे नाथ के पास। युग-युग तक जीओ हमारे भूपति! दशार्ण-भद्र! इस प्रकार जनता भवनोपरि से शुभ मंगल कामना से सुमनों को बिखेर रही थी

एवं हर्षित थी। इस प्रकार सवारी समवसरण की दिशा में आगे बढ़ रही थी और पीछे वैभव की सुदूर तक एक लम्बी कतार। जो सचमुच ही नृप के लिए अभिमान बढ़ने का निमित्त बनती जा रही थी।

“प्रभु अभी हाल कहाँ विराज रहे हैं ?” दर्शन की भावना से शक्रेन्द्र ने अवधि-ज्ञान से देखा, तो प्रभु दर्शन के साथ-साथ दशार्णभद्र के वैभव से लदी उस सवारी को और नृप के जीवन में उमड़ते हुए उस अभिमान के वेग-प्रवाह को भी देखा। अहो ! कितना गर्व ? कितना अभिमान ? मैं भी अभी मानवीय धरातल पर जाऊँ और बताऊँ कि वैभव किसे कहते हैं। वास्तव में नृप दशार्णभद्र कूप-मण्डूक मालूम पड़ रहा है। तभी तो बिन्दु सम्पत्ति पर फूला नहीं समा रहा है। बस, उसी समय शक्रेन्द्र ने वैक्रिय शक्ति से समवय वाले एक समान आकार एवं रंग-रूप वाले, एक सौ आठ देवकुमार तथा उतनी ही देवियाँ अपनी युगल भुजाओं में से प्रकट किये। दैविक शक्ति के प्रभाव से कई हाथियों की कतारें तैयार कर ली गई। एक-एक हाथी के दाँत की नुकीली नोक पर बावड़ी जिसमें निर्मल नीर में विकसित कमल पुष्प लहलहा रहे हैं और कमलों को एक-एक पँखुड़ी पर सोलह शृंगार से शृंगारित सुरांगना अतिमोदपूर्वक नृत्य कर रही हैं। ऐसे एक नहीं अनेकानेक हाथी धरातल पर दशार्णभद्र की सवारी के ठीक सामने एक के बाद एक उतरते दिखाई दिये।

दशार्णभद्र ने आकाश मार्ग से उतरती हुई अपूर्व ठाट-बाट वाली इन्द्र सहित सवारी को देखा। देखते ही चकित से रह गये। इन हाथियों के सामने मेरी यह सवारी ! आडम्बर युक्त यह साहसी, बिल्कुल फीकी है और तो ठीक किन्तु इस एक ही हाथी के समक्ष मेरा सारा वैभव तुच्छ एवं नहीं के बराबर है। वस्तुतः कूप-मण्डूक की तरह मैं अपनी लघु विभूति पर व्यर्थ ही फूल रहा हूँ। थोड़ी-सी सम्पत्ति पाकर क्षुद्र नदी की तरह शोर मचा रहा हूँ और आधे कुम्भ की तरह छलक रहा हूँ। बस अपने आप में नृप दशार्णभद्र ने बहुत लज्जित होकर सिर नीचे कर दिया। अभिमान हिम की तरह द्रवित हो उठा। मान-अभिमान का नृप ने समूल दाह संस्कार किया। लेकिन स्वाभिमान को अमर कैसे रखूँ ? ताकि बात की करामात सोलह आना बनी रहे।

उफ्..... ! स्वाभिमान को मिटाना और अमिट रखना मेरे हाथ का ही तो खेल है। बस, अनित्य भावना के उद्गार उभरे—“अणिच्चं खलु भो ! मणुयाणजीवियं कुसग्ग जलबिन्दु चंचलं।” मैं गृहत्याग करके प्रभु के चरण-शरण में पहुँचूँ। फिर देखें इन्द्र किस प्रकार होड़ कर सके ? जीवन के लिए यह भी तो नाटक करना आवश्यक है। बस सारी सवारी समवसरण में पहुँची। चरणस्पर्श करके दोनों हाथ जोड़कर नृप बोला—आराध्य प्रभो ! विभाव दशा के कारण मैं काफी समय तक कषाय किकर बना रहा, अब मुझे नित्यानित्य का भान हुआ है। अतएव अति शीघ्र इस उपस्थित जनता के समक्ष ही आप मुझे अपना शिष्य बनाइये। दीक्षा देकर मुझे दिव्य पाँच महाव्रत रूप महारत्नों को देकर कृत-कृत्य बनाने की महती कृपा कीजिए। यह मेरी

विनम्र एवं लघु प्रार्थना है ताकि भगवत्चरणाश्रय से जीवन का उद्धार कर सकूँ ।

शक्रेन्द्र और सारी जनता की निगाह एकदम नृप की विरागता पर थी । कहीं तो भोग-ऐश्वर्य के पिपासु और कहीं योगेश्वर बनने के लिए इतनी हठ विरतता !

अरे ! इसी को कहते हैं 'गुदड़ी के लाल ने कर दिया कमाल ।' जनता अचरज करती हुई दशार्णभद्र के आदर्श त्याग-वैराग्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी ।

शीघ्र ही प्रभु ने नृप दशार्णभद्र को आर्हती दीक्षा प्रदान की । दशार्णभद्र नृप अब मुनि के पद पर आसीन हुए । जनता के हजारों मस्तक श्रद्धा भक्ति से मुनि दशार्णभद्र के पद-पंकज में झुक गये । इन्द्र ने भी अपना मस्तक नवाया । पूर्व अवहेलना एवं अपमान की क्षमा याचना माँगी और बोला—“मुनीश्वर ! आपके आदर्श व महा मूल्यवान इस वेष की तुलना में मैं तथा मेरा समस्त वैभव तुच्छ है, कुछ भी समानता नहीं कर सकता । आप आध्यात्मिक तत्त्वों के धनी हैं, पुजारी एवं साधक हैं, जबकि हम तो भौतिक सुखों के दास हैं, भोगों में ही भटक रहे हैं । यह अद्वितीय घटना इतिहास में अमर रहेगी । मुने ! आपका स्वाभिमान-शाश्वत है । उसको कोई भी शक्ति क्षीण नहीं कर सकती है ।” ऐसा कहता हुआ इन्द्र अधिक स्तुति करता हुआ चला गया ।^१



१ दसण्णरज्जं मुइयं, चइत्ताणं मुणी चरे ।
दसण्णमद्दो निक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ ॥

(उत्तरा० १८।४४)

चतुर्थ खंड



धर्म, दर्शन और संस्कृति

सम्यक्ज्ञान : एक समीक्षात्मक विश्लेषण

□ मुनि रमेश [सिद्धान्ताचार्य, साहित्यरत्न]

ज्ञान की सार्वदेशिक महत्ता

चक्षुर्विहीन अन्धे प्राणी को शत्रु-मित्र का, चोर-साहूकार का, विष-अमृत का, पाषाण-पारस का, नकली-असली का एवं अपने और पराये का सम्यक् बोध नहीं हो पाता है।^१ अतिशीघ्र वह अपने को शत्रु के मायाजाल में जकड़ा देता है। स्व और पर की रक्षा करने में वह सामर्थ्यहीन रहता है। परपेक्षीय रहकर सदा दूसरों का सहारा ढँडा करता है। तुच्छ शक्ति भी हानि पहुँचाने में सफल हो जाती है। मतलब यह है कि—उसके लिए एक-एक कदम भी खतरे से खाली नहीं है। पता नहीं वह किस समय संकट के गहरे गर्त में गिरकर अपने देव दुर्लभ देह को क्षत-विक्षत करदे।

उसी प्रकार सम्यक्ज्ञान रूपी आँखें नहीं खुलने पर उस जीवात्मा की भी वैसी ही शोचनीय स्थिति बन जाती है। कारण यह है कि ज्ञान रूपी कसीटी के अभाव में हेय, ज्ञेय और उपादेय, कर्तव्य-अकर्तव्य एवं हित-अहित का उसे कुछ भी विवेक नहीं रहता और विवेक के अभाव में स्वकीय-परकीय अहित करके दुर्गति के द्वार उघाड़ देता है। इसी कारण ज्ञान की महत्ता बताते हुए मात्र, ज्ञान को ही प्रमाणमूत माना है। जीवाजीव आदि तत्त्वों का निश्चय करने में और हेय-उपादेय का विवेक करवाने में ज्ञान ही एक सबल प्रमाण है।^२ न्यायदर्शन की टीका में लिखा है—“ज्ञान प्रकाशमानमेवार्थं प्रकाशयति प्रकाशत्वात् यथा प्रदीपवत्” अर्थात् दीपक की तरह ज्ञान समस्त चराचर वस्तुओं को प्रकाशित करने वाला है। इसी मान्यता की परिपुष्टि व्यवहारभाष्य में की है—“ज्ञान विश्व के समस्त रहस्यों को प्रकाशित करने वाला है और ज्ञान से ही मनुष्य को कर्तव्य का सम्यक् बोध होता है।^३

एकदा गौतम भणघर ने प्रभु महावीर से पूछा—मंते ! क्या ज्ञान इह-भविक (इस भव में) पर-भविक (परभव में) साथ रहता है या उभय भविक है ?^४

प्रत्युत्तर में प्रभु महावीर ने कहा—गौतम ! ज्ञान सदैव आत्मा के साथ रहता है। अर्थात् ज्ञान इह-भविक, पर-भविक और उभय-भविक है।^५

१ अन्नाणी कि कही ? कि वा नाहिइछेय पावमं ?

—दश० ४।१०

२ (क) स्व-पर व्यवसायी ज्ञानं प्रमाणम् ।

(ख) अभिगतानभिगत वस्तु स्वीकार तिरस्कार क्षमं हि प्रमाणं अतो ज्ञानमेवेदम् ।

—प्रमाण-नय-तत्त्वालोक १।२।३

३ सब्ब जम्मुजोय करं नाणं ।

नाणेण नज्जए चरणं ॥

—व्यवहारभाष्य ७।२।६

४ इहभविए मंते ! णाणे परभविए णाणे तदुभय भविए णाणे.....।

५ गीयमा ! इहभविए वि णाणे, परभविए वि णाणे तदुभय भविए वि णाणे । —भगवती सूत्र

ज्ञान ज्ञानी से भिन्न नहीं, अभिन्न है

प्रायः सभी आस्तिक दर्शन किसी न किसी रूप में ज्ञान की महत्ता को निःसंकोच स्वीकार करते हैं। परन्तु ज्ञान के मूल भेद और अवान्तर भेद कितने हैं? इन्द्रियजन्य ज्ञान और अनिन्द्रिय-जन्य ज्ञान कौनसा है? कौनसा ज्ञान किन-किन विषयों का साक्षात्कार कराता है? ब्रह्म (केवल) ज्ञान की क्या परिभाषा, क्या विशेषता है? यह कब और किनको होता है? उक्त प्रश्नों का उचित समाधान विश्व के समस्त दर्शनों की अपेक्षा केवल जैनदर्शन ही प्रस्तुत करने में सक्षम है।

भगवान महावीर ने कहा है—जो ज्ञाता है, वह आत्मा है और जो आत्मा है वह ज्ञाता है।^१ ज्ञान आत्मा का स्वाभाविक गुण है। दृश्यमान और अदृश्यमान संसार उसका ज्ञेय विषय है। ज्ञान और ज्ञेय दोनों ज्ञानी से कभी दूर नहीं होते हैं। कदाच ज्ञेय दूर होने पर भी ज्ञानी आत्मा उसे जान लेती है; क्योंकि आत्मा ज्ञाता और द्रष्टा है।^२ भले आत्मा घनीभूत कर्मावरण से आवृत हो या फिर निगोद जैसी निम्न स्तरीय योनि में पहुँच गई हो तथापि आत्मा का उपयोग (चेतना) गुण न पूर्ण रूप से नष्ट होता है और न पूर्णरूपेण आवृत ही। जिस प्रकार भले कितने भी सघन बादल आकाश मण्डल में छा जायें, फिर भी सूर्य के प्रकाश का दिवस सूचक आलोक बिल्कुल विलुप्त न होकर स्वल्पांश में भी खुला रहता है। इसी प्रकार आत्मा का विशिष्ट ज्ञान गुण कभी भी आत्मा से विलग नहीं होता है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो फिर जीव जड़त्व गुण में परिणत हो जायगा। सभी शाश्वत द्रव्य अपने-अपने स्वभाव गुण से भ्रष्ट हो जायेंगे। संसार में शाश्वत घर्म वाला कोई द्रव्य नहीं रहेगा; परन्तु ऐसा कभी हुआ नहीं है। यह ध्रुव सिद्धान्त है कि—द्रव्याधिक नय की अपेक्षा सभी द्रव्य नित्य और शाश्वत हैं। पर्यायाधिक नय की अपेक्षा सभी द्रव्य अनित्य और अशाश्वत माने हैं। अनादिकाल से सभी द्रव्य इसी क्रमानुसार अपने-अपने गुण पर्यायों में परिणमन करते रहते हैं।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, वीर्य और उपयोग ये जीवात्मा के लक्षण हैं।^३ ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग की दृष्टि से उपयोग दो प्रकार का माना है। अर्हन्त दर्शन में ज्ञानोपयोग के पाँच भेद इस प्रकार बताये हैं—

- मतिज्ञान
- श्रुतज्ञान
- अवधिज्ञान
- मनःपर्यवज्ञान
- केवलज्ञान ।^४

१ जे विज्ञाय से आया, जे आया से विज्ञाया —आचारंग सूत्र १।५।६

२ (a) There is Power of Knowledge in my self.

(b) I know every thing by my power of knowledge.

—Jainism for Children

३ (क) नाणं च संसर्णं चैव, चरित्तं च तवो तद्दा ।

वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्षणं ॥

—उत्तरा० २८।११

(ख) उपयोगो लक्षणम् (उपयोगक्त्वं जीवस्स लक्षणम्)

—तत्त्वार्थ सूत्र २।८

४ (क) नाणं पंचविहं पन्नतं तं जहा—आभिणिबोहियनाणं, सुयनाणं, ओहिनाणं, मनपज्जवनाणं, केवलनाणं ।

—नदी सूत्र

(ख) तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभनिबोहियं ।

ओहिनाणं तु तद्दयं, मणनाणं च केवलं ॥

—उत्तरा० २८।४

जो ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता की अपेक्षा रखता है, उस ज्ञान को परोक्ष प्रमाण की श्रेणी में गिना है। क्योंकि वह अस्पष्ट है।^१ इसलिए मति और श्रुतज्ञान परोक्ष माने हैं।^२ जो ज्ञानानुभूति इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना केवल आत्म-भाव से प्रगट होती है, उसे पारमाथिक प्रत्यक्ष प्रमाण की सजा दी गयी है।^३ क्योंकि वह स्पष्ट है। इसीलिए अवधि, मनः-पर्यव और केवलज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण की श्रेणी में माना है।^४

मति (आभिनबोधिक) ज्ञान

जिस ज्ञान में इन्द्रिय और मन की प्रवृत्ति हो और शास्त्रादि रूप श्रुति की प्रधानता न हो, उसे मतिज्ञान कहा गया है।^५ मतिज्ञान पाँच इन्द्रियों से और छठे मन से उत्पन्न होता है। उसके मुख्य भेद निम्न हैं।

अवग्रह
ईहा
अवाय
धारणा^६

जैसे प्रत्येक मनुष्य शिशु, बालक, कुमार, युवक, प्रौढ़ आदि अवस्थाओं को क्रमपूर्वक ही प्राप्त करता है, उसी प्रकार उपयोग भी दर्शन, अवग्रह आदि अवस्थाओं को धार करता हुआ ही धारणा की अवस्था प्राप्त करता है। यह क्रिया अतिशीघ्र हो जाती है। इसी कारण क्रम का अनुभव नहीं होता। एक-दूसरे के ऊपर कमल के सौ पत्ते रखकर उनमें नुकीला भाला चुभो दिया जाय तो वे सब पत्ते क्रम से ही छेदे जायेंगे, पर यह मालूम नहीं पड़ जाता कि—भाला कब पहले पत्ते में पहुँचा, कब उससे बाहर निकला, कब दूसरे पत्ते को छेदा इत्यादि। इसका कारण गति का तीव्र प्रवाह है। जब भाले का वेग इतना तीव्र हो सकता है तो ज्ञान जैसे सूक्ष्मतर पदार्थ का वेग उससे भी अधिक तीव्र क्यों न होगा ?^७

दूर से ही जो अव्यक्त ज्ञान होता है, उसे अवग्रह कहते हैं। अवग्रह के द्वारा जाने हुए सामान्य विषय को विशेष रूप से जानने की विचारणा को “ईहा”, ईहा के द्वारा जाने हुए पदार्थों में विशेष का निर्णय होना “अवाय” और अवाय ज्ञान जब दृढ़ हो जाता है, तब धारणा की कोटि में गिना जाता है।^८ उक्त चारों प्रकार का अव्यक्त ज्ञान कभी स्पर्शनेन्द्रिय से, कभी रसनेन्द्रिय से, कभी घ्राणेन्द्रिय से, कभी चक्षुइन्द्रिय से कभी श्रोत्रेन्द्रिय से और कभी मन से होता है।

- | | |
|---|--------------------------------|
| १ अस्पष्टं परोक्षम् । | —प्रमाणनय तत्त्वालोक ३।१ |
| २ आद्ये परोक्षम् । | —तत्त्वार्थसूत्र १।११ |
| ३ पारमाथिकं पुनरुत्पत्तावात्म मात्रापेक्षम् | —प्र० न० त० २।१८ |
| ४ प्रत्यक्षमन्यत् | —तत्त्वार्थसूत्र १।१२ |
| ५ तत्रेन्द्रिय मनो निमित्तं श्रुतानुसारी ज्ञानं मतिज्ञानम् । | —जैन तर्क भाषा—मतिज्ञान स्वरूप |
| ६ (क) अवग्रहेहावायधारणाः | —तत्त्वार्थसूत्र १।१४ |
| (ख) एतद् द्वितयमवग्रहेऽवायधारणा भेदादेकशश्वत्तुर्विकल्पकम् । | —प्रमाणनयतत्त्वालोक २।६ |
| ७ क्वचित् क्रमस्यानुपलक्षणमेषामामुत्वादात्, उत्पलपत्र शतव्यति भेद क्रमवत् । | —प्रमाणनयतत्त्वालोक २।१७ |
| ८ (क) अवकृष्टोग्रह अवग्रहा । | |
| (ख) अवग्रहीतार्थ विशेषाकाङ्क्षणमीहा । | |
| (ग) ईहित विशेष निर्णयोऽवायः । | |
| (घ) स एव दृढतमावस्थापक्षो धारणा । | —जैन तर्कभाषा—अवग्रह स्वरूप |

स्पर्शनेन्द्रिय से—	अवग्रह ईहा अवाय धारणा
रसनेन्द्रिय से—	अवग्रह ईहा अवाय धारणा
घ्राणेन्द्रिय से—	अवग्रह ईहा अवाय धारणा
चक्षुःन्द्रिय से—	अवग्रह ईहा अवाय धारणा
श्रोत्रेन्द्रिय से—	अवग्रह ईहा अवाय धारणा
मन से—	अवग्रह ईहा अवाय धारणा

मतिज्ञान के अन्तर्गत अर्थावग्रह के २४ भेद हुए। इनमें स्पर्शनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, रसना व्यंजनावग्रह, घ्राण व्यंजनावग्रह और श्रोत्रेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, इस प्रकार व्यंजनावग्रह के चार भेद^१ और मिलाने से मतिज्ञान के २८ भेद हुए। उक्त भेद बारह प्रकार से पृथक-पृथक निम्न-न्यूनाधिक विषयों को ग्रहण करते हैं।

बहु,	अल्प
बहुविध,	अल्पविध
क्षिप्र,	अक्षिप्र
अनिश्रित,	निश्रित
अनुक्त,	उक्त
ध्रुव,	अध्रुव। ^२

उपयुक्त बारह और अट्ठाईस भेदों को परस्पर गुणा करने से ३३६ भेद मतिज्ञान के हुए और बुद्धिजन्य चार भेद—ओत्पातिकी-बुद्धि, वैयक्तिकी-बुद्धि, कार्मिकी बुद्धि, परिणामिकी बुद्धि।^३ इस प्रकार मतिज्ञान के कुल तीन सौ चालीस भेद हुए। जातिस्मरणज्ञान मतिज्ञान के अन्तर्गत ही माना गया है। इसलिए जातिस्मरण ज्ञान का पृथक अस्तित्व नहीं है।

महोपकारी श्रुतज्ञान

श्रुतज्ञान की महत्ता सर्वविदित है। श्रुतज्ञान की आराधना करके अतीत काल में अनन्त जीवात्माएँ भवसागर से पार हुई हैं। वर्तमान काल में असंख्य प्राणी श्रुतज्ञान से लाभान्वित हो रहे हैं और भविष्य काल में इस ज्ञान के निर्देशानुसार अनन्त आत्माएँ सिद्ध स्वरूप में स्थिर बनेंगी। क्योंकि—मेधावी वर्ग सुनकर ही कल्याण मार्ग को और अकल्याण मार्ग को जानता है। अर्थात् हेय और उपादेय तत्त्वों को श्रवण कर ही निज जीवनोपयोगी ग्राह्य तत्त्व का निर्णय करता है।^४

जिसमें शास्त्रादि की और अन्य शब्दों की भी प्रवृत्ति हो, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।^५ जहाँ मतिज्ञान है, वहाँ श्रुतज्ञान और जहाँ श्रुतज्ञान है वहाँ मतिज्ञान का सद्भाव रहा हुआ है। न कभी मतिज्ञान अकेला रहा और न कभी श्रुतज्ञान अकेला रहा। दोनों ज्ञान सदैव साथ रहते हैं।

१ से कि तं वज्रणुंगहे ?

वज्रणुंगहे चउव्विहं पणत्ते तं जहा— सोइदिय वज्रणुंगहे धाणिय वज्रणुंगहे जिभिदियं वं फांसिय वंजणुंगहे..... —नवीसूत्र

२ बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितासंदिग्धध्रुवाणाम्सेतराणाम् । — तत्त्वार्थसूत्र १।१६

३ उत्पत्तिया वेणइया कम्मया परिणामिया । बुद्धि चउव्विहा बुत्ता पंचमा नोवलम्भइ ॥ —नवीसूत्र

४ सोच्चा जाणइ कल्लाणं सोच्चा जाणइ पावणं । उभयंपि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायेरे ॥ —वश० ४।११

५ श्रुतानुसारि च श्रुतज्ञानम् । —जंतकभाषा

मतिज्ञान ही श्रुतज्ञान का बीज रूप कारण बनता है। इसलिए मतिज्ञान की उत्पत्ति श्रुतज्ञान के पहले मानी है।^१

श्रुतज्ञान के चौदह भेद निम्न प्रकार हैं—

अक्षर श्रुत—स्वर और व्यंजनों से होने वाला ज्ञान।

अनक्षर श्रुत—खांसी, छींक की आवाज विशेष.....।

संज्ञी श्रुत—मन पर्याप्ति वाले जीवों की विचारणा विशेष.....।

असंज्ञी श्रुत—मन पर्याप्ति रहित जीवों की गुणगुणाहट.....।

सम्यक् श्रुत—जिस ज्ञान से जीवात्मा को सही बोध की प्राप्ति हो।

निष्क्या श्रुत—जिसके कारण प्राणी, हिंसा, झूठ, चोरी प्रवृत्तियों में प्रवृत्त हो।

सावि श्रुत—जिस श्रुतज्ञान की आदि हो।

अनावि श्रुत—जिस श्रुतज्ञान की आदि नहीं हो।

सपर्यवसित श्रुत—अन्त सहित श्रुतज्ञान।

अपर्यवसित श्रुत—अन्त रहित श्रुतज्ञान।

गमिक श्रुत—दृष्टिवाद सम्बन्धित ज्ञान।

आगमिक श्रुत—कालिक सूत्रों का ज्ञान।

अंग प्रचिष्ट—आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्म, उपासकदशा, अन्त-कृद्दशा, अनुत्तरोपपातिक, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद।

अंग बाह्य—आवश्यक और आवश्यक व्यतिरिक्त। छह आवश्यकों का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र “आवश्यक” और कालिक, उत्कालिक सूत्रों का प्रतिपादन “आवश्यक-व्यतिरिक्त।”

अवधिज्ञान : एक परिचय

पारमाथिक प्रत्यक्ष के दो भेद—विकल पारमाथिक प्रत्यक्ष और सकल पारमाथिक प्रत्यक्ष।^२ अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान को विकल पारमाथिक प्रत्यक्ष की कोटि में माना है। क्योंकि—उक्त दोनों प्रकार के ज्ञान यद्यपि आत्मा से सम्बन्धित हैं, फिर भी केवलज्ञान की अपेक्षा अधूरे, अपूर्ण हैं।^३ अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला और मर्यादित जड़गुणात्मक रूपी द्रव्यों का साक्षात्कार कराने वाले ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं।^४

“भवप्रत्यय” और “गुणप्रत्यय” के भेद से अवधिज्ञान के दो प्रकार हैं। भवप्रत्यय अवधिज्ञान प्रत्येक समहृष्टि देव, नारक एवं तीर्थंकरों को जन्म से ही होता है। निश्चय नय की अपेक्षा क्षयोपशम अन्तरंग कारण और तपश्चरण आदि धार्मिक अनुष्ठान बहिरंग कारण के प्रभाव

१ जत्थ आभिणिबोहिय नाणं तत्थ सुयनाणं जत्थ सुयनाणं तत्थ आभिणिबोहिय नाणं, दोऽवि एयाइं अण्ण, मण्ण मणुमयाइं तह्वि पुण इत्थ आयरिया नाणं तं पण्ण वयंति, अमिनिबुज्झ इत्ति आभिणिबोहि नाणं सुणेइत्ति सुयं, मई पुवं जेण सुयं, न मई सुय पुव्विया।

—चन्दीसूत्र

२ तद् विकलं सकलं च —प्रमाणनयतत्त्वालोक २।१६

३ तत्र विकलमवधि मनःपर्यवज्ञान रूपतया द्वेषा। —प्रमाणनयतत्त्वालोक २।२०

४ अवधिज्ञानावरण विलय विशेष समुद्भवं भवगुण प्रत्ययं रूपी द्रव्यगोचरमवधिज्ञानम् ॥

—प्रमाणनयतत्त्वालोक २।२१

से कतिपय संज्ञी मनुष्य और संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच प्राणियों को उत्पन्न होता है। फिर भी सभी के अवधिज्ञान में तरतमता अवश्य रहती है, एक समानता नहीं।

गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के छह भेद इस प्रकार हैं—^१

अनुगामी—ज्ञानी के साथ-साथ रहने वाला।

अननुगामी—उत्पत्ति के स्थान तक सीमित, आगे नहीं।

हीयमान—उत्तरोत्तर क्षीणता की ओर बढ़ने वाला।

वर्द्धमान—उत्तरोत्तर विकसित होने वाला।

अवस्थित—कायम रहने वाला।

अनवस्थित—उत्पन्न होकर पुनः नष्ट हो जाय।

मनःपर्यवज्ञान

“मनःपर्यवज्ञान” यह विकल पारमाथिक प्रत्यक्ष का दूसरा भेद है। संयमी क्रियाओं की विशिष्ट विशुद्धि से और मनःपर्यवज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है। जो केवल संज्ञी प्राणियों के मनोगत भावों को जानने में सक्षम होता है।^२

यद्यपि अवधिज्ञान की अपेक्षा मनःपर्यवज्ञान विशुद्ध अवश्य है पर जानने का क्षेत्रफल मनःपर्यवज्ञान का काफी संकीर्ण और सीमित रहा हुआ है। उसका कारण यह है कि—उन देहधारियों की आन्तरिक भूमिका जैसी चाहिए वैसी उच्चस्तरीय नहीं रहती और दूसरा कारण है तत्सम्बन्धी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की प्रतिकूलता। इस कारण मनःपर्यवज्ञान न नारकीय जीवों को, न देवलोक वासियों को, न पशु-पक्षियों को, और न नर-नारियों को होता है। केवल ऋद्धि प्राप्त, अप्रमत्त, संयत, समदृष्टि पर्याप्त, संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमि के गर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है।^३

इसके मुख्य दो भेद हैं—ऋजुमति और विपुलमति। शुद्धता की दृष्टि से दोनों में कुछ तरतमता अवश्य रही हुई है।^४

केवलज्ञान

सम्यग्दर्शन आदि अन्तरंग सामग्री और तपश्चरण आदि बाह्य सामग्री से समस्त धाति (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय) कर्मों का मूलतः क्षय होने पर १३वें गुणस्थानाधिपति आत्मा को उत्पन्न होने वाला समस्त द्रव्य और पर्यायों को जानने वाला ऐसा केवलज्ञान उत्पन्न होता है। उसे सकल पारमाथिक प्रत्यक्ष भी कहते हैं।^५

१ अहवा गुण पडिवन्तस्स, अणगारस्स ओहिनाणं समुपज्जह तं समासओ—छव्विहं पण्णत्तं, तं जहाँ—आणुगामियं, अणणुगामियं, हीयमाणयं, वर्द्धमाणयं, पडिवाइयं, अपडिवाइयं.....।

—नन्दीसूत्र ६

२ संयम विशुद्धि निबन्धनाद् विशिष्टावरण विच्छेदाज्जातं मनोद्रव्य-पर्यायात्मकं मनःपर्याय-ज्ञानम्।

—प्रमाणनयतत्त्वालोक २।२२

३ गोयमा ! इड्डीपत्त अपमत्त संजय सम्मदिट्ठी पज्जत्तण-संखेज्जवासाउय, कम्मभूमिय-गम्भव-क्कत्तिय मणुस्साणं, नो अग्निड्डीपत्त-अपमत्त संजय सम्मदिट्ठी पज्जत्तण संखेज्जवासाउय कम्म-भूमिय गम्भवक्कत्तिय मणुस्साणं मनपवज्जनाणं समुपज्जई।

—नन्दीसूत्र १७

४ ऋजु विपुलमति मनःपर्यायः विशुद्धयप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः।

—तत्त्वार्थसूत्र १।२४।२५

५ सकलं तु सामग्री विशेषतः समुद्भूतं समस्तावरण क्षयापेक्षं।

निखिल द्रव्य पर्याय साक्षात्कारि स्वरूपं केवलज्ञानम्॥

—प्रमाणनयतत्त्वालोक २।२३

केवलज्ञान की उपलब्धि सर्वोत्तम एवं सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। आत्म-साधना की परिपक्व अवस्था की चरमोत्कृष्ट फलश्रुति कहा जा सकता है। दृष्टान्त्य इस निधि की उपलब्धि सहज में प्रत्येक साधक को नहीं हुआ करती है। क्योंकि सशक्त साधना और साधनों की उसमें परमावश्यकता है। उनके अभाव में साध्य सिद्ध नहीं होता है। भले वे साधक कहीं पर रहते हों, किसी वेश देश में हों, अगर उन्होंने घातिकर्मों पर विजय प्राप्त कर ली तो निश्चयमेव उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। केवलज्ञान के पात्र सीमित अवश्य हैं पर केवलज्ञान का ज्ञेय विषय समस्त लोकालोक अनन्त द्रव्यों को और उनकी त्रैकालिक सब पर्यायों को युगपत् जानना है।

यह ज्ञान मनुष्य, सन्नी, कर्मभूमिज, संख्यात वर्ष की आयु वाले, पर्याप्त, समदृष्टि, संयत, अप्रमादी, अवेदी, अकषायी, चार घातिकर्म नाशक, १३वें गुणस्थानवर्ती, वीतराग मुनियों को प्राप्त होता है। केवलज्ञान में सर्व द्रव्य, सर्व क्षेत्र, सर्व काल और सर्व भाव, हस्तामलकवत् प्रकाशित होते हैं। “केवलमेगं सुद्धं वा, सकलमसाहारणं अणतं च” यह ज्ञान शुद्ध, असाधारण, अनन्त एवं अप्रतिपाती है। यह एक बार उत्पन्न होकर फिर कभी नष्ट नहीं होता है। केवलज्ञान की उत्पत्ति के पश्चात् अघन्य अन्तर्मुहूर्त में और उत्कृष्ट ८ वर्ष कम करोड़ पूर्व में मोक्ष की प्राप्ति अवश्य होती है।



भारतीय तत्त्व-चिन्तन में : जड़-चेतन का सम्बन्ध

□ मुनि समदर्शी, प्रभाकर

जगत का स्वरूप

सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय, तत्त्व-चिन्तन एवं आगम—वेद-उपनिषद्, जैन-शास्त्र, और पालि-त्रिपिटक का सार एवं निष्कर्ष तीन शब्दों में आ जाता है—जीव, जगत और जगदीश्वर अर्थात् परमात्मा । सभी विचारकों ने संसार, संसार में परिभ्रमण के कारणों एवं उससे मुक्त होने के साधनों का प्रतिपादन किया है । संसार-बन्धन से सर्वथा मुक्त होना ही भारतीय-चिन्तन का मुख्य उद्देश्य, ध्येय एवं लक्ष्य रहा है । सम्पूर्ण आध्यात्मिक साहित्य में—भले ही वह जैन-परम्परा का हो, वैदिक-परम्परा का हो, बौद्ध-परम्परा का हो, और कितना ही विशाल क्यों न हो—ग्यारह अंग ही नहीं, चतुर्दश पूर्व-साहित्य को भी लें तो उनमें विभिन्न प्रकार से, विभिन्न दृष्टांतों, उदाहरणों, रूपकों एवं कथानकों के माध्यम से यही समझाने का प्रयत्न किया है, कि जीव और जगत अथवा आत्मा और संसार या जड़ और चेतन का क्या स्वरूप है, उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है, आत्मा का संसार में परिभ्रमण करने का क्या कारण है, और वह किस प्रकार आबद्ध बन्धन से मुक्त हो सकता है ?

ये ही मूल प्रश्न हैं ? जिनका समाधान सभी मनीषी विचारकों और प्रबुद्ध चिन्तकों ने अपने-अपने चिन्तन एवं अनुभव के अनुरूप करने का प्रयत्न किया है । उनके उन्हीं विचारों का संग्रह और संकलन आगम, उपनिषद् एवं त्रिपिटक-साहित्य में है । प्रस्तुत प्रकरण में हम यही विचार करेंगे, कि जीव और जगत, आत्मा और संसार, तथा जड़ और चेतन के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में विभिन्न विचारकों ने किस प्रकार से चिन्तन किया तथा उनके विचारों में कितना साम्य एवं कितना वैषम्य है । सभी विचारकों ने किसी न किसी रूप में जीव और जगत—दोनों के अस्तित्व को स्वीकार किया है । जड़ और चेतन के अस्तित्व से युक्त संसार को जगत कहा है ।

सांख्य-दर्शन जगत में मुख्य रूप से दो तत्त्व मानता है—प्रकृति और पुरुष । न्याय-वैशेषिक-दर्शन आत्मा और परमाणु को मानता है । बौद्ध-दर्शन इसे नाम और रूप कहता है । जैन-दर्शन जीव और अजीव—इन दो द्रव्यों को ही मुख्य मानता है । इन दो द्रव्यों में षट्-द्रव्य आ जाते हैं—जीव अथवा आत्मा जीव-द्रव्य है ही, शेष घर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल—पाँचों द्रव्य जीव से भिन्न अजीव हैं, अचेतन हैं, जड़ हैं । अद्वैत-वेदान्त-दर्शन केवल ब्रह्म की सत्ता को ही सत्य मानता है, अन्य किसी भी पदार्थ के अस्तित्व को सत्य स्वीकार नहीं करता । फिर भी प्रत्यक्ष में परिलक्षित होने वाले पदार्थों को झुठला नहीं सकता, इसलिए उसने माया को कल्पना की । कुछ भी हो जगत में द्वैत—दो तत्त्वों की सत्ता है, और द्वैत के आधार पर ही जगत एवं संसार आचारित है, टिका हुआ है ।

कार्य-कारणवाद

भारतीय दर्शनशास्त्र एवं चिन्तन में यह स्वीकार किया है, कि कार्य कारण से उत्पन्न होता है। कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति नहीं होती। यदि बीज नहीं है, तो उसका कार्य वृक्ष भी नहीं होगा। इसलिए आचारांग सूत्र में श्रमण भगवान महावीर ने कहा कि यदि तुमको संसार रूप वृक्ष का उन्मूलन करना है, तो उसके पत्तों, डालियों एवं शाखाओं को नहीं, उसके मूल का नाश करना होगा।^१ संसार या कर्मबन्ध का मूल या बीज राग-द्वेष है। वही संसार परिभ्रमण का मूल कारण है। कारण के बिना कार्य कभी भी उत्पन्न नहीं होता। जैसे घट कार्य है, तो मिट्टी उसका मूल कारण और कुम्भकार, चक्र आदि सहयोगी या निमित्त कारण है। अतः मिट्टी एवं कुम्भकार आदि का सद्भाव होने पर ही घट कार्यरूप में परिणत होता है। इसी प्रकार यह संसार, यह विराट् जगत और विशाल सृष्टि भी एक कार्य है, इसलिए इसका भी कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए।

वद-युग

इस विचित्र जगत को देखकर वैदिक ऋषियों के मन में इसके मूल कारण एवं सृष्टा को जानने की जिज्ञासा उद्बुद्ध हुई। उन्होंने अपने-अपने चिन्तन के अनुरूप विभिन्न कारणों की कल्पना की। किसी ने जल को, किसी ने अग्नि को और किसी ने वायु को जगत का मूल कारण माना। उनकी मान्यता के अनुसार सर्वप्रथम जल या अग्नि या वायु ही था, और धीरे-धीरे उसी मूल तत्त्व से सब पदार्थ बने। वेद-युग में हम देखते हैं कि विचारकों का चिन्तन प्रकृति की शक्तियों तक ही सीमित-परिमित रहा। उन्होंने इन प्राकृतिक शक्तियों को ही सब कुछ मान लिया और उन्हें देवत्व के स्थान पर बैठकर अपने संरक्षण एवं विकास के लिए उनसे प्रार्थना करने लगे। यह सत्य है, कि वेदयुग में ही अनेक देवों का स्थान एक शक्ति ने ग्रहण कर लिया था। ऋग्वेद में यह उल्लिखित है कि जगत का मूल कारण एक तत्त्व है। उस एक तत्त्व को मनीषी एवं विद्वान अग्नि, जल, वायु आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। उसके बाद प्रजापति की कल्पना की, और उसी को सृष्टि का मूल कारण और सृष्टा स्वीकार कर लिया।

उपनिषद्-युग

उपनिषदों में विभिन्न विचारकों के मतों का उल्लेख किया गया है। अग्नि आदि प्राकृतिक शक्तियों को मूल तत्त्व मानने का भी उल्लेख उपनिषदों में है। परन्तु चिन्तन की गहराई में उतरने पर उपनिषद्-युग के ऋषियों ने ब्रह्मा की सत्ता को स्वीकार किया। कठोपनिषद् में कहा गया, कि यह जगत अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष है। जिसका मूल उर्ध्व में है, और शाखाएँ नीचे की ओर हैं। यह विचित्र संसार-वृक्ष सनातन है, शाश्वत है और इसका जो मूल है—वही ब्रह्म है, विशुद्ध ज्योति-स्वरूप तत्त्व है और अमृत है।^२ सम्पूर्ण लोक या जगत उसी में आश्रित है, कोई भी उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता है। वही जगत का मूल तत्त्व एवं मूल कारण है, जिसमें से जगत अस्तित्व में आया है। आचार्य शंकर ने भी जगत को ब्रह्म का विवर्तन कहा है। परन्तु उपनिषदकार ने स्पष्ट लिखा है—इस आत्मा से सर्वप्राण, सर्वलोक और सर्वभूत जिसमें प्रकट होते हैं, उस आत्मा का रहस्य सत्य का सत्य है, परम सत्य है।^३ उपनिषद् की दृष्टि से जिस जगत में रहकर हम जीवन-यात्रा करते हैं, वह जगत हमारे अपने अस्तित्व के समान ही सत्य है। जैन-दर्शन भी जगत को

१ अगं मूलं च छिदद् ।

२ कठोपनिषद्, २, ३, १; गीता १५, १ ।

३ वृहदारण्यक उपनिषद्, २, १, २० ।

सत्य मानता है परन्तु वह उसे ब्रह्म से उद्भूत नहीं मानता। उपनिषद् के अनुसार जगत ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है और पुनः ब्रह्म में ही समाहित हो जाता है। जिस प्रकार मकड़ी जाले को बनाती है, और पुनः उसे निगल जाती है। जैसे पृथ्वी से औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, सजीव पुरुष से केश-लोम उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अक्षर-ब्रह्म से यह जगत उत्पन्न होता है। जैसे निरन्तर प्रवहमान सरिताएँ अपने नाम-रूप का परित्याग करके समुद्र की अदन्त जलराशि में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही विद्वान लोग अपने नाम-रूप से मुक्त होकर परात्पर दिव्य-पुरुष अथवा पर-ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं।^१

उपनिषद् की मान्यता के अनुसार ब्रह्म जगत का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। दर्शन-शास्त्र में कार्य-कारण भाव दो प्रकार का है—भिन्ननिमित्तोपादान कारण और अभिन्ननिमित्तोपादान कारण। जैसे घट कार्य की उत्पत्ति में मिट्टी उपादान कारण है और कुम्भकार आदि निमित्त कारण हैं और दोनों कारण एक-दूसरे से भिन्न हैं। परन्तु जगत की उत्पत्ति में निमित्त कारण भी ब्रह्म है और उपादान कारण भी ब्रह्म है, इसलिए इसे अभिन्ननिमित्तोपादान कारण कहा है।

सांख्य-योग और न्याय-वैशेषिक-दर्शन

ये चारों दर्शन वैदिक-दर्शन हैं। फिर भी वे परमात्मा और ब्रह्म को जगत का कारण नहीं मानते। वे आचार्य शंकर की तरह जगत को माया रूप, भ्रान्त, असत्य, मिथ्या और ब्रह्म का विवर्त्त भी नहीं मानते। सांख्य-दर्शन जगत में मूल तत्त्व दो मानता है—पुरुष और प्रकृति। पुरुष चेतन है, कूटस्थ है, अपरिणामी है, अकर्ता है और शुद्ध है। प्रकृति जड़ है, क्षणिक है, परिणामी है, कर्ता है, भोक्ता है और विकारों से युक्त है। जगतरूप कार्य का कारण पुरुष नहीं, प्रकृति है। पुरुष प्रकृति के संयोग से अथवा प्रकृति से सम्बद्ध होने के कारण जगत में परिभ्रमण करता है, परन्तु बन्ध और मोक्ष प्रकृति में ही होता है, पुरुष में नहीं; क्योंकि वह तो स्वभाव से ही मुक्त है। जगत के सम्बन्ध में यही विचार योग दर्शन के हैं।

न्याय-वैशेषिक-दर्शन परमाणुवादी है। वह जगत में जड़ और चेतन—दोनों को मूल तत्त्व मानता है, फिर भी आत्मा को कूटस्थ नित्य मानता है। उसकी मान्यता के अनुसार गुण द्रव्य से भिन्न हैं, वे द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहते हैं। इसलिए उनमें होने वाले परिणमन से आत्मा में विकृति नहीं आती। वह पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु आदि के परमाणुओं को पृथक-पृथक मानता है और उनसे ही जगत एव जगत के पदार्थों की उत्पत्ति मानता है। जगत का उपादान कारण पृथ्वी आदि के अपने-अपने परमाणु हैं। जैसे—घट का उपादान कारण मिट्टी के परमाणु हैं और सरिता का उपादान कारण जल के परमाणु। जैन-दर्शन भी परमाणुवाद को मानता है, परन्तु वह मिट्टी, जल, अग्नि, वायु आदि के परमाणुओं को भिन्न-भिन्न नहीं मानता। जैसा संयोग मिलता है उसी के अनुरूप परमाणु बन जाते हैं। मिट्टी के परमाणु कालान्तर में जल के प्रवाह में पानी का रूप ले लेते हैं और पानी के परमाणु कालान्तर में मिट्टी का रूप ले लेते हैं। वैज्ञानिक भी परमाणु की परिवर्तित होती हुई स्थिति को स्वीकार करते हैं।

अवैदिक-दर्शन

चार्वाक-दर्शन, बौद्ध-दर्शन और जैन-दर्शन—ये तीनों दर्शन अवैदिक हैं। तीनों वेद-प्रामाण्य को स्वीकार नहीं करते, वेदों की प्रामाणिकता में विश्वास नहीं रखते। इनमें चार्वाक-दर्शन एकान्त भौतिकवादी है। वह जगत की उत्पत्ति भूतों से मानता है। उसके विचार से जगत में एक मात्र

१ मुण्डक उपनिषद्, १, १, ७ और ३, २, ८।

भौतिक-तत्त्व या भूत ही मौलिक तत्त्व है या मूल तत्त्व है। भूत-तत्त्व से भिन्न चेतन का कोई अस्तित्व नहीं है।

बौद्ध-दर्शन नाम और रूप अथवा विज्ञान को ही जगत् का मूल कारण मानता है। उसके विचार में कोई भी पदार्थ—भले ही वह चेतन हो या जड़, स्थायी नहीं है, नित्य नहीं है। जगत् में जो कुछ है, वह सब क्षणिक है, अनित्य है। उनकी व्याख्या के अनुसार सत् वही है, जो क्षणिक है, और सरिता के प्रवाहवत् प्रतिक्षण परिवर्तित होते हुए प्रवहमान रहता है।

जैनदर्शन

जैन-परम्परा में श्रमण भगवान महावीर के पूर्व और भगवान महावीर तथा उनके अनन्तर आचार्यों ने जगत् में मुख्य रूप से दो राशि, दो तत्त्व, दो पदार्थ, या दो द्रव्य माने हैं—जीव और अजीव, आत्मा और पुद्गल अथवा जड़ और चेतन। जैन-दर्शन जगत् को माया रूप एवं मिथ्या नहीं मानता। वह तो उसे उतना ही सत्य मानता है, जितना आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व को। उसके विचार में सभी द्रव्य सत् हैं। सत् वह है, जो न तो एकान्त रूप नित्य या कूटस्थ नित्य है, और न एकान्त रूप से अनित्य—क्षणिक है। वस्तुतः जो उत्पाद, ध्वय और प्रीव्य से युक्त है, वह सत् है।

द्रव्य की परिभाषा ही यह है, कि अपने मूल स्वरूप में अथवा द्रव्यरूप में स्थित रहते हुए द्रवित होते रहना अपनी पर्यायों में परिणमन करते रहना। क्योंकि वह गुण और पर्याय से युक्त होता है और वह गुण एवं पर्यायों से अभिन्न भी है। क्योंकि गुण और पर्यायों सदा गुणों एवं द्रव्य में ही रहती है। गुण एवं पर्याय से शून्य द्रव्य और द्रव्य से रहित गुण-पर्याय की कल्पना ही नहीं की जा सकती। ज्ञान आत्मा का गुण है और शुद्ध एवं अशुद्ध या सम्यक् एवं मिथ्या या क्षायोपशमिक एवं क्षायिक आदि ये ज्ञान को पर्यायों हैं। लोक में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो ज्ञान से सर्वथा रहित हो, और उसमें शुद्ध या अशुद्ध, सम्यक् या मिथ्या, क्षायोपशमिक या क्षायिक ज्ञान की कोई भी पर्याय न हो। पर्यायों प्रतिक्षण बदलती रहती हैं, परन्तु पर्यायों के बदलने पर भी द्रव्य का मूल स्वरूप कभी नहीं बदलता। ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, उसका निज गुण है। वह नित्य है, सदा रहेगा ही—भले ही वह सम्यक् रहे या मिथ्या रहे। हम प्रतिदिन देखते हैं कि नदी के प्रवाह में प्रवहमान जल कण अपने स्थान से आगे की ओर बह जाते हैं और नये जल कण उसका स्थान ले लेते हैं, परन्तु नदीत्व—जो नदी का स्वभाव है, वह प्रवाह में भी सदा बना रहता है। इसलिए द्रव्य की अपेक्षा से पदार्थ नित्य है, और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य। इस प्रकार जैन-दर्शन जगत् को परिणामी नित्य मानता है—वह न उसे कूटस्थ नित्य मानता है, और न एकान्त क्षणिक ही।

जैन-दर्शन का यह दृढ़ विश्वास है, कि जगत् अनादि अनन्त है। इसे न किसी ने बनाया है और न कोई इसे बना सकता है, यह तो स्वभाव से है। यह न तो प्रजापति की रचना है, न ब्रह्मा का बनाया हुआ है, और न ब्रह्मा का विवर्त्त ही है। जीव और अजीव अथवा आत्मा और पुद्गल के संयोग सम्बन्ध का परिणाम है। दोनों द्रव्यों का संयोग सम्बन्ध संसार है, और आत्मा से पुद्गलों का वियोग हो जाना ही मोक्ष है। इसलिए संसार एवं जगत् में दो ही तत्त्वों की मुख्यता है।

जड़-चेतन का बन्ध

आत्मा और पुद्गल—दोनों स्वतन्त्र तत्त्व हैं, स्वतन्त्र द्रव्य हैं। फिर दोनों में बन्ध कब, क्यों और कैसे हुआ ? इस सम्बन्ध में वेदों में कोई उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु आर्यों के आगमन के पूर्व अथवा वेदों की रचना के पूर्व भारत में अवैदिक चिन्तन की धारा प्रवहमान थी। उस समय उसका नाम श्रमण, मुनि या तिग्रन्थ-परम्परा या कुछ और भी रहा हो, पर आज वह जैन-

परम्परा के नाम से विश्रुत है। उसकी प्रारम्भ से ही यह मान्यता रही है, कि न केवल जड़ पदार्थ ही बन्ध का कारण है, और न अकेला चेतन आत्मा ही। पुद्गल—जड़ पदार्थ का शुद्ध रूप परमाणु है। जब तक परमाणु अपने शुद्ध रूप में रहता है, तब तक वह कर्म-बन्ध के योग्य नहीं होता है। आत्मा भी अपने स्वरूप में स्थित रहता है, अपने शुद्ध स्वभाव में परिणमन करता है, तब बन्ध नहीं करता। अतः अपने शुद्ध स्वभाव में एवं शुद्ध स्वरूप में स्थित पुद्गल और आत्मा दोनों ही बन्ध के योग्य नहीं हैं। जब पुद्गल अपने शुद्ध स्वरूप परमाणु रूप न रहकर परमाणुओं के संयोग से बने स्कन्ध की विभाव दशा में परिणत होता है, तब वह बन्ध की योग्यता प्राप्त करता है अथवा कर्मण-वर्णना की संज्ञा को प्राप्त होता है। आत्मा भी जब स्वभाव से विभाव में परिणत होता है, तब कर्म से बाबद्ध होता है। अतः बन्ध स्वभाव में नहीं, विभाव-दशा में होता है और कर्म प्रवाह की अपेक्षा से वह अनादि है—उसकी आदि नहीं है। अनन्त-अनन्त काल में उसका प्रवाह चला आ रहा है। एक कर्म अपना फल देकर आत्म-प्रदेशों से अलग होता है, तो दूसरा उसका स्थान ले लेता है। इस प्रकार उसका प्रवाह टूटने नहीं पाता।

बन्ध और मोक्ष

आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करने वाले तथा उसे शरीर आदि जड़ पदार्थों से सर्वथा भिन्न मानने वाले सभी भारतीय विचारकों ने बन्ध और मोक्ष को स्वीकार किया है। तथागत बुद्ध क्षणिकवादी हैं और अनात्मवादी भी कहे जाते हैं, फिर भी वे आत्मा के बन्ध, मोक्ष एवं पुनर्जन्म को मानते हैं। सभी विचारकों ने अविद्या, मोह, अज्ञान, मिथ्या ज्ञान और मिथ्यात्व को कर्म-बन्ध एवं संसार-परिभ्रमण का कारण माना है, और विद्या, तत्त्व-ज्ञान, सम्यक्ज्ञान और स्व-स्वरूप के बोध—सम्यक्त्व को मोक्ष का, मुक्ति का एवं निर्वाण का कारण माना है।

कठोपनिषद् में कहा है—श्रेयस् और प्रेयस् दो मार्ग हैं और एक-दूसरे से भिन्न एवं विपरीत हैं। विषय-जन्य इन्द्रिय-सुख तथा भौतिक-सुख-साधनों की प्राप्ति का मार्ग जो है, वह प्रेयस् है, और आध्यात्मिक-साधना, तत्त्व-ज्ञान, आत्म-चिन्तन का, जो मार्ग है, वह श्रेयस्-पथ है। प्रेयस् के साथ बाह्य आकर्षण, अनुराग एवं ममत्व का भाव जुड़ा हुआ है और श्रेयस् के साथ समभाव एवं स्वभाव रमण का भाव संबद्ध है। आधुनिक नीति-शास्त्र (Ethics) में इन उभय दृष्टियों को—The end as pleasure (Hedonism—ऐन्द्रिक-सुखवाद) और The end as good (आत्म-आनन्दवाद) कहा है। योग-सूत्र भाष्य में कहा है—चित्त नदी की दो धाराएँ हैं—एक सुख मार्ग की ओर बहती है, और दूसरी कल्याण के मार्ग की ओर अथवा एक इन्द्रिय-जन्य भोगों की ओर बहती है, और दूसरी अध्यात्म-साधना की ओर। बुद्धिमान एवं विवेकशील साधक का कर्तव्य है, कि वह द्वितीय मार्ग का अवलम्बन करे।^१ क्योंकि जो विषय भोगों में तृप्त होकर परम शान्ति एवं आनन्द पाने की कामना रखता है, वह लोलुप व्यक्ति अतृप्त रहता है और दुःख को ही प्राप्त करता है। इन्द्रिय-भोग व्यक्ति को तृष्णा से रहित नहीं करते।^२

श्रमण भगवान महावीर ने यही बात कही है—संसार के कामभोग, इन्द्रिय-जन्य वैषयिक-सुख एवं भौतिक-सुख-साधन शल्य हैं, विष हैं, और आशीविष सर्प के तुल्य हैं। जो काम-भोगों की इच्छा एवं आकांक्षा तो रखते हैं, किन्तु परिस्थितिवश उनका भोग एवं सेवन नहीं कर पाते, वे भी दुर्गति में जाते हैं।^३ वास्तव में तृष्णा की आग कभी शान्त नहीं होती। वह आकाश की

१ योग-सूत्र, व्यास भाष्य, १,१२

२ वही, २,१५

३ उत्तराध्ययन सूत्र, ६,५३

तरह अनन्त है, उसका कभी अन्त नहीं आता, अथवा वह कदापि परिपूर्ण नहीं होती।^१ ज्यों-ज्यों लाभ होता है, त्यों-त्यों लोभ, तृष्णा एवं आकांक्षा बढ़ती है।^२ इसलिए राग और द्वेष अथवा आसक्ति कर्म-बन्ध का मूल कारण है।^३ और वीतराग भाव, अनासक्ति एवं स्व-स्वभाव में परिणमन कर्म-बन्धन से मुक्त होकर परम आनन्द एवं परम सुख को प्राप्त करने का मूल कारण या श्रेयस् पथ है। इसलिए प्रबुद्ध-साधक वह है, जो भेद-विज्ञान के द्वारा स्व-स्वरूप का बोध करके विवेक पूर्वक निःश्रेयस्-पथ पर गति करता है।

अज्ञान का स्वरूप

बन्ध का कारण अज्ञान है। अनात्म अथवा जड़ पदार्थों में आत्म-बुद्धि रखना और आत्मा में अनात्म भाव रखना अथवा जिस वस्तु का जो स्वभाव है, उसे उसके विपरीत मानना एवं समझना, अज्ञान एवं अविद्या है। आत्मवादी विचारकों के अनुसार आत्मा एक स्वतन्त्र, पृथ्वी आदि भूत तत्त्वों से निमित्त भौतिक शरीर से सर्वथा भिन्न शाश्वत द्रव्य है। अतः भौतिक शरीर, इन्द्रिय, प्राण एवं मन आदि को आत्मा मानना मिथ्या-ज्ञान है। तथागत बुद्ध किसी स्वतन्त्र एवं शाश्वत द्रव्य को स्वीकार नहीं करते। फिर भी तथागत इस बात को स्वीकार करते हैं, कि शरीर आदि जड़ पदार्थों में आत्म-बुद्धि रखना मिथ्या-ज्ञान या मोह है।^४ छान्दोग्य उपनिषद् में शरीर आदि अनात्म पदार्थों को आत्मा स्वीकार करने को असुरों का ज्ञान कहा है।^५ न्याय-दर्शन में मिथ्या-ज्ञान का अपर (दूसरा) नाम मोह है। शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण, वेदना और बुद्धि—इन अनात्म पदार्थों में आत्माग्रह रखना—यह मैं ही हूँ, ऐसी आग्रह बुद्धि मोह है।^६ वैशेषिक-दर्शन की भी यही मान्यता है। सांख्य-दर्शन में विपर्यय को अज्ञान कहा है—ज्ञानस्य विपर्ययोऽज्ञानम्। वह इससे तीन प्रकार का बन्ध स्वीकार करता है—१. प्रकृति को पुरुष मानकर उसकी उपासना करना—प्राकृतिक-बन्ध, २. भूत, इन्द्रिय, अहंकार, बुद्धि आदि विकारों को पुरुष मानकर उसकी उपासना करना—वैकारिक-बन्ध, और ३. इष्ट आपूर्त अथवा मन एवं इन्द्रियों को अभीष्ट लगने वाले भोगों की पूर्ति में संलग्न रहना—दाक्षणिक-बन्ध है।^७ योग-दर्शन में विपर्यय के स्थान पर क्लेश शब्द का प्रयोग किया है। अनित्य, अशुचि, दुःख एवं अनात्म पदार्थों में नित्य, शुचि, सुख और आत्म-बुद्धि रखना क्लेश है।^८ जैन-परम्परा में कषाय और योग (मन, वचन और काय के व्यापार) को बन्ध का कारण माना है। अनन्तानुबन्धी कषाय अज्ञान अवस्था में रहता है। इसलिए इसका विस्तार करके मिथ्यात्व, अत्रत, कषाय, प्रमाद और योग को बन्ध का कारण स्वीकार किया। अन्य दर्शनों में मिथ्यात्व को मिथ्या-ज्ञान, अज्ञान, अविद्या और विपर्यय तथा क्लेश कहा है। उत्तराध्ययन सूत्र एवं स्थानांग सूत्र में राग-द्वेष एवं मोह को कर्म-बन्ध का कारण कहा है।^९ राग-भाव में माया और लोभ तथा द्वेष-भाव में क्रोध और मान समाविष्ट हो जाता है। राग

१ उत्तराध्ययन सूत्र ६,४८

२ वही, ८,१७

३ वही, ३२,७

४ विसुद्धि मग्गो, १७,३०२, सुत्तनिपात्त, ३,१२,३३

५ छान्दोग्य उप०, ८,८,४-५

६ न्याय-दर्शन, प्रशस्तपाद भाष्य, ४,२,१

७ सांख्यकारिका—माठर वृत्ति, और सांख्य तत्त्व कौमुदी, ४४

८ योग-दर्शन, २.३ से ५

९ उत्तराध्ययन सूत्र, २१.१६; २३.४३; २८.२०; २६.७१ और ३२.७; स्थानांग सूत्र २.२

और द्वेष के मूल में तृष्णा एवं मोह रहता ही है, इस बात को अन्य दार्शनिक भी स्वीकार करते हैं।

इससे हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि भारतीय-तत्त्व-चिन्तन में अविद्या, अज्ञान, मिथ्यात्व, विपर्यय, क्लेश को बन्ध का कारण माना है। जब तक आत्मा में अनात्म बुद्धि और अनात्मा में आत्म-भावना बनी रहेगी, भेद-विज्ञान के द्वारा स्व-पर के यथार्थस्वरूप का बोध नहीं होगा, तब तक संसार-बन्धन से मुक्ति नहीं हो सकती।

मोक्ष के कारण

प्रायः सभी विचारक अज्ञान और अविद्या को बन्ध का कारण मानते हैं। तृष्णा एवं मोह को भी अविद्या का सहायक मानकर उसे भी बन्ध का हेतु मानने में सहमत हैं। परन्तु मोक्ष एवं निर्वाण के कारण तथा मुक्ति की साधना के सम्बन्ध में सभी विचारक एकमत नहीं हैं। कुछ विचारक केवल तत्त्व-ज्ञान को ही मुक्ति का हेतु मानते हैं और कुछ सिर्फ क्रिया-काण्ड को ही मोक्ष का मूल कारण स्वीकार करते हैं तथा कुछ विचारक दोनों की समन्वित साधना को ही मोक्ष-मार्ग मानते हैं।

उपनिषद् में तत्त्वज्ञान को, ब्रह्म-ज्ञान को तथा आत्म-ज्ञान को ही मोक्ष का हेतु माना है। कर्म-काण्ड एवं उपासना को गौण स्थान दिया है। वेद-विहित कर्म-काण्ड एवं यज्ञ-ज्ञाग को तो स्पष्ट शब्दों में संसार का कारण कहकर उनकी उपेक्षा की है। बौद्ध-दर्शन, न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग और शांकर वेदान्त (अद्वैतवाद) में भी तत्त्व-ज्ञान को मुख्य कारण माना है, और उपासना को गौण माना है।

ब्रह्म-सूत्र के भाष्यकार आचार्य रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभ आदि भक्ति-सम्प्रदाय के प्रवर्तक भगवान की भक्ति को ही मुक्ति का श्रेष्ठतम साधन मानते हैं, तत्त्व-ज्ञान को गौण-साधन मानते हैं। आचार्य भास्कर और शैव—ज्ञान और कर्म दोनों को मुक्ति का मार्ग मानते हैं।

पूर्वमीमांसा मुख्य रूप से क्रिया-काण्ड प्रधान है। वह वेद विहित कर्म-काण्ड, यज्ञ-याग आदि वैदिक क्रियाओं को ही मुक्ति का हेतु मानते हैं, तत्त्व-ज्ञान को नहीं।

गीता में ज्ञान, भक्ति और कर्म—तीनों को मोक्ष का कारण स्वीकार किया है। इसमें अनासक्ति-योग पर अधिक बल दिया है। कर्म करो, परन्तु फल की इच्छा मत रखो—यही गीता का अनासक्ति-योग है।

जैन-दर्शन न एकान्त रूप से तत्त्वज्ञान से, न एकान्त रूप से कर्मयोग (चारित्र) से और न एकान्त रूप से भक्ति-योग (श्रद्धा) से मुक्ति मानता है। उसका दृढ़ विश्वास है कि सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्-दर्शन और सम्यक्-चारित्र अथवा सम्यक्-ज्ञान-योग, भक्ति-योग एवं कर्मयोग की समन्वित साधना से ही आत्मा बन्धन से मुक्त हो सकता है। बौद्ध-परम्परा में इसके लिए प्रज्ञा, शील और श्रद्धा शब्दों का प्रयोग मिलता है। जैन-परम्परा में इन तीनों को त्रिरत्न या रत्न-त्रय कहा है और इनकी अलग-अलग की गई साधना को नहीं, प्रत्युत समन्वित साधना को मोक्ष-मार्ग कहा है।^१ रत्न-त्रय आत्मा का स्वभाव है, अतः इनकी पूर्णता को प्रकट करना अथवा निरावरण होना ही मोक्ष है।

☆

जैन संस्कृति में— अहिंसा के इतिहास की सुनहरी कड़ियाँ

□ श्री गणेशमुनि शास्त्री

जब मानव समाज में आसुरीवृत्ति चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है, और हिंसा का विप्लव होने लगता है उस समय इस आर्यमूर्ति पर दिव्य दृष्टि वाले किसी न किसी नरपुंगव का जन्म होता है। वह नरपुंगव अपने प्रभास्वर व्यक्तित्व के द्वारा समाज में फैली हुई आसुरीवृत्ति का दमन करता है।

धरती का आदिमानव जब गड़बड़हाने लगा—संघर्ष और आक्रमण बढ़ने लगे, मनुष्य के मन में हिंसा-प्रतिहिंसा की भावनाएँ जाग्रत होने लगीं, उस समय में अहिंसा के आद्य प्रणेता भगवान् ऋषभदेव ने अवतरित होकर मानव जाति के अव्यवस्थित जीवन को यथावत् मर्यादित एवं संस्कारित किया। कृषि के माध्यम से अन्नाहार का आविष्कार किया। क्रियात्मक अहिंसा के इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण आलेख है। डा० कामताप्रसाद जैन ने 'विदेशी संस्कृतियों में अहिंसा' शीर्षक निबन्ध में तीर्थंकर कालीन हिंसा-अहिंसा के विकास का व्यौरा देते हुए बतलाया है कि.....“भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् कालक्रम से २३ तीर्थंकर हुए हैं। वे भी अहिंसा धर्म के प्रचारक थे। ऋषभदेव से १८ तीर्थंकरों पर्यन्त अहिंसा धर्म का प्राबल्य रहा। किन्तु तीर्थंकर मल्ली और मुनिसुव्रत के काल में यहाँ आसुरी-वृत्ति का श्रीगणेश हुआ। असुरों ने आकर अहिंसक ब्राह्मणों को भगाकर पशु यज्ञ करने की कुप्रथा को जन्म दिया, तभी से यहाँ हिंसा-अहिंसा का द्वन्द्व चला।”^१

सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ ने मेघरथ राजर्षि के भव में एक कपोत की प्राणरक्षा कर विश्व को अहिंसा-प्रेम का पाठ पढ़ाया। मीत के मुख से किसी प्राणी को बचाना यह धर्म का उच्च आदर्श है। प्रस्तुत आदर्श के संरक्षणार्थ ही राजर्षि ने अपने शरीर के मांस को काटकर क्षुधा-पीडित व्याध को अर्पण कर दिया, किन्तु शरणागत कपोत की उपेक्षा नहीं की। कष्टना के उस मसीहा ने प्राणों की ममता त्यागकर भी कपोत की जान बचाई।

प्रस्तुत घटनाचक्र में सांताहार का निषेध और अहिंसा धर्म की पुष्टि के ही संदर्शन होते हैं।

भगवान् अरिष्टनेमि का जीवन तो अहिंसा के इतिहास का एक उज्ज्वल पृष्ठ रहा है। उन्होंने अपने विवाह प्रसंग पर होने वाले पशु-बध से दयाद्रं होकर सदा-सदा के लिए विवाह से ही मुख मोड़ लिया।^२ प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलालजी ने 'जैन संस्कृति का अन्तरहृदय' शीर्षक निबन्ध में भगवान् नेमिनाथ के जीवन तत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—“एक समय था जबकि केवल

१ गुरुदेव श्री रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ, पृ० सं० ४००

२ उत्तराध्ययन सूत्र अ० २२

सत्रियों में ही नहीं, पर सभी वर्षों में मांस खाने की प्रथा थी। नित्यप्रति के भोजन, सामाजिक उत्सव, घासिक अनुष्ठान के अवसरों पर पशु-पक्षियों का वध ऐसा ही प्रचलित और प्रतिष्ठित था जैसा आज नारियों और फलों का चढ़ाना। उस युग में यादव-जाति के प्रमुख राजपुत्र नेमिकुमार ने एक अजीब कदम उठाया। उन्होंने अपनी शादी पर भोजन के लिए कत्ल किए जाने वाले निर्दोष पशु-पक्षियों की अति मूक वाणी से सहसा पिघलकर निश्चय किया कि वे ऐसी शादी न करेंगे जिसमें अनावश्यक और निर्दोष पशु-पक्षियों का वध होता हो। उस गम्भीर निश्चय के साथ वे सबकी सुनी-अनसुनी करके बारात से शीघ्र लौट आए, द्वारिका से सीधे गिरनार पर्वत पर जाकर उन्होंने तपस्या की। कौमारवय में विवाहार्थ प्रस्तुत सुन्दर राजकन्या का त्याग और ध्यान-तपस्या का मार्ग अपनाकर उन्होंने उस चिर-प्रचलित पशु-पक्षी वध की प्रथा पर आत्म हृष्टान्त से इतना प्रहार किया कि जिससे गुजरात भर में और गुजरात के प्रभाव वाले दूसरे प्रान्तों में भी वह प्रथा नाम शेष हो गई। वह परम्परा वर्तमान में चलने वाली पिजरा पोलों की लोकप्रिय संस्थाओं में परिवर्तित होगई।^१ यदुकुमार नेमिनाथ के पश्चात् भगवान् पार्श्वनाथ ने अहिंसा तत्त्व को विकसित करने के लिए एक दूसरा नया ही कदम उठाया। पञ्चाग्नि जैसी तामस-तपस्या का खण्डन करते हुए प्रभु ने बतलाया कि वह तपस्या किसी काम की नहीं, जिसमें अनेकों सूक्ष्म व स्थूल प्राणियों के जल जाने का कोई ज्ञान ही नहीं रहता। सद्-असद् का कोई भान ही नहीं होता। ऐसी हिंसाजन्य तपस्या, तपस्या नहीं, निरा देह दण्ड है, उसमें आत्म-विकास की कोई गुंजाइश नहीं है। इतना ही नहीं, प्रभु ने जन समाज को पाखण्ड धर्म से सावधान किया और वास्तविक धर्म से परिचित करा कर जीवन के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ा। इस प्रकार धर्मक्षेत्र में सदियों से फैले हुए अज्ञान तिमिर को दूर कर विवेक के प्रकाश से अहिंसा तत्त्व को जगमगाया।

यद्यपि सर्प की घटना को लेकर भगवान् पार्श्वनाथ को कमठ तापस व उनके अनुयायियों का कोप पात्र बनना पड़ा, फिर भी उन्होंने उसकी तनिक भी परवाह नहीं की, और हिंसाजन्य अज्ञान-तप की जड़ ही उखाड़ डाली। यह भगवान् पार्श्वनाथ की अपूर्व देन है कि आज भी जैन धर्म या उससे प्रभावित क्षेत्र में सर्पों के प्रति करुणा की वर्षा बरसती हुई दिखलाई पड़ती है, मानव सर्पों को नाग देवता के रूप में पूजने लगा है।

भगवान् पार्श्वनाथ के द्वारा विकसित अहिंसा की भावना ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर को विरासत में प्राप्त हुई। भगवान् महावीर और बुद्ध के युग का इतिहास तो बड़ा ही विचित्र रहा है जब भारत के धर्मक्षेत्रों में यज्ञ-यागादि के नाम पर पशुबलि और दास-प्रथा के रूप में शोषण का दौर चल रहा था, स्वार्थी धर्मान्ध व रस-लोलुप व्यक्ति हिंसा को विशेष प्रोत्साहित कर रहे थे। “वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति”, “यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः”, “स्वर्गकामो यजेत” आदि-आदि सूत्रों का निर्माण कर धर्म के नाम पर पशुओं का बेरहमी से वध किया जाता था। इस नृशंस-हिंसा को वे अहिंसा का चोगा पहना देते थे। हिंसा, अहिंसा का नकाब पहनकर खुले आम जनता के सम्मुख आने लगी। मानव के द्वारा मानव का तिरस्कार और अपमान देखकर वस्तुतः मानवता अपमानित होने लगी, वह हजार-हजार आसुओं से सिसक उठी। उस समय भगवान् महावीर और तथागत बुद्ध ने अहिंसा में नये प्राण और नई चेतना का स्पन्दन भरने के लिए सम्पूर्ण मानव जाति को दया और करुणा का दिव्य-सन्देश दिया। सारे समाज में अहिंसक क्रान्ति की व्यापक लहर पैदा की। इतना ही नहीं, अपने धर्म-प्रवचनों में खुल्लम-खुल्ला आम प्रचलित यज्ञों का खण्डन करते हुए कहा—“धर्म का सम्बन्ध आत्मा की पवित्रता से है, मूक पशुओं का रक्त बहाने में धर्म कहाँ है? यह तो आमूलचूल भयंकर भूल है, पाप है। जब आप किसी मरते जीव को जीवन नहीं

दे सकते, तो उसे मारने का आपको क्या अधिकार है ? पैर में लगा जरा-सा काँटा जब हमें बेचैन कर देता है, तो जिनके गले पर छुरियाँ चलती हैं, उन्हें कितना दुःख होता होगा ? यज्ञ करना बुरा नहीं है। वह अवश्य होना चाहिए। परन्तु ध्यान रखो कि वह विषय-विकारों के पशुओं की बलि से हो, न कि इन जीवित देहधारी मूक पशुओं की बलि से। सच्चे धर्म यज्ञ के लिए आत्मा को अग्निकुण्ड बनाओ, उसमें मन-वचन और काया के द्वारा शुभ प्रवृत्ति रूप घृत उँडेलो। अनन्तर तप-अग्नि के द्वारा दुष्कर्म का ईंधन जलाकर शान्ति रूप प्रशस्त होम करो।”^१

इस प्रकार भगवान् महावीर ने हिंसात्मक यज्ञों का विरोध कर अहिंसा-तप आदि रूप यज्ञों का निरूपण किया तथा प्रचलित मांसाहार का सबल स्वर में घोर विरोध किया। विरोध की आवाज इतनी प्रचण्ड थी कि स्वार्थी-धर्मन्धि व्यक्ति अपने स्वार्थों पर होने वाले आघातों से आहत होकर कुछ समय के लिए कुलबुला उठे। किन्तु शान्ति के इस महान् देवदूत की एकाग्र तपस्या व उसकी अहिंसा परायण निष्ठा के सम्मुख एक दिन उन्हें नतमस्तक होना पड़ा। परिणामतः जो व्यक्ति मांस व यज्ञ प्रिय थे, उनके शुष्क हृदयों में करुणा का अजस्र-ज्योत प्रवाहित हो उठा।

भगवान् महावीर और बुद्ध के पश्चात् तो अहिंसा भावना की जड़ भारत के मानस में इतनी अधिक गहरी जमी कि समस्त भारतीय धर्म का वह हार्द बन गई। तात्कालिक बड़े-बड़े प्रभावशाली ब्राह्मणों व क्षत्रियों को उसने अपनी ओर आकर्षित कर लिया। सामाजिक, धार्मिक आदि उत्सवों में भी अहिंसा ने अपना प्रभाव जमा लिया। सर्वशान्ति का साम्राज्य फैल गया। भगवान् महावीर ने विश्व को जो अनेक प्रकार की देन दी हैं, उनमें यह अहिंसा सम्बन्धी देन सर्वोपरि है।

भगवान् महावीर तथा बुद्ध द्वारा उपदिष्ट अहिंसा और करुणा तत्त्व को सम्राट् चन्द्रगुप्त, अशोक तथा उसके पौत्र संप्रति ने और अधिक प्रतिष्ठित एवं व्यापक बनाया, इतिहास इसका साक्षी है। कलिग युद्ध में नर-रक्त को बहते देखकर अशोक का हृदय करुणाद्रं हो उठा, और उसने भविष्य में युद्ध न करने का संकल्प कर लिया। अशोक ने अहिंसा और करुणा के सन्देश को शिलालेखों द्वारा स्थान-स्थान पर उत्कीर्ण कराके प्रचारित किया। अशोक के पौत्र सम्राट् संप्रति ने अहिंसा की भावना को अपने अधीन राज्यों तक ही सीमित नहीं रखा, बरन् राज्यों के सीमावर्ती-प्रदेशों में भी दूर-दूर तक फैलाकर उसका प्रबल प्रचार किया। बारहवीं सदी में आचार्य हेमचन्द्र ने गुर्जरपति सिद्धराज को अहिंसा की भावना से प्रभावित कर एक बहुत बड़ा आदर्श उपस्थित किया। सिद्धराज के राज्य में जहाँ देवी-देवताओं के समक्ष नानाविध हिंसाएँ होती थीं, वे हिंसाएँ सब रुक गईं। सिद्धराज का उत्तराधिकारी महान् सम्राट् कुमारपाल भी अहिंसा में पूर्ण निष्ठा रखता था। उसने अहिंसा भावना का जितना विस्तार किया वह इतिहास में बेजोड़ है। उनकी दयाद्रवृत्ति के लिए एक सुप्रसिद्ध जनश्रुति है कि—‘कुमारपाल अपने राज्य के अश्वों को पानी भी छान-छानकर पिलाया करता था।’ उसकी “अमारि-घोषणा” अत्यन्त लोकप्रिय बनी, जो अहिंसा भावना की एक विशिष्ट व्योतक थी।

अहिंसा भावना के प्रचार में जहाँ अनेकों वरिष्ठ व्यक्तियों के हाथ अग्रसर रहे हैं, वहाँ निर्ग्रन्थ परम्परा के श्रमणों का भी इसमें विशेष श्रेय रहा है। वे हिमालय से कन्याकुमारी तक, अटक से कटक तक पद यात्रा करके, अनेक मुसीबतों व अनेक कष्टों को झेलकर, जन-जन को

१ तवो जोई, जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।

कम्मेहा संजम जोग सन्ती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थ ॥

अहिंसा का अमृत बाँटते रहे हैं। उनके अन्तर में प्रेम-पीयूष उडेलते रहे हैं। अगणित व्यक्तियों को हिंसा-जनित मांस-मदिरा के व्यसनों का परित्याग करवाकर उन्हें धर्माभिमुख किया है।

जैसे शंकराचार्य ने भारत के चारों कोनों पर सठ स्थापित करके ब्रह्माहृत का विजय स्तम्भ रोपा है, वैसे ही महावीर के अनुयायी अनगर निर्ग्रन्थों ने भारत जैसे विशाल देश के चारों कोनों में अहिंसाहृत की भावना के विजय स्तम्भ रोप दिये हैं, ऐसा कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। लोकमान्य तिलक ने इस बात को यों कहा था कि—गुजरात की अहिंसा-भावना जैनों की ही देन है, पर इतिहास हमें कहता है कि अहिंसामूलक धर्म वृत्ति में निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय का थोड़ा-बहुत प्रभाव अवश्य काम कर रहा है। उन सम्प्रदायों के प्रत्येक जीवन व्यवहार की छानबीन करने से कोई भी विचारक यह सरलता से जान सकता है कि इसमें निर्ग्रन्थों की अहिंसा भाव का पुट अवश्य है।^१

वस्तुतः निर्ग्रन्थ परम्परा के श्रमणों का अहिंसा के उत्कर्ष में विशेष अवदान रहा है। श्री हीरविजय सूरि ने भारत के मुगल सम्राट अकबर को अपने प्रभाव में खींच कर अहिंसा का दिव्य सन्देश दिया और सम्राट से कुछ प्रमुख तिथियों पर “अमारि-घोषणा” जारी करने का वचन भी प्राप्त किया। कई मांसाहारी जातियों को अहिंसा धर्म में दीक्षित किया। भारत में बहुत-सी मांसाहारी जातियाँ आज अहिंसक जीवन बिता रही हैं, इसका श्रेय अधिकांश में निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के श्रमणों को ही प्राप्त है।

मध्यकाल में कुछ ऐसे सन्त महात्माओं की अवतरणा भी हुई है कि जिनका उपदेश, वाणी व रचना अहिंसा-दया का अमृत कोष कहा जा सकता है। भारत की वायु में अहिंसा के जो परमाणु देखे जाते हैं, वे सब इन्हीं सन्त-महात्माओं की देन हैं। भारत उनके उपकारों से उपकृत है।

महात्मा गांधी ने भारत में नव जीवन का प्राण स्पन्दित करने के लिए अहिंसा का ही आश्रय ग्रहण किया था। मैं समझता हूँ गांधीजी की सफलता का रहस्य भी अहिंसा ही है, और अहिंसा के सहारे से ही वे एक बहुत बड़े राष्ट्र को सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र बना सके। इसमें कोई शक नहीं कि गांधीजी ने अहिंसा का राजनीति में प्रयोग करके भारत के अहिंसक वातावरण को और अधिक सजीव एवं व्यावहारिक बनाया है। यही नहीं, कहना चाहिए कि गांधीजी ने अहिंसा के इतिहास में एक नया पृष्ठ जोड़ा है। उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में अहिंसा भगवती की प्रतिष्ठा करके उसके व्यवहार क्षेत्र में भी उत्साहजनक अभिवृद्धि की है। इस प्रकार अहिंसा के इतिहास की सुनहरी कड़ियाँ भगवान् ऋषभदेव से लेकर वर्तमान गांधी युग तक सतत् जुड़ती रही हैं।



जैनदर्शन में जनतांत्रिक सामाजिक चेतना के तत्त्व

□ डा० नरेन्द्र भानावत एम० ए०, पी-एच० डी०
(हिन्दी प्राध्यापक, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

जैन मान्यता के अनुसार सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था में—वर्तमान अवसर्षिणी काल के प्रथम तीनों आरों में—जीवन अत्यन्त सरल एवं प्राकृतिक था। तथाकथित कल्प-वृक्षों से आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाया करती थी। यह अकर्मभूमि—भोगभूमि—का काल था। पर तीसरे आरे के अन्तिम पाद में कालचक्र के प्रभाव से इस अवस्था में परिवर्तन आया और मनुष्य कर्मभूमि की ओर अग्रसर हुआ। उसमें मानव सम्बन्धपरकता का भाव जगा और पारिवारिक व्यवस्था—कुल व्यवस्था—सामने आई। इसके व्यवस्थापक कुलकर या भनु कहलाये जो विकास क्रम में चौदह हुए। कुलकर व्यवस्था का विकास आगे चलकर समाजसंगठन, धर्मसंगठन के रूप में हुआ और इसके प्रमुख नेता हुए २४ तीर्थंकर तथा गौण नेता ३६ अन्य महापुरुष (१२ चक्रवर्ती, ६ बलदेव, ६ वासुदेव, ६ प्रतिवासुदेव) हुए जो सब मिलकर त्रिषष्टि शलाका पुरुष कहे जाते हैं।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में यह कहा जा सकता है कि जैन दृष्टि से धर्म केवल वैयक्तिक आचरण ही नहीं है, वह सामाजिक आवश्यकता और समाज व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण घटक भी है। जहाँ वैयक्तिक आचरण को पवित्र और मनुष्य की आंतरिक शक्ति को जागृत करने की दृष्टि से क्षमा, मादंब, आजंब, सत्य, संयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य जैसे मनोभावाधारित धर्मों की व्यवस्था है, वहाँ सामाजिक चेतना को विकसित और सामाजिक संगठन को सुदृढ़ तथा स्वस्थ बनाने की दृष्टि से ग्रामधर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म, कुलधर्म, गणधर्म, संघधर्म जैसे समाजोन्मुखी धर्मों तथा ग्राम स्थविर, नगर स्थविर, राष्ट्र स्थविर, प्रशास्ता स्थविर, कुल स्थविर, गण स्थविर, संघ स्थविर जैसे धर्मनायकों की भी व्यवस्था की गई है।^१

इस बिन्दु पर आकर 'जन' और 'समाज' परस्पर जुड़ते हैं और धर्म में निवृत्ति-प्रवृत्ति, त्याग-सेवा और ज्ञान-क्रिया का समावेश होता है।

यद्यपि यह सही है कि धर्म का मूल केन्द्र व्यक्ति होता है क्योंकि धर्म आचरण से प्रकट होता है पर उसका प्रभाव समूह या समाज में प्रतिफलित होता है और इसी परिप्रेक्ष्य में जनतांत्रिक सामाजिक चेतना के तत्त्वों को पहचाना जा सकता है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि जनतांत्रिक सामाजिक चेतना की अवधारणा पश्चिमी जनतन्त्र—यूनान के प्राचीन नगर राज्य और कालान्तर में फ्रांस की राज्य क्रान्ति की देन है। पर सर्वथा ऐसा मानना ठीक नहीं। प्राचीन भारतीय राजतन्त्र व्यवस्था में आधुनिक इंग्लैण्ड की भाँति सीमित ब वैधानिक राजतन्त्र से युक्त प्रजातन्त्रात्मक शासन के बीज विद्यमान थे। जनसभाओं और विशिष्ट आध्यात्मिक ऋषियों द्वारा

१ स्थानांग सूत्र, दसवां ठाणा। विशेष विवेचन के लिए देखिए—आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज कृत 'धर्म और धर्मनायक' पुस्तक।

राजतन्त्र सीमित था। स्वयं भगवान् महावीर लिच्छवी गणराज्य से सम्बन्धित थे। यह अवश्य है कि पश्चिमी जनतन्त्र और भारतीय जनतन्त्र का विकास प्रक्रिया और उद्देश्यों में अन्तर रहा है, उसे इस प्रकार समझा जा सकता है:—

१. पश्चिम में स्थानीय शासन की उत्पत्ति केन्द्रीय शक्ति से हुई है जबकि भारत में इसकी उत्पत्ति जन समुदाय से हुई है।

२. पाश्चात्य जनतान्त्रिक राज्य पूंजीवाद, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के बल पर फले-फूले हैं। वे अपनी स्वतन्त्रता के लिये तो मर-मिटते हैं, पर दूसरे देशों को राजनैतिक दासता का शिकार बनाकर उन्हें स्वशासन के अधिकार से वंचित रखने की साजिश करते हैं। पर भारतीय जनतन्त्र का रास्ता इससे भिन्न है। उसने आर्थिक शोषण और राजनैतिक प्रभुत्व के उद्देश्य से कभी बाहरी देशों पर आक्रमण नहीं किया। उसकी नीति शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की रही है।

३. पश्चिमी देशों में पूंजीवादी और साम्यवादी दोनों प्रकार के जनतन्त्रों को स्थापित करने में रक्तपात, हत्याकाण्ड और हिंसक क्रान्ति का सहारा लिया है पर भारतीय जनतन्त्र का विकास लोकशक्ति और सामूहिक चेतना का फल है। अहिंसक प्रतिरोध और सत्य के प्रति आग्रह उसके मूल आधार रहे हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतीय समाज-व्यवस्था में जनतन्त्र केवल राजनैतिक सन्दर्भ ही नहीं है। यह एक व्यापक जीवन षट्ठी है, एक मानसिक दृष्टिकोण है जिसका सम्बन्ध जीवन के धार्मिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी पक्षों से है। इस घरातल पर जब हम चिन्तन करते हैं तो मुख्यतः जैन दर्शन में और अधिकांश अन्य भारतीय दर्शनों में भी जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना के निम्नलिखित मुख्य तत्त्व रेखांकित किये जा सकते हैं:—

१. स्वतन्त्रता
२. समानता
३. लोक-कल्याण
४. धर्म निरपेक्षता

१. स्वतन्त्रता—स्वतन्त्रता जनतन्त्र की आत्मा है और जैनदर्शन की मूल मिति भी। जैन मान्यता के अनुसार जीव अथवा आत्मा स्वतन्त्र अस्तित्व वाला द्रव्य है। अपने अस्तित्व के लिए न तो यह किसी दूसरे द्रव्य पर आश्रित है और न इस पर आश्रित कोई अन्य द्रव्य है। इस दृष्टि से जीव को प्रभु कहा गया है—जिसका अभिप्राय है जीव स्वयं ही अपने उद्धान या पतन का उत्तरदायी है। सद्प्रवृत्त आत्मा ही उसका मित्र है और दुष्प्रवृत्त आत्मा ही उसका शत्रु है। स्वाधीनता और पराधीनता उसके कर्मों के अधीन है। वह अपनी साधना के द्वारा घाती-अघाती सभी प्रकार के कर्मों को नष्ट कर पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर सकता है। स्वयं परमात्मा बन सकता है। जैनदर्शन में यही जीव का लक्ष्य माना गया है। यहाँ स्वतन्त्रता के स्थान पर मुक्ति शब्द का प्रयोग हुआ है। इस मुक्ति-प्राप्ति में जीव की साधना और उसका पुरुषार्थ ही मुख्य साधन है। गुरु आदि से मार्गदर्शन तो मिल सकता है, पर उनको पूजने-आराधने से मुक्ति नहीं मिल सकती। मुक्ति-प्राप्ति के लिए स्वयं के आत्मा को ही पुरुषार्थ में लगाना होगा। इस प्रकार जीव मात्र की गरिमा, महत्ता और इच्छा-शक्ति को जैन-दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसीलिए यहाँ मुक्त जीव अर्थात् परमात्मा की गुणात्मक एकता के साथ-साथ मात्रात्मक अनेकता है। क्योंकि प्रत्येक जीव ईश्वर के सान्निध्य का सामीप्य-लाभ ही प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है, बल्कि स्वयं परमात्मा बनने के लिए क्षमतावान है। फलतः जैन दृष्टि में आत्मा ही परमात्मदशा प्राप्त करती है, पर

कोई परमात्मा आत्मदशा प्राप्त कर पुनः अवतरित नहीं होता। इस प्रकार व्यक्ति के अस्तित्व के धरातल पर जीव को ईश्वराधीनता और कर्माधीनता दोनों से मुक्ति दिलाकर उसकी पूर्ण स्वतन्त्रता की रक्षा की गयी है।

जैनदर्शन की यह स्वतन्त्रता निरंकुश या एकाधिकारवादिता की उपज नहीं है। इसमें दूसरों के अस्तित्व की स्वतन्त्रता की भी पूर्ण रक्षा है। इसी बिन्दु से अहिंसा का सिद्धान्त उभरता है जिसमें जन के प्रति ही नहीं प्राणीमात्र के प्रति मित्रता और बन्धुत्व का भाव है। यहाँ जन अर्थात् मनुष्य ही प्राणी नहीं है और मात्र उसकी हत्या ही हिंसा नहीं है। जैन शास्त्रों में प्राण अर्थात् जीवनी-शक्ति के दस भेद बताये गये हैं—सुनने की शक्ति, देखने की शक्ति, सूँघने की शक्ति, स्वाद लेने की शक्ति, छूने की शक्ति, विचारने की शक्ति, बोलने की शक्ति, गमनागमन की शक्ति, श्वास लेने छोड़ने की शक्ति और जीवित रहने की शक्ति। इनमें से प्रमत्त योग द्वारा किसी भी प्राण को क्षति पहुँचाना, उस पर प्रतिबन्ध लगाना, उसकी स्वतन्त्रता में बाधा पहुँचाना, हिंसा है। जब हम किसी के स्वतन्त्र चिन्तन को बाधित करते हैं, उसके बोलने पर प्रतिबन्ध लगाते हैं और गमनागमन पर रोक लगाते हैं तो प्रकारान्तर से क्रमशः उसके मन, वचन और काया रूप प्राण की हिंसा करते हैं। इसी प्रकार किसी के देखने, सुनने, सूँघने, चखने, छूने आदि पर प्रतिबन्ध लगाना भी विभिन्न प्राणों की हिंसा है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वतन्त्रता का यह सूक्ष्म, उदात्त चिन्तन ही हमारे संविधान के स्वतन्त्रता सम्बन्धी मौलिक अधिकारों का उत्स-रहा है।

स्वतन्त्रता का विचार-जगत में बड़ा महत्व है। आत्मनिर्णय और मताधिकार इसी के परिणाम हैं। कई साम्यवादी देशों में सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता होते हुए भी इच्छा स्वातन्त्र्य का यह अधिकार नहीं है। पर जैनदर्शन में और हमारे संविधान में भी विचार स्वातन्त्र्य को सर्वोपरि महत्व दिया गया है। भगवान महावीर ने स्पष्ट कहा कि प्रत्येक जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व है, इसलिए उसकी स्वतन्त्र विचार-चेतना भी है। अतः जैसा तुम सोचते हो एकमात्र वही सत्य नहीं है। दूसरे जो सोचते हैं उसमें भी सत्यांश निहित है। अतः पूर्ण सत्य का साक्षात्कार करने के लिए इतर लोगों के सोचे हुए, अनुभव किये हुए सत्यांशों को भी महत्व दो। उन्हें समझो, परखो, और उसके आलोक में अपने सत्य का परीक्षण करो। इससे न केवल तुम्हें उस सत्य का साक्षात्कार होगा वरन् अपनी भूलों के प्रति सुधार करने का तुम्हें अवसर भी मिलेगा। प्रकारान्तर से महावीर का यह चिन्तन जनतांत्रिक शासन-व्यवस्था में स्वस्थ विरोधी पक्ष की आवश्यकता और महत्ता प्रतिपादित करता है तथा इस बात की प्रेरणा देता है कि किसी भी तथ्य को भली प्रकार समझने के लिए अपने को विरोध-पक्ष की स्थिति में रख कर उस पर चिन्तन करो। तब जो सत्य निखरेगा वह निर्मल, निर्विकार और निष्पक्ष होगा। महावीर का यह वैचारिक औदार्य और सापेक्ष चिन्तन स्वतन्त्रता का रक्षा कवच है। यह दृष्टिकोण अनेकान्त सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित है।

२. समानता—स्वतन्त्रता की अनुभूति वातावरण और अवसर की समानता पर निर्भर है। यदि समाज में जातिगत वैषम्य और आर्थिक असमानता है तो स्वतन्त्रता के प्रदत्त अधिकारों का भी कोई विशेष उपयोग नहीं। इसलिए महावीर ने स्वतन्त्रता पर जितना बल दिया उतना ही बल समानता पर दिया। उन्हें जो बिरक्ति हुई वह केवल जीवन की नश्वरता या सांसारिक असारता को देखकर नहीं वरन् मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण देखकर वे तिलमिला उठे। और उस शोषण को मिटाने के लिए, जीवन के हर स्तर पर समता स्थापित करने के लिए उन्होंने क्रान्ति की, तीर्थं प्रवर्तन किया। भक्त और भगवान के बीच पनपे धर्म दलालों को अनावश्यक

बताकर भक्त और भगवान के बीच गुणात्मक सम्बन्ध जोड़ा। जन्म के स्थान पर कर्म को प्रतिष्ठित कर गरीबों, दलितों और असहायों को उच्च आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त करने की कला सिखायी। अपने साधना काल में कठोर अभिग्रह धारण कर दासी बनी, हथकड़ी और बेड़ियों में जकड़ी, तीन दिन से भूखी, मुण्डित केश राजकुमारी चन्दना से आहार ग्रहण कर, उच्च क्षत्रिय राजकुल की महारानियों के मुकाबले समाज में निकृष्ट समझी जाने वाली नारी शक्ति की आध्यात्मिक गरिमा और महिमा प्रतिष्ठापित की। जातिवाद और वर्णवाद के खिलाफ छेड़ी गयी यह सामाजिक क्रान्ति भारतीय जनतन्त्र की सामाजिक समानता का मुख्य आधार बनी है। यह तथ्य पश्चिम के सभ्य कहलाने वाले तथाकथित जनतान्त्रिक देशों की रंगभेद नीति के विरुद्ध एक चुनौती है।

महावीर दूरदृष्टा विचारक और अनन्तज्ञानी साधक थे। उन्होंने अनुभव किया कि आर्थिक समानता के बिना सामाजिक समानता अधिक समय तक कायम नहीं रह सकती और राजनैतिक स्वाधीनता भी आर्थिक स्वाधीनता के अभाव में कल्याणकारी नहीं बनती। इसलिए महावीर का सारा बल अपरिग्रह भावना पर रहा। एक ओर उन्होंने एक ऐसी साधु संस्था खड़ी की जिसके पास रहने को अपना कोई आगार नहीं। कल के खाने की आज कोई निश्चित व्यवस्था नहीं, सुरक्षा के लिए जिसके पास कोई साधन-संग्रह नहीं, जो अनगार है, भिक्षु है, पादविहारी है, निर्ग्रन्थ है, श्रमण है, अपनी श्रम साधना पर जीता है और दूसरों के कल्याण के लिए समर्पित है, उसका सारा जीवन जिसे समाज से कुछ लेना नहीं, देना ही देना है। दूसरी ओर उन्होंने उपासक संस्था—श्रावक संस्था खड़ी की जिसके परिग्रह की मर्यादा है, जो अणुव्रती है।

श्रावक के बारह व्रतों पर जब हम चिंतन करते हैं तो लगता है कि अहिंसा के समानान्तर ही परिग्रह की मर्यादा और नियमन का विचार चला है। गृहस्थ के लिए महावीर यह नहीं कहते कि तुम संग्रह न करो! उनका बल इस बात पर है कि आवश्यकता से अधिक संग्रह मत करो। और जो संग्रह करो उस पर स्वामित्व की भावना मत रखो। पाश्चात्य जनतान्त्रिक देशों में स्वामित्व को नकारा नहीं गया है। वहाँ सम्पत्ति को एक स्वामी से छीन कर दूसरे को स्वामी बना देने पर बल है। इस व्यवस्था में ममता छूटती नहीं, स्वामित्व बना रहता है और जब तक स्वामित्व का भाव है—संपर्ष है, वर्गभेद है। वर्गविहीन समाज रचना के लिए स्वामित्व का विसर्जन जरूरी है। महावीर ने इसलिए परिग्रह को सम्पत्ति नहीं कहा, उसे मूर्च्छा या ममत्व भाव कहा है। साधु तो नितान्त अपरिग्रही होता ही है, गृहस्थ भी धीरे-धीरे उस ओर बढ़े, यह अपेक्षा है। इसीलिए महावीर ने श्रावक के बारह व्रतों में जो व्यवस्था दी है वह एक प्रकार से स्वैच्छिक स्वामित्व-विसर्जन और परिग्रह मर्यादा, सीलिंग की व्यवस्था है। आर्थिक विषमता के उन्मूलन के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति के उपार्जन के स्रोत और उपभोग के लक्ष्य मर्यादित और निश्चित हों। बारह व्रतों में तीसरा अस्तेय व्रत इस बात पर बल देता है कि चोरी करना ही वर्जित नहीं है, बल्कि चोर द्वारा चुराई हुई वस्तु को लेना, चोर को प्रेरणा करना, उसे किसी प्रकार की सहायता करना, राज्य नियमों के विरुद्ध प्रवृत्ति करना, झूठा नाप-तौल करना, झूठा दस्तावेज लिखना, झूठी साक्षी देना, वस्तुओं में मिलावट करना, अच्छी वस्तु दिखाकर घटिया दे देना आदि सब पाप हैं। आज की बढ़ती हुई चोर-बाजारी, टेक्स चोरी, खाद्य पदार्थों में मिलावट की प्रवृत्ति आदि सब महावीर की दृष्टि से व्यक्ति को पाप की ओर ले जाते हैं और समाज में आर्थिक विषमता के कारण बनते हैं। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए पांचवें व्रत में उन्होंने खेत, मकान, सोना-चांदी आदि जेवरात, धन धान्य, पशु-पक्षी, जमीन-जायदाद आदि को मर्यादित, आज की शब्दावली में इनका सीलिंग करने पर जोर दिया है और इच्छाओं को उत्तरोत्तर नियन्त्रित करने की बात कही है। छठे व्रत में व्यापार करने के क्षेत्र को सीमित करने का विधान है। क्षेत्र और दिशा का परिमाण करने से न

तो तस्करवृत्ति को पनपने का अवसर मिलता है और न उपनिवेशवादी वृत्ति को बढ़ावा मिलता है। सातवें व्रत में अपने उपभोग में आने वाली वस्तुओं की मर्यादा करने की व्यवस्था है। यह एक प्रकार का स्वैच्छिक राशनिंग सिस्टम है। इससे व्यक्ति अनावश्यक संग्रह से बचता है और संयमित रहने से साधन की ओर प्रवृत्ति बढ़ती है। इसी व्रत में अर्थार्जन के ऐसे स्रोतों से बचते रहने की बात कही गयी है जिनसे हिंसा बढ़ती है, कृषि उत्पादन को हानि पहुँचती है और असामाजिक तत्त्वों को प्रोत्साहन मिलता है। भगवान महावीर ने ऐसे व्यवसायों को कर्मादान की संज्ञा दी है और उनकी संख्या पन्द्रह बतलायी है। आज के संदर्भ में इंगालकम्मे—जंगल में आग लगाना, वणकम्मे—जंगल आदि कटवाकर बेचना, असईजणपोसणया—असंयति जनों का पोषण करना अर्थात् असामाजिक तत्त्वों को पोषण देना, आदि पर रोक का विशेष महत्व है।

(३) लोककल्याण—जैसा कि कहा जा चुका है महावीर ने संग्रह का निषेध नहीं किया है बल्कि आवश्यकता से अधिक संग्रह न करने को कहा है। इसके दो फलितार्थ हैं—एक तो यह कि व्यक्ति अपने लिए जितना आवश्यक हो उतना ही उत्पादन करे और निष्क्रिय बन जाय। दूसरा यह कि अपने लिए जितना आवश्यक हो उतना तो उत्पादन करे ही और दूसरों के लिए जो आवश्यक हो उसका भी उत्पादन करे। यह दूसरा अर्थ ही अभीष्ट है। जैनधर्म पुरुषार्थ प्रधान धर्म है अतः वह व्यक्ति को निष्क्रिय व अकर्मण्य बनाने की शिक्षा नहीं देता। राष्ट्रीय उत्पादन में व्यक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका को जैनदर्शन स्वीकार करता है पर वह उत्पादन शोषण, जमाखोरी और आर्थिक विषमता का कारण न बने, इसका विवेक रखना आवश्यक है। सरकारी कानून-कायदे तो इस दृष्टि से समय-समय पर बनते ही रहते हैं पर, जैन साधना में व्रत-नियम, तप-त्याग और दान-दया के माध्यम से इस पर नियन्त्रण रखने का विधान है। तपों में वैयाकृत्य अर्थात् सेवा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसी सेवा भाव से धर्म का सामाजिक पक्ष उभरता है। जैनधर्मावलम्बियों ने शिक्षा, चिकित्सा, छात्रवृत्ति, विधवा सहायता आदि के रूप में अनेक ट्रस्ट खड़े कर राष्ट्र की महान सेवा की है। हमारे यहाँ शास्त्रों में पैसा अर्थात् रुपयों के दान का विशेष महत्व नहीं है। यहाँ विशेष महत्व रहा है—आहारदान, ज्ञानदान, औषधदान और अभयदान का। स्वयं भूखे रह कर दूसरों को भोजन कराना पुण्य का कार्य माना गया है। अनशन अर्थात् भूखा रहना अपने प्राणों के प्रति मोह छोड़ना, प्रथम तप कहा गया है पर दूसरों को भोजन, स्थान, वस्त्र आदि देना, उनके प्रति मन से शुभ प्रवृत्ति रखना, वाणी से हितकारी बचन बोलना और शरीर से शुभ व्यापार करना तथा समाज-सेवियों व लोक-सेवकों का आदर-सत्कार करना भी पुण्य माना गया है। इसके विपरीत किसी का भोजन-पानी से विच्छेद करना—भक्तपाणबुच्छए, अतिचार, पाष माना गया है।

महावीर ने स्पष्ट कहा है—जैसे जीवित रहने का हमें अधिकार है वैसे ही अन्य प्राणियों को भी। जीवन का विकास संघर्ष पर नहीं, सहयोग पर ही आधारित है। जो प्राणी जितना अधिक उन्नत और प्रबुद्ध है, उसमें उसी अनुपात में सहयोग और त्यागवृत्ति का विकास देखा जाता है। मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है। इस नाते दूसरों के प्रति सहयोगी बनना उसका मूल स्वभाव है। अन्तःकरण में सेवा भाव का उद्रेक तभी होता है जब ‘आत्मवत् सर्वमूतेषु’ जैसा उदात्त विचार शेष सृष्टि के साथ आत्मीय सम्बन्ध जोड़ पाता है। इस स्थिति में जो सेवा की जाती है वह एक प्रकार से सहज स्फूर्ति सामाजिक दायित्व ही होता है। लोककल्याण के लिये अपनी सम्पत्ति विसर्जित कर देना एक बात है और स्वयं सक्रिय घटक बन कर सेवा कार्यों में जुट जाना दूसरी बात है। पहला सेवा का नकारात्मक रूप है जबकि दूसरी में सकारात्मक रूप। इसमें सेवा श्रुती ‘स्लीपिंग पार्टनर’ बन कर नहीं रह सकता, उसे सजग प्रहरी बन कर रहना होता है।

श्रावक के बारह व्रतों में पांचवां परिग्रह परिमाण व्रत सेवा के नकारात्मक पहलू को सूचित करता है जबकि बारहवां अतिथि संविभाग व्रत सेवा के सकारात्मक पहलू को उजागर करता है।

लोक सेवक में सरलता, सहृदयता और संवेदनशीलता का गुण होना आवश्यक है। सेवानेत्री को किसी प्रकार का अहम् न छू पाए और वह सत्तालिप्सु न बन जाए, इस बात की सतर्कता पद-पद पर बरतनी जरूरी है। विनय को जो धर्म का मूल कहा गया है, उसकी अर्थवत्ता इस संदर्भ में बड़ी गहरी है।

लोकसेवा के नाम पर अपना स्वार्थ साधने वालों को महावीर ने इस प्रकार चेतावनी दी है—

असंविभागी असंगहर्षई अप्पमाणभोई
से तारिसए नाराहए वयमिणं ।

अर्थात्—जो असंविभागी है—जीवन साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व की सत्ता स्थापित कर दूसरों के प्रकृति प्रदत्त संविभाग को नकारता है, असंग्रह रुचि—जो अपने लिए ही संग्रह करके रखता है और दूसरों के लिए कुछ भी नहीं रखता, अप्रमाणभोजी—भर्यादा से अधिक भोजन एवं जीवन-साधनों का स्वयं उपभोग करता है, वह आराधक नहीं विराधक है।

४. धर्म निरपेक्षता—स्वतन्त्रता, समानता और लोक-कल्याण का भाव धर्म-निरपेक्षता की भूमि में ही फल-फूल सकता है। धर्म निरपेक्षता का अर्थ धर्मरहितता न होकर असांप्रदायिक भावना और सार्वजनीन समभाव से है। हमारे देश में विविध धर्म और धर्मानुयायी हैं। इन विविध धर्मों के अनुयायियों में पारस्परिक सौहार्द, सम्मान और ऐक्य की भावना बनी रहे, सबको अपने-अपने ढंग से उपासना करने और अपने धर्म का विकास करने का पूर्ण अवसर मिले तथा धर्म के आधार पर किसी के साथ भेदभाव या पक्षपात न हो इसी दृष्टि से धर्म-निरपेक्षता हमारे संविधान का महत्त्वपूर्ण अंग बना है। धर्म निरपेक्षता की इस अर्थभूमि के अभाव में न स्वतन्त्रता टिक सकती है और न समानता और न लोक-कल्याण की भावना पनप सकती है। जैन तीर्थकरों ने सम्मता के प्रारम्भ में ही शायद यह तथ्य हृदयंगम कर लिया था। इसीलिए उनका सारा चिन्तन धर्म निरपेक्षता अर्थात् सार्वजनीन समभाव के रूप में ही चला। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य विशेष महत्त्वपूर्ण है—

(१) जैन तीर्थकरों ने अपने नाम पर धर्म का नामकरण नहीं किया। जैन शब्द बाद का शब्द है। इसे समण (श्रमण), अर्हत् और निर्ग्रन्थ धर्म कहा गया है। श्रमण शब्द समभाव, श्रमशीलता और वृत्तियों के उपशमन का परिचायक है। अर्हत् शब्द भी गुणवाचक है जिसने पूर्ण योग्यता—पूर्णता प्राप्त करली है वह है—अर्हत्। जिसने सब प्रकार की ग्रन्थियों से छुटकारा पा लिया है वह है निर्ग्रन्थ। जिन्होंने राग-द्वेष रूप शत्रुओं—आन्तरिक विकारों को जीत लिया है वे जिन कहे गये हैं और उनके अनुयायी जैन। इस प्रकार जैनधर्म किसी विशेष व्यक्ति, सम्प्रदाय या जाति का परिचायक न होकर उन उदात्त जीवन आदर्शों और सार्वजनीन भावों का प्रतीक है जिनमें संसार के सभी प्राणियों के प्रति आत्मोपम्य मैत्रीभाव निहित है।

(२) जैनधर्म में जो नमस्कार मन्त्र है, उसमें किसी तीर्थकर, आचार्य या गुरु का नाम लेकर बन्दना नहीं की गई है। उसमें पंच परमेष्ठियों को नमन किया गया है—नमो अरिहंताणं नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्जायाणं, नमो लोए सब्बसाहूणं ! अर्थात् जिन्होंने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करली है, उन अरिहन्तों को नमस्कार हो; जो संसार के जन्म-मरण के चक्र से छूटकर शुद्ध परमात्मा बन गए हैं उन सिद्धों को नमस्कार हो; जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य, तप आदि आचार्यों का स्वयं पालन करते हैं और दूसरों से करवाते हैं उन आचार्यों को नमस्कार

हो; जो आगमादि ज्ञान के विशिष्ट व्याख्याता है और जिनके सास्रिध्य में रहकर दूसरे अध्ययन करते हैं, उन उपाध्यायों को नमस्कार हो; लोक में जितने भी सत्पुरुष हैं उन सभी साधुओं को नमस्कार हो, चाहे वे किसी जाति, धर्म, मत या तीर्थ से सम्बन्धित हों। कहना न होगा कि नमस्कार मन्त्र का यह गुणनिष्ठ आधार जैनदर्शन की उदारचेता सार्वजनीन भावना का मेरुदण्ड है।

(३) जैन-दर्शन के आत्म-विकास अर्थात् मुक्ति को सम्प्रदाय के साथ नहीं बल्कि धर्म के साथ जोड़ा है। महावीर ने कहा किसी भी परम्परा या सम्प्रदाय में दीक्षित, किसी भी लिंग में स्त्री हो या पुरुष, किसी भी वेश में साधु हो या गृहस्थ, व्यक्ति अपना पूर्ण विकास कर सकता है। उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह महावीर द्वारा स्थापित धर्मसंघ में ही दीक्षित हो। महावीर ने अश्रुत्वा केवली को जिसने कभी भी धर्म को सुना भी नहीं, परन्तु चित्त की निर्मलता के कारण, केवलज्ञान की कक्षा तक पहुँचाया है। पन्द्रह प्रकार के सिद्धों में अन्यालिंग और प्रत्येकबुद्ध सिद्धों को जो किसी सम्प्रदाय या धार्मिक परम्परा से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि अपने ज्ञान से प्रबुद्ध होते हैं सम्मिलित कर महावीर ने साम्प्रदायिकता की निस्सारता सिद्ध कर दी है।

वस्तुतः धर्म-निरपेक्षता का अर्थ धर्म के सत्य से साक्षात्कार करने की तटस्थ वृत्ति से है। निरपेक्षता अर्थात् अपने लगाव और दूसरों के द्वेष-भाव से परे रहने की स्थिति? इसी अर्थ में जैन-दर्शन में धर्म की विवेचना करते हुए वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा है। जब महावीर से पूछा गया कि आप जिसे नित्य, ध्रुव और शाश्वत धर्म कहते हैं, वह कौनसा है—तब उन्होंने कहा—किसी प्राणी को मत मारो, उपद्रव मत करो, किसी को परिताप न दो और किसी की स्वतन्त्रता का अपहरण न करो। इस दृष्टि से जो धर्म के तत्त्व हैं प्रकारान्तर से वे ही जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना के तत्त्व हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जैनदर्शन जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना से प्रारम्भ से ही अपने तत्कालीन सन्दर्भों में सम्पृक्त रहा है। उसकी दृष्टि जनतन्त्रात्मक परिवेश में राजनैतिक क्षितिज तक ही सीमित नहीं रही है। उसने स्वतन्त्रता और समानता जैसे जनतान्त्रिक मूल्यों को लोकभूमि में प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह जैसे मूल्यवान सूत्र दिये हैं और वैयक्तिक तथा सामाजिक घरातल पर धर्म-सिद्धान्तों की मनोविज्ञान और समाजविज्ञान सम्मत व्यवस्था दी है। इससे निश्चय ही सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में सांस्कृतिक स्वराज्य स्थापित करने की दिशा मिलती है।



जैनधर्म के आधारभूत तत्त्व : एक दिग्दर्शन

□ श्री भगवती मुनि 'निर्मल'

विश्व के समस्त दर्शनों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक धर्म के दो रूप होते हैं, दर्शन और धर्म, विचार और आचार, सिद्धान्त और व्यवहार। जैनदर्शन में उन दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। जिस प्रकार वैदिकपरम्परा में पूर्वमीमांसा कर्म पर, क्रिया पर एवं आचार पर बल देती है तो उत्तरमीमांसा ज्ञान पर अधिक बल देती है। पूर्वमीमांसा कर्मकाण्ड पर तो उत्तरमीमांसा ज्ञानकाण्ड पर अपना अधिकारपूर्वक बल देती है। सांख्य व योग के सम्बन्ध में भी यही कथन प्रकट है। सांख्य ज्ञान का सिद्धान्त है तो योग आचार का। सांख्य प्रकृति और पुरुष के भेद-विज्ञान को महत्त्व देता है तो योग चित्त की विशुद्धि पर एवं समाधि को महत्त्व देता है। बौद्ध परम्परा के भी दो पक्ष हैं हीनयान और महायान। हीनयान जीवन के आचार-पक्ष पर अधिक जोर देता है तो महायान जीवन के विचार पक्ष को पुष्ट करता है। प्रत्येक सम्प्रदाय ने विचार-पक्ष को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है, यह निश्चित है। उसी प्रकार जैनदर्शन ने भी आचार और विचार दोनों पक्षों को स्वीकार अवश्य किया है। प्रत्येक अध्यात्मवादी दर्शन को जीवन के इन मूल तत्त्वों पर अवश्यमेव विचार करना अवश्यम्भावी है।

अनेकान्त और अहिंसा—जैनदर्शन ने आचार और विचार पर गहराई से विचार किया है। उसके किसी भी सम्प्रदाय ने अथवा उपसम्प्रदाय ने एकान्त ज्ञान और एकान्त क्रिया पर एक-मुखी विचार नहीं किया, पर बहुमुखी दृष्टि से विचार किया है। अनेकान्तवादी किसी एक पक्ष पर अपना जोर नहीं डालता। अनेकान्त में किसी भी एकान्त का आश्रय नहीं लिया जा सकता। ज्ञान बहुत बड़े अंश तक व्यक्तिनिष्ठ होता है। अतः मूलतः वस्तुनिष्ठ होने के बावजूद उसमें एकान्तिक विश्वस्तता सम्भव नहीं है। अर्थात् यह सम्भव नहीं कि जिस वस्तु को 'क' जिस रूप में देखता हो 'ख' भी उसको उसी रूप में देखता हो। ज्ञान में रूपभेद, उपयोगिता भेद, इन्द्रियशक्ति भेद आदि के अतिरिक्त व्यक्तिनिष्ठता और वस्तुनिष्ठता के अनुपात में भी अन्तर होता है। जैन दार्शनिक वस्तु को अनेकान्तात्मक मानते हैं। अन्त का अभिप्राय है अंश या धर्म। प्रत्येक वस्तु के अनेक धर्म होते हैं। न तो वस्तु सर्वप्रकारेण सत् होती है और न असत्, न सर्वथा नित्य न सर्वथा अनित्य। सभी प्रकार की एकान्तिकता के विपरीत जैन दार्शनिक के मत में वस्तु कथञ्चित् सत् और कथञ्चित् असत् तो कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य होती है। वस्तु के अनेकान्तपरक कथन का नाम स्याद्वाद है। सम्बन्धित वस्तु के एक धर्म के सापेक्षकथन का नाम नय है। महान् दार्शनिक आचार्य समन्तभद्र के मत में सर्वथा एकान्त को त्याग कर सात भङ्गों या नयों की अपेक्षा से स्वभाव की अपेक्षा सत् और परभाव की अपेक्षा असत् आदि के रूप में जो कथन किया जाता है वह स्याद्वाद कहलाता है।^१ अनेकान्तवाद को सप्तभंगी नय भी कहते हैं। अष्टसहस्री के अनुसार विधि और प्रतिषेध पर आधारित कल्पनामूलक गंग इस प्रकार हैं—

(१) विधि कल्पना—स्यात् अस्ति एव।

(२) प्रतिषेध कल्पना—स्यात् नास्ति एवं।

१ (क) स्याद्वाद सर्वैकान्तत्यागात् किं वृत्तचिद्विधिः सप्तभंग नयापेक्षो हेयादेय विशेषकः

—आप्त मीमांसा

(ख) अनेकान्तात्मकार्थकथनं स्याद्वादः।

- (३) क्रमशः विधि-प्रतिषेध कल्पना—स्यात् अस्ति नास्ति च ।
- (४) युगपद् विधि-प्रतिषेध कल्पना—स्यात् अवक्तव्य ।
- (५) विधि कल्पना और युगपद् कल्पना—स्यादस्ति चावक्तव्यः ।
- (६) प्रतिषेध कल्पना और युगपद् प्रतिषेध कल्पना—स्यान्नास्ति चावक्तव्यः ।
- (७) क्रम और युगपद् विधि-प्रतिषेध कल्पना—स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः ।

महान् दार्शनिक श्री यशोविजयजी के मतानुसार सप्तभंगी सात प्रकार के प्रश्नों और सात प्रकार के उत्तरों पर निर्भर है ?^१

यहाँ जो 'स्यात्' शब्द का प्रयोग हुआ है वह क्रियावाचक भी होता है। किन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में 'स्यात्' शब्द निपात के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

जैनधर्म का विचार-पक्ष अनेकान्तवाद है वहाँ आचार-पक्ष है अहिंसा।

आचार-पक्ष अहिंसा का विकास—जैन परम्परा में अहिंसा का जितना विकास हुआ है उतना अन्य किसी भी भारतीय परम्परा में नहीं हुआ है। जैन-परम्परा के लिए यह एक गौरव की वस्तु है। अहिंसा से बढ़कर इन्सान को इस धरती पर अन्य कोई धर्म और आचार नहीं हो सकता। जैनधर्म व सिद्धान्त के आलोचक भी किसी न किसी रूप में अहिंसा की स्वीकार करते हैं।

तीर्थंकर, गणधर, श्रुतधर और आचार्यों ने अपने-अपने युग में इस अहिंसा के आचार का इतना गम्भीर और विराट रूप प्रस्तुत किया है कि इसके अनन्त आकाश के नीचे मृत्युलोक की धरा पर पनपने वाले समस्त धर्मों का समावेश इसमें हो जाता है। जहाँ अनेकान्तवाद एक दृष्टि एवं एक विचार है, सत्य के अनुसन्धान की एक पद्धति है। मानव मस्तिष्क की एक जटिल उलझन नहीं, बल्कि इसको समझे बिना मानव-जीवन के किसी भी पहलू को न समझा जा सकता है, न सुलझाया जा सकता है। आचार में अहिंसा और विचार में अनेकान्तवाद ये दो जैनधर्म के मूलभूत सिद्धान्त हैं। इनका समन्वित मार्ग ही जीवन का विकास है।

ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः

जैनधर्म का मूल—भारतीय दर्शन और धर्म के विचारकों ने आत्मा और परमात्मा व विश्व के बारे में गहन चिन्तन-मनन और अन्वेषण किया है। इस अध्यात्म-ज्ञान परम्परा को भारतीय साहित्य में श्रुति, श्रुत और आगम कहा गया है। जैनधर्म के अनुसार गणधर तीर्थंकर की वाणी को ग्रहण करके सूत्ररूप में उसकी संरचना करते हैं। इसी को श्रुत, शास्त्र व आगम कहा जाता है। जैनधर्म की यह मान्यता है कि प्रत्येक तीर्थंकर अपने शासन काल में द्वादशांग वाणी की देशना करते हैं। अनन्त अतीत के तीर्थंकरों ने जो कुछ कहा है वही तत्त्व-ज्ञान वर्तमान काल के तीर्थंकरों ने कहा है। अनन्त अनागत तीर्थंकर भी कहेंगे। अतः प्रवाह की दृष्टि से द्वादशांग वाणी अनादि अनन्त भी है। परन्तु किसी भी व्यक्ति विशेष की दृष्टि से सादिसान्त भी है। प्रवाह से अनादि अनन्त होते हुए भी कृतक है, अकृतक नहीं; पौरुषेय है अपौरुषेय नहीं। वाणी भाषा है और भाषा शब्दों का समूह है। वाणी, भाषा शब्द किसी भी शरीर के प्रयत्न से ही उत्पन्न हो सकता है।

तात्वादि जन्माननुवर्णवशो वर्णात्मको वदे इतिस्फुटं च ।

पुंसश्च तात्वादिततः कथं स्यात् अपौरुषेयोऽयमिति प्रतीतिः ॥

१ इयं च सप्तभङ्गी वस्तुनि प्रतिपर्याय सप्तविध धर्माणां सम्भवात् सप्तविधसंशयोत्थापित सप्तविधजिज्ञासामूल सप्तविधप्रश्नानुरोधानुपपद्यते । — जैनतर्कभाषा-सप्तभंगी स्वरूपचर्चा

अभिप्राय यह है कि शब्द की अपेक्षा से शास्त्र अनित्य है। किन्तु भावों की अपेक्षा से शास्त्र अनादि अनन्त है। भाव का अर्थ है विचार, विचार का अर्थ है ज्ञान। वेदान्त और जैन-दर्शन ने ज्ञान को अनन्त माना है। न कभी उत्पन्न होता है, न कभी नष्ट होता है। भगवान की वाणी का सार है—अहिंसा और अनेकान्त—महावीर सर्वज्ञ थे, अहिंसा के अग्रणी थे। इन्हीं सब अहिंसा के दृष्टिकोणों को लक्ष्य में रखकर उन्होंने अपने अमूल्य प्रवचन में कहा—

सर्वे जीवाणि इच्छन्ति जीविउं न मरिज्जिउं ।

सभी जीव-जीवन के लिए आकुल है। किसी भी धर्म-क्रिया में किसी भी जीव का घात करना पाप है। सभी जीवन के लिए आतुर है। सभी की रक्षा करना धर्म है।

भगवान का सन्देश है कि—

सध्व-जग-जीव-रक्षण द्यदुयाए । भगवया पावयणं सुकहियं ।

अहिंसा के पूर्ण अर्थ के चोतन के लिए अनुकम्पा, दया, करुणा आदि शब्दों का प्रादुर्भाव हुआ है।

तत्त्व बोध—आचार और विचार की विचारणा के साथ-साथ तत्व-चिन्तन पर भी अधिक जोर दिया है। क्योंकि परम्परा की नींव तत्व पर आधारित है। जिस प्रकार बिना नींव के भवन नहीं रह सकता उसी प्रकार बिना तत्व के कोई भी परम्परा जीवित नहीं रह सकती। वैशेषिक दर्शन में सात पदार्थ माने गये हैं तो न्यायदर्शन सोलह पदार्थ स्वीकार करता है। सांख्य दर्शन ने पच्चीस तत्व स्वीकार किये हैं। मीमांसादर्शन वेद विहित कर्म को सत् मानता है। वेदान्त दर्शन एकमात्र ब्रह्म को ही सत् मानता है शेष सर्व असत् है—माया है।^१ बौद्धदर्शन ने चार आर्य सत्य कहे हैं। जैनदर्शन ने दो तत्व, सप्त तत्व व नौ तत्व स्वीकार किए गए हैं। दो तत्व हैं—जीव और अजीव। सप्त तत्व हैं—जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध व मोक्ष। नौ तत्व हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। जैनदर्शन सम्मत इन तत्वों में केवल अपेक्षा के आधार पर ही संख्या का भेद है भौतिक नहीं। भगवान महावीर ने इस समग्र संसार को दो राशि में विभक्त किया है—जीव राशि और अजीव राशि। नव तत्वों में संवर-निर्जरा और मोक्ष जीव के स्वरूप होने से जीव से भिन्न नहीं है। आस्रव, बन्ध, पुण्य एवं पाप अजीव के पर्याय विशेष होने से अजीव राशि के अन्तर्गत आ जाते हैं। इस अपेक्षा से देखा जाये तो जैन दर्शन द्वितत्त्ववादी है। सांख्यदर्शन भी वही कहता है। वह भी मूलरूप में दो तत्व स्वीकार करता है—प्रकृति और पुरुष। शेष तत्वों का समावेश वह प्रकृति में ही कर लेता है।

तत्त्व की परिभाषा—जैनदर्शन में विभिन्न स्थानों में व विभिन्न प्रसंगों पर सत्, सत्व, तत्त्वार्थ, अर्थ, पदार्थ और द्रव्य का प्रयोग एक ही अर्थ में किया गया है अतः ये शब्द पर्याय-वाची हैं। आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र में, तत्त्वार्थ सत् और द्रव्य शब्द का प्रयोग तत्व अर्थ में किया है। अतः जैनदर्शन में जो तत्व है वह सत् है। जो सत् है, वह द्रव्य है। शब्दों का भेद है, भावों का नहीं। आचार्य नेमिचन्द्र ने कहा है कि द्रव्य के दो भेद हैं—जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य। शेष संसार इन दोनों का ही प्रपञ्च है, विस्तार है। बौद्धाचार्य से प्रश्न किया कि सत् क्या है? उत्तर मिला कि—यत् क्षणिकं तत् सत्—इस दृश्यमान विश्व में जो कुछ भी है वह सर्व क्षणिक जो क्षणिक है वह सर्व सत् है। वेदान्तदर्शन का कथन है कि जो अप्रच्युत अनुत्पन्न एवं

एक रूप है वही सत् है, शेष सभी मिथ्या है। बौद्धदर्शन एकान्त क्षणिकवादी है तो वेदान्त एकान्त नित्यवादी। दोनों दो विपरीत किनारों पर खड़े हैं। जैन-दर्शन इन दोनों एकान्तवादों को स्वीकार नहीं करता। वह परिणामी नित्यवाद को मानता है। सत् क्या है? जैन-दर्शन का उत्तर है—जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त है वही सत् है यही सत्य तत्त्व व द्रव्य है। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है—

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

—तत्त्वार्थ० ५।२६

उत्पाद और व्यय के बिना ध्रौव्य नहीं रह सकता व ध्रौव्य के बिना उत्पाद और व्यय रह नहीं सकते। एक वस्तु में एक ही समय में उत्पाद भी हो रहा है व्यय भी हो रहा है और ध्रुवत्व भी रहता है। विश्व की प्रत्येक वस्तु द्रव्य की दृष्टि से नित्य है और पर्याय की दृष्टि से अनित्य है। अतः तत्त्व परिणामी नित्य है एकान्त नित्य और एकान्त अनित्य नहीं—तद्भावाव्ययं नित्यम्।

द्रव्य क्या है? इस प्रश्न का उत्तर जैनदर्शन इस प्रकार देता है—

गुणपर्यायवद् द्रव्यम्।

—तत्त्वार्थ० ५।३७

जो गुण और पर्याय का आश्रय एवं आधार है वही द्रव्य है। जैन-दर्शन में सत् के प्रतिपादन की शैली दो प्रकार की है—तत्त्व मुखेन और द्रव्य मुखेन। भगवान् महावीर ने समस्त लोक को षड्रव्यात्मक कहा है। वे द्रव्य हैं जीव और अजीव। अजीव के भेद हैं पुद्गल, धर्म-अधर्म, आकाश और काल। आकाश और काल का अनुमोदन अन्य दर्शन भी करते हैं। परन्तु धर्म व अधर्म के स्वरूप का प्रतिपादन केवल जैनदर्शन में ही उपलब्ध होता है। पुद्गल के लिए अन्य दर्शनों में कहीं पर जड़ तो कहीं पर प्रकृति, व कहीं पर परमाणु शब्द का प्रयोग किया है। जैन-दर्शन की दृष्टि से यह समग्र लोक जीव, पुद्गल धर्म, अधर्म आकाश और काल इन छहों द्रव्यों का समूह है। ये सभी द्रव्य स्वभावसिद्ध अनादि निधन और लोकस्थिति के कारणभूत हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में मिलता नहीं है। किन्तु परस्पर एक-दूसरे को अवकाश अवश्य देते हैं। लोक की परिधि के बाहर केवल शुद्ध आकाश-द्रव्य ही रहता है, जिसे आलोकाश कहते हैं। शेष सभी द्रव्य लोक में स्थित हैं। लोक से बाहर नहीं। छहों द्रव्य सत् हैं, वे कभी भी असत् नहीं हो सकते।

सत् की परिभाषा—किसी भी वस्तु पदार्थ एवं द्रव्य तथा तत्त्व को सत् कहने का फलितार्थ है कि वह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त है। वस्तु में उत्पत्ति विनाश और स्थिति एक साथ रहती है। वस्तु न एकान्त नित्य है न एकान्त क्षणिक है न एकान्त कूटस्थ नित्य है, किन्तु परिणामी नित्य है। प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रत्यक्ष अनुभव से इस तथ्य को जानता और देखता है कि एक ही वस्तु में अवस्था भेद होता रहता है। जिस प्रकार आम्र फल अपनी प्रारम्भिक अवस्था में हरा रहता है फिर कालान्तर में परिपक्व होने पर वही पीला होता है फिर भी वस्तुरूप वह आम्रफल ही रहता है। वस्तु की पूर्वपर्याय नष्ट होती है तो उत्तरपर्याय उत्पन्न होती है। फिर भी वस्तु का मूल रूप सदा स्थिर रहता है। स्वर्ण का कुण्डल मिटता है तो कंकण बनता है। कुण्डल पर्याय का व्यय हुआ तो कंकण पर्याय का उत्पाद हुआ; परन्तु स्वर्णत्व ज्यों का त्यों रहा। द्रव्य का न तो उत्पाद होता है न विनाश। पर्याय ही उत्पन्न और विनष्ट होता है। पर्याय की अपेक्षा से द्रव्य में उत्पाद और विनाश दोनों होते हैं। क्योंकि द्रव्य अपनी पर्यायों से भिन्न नहीं है अतः द्रव्य एक ही समय में उत्पत्ति, विनष्टि और स्थिति रूप भावों से समवेत रहता है।

द्रव्य का लक्षण—

“अद्रवत् द्रुवति द्रोष्यति-तास्तान् पर्यायान् इति द्रव्यम्”

जो भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को प्राप्त हुआ व हो रहा है और होगा वह द्रव्य है। इस कथन का आशय है कि वह अपने विविध परिणामों में परिणत होता है। अपनी पर्यायों में द्रवित होता है क्योंकि बिना पर्याय का द्रव्य नहीं हो सकता और बिना द्रव्य के पर्याय नहीं हो सकते। द्रव्य गुणात्मक होता है उसके विभिन्न रूपान्तर ही पर्याय हैं। द्रव्य के बिना गुण नहीं होते हैं तो गुणों के बिना द्रव्य भी नहीं रह सकता। फलितार्थ यह निकला कि जो उत्पाद-व्ययशील होकर भी ध्रुव है और गुण पर्याय से युक्त है वही द्रव्य है। गुणपर्यायवद द्रव्यम् १५।३७। द्रव्य, गुण और पर्याय परस्पर भिन्न हैं अथवा अभिन्न हैं। प्रत्युत्तर में कहा गया कि द्रव्य, गुण और पर्याय में परस्पर अन्यत्व तो अवश्य है किन्तु पृथक्त्व नहीं है। वस्तुओं में जो भेद पाया जाता है वह दो प्रकार का है—अन्यत्व रूप और पृथक्त्व रूप।

अन्यत्व रूप और पृथक्त्वरूप में क्या अन्तर है? तद् रूपता न होना अन्यत्व है और प्रदेशों की भिन्नता पृथक्त्व है जिस प्रकार मोती व मोती का श्वेतरूप (सफेदी) एक ही वस्तु नहीं है फिर भी दोनों के प्रदेश पृथक्-पृथक् नहीं है। परन्तु दण्ड और दण्डी में पृथक्त्व है। दोनों को अलग किया जा सकता है। द्रव्य, गुण और पर्याय में इस प्रकार का पृथक्त्व नहीं है। क्योंकि द्रव्य के बिना गुण और पर्याय नहीं हो सकते और गुण एवं पर्याय के बिना द्रव्य नहीं हो सकता। द्रव्य जिन-जिन पर्यायों को धारण करता है उन-उन पर्यायों में स्वयं ही उत्पन्न होता है। जिस प्रकार एक ही स्वर्ण कुण्डल कंकण और अँगूठी के रूप में बदल जाता है। आत्मा कभी मनुष्य बनता है तो कभी देव तो कभी नारक बनता है तो कभी तिर्यञ्च। कीट, पतंग, पशु, मनुष्य नारी, आदि अनेक रूप धारण करता; परन्तु इन सर्व पर्यायों में उसका आत्मभाव कभी नहीं बदलता रहता है। 'न सा जाइ न सा जोणि जत्थ जीवो न जाइ' कोई ऐसी योनि, कोई ऐसी जाति नहीं बची जहाँ यह आत्मा जाकर नहीं आई हो। परन्तु मूल आत्मपर्याय ज्यों की त्यों रही। एक ही वस्तु के पर्याय प्रतिक्षण बदलते रहते हैं, किन्तु वस्तु का वस्तुत्वभाव कभी नहीं बदलता। द्रव्यत्वभाव भी नहीं बदलने वाला है।

द्रव्यों का वर्गीकरण—मूलरूप में द्रव्यों के दो भेद हैं—जीव और अजीव। जीवों उवओग लक्खणो—उत० २८।१०। जीव द्रव्य चेतना एवं उपयोग व्यापारमय है। अजीव द्रव्य के पाँच भेद हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। ये पाँच द्रव्य अचेतन होते हुए भी परस्पर में बहु-सी विलक्षण विसदृश और असमान जातीय है। जीवद्रव्य भी यद्यपि अनन्त है पर वे समान जातीय और सदृश है। उनमें विशेष मौलिक भेद नहीं है, किन्तु इन पाँचों अजीव द्रव्यों में मौलिक भेद नहीं है। इसी पाँचों द्रव्यों को अलग-अलग और जीव द्रव्य को एकरूप में परिगणित करके द्रव्यों के दो भेद भी कहे हैं। यही षडद्रव्य हैं। इन षडद्रव्यों में पुद्गल मूर्त है और शेष जीव अधर्म, धर्म, आकाश और काल अमूर्त है। जिसमें वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श हो, वह मूर्त अन्यथा अमूर्त। वैशेषिकदर्शन में शब्द को आकाश का गुण कहा गया है। शब्दाकाशगुणम् तर्कसंग्रह। परन्तु शब्द वस्तुतः गुण है ही नहीं पुद्गल की एक पर्याय विशेष ही है। गुण की परिभाषा है जिसकी सत्ता द्रव्य में सदा उपलब्ध होती हो। जब दो पुद्गल स्कन्ध परस्पर टकराते हैं तभी उसमें से शब्द प्रस्फुटित होते हैं। अतः शब्द पुद्गल का ही पर्याय है। आकाश रूप द्रव्य का गुण शब्द नहीं है। अवगाहन है। अवगाहन की परिभाषा है अन्य सर्व द्रव्यों को अवकाश देना। धर्म द्रव्य का गुण गति हेतुत्व गति में सहायक होना है।

“चलण सहाओ धम्मो”—गतिशील द्रव्यों की गति में निमित्त होना। अधर्म द्रव्य स्थिति हेतुत्व है। स्थितिशील द्रव्यों की स्थिति में सहायक होना। कहा है—

गतिस्थित्युपरुहो धर्माधर्मयो उपकारः।

कालरूप द्रव्य का गुण वर्तना है, नवीन का पुराना होना व पुराने का नवीन रूप होना है। जीव द्रव्य का गुण उपयोग है—बोधरूप व्यापार और चेतना।

वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य

आकाश लोक-अलोक सर्वत्र व्याप्त है। धर्म और अधर्म केवल लोकाकाश तक ही रहते हैं तो जीव और पुद्गल भी लोकाकाश में ही रहते हैं। काल भी जीव और पुद्गल के आधार से केवल लोकाकाश तक ही रहता है। काल द्रव्य को छोड़कर शेष सभी द्रव्य अस्तिकाय रूप हैं। इसीलिए इन्हें पञ्चास्तिकाय कहते हैं। अस्ति का अर्थ है प्रदेश और काय का अर्थ है समूह। पाँच द्रव्य प्रदेश समूह रूप होने से अस्तिकाय हैं। काल के प्रदेश नहीं होते अतः वह अस्तिकाय नहीं है। जीव और पुद्गल द्रव्य सक्रिय हैं, शेष निष्क्रिय हैं।

सप्त तत्त्व—तत्त्व सात है। आत्मा के लिए उपयोगी होने वाले द्रव्यों में से जीव तथा पुद्गल ये दो मुख्य ही द्रव्य हैं। इनके संयोग और वियोग से होने वाली अगणित अवस्थाओं को निम्न भागों में बाँट सकते हैं। १ आस्रव २ बन्ध ३ संवर ४ निर्जरा और ५ मोक्ष। इनमें आस्रव और बन्ध, जीव और पुद्गल की संयोगी अवस्थाएँ हैं। संवर एवं निर्जरा उन दोनों की वियोगजन्य अवस्थाएँ हैं। इनमें जीव और पुद्गल को और मिला देने पर सात की संख्या हो जाती है। इन्हीं को जैनदर्शन में सात तत्त्व अथवा सप्त तत्त्व कहा जाता है। प्रत्येक आत्महितेच्छुक व्यक्ति को इन सातों का ज्ञान करना अनिवार्य है। बौद्धदर्शन में चार आर्य सत्य हैं—१ दुःखी २ समुदय ३ निरोध ४ मार्ग का विवेचन। वह जैनदर्शन के इन सात तत्त्वों के समान है। बौद्धदर्शन का जो आर्य सत्य दुःख है वह जैनदर्शन का बन्ध है। बौद्धदर्शन का “समुदय” आर्य सत्य है वह जैनदर्शन का आस्रव है। निरोध आर्य सत्य मोक्ष तत्त्व है; मार्ग आर्य सत्य संवर तथा निर्जरा के समान है। देही को देह के ममत्वभाव से पृथक् करने के लिए सात तत्त्वों का सम्यक् परिशीलन आवश्यक है।

प्रमाण और नय—इन तात्त्विक और व्यावहारिक सभी पदार्थों का यथार्थ ज्ञान करने के लिए जैन विचारकों ने उपादेय तत्त्व एवं ज्ञायक तत्त्व के रूप में प्रमाण, नय, सप्तभंगी एवं स्याद्वाद आदि का भी बहुत सुन्दर विवेचन किया है जो जैनदर्शन की भारतीय दर्शन को एक अनूठी देन है। नय सप्तभंगी स्याद्वाद इन अधिगम प्रकारों का जैनदर्शन में ही वर्णन उपलब्ध हैं। वस्तु के पूर्ण अंश का ज्ञान जहाँ हम प्रमाण से करते हैं वहाँ नय से हमें उसके सापेक्ष अंशों का बोध होता है। इस प्रकार स्याद्वाद पद्धति से हम जैनदर्शन के हार्द का ज्ञान कर सकते हैं। यही जैनदर्शन का आचार और विचार पक्ष है।

‘जेनं जयति शासनम्’



जैनदर्शन में भावना विषयक चिन्तन

□ डा० श्रीमती शान्ता भानावत एम० ए०, पी-एच० डी०
(प्रिन्सीपल, वीर बालिका महाविद्यालय, जयपुर (राज०))

भावना : अर्थ और परिभाषा

भावना का जीवन में बड़ा महत्त्व है। किसी भी विषय पर मनोयोगपूर्वक चिन्तन करना या विचार करना भावना है। चिन्तन करने से मन में संस्कार जागृत होते हैं। जैसा चिन्तन होगा, वैसे ही संस्कार बन आयेंगे। कहा भी जाता है—जैसी नीयत वैसी बरकत। अर्थात् जैसी भावना होगी, वैसा ही फल मिलेगा। अतः भावना एक प्रकार का संस्कार अथवा संस्कारमूलक चिन्तन है। इसे हम विचारों की तालीम (ट्रेनिंग) भी कह सकते हैं।

‘आवश्यक सूत्र’ के प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य हरिभद्र ने भावना की परिभाषा देते हुए कहा है—‘भाव्यतेऽनयेति भावना’ अर्थात् जिसके द्वारा मन को भावित किया जाय, संस्कारित किया जाय, उसे भावना कहते हैं।^१ आचार्य मलयगिरि ने भावना को परिकर्म अर्थात् विचारों की साज-सज्जा कहा है। जैसे शरीर को तेल, इत्र, अंगराग आदि से बार-बार सजाया जाता है, वैसे ही विचारों को अमुक विचारों के साथ बार-बार जोड़ा जाता है।^२ आगमों में कहीं-कहीं भावना को अनुप्रेक्षा भी कहा गया है। ‘स्थानांग सूत्र’ में ध्यान के प्रकरण में चार अनुप्रेक्षाएँ बताई गई हैं।^३ वहाँ अनुप्रेक्षा का अर्थ भावना किया है। अनुप्रेक्षा का अर्थ है—आत्मचिन्तन। आचार्य उमास्वाति ने भी भावना के स्थान पर अनुप्रेक्षा शब्द का प्रयोग किया है और कहा है—भगवद् कथित विषयों पर चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। आचार्य कुन्दकुन्द ने भी भावना के स्थान पर ‘अणुवेक्खा’ शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने बारह भावना पर एक ग्रन्थ भी लिखा है, जिसका नाम है “बारस अणुवेक्खा”।

जैन आचार्यों ने भावना के सम्बन्ध में बड़ा ही गहरा और व्यापक विश्लेषण किया है।^४ सचमुच भावना का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि वह सामान्य चिन्तन से प्रारम्भ होकर जप और ध्यान की उच्चतम भूमिका तक चला जाता है। आगमों में भावना को कहीं अत्यन्त वैराग्य प्रधान आत्म-विचारणा के रूप में लिया है, कहीं मनोबल को सुदृढ़ करने वाली साधना के रूप में, कहीं चारित्र्य को विशुद्ध रखने वाले चिन्तन और आचरण को भी भावना के रूप में बताया गया है तथा मन के विविध शुभाशुभ संकल्प-विकल्पों को भी भावना बताया है।

१ आवश्यक ४, टीका।

२ बृहत्कल्पमाष्य, भाग २, गाथा १२८५ की वृत्ति, पृ० ३६७।

३ स्थानांग ४।१

४ भावना विषयक विस्तृत अध्ययन के लिए देखें—‘भावना योग’ (लेखक—आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषिजी : संपादक—श्रीचन्द्र सुराना)

भावना का महत्त्व

भाव एक नौका है जिस पर चढ़ कर संसार-सागर से पार उतरा जा सकता है। यह धर्म रूप द्वार खोलने की कुंजी है। भाव एक औषधि है जिससे भवरोग की चिकित्सा की जाती है। भाव से रहित आत्मा कितना ही प्रयत्न करे, मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकती। शास्त्रों में मोक्ष के चार मार्ग बताये गये हैं—दान, शील, तप और भाव। इनमें अन्तिम मार्ग भाव है। भाव के अभाव में दान, शील, तप आदि केवल अल्प फलदायक होंगे। दान के साथ दान देने की शुद्ध भावना होगी, शील पालने की सच्ची भावना होगी और तप करने के सुन्दर भाव होंगे तभी वे मुक्ति के हेतु बनेंगे। अतः यह बात शत-प्रतिशत सही है कि भावशून्य आचरण सिद्धिदायक नहीं होता। तभी कहा जाता है—‘जो मन चंगा तो कठीती में गंगा।’

सचमुच भगवान् का निवास शुद्ध भावों में ही है। जो लोग भावना की शुद्धि को महत्त्व न देकर परमात्मा को मन्दिर, मसजिद, गिरजाघर में ढूँढने का प्रयत्न करते हैं, उनसे कबीर कहते हैं—

मुझको कहीं ढूँढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं मक्का, ना मैं काशी, ना काबे कैलास में।
मैं तो हूँ विश्वास में।

और परमात्मा को पाने के लिए वे ‘कर का मनका’ छोड़कर ‘मन का मनका’ फेरने की बात कहते हैं। मात्र माला के मणियों को फेरने से प्रभु नहीं मिलेंगे, उनसे मिलने के लिए तो मन को शुद्ध करना होगा।

‘पद्मपुराण’ में भी एक प्रसंग आता है। एक बार नारदजी भगवान् विष्णु से पूछते हैं कि भगवन् ! आपका निवास-स्थान कहाँ है ? विष्णु ने उत्तर दिया—

नाहं वसामि बँकुण्डे, योगिनां हृदये न च।
मद् भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद ॥

अर्थात् न मैं बँकुण्ड में रहता हूँ, न शेषशय्या पर और न योगियों के हृदय में, किन्तु मेरे भक्त जहाँ भावना के साथ मुझे पुकारते हैं, मैं वहीं उपस्थित रहता हूँ।

भावना के प्रकार

यों तो भावना के अलग-अलग दृष्टियों से अनेक प्रकार किये गये हैं, पर मूलतः भावना के दो भेद हैं—अशुभ भावना और शुभ भावना। शास्त्रीय भाषा में इसे क्रमशः संकिलष्ट और असंकिलष्ट भावना भी कहा जाता है।

अशुभ भावना

मन जब राग-द्वेष, मोह आदि के अशुभ विकल्पों में उलझ कर निम्न गति करता है, दुष्ट चिन्तन करता है तब वह चिन्तन अशुभ भावना कहलाता है। यह अशुभ भावना जीव की दुर्गति का कारण बनती है, उसे पतन की ओर ले जाती है। अशुभ भावना बड़े-बड़े तपस्वी मुनियों को भी नरक गति अथवा दुर्गति में ठेल देती है।

अशुभ भावना के कई भेद किये जा सकते हैं। उत्तराध्ययनसूत्र के ३६ वें अध्यायन में चार अशुभ भावनाओं का उल्लेख किया गया है। वे हैं—(१) कन्दर्प भावना (२) आम्बिगी भावना (३) किल्बिषी भावना और (४) आसुरी भावना।

‘स्थानांग सूत्र’ में चार अशुभ भावनाओं के प्रत्येक के चार-चार भेद करके सोलह प्रकार बताये हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) आसुरी भावनाओं के चार भेद—

- (क) क्रोधी स्वभाव,
- (ख) अति कलहशीलता,
- (ग) आहारादि में आसक्ति रखकर तप करना,
- (घ) निमित्त प्रयोग द्वारा आजोबिका करना ।

(२) आभियोगी भावना के चार भेद—

- (क) आत्मप्रशंसा—अपने मुँह से अपनी प्रशंसा करना,
- (ख) परपरिवाद—दूसरे की निन्दा करना,
- (ग) मृतिकर्म—रोगादि की शान्ति के लिए अभिमन्त्रित राख आदि देना,
- (घ) कौतुककर्म—अनिष्ट शान्ति के लिए मन्त्रोपचार आदि कर्म करना ।

(३) सम्मोही भावना के चार भेद—

- (क) उन्मार्ग का उपदेश देना,
- (ख) सम्मार्ग—यात्रा में अन्तराय या बाधा डालना,
- (ग) काम-भोगों की तीव्र अभिलाषा करना,
- (घ) अतिलोभ करके बार-बार नियाण (निदान) करना ।

(४) किल्बिषी भावना के चार भेद—

- (क) अरिहन्तों की निन्दा करना,
- (ख) अरिहन्त कथित धर्म की निन्दा करना,
- (ग) आचार्य, उपाध्याय की निन्दा करना,
- (घ) चतुर्विध संघ की निन्दा करना ।

अशुभ भावना के इन रूपों का विवेचन करने का यही अभिप्राय है कि इसके दुष्परिणामों से बचा जाय और अपने अन्तःकरण को पवित्र किया जाय ।

शुभ भावना

चारित्र्य को समुज्ज्वल बनाने के लिये शुभ भावना का बड़ा महत्व है। शुभ भावना के बार-बार चिन्तन से साधक सुसंस्कारी बनता है और कल्याण-मार्ग की ओर प्रवृत्त होता है। वह संसार में रह कर भी सांसारिक क्लृप्तता में डूबता नहीं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत हैं। ये व्रत जीवन में असंयम का स्रोत रोक कर संयम का द्वार खोलते हैं। इन महाव्रतों की निर्दोष परिपालना के लिये यह आवश्यक है कि इन महाव्रतों पर चिन्तन किया जाय। ये भावनाएँ चारित्र्य को दृढ़ करती हैं। इसलिये इन्हें चारित्र्य भावना भी कहते हैं। प्रश्नव्याकरणसूत्र के आधार पर पाँच महाव्रतों की भावनाओं का उल्लेख इस प्रकार है—

(१) अहिंसा महाव्रत की पाँच भावनाएँ—

- (क) ईर्ष्यासमिति भावना—गमनागमन में सावधानी बरतना ।
- (ख) मनःसमिति भावना—मन को सम्यक् चर्या में लगाना ।
- (ग) वचनसमिति भावना—वाणी पर संयम रखना ।

- (घ) एषणा समिति भावना—निर्दोष आहार की गवेषणा करना ।
 (न) आदान निक्षेपण समिति-भावना—विवेकपूर्वक वस्तु ग्रहण करना और रखना ।
- (२) सत्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ—
 (क) अनुचित्य समिति भावना—सत्य के विविध पक्षों पर चिन्तन करके बोलना ।
 (ख) क्रोध निग्रह रूप क्षमा भावना—क्रोध-त्याग ।
 (ग) लोभविजय रूप निर्लोभ भावना—लोभ-त्याग ।
 (घ) मय मुक्ति रूप वैयर्थ्युक्त अभय भावना—भय-त्याग ।
 (न) हास्य मुक्ति वचन संयम भावना—हास्य-त्याग ।
- (३) अचौर्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ—
 (क) विविक्तवास समिति भावना—निर्दोष स्थान में निवास का चिन्तन ।
 (ख) अनुज्ञात संस्कारक ग्रहण रूप अवग्रह समिति भावना—निर्दोष ओढ़ना-बिछौना ।
 (ग) शय्या-परिकर्म वर्जन रूप शय्या समिति भावना—शोभा-सजावट की वर्जना ।
 (घ) अनुज्ञात भक्तादि भोजन लक्षण साधारण पिडपात लाभ समिति भावना—सामग्री के समान वितरण और संविभाग की भावना ।
 (न) सार्धमिक विनयकरण समिति भावना—सार्धमिक के प्रति विनय व सद्भाव ।
- (४) ब्रह्मचर्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ—
 (क) असंसक्तवास वसति—ब्रह्मचर्य में बाधक कारणों, स्थानों और प्रसंगों से बचना ।
 (ख) स्त्रीकथाविरति—स्त्री के चिन्तन और कीर्तन से बचना ।
 (ग) स्त्रीरूपदर्शनविरति—स्त्री के रूप सौन्दर्य के प्रति विरक्ति ।
 (घ) पूर्वरत—पूर्वक्रीडितविरति—विकारजन्य पूर्व स्मृतियों का चिन्तन न करना ।
 (न) प्रणीत आहारत्याग—आहार संयम, तामसिक भोजन का त्याग ।
- (५) अपरिग्रह महाव्रत की पाँच भावनाएँ—
 (क) श्रोत्रेन्द्रियसंवर भावना—श्रोत्रेन्द्रिय के मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष न करना ।
 (ख) चक्षुरिन्द्रिय संवर भावना—चक्षुरिन्द्रिय के मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष न करना ।
 (ग) घ्राणेन्द्रिय संवर भावना—घ्राणेन्द्रिय के मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष न करना ।
 (घ) रसनेन्द्रिय संवर भावना—रसनेन्द्रिय के मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष न करना ।
 (न) स्पर्शनेन्द्रिय संवर भावना—स्पर्शनेन्द्रिय के मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष न करना ।

जीवन में पाँच महाव्रतों की रक्षा के लिए, उन्हें परिपुष्ट बनाने के लिए और जीवन को सुसंस्कारवान बनाने के लिये उक्त २५ चारित्र्य भावनाएँ बताई गई हैं। इन भावनाओं के चिन्तन, मनन और जीवन में इनका प्रयोग करने से साधक को त्यागमय, तपोमय एवं अनासक्त जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। परिणामस्वरूप वह संयम के पथ पर सफलतापूर्वक चल सकता है।

भावना भवनाशिनी

शुभ भावना मानव को जन्म-भरण के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाली है। शुभ भावनाओं के

प्रभाव से ही प्रसन्नचन्द्रराजषि ने केवलज्ञान प्राप्त किया, शुभ भावना के प्रभाव से पशु भी स्वर्गगति के अधिकारी बने हैं। महामुनि बलभद्र की सेवा में रहने वाला हरिण आहार बहराने की उत्कृष्ट भावना से काल करके पाँचवें देवलोक का, चण्डकोशिक सर्प भगवान महावीर के द्वारा प्रतिबोध प्राप्त कर दया की सुन्दर भावना से भोतप्रोत होकर आठवें देवलोक का, नन्दण मणियार का जीव मेंढक के भव में भगवान के दर्शनों की शुभ भावना से काल कर सद्गति का अधिकारी बना। अतः चाणक्य नीति में ठीक ही कहा है—

“भावना भवनाशिनी।”

यों तो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में अनेक भावनाएँ उठती हैं पर धर्मध्यान से परिपूर्ण भावना ही उसके कर्मों का नाश करती है। आज के वैज्ञानिक युग में मानव का चिन्तन दिन पर दिन भौतिक सुखों की खोज में मटक रहा है। वह हजारपति है तो कैसे लखपति-करोड़पति बन सकता है, एक बंगला है तो दो-तीन और कैसे बन जायें के स्वप्न देखता रहता है। इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त होती हैं। उन्हीं अनन्त इच्छाओं की पूर्ति के लिये नए-नए रास्ते ढूँढ़ने में वह दिन-रात लगा रहता है। परिणामस्वरूप उसका आध्यात्मिक चिन्तन छूट गया है। आध्यात्मिक चिन्तन के अभाव में आज के मानव में राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ की दुष्प्रवृत्तियाँ अधिकाधिक धर करती जा रही हैं, परिणामस्वरूप उसका जीवन कुंठाओं से ग्रस्त निराशाओं से आक्रान्त और अशान्त बन गया है। शुभ भावना से अर्थात् पवित्र भावना से व्यक्ति का मनोबल बढ़ता है। वह मुसीबत आने पर घबड़ाता नहीं, वरन् उसका बड़े धैर्य और साहस से मुकाबला करता है। पर आज के मानवीय जीवन में इसका अभाव है। इसीलिए आज व्यक्ति थोड़ी-सी मुसीबत आने पर जल्दी टूट जाता है। अखबारों में आत्महत्या के जो किस्से रातदिन पढ़ने को मिलते हैं, उसका एकमात्र कारण शुभ भावना का अभाव है।

बारह भावना

पाँच महाव्रतों की २५ चारित्र्य भावनाओं की भाँति बारह वैराग्य भावनाओं का आगम एवं आगमेतर ग्रन्थों में बहुत वर्णन मिलता है और इस पर विपुल परिमाण में साहित्य रचा गया है। इस भावधारा का चिन्तन निर्वेद एवं वैराग्योन्मुखी होने से इसे वैराग्य भावना कहा गया है। इस भावना से साधक में मोह की व्याकुलता एवं व्यग्रता कम होती है तथा धर्म व अध्यात्म में स्थिरकरण होता है। बारह भावनाओं का स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है—

(१) अनित्य भावना

इस भावना का अर्थ यह है कि जगत् में जितने भी पौद्गलिक पदार्थ हैं वे सब अनित्य हैं। यह शरीर, धन, माता, पिता, पत्नी, पुत्र, परिवार, घर, महल, आदि जो भी वस्तुएँ हमसे सम्बन्धित हैं या जो भी वस्तुएँ हमें प्राप्त हैं वे सब अनित्य हैं, क्षणभंगुर हैं, नाशवान हैं, फिर इन पर मोह क्यों? घास की नोक पर ठहरे हुए ओस कण की भाँति जीवन भी आयुष्य की नोक पर टिका हुआ है। आयुष्य की पत्तियाँ हिलेंगी और जीवन की ओस सूख जायेगी इसलिये व्यक्ति को क्षणभर भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। हितोपदेश में भी कहा गया है—

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यं संचय ।

ऐश्वर्यः प्रिय संवासो, मुह्येत तत्र न पंडितः ॥

अर्थात् यौवन, रूप, जीवन, धन, संग्रह, ऐश्वर्य और प्रियजनों का सहवास ये सब अनित्य हैं अतः ज्ञानी पुरुषों को इनमें मोहित नहीं होना चाहिए। ऐसा विचारना ही अनित्य भावना है।

भरत चक्रवर्ती के पास वैभव व सम्पत्ति की क्या कमी थी। एक दिन वे अंगुली में अंगूठी पहनना भूल गये। जब उनकी नजर अंगुली पर गई तो उसकी शोभा उन्हें फीकी लगी। उन्होंने एक-एक करके शरीर के सारे आभूषण उतार दिये तब उन्हें यह समझते देर न लगी कि शरीर बाह्य वस्त्राभूषणों से ही सुन्दर लगता है, बिना वस्त्राभूषणों के स्वयं शोभाहीन है। वे सोचने लगे आज मेरा भ्रम टूट गया, अज्ञान और मोह का पर्दा हट गया। जिस शरीर को मैं सब कुछ समझ रहा था उसकी सुन्दरता स्वस्थता पराश्रित है। इसी अनित्य भावना के चिन्तन में भरत चक्रवर्ती इतने गहरे उतरे कि शीशमहल में बैठे-बैठे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

(२) अशरण भावना

इस भावना के अन्तर्गत सांसारिक प्राणी को यह चिन्तन करना चाहिए कि संसार की प्रत्येक वस्तु जो परिवर्तनशील, नाशवान है वह आत्मा की शरणागत नहीं हो सकती। जिस प्रकार सिंह हरिण को पकड़ कर ले जाता है उसी प्रकार मृत्यु भी मनुष्य को ले जाती है। उस समय माता-पिता व भाई आदि कोई भी जीवन का भाग देकर उन्हें नहीं बचा सकते। इस प्रकार अनाथी मुनि की भाँति मोक्षामिमुख साधक को चिन्तन करना चाहिए कि इस संसार में कोई भी वस्तु शरण रूप नहीं है। केवल एक धर्म अवश्य शरण रूप है जो मरने पर भी जीव के साथ रहता है और सांसारिक, रोग, जरा, मृत्यु आदि दुखों से प्राणी की रक्षा करता है।

(३) संसार भावना

जन्म-मरण के चक्र को संसार कहते हैं। प्रत्येक प्राणी जो जन्म लेता है वह मरता भी है। संसार में चार गति, २४ दंडक और चौरासी लाख जीव योनियों में वह भ्रमण करता रहता है। विशेषावश्यक में संसार की परिभाषा यही की है—एक भव से दूसरे भव में, एक गति से दूसरी गति में भ्रमण करते रहना संसार है।

संसार भावना का लक्ष्य यही है कि मनुष्य संसार की इन विचित्रताओं, सुख-दुःख की इन स्थितियों का चित्र अपनी आँखों के सामने लाये। नरक, निगोद और तिर्यँच गति में भोगे हुए कष्टों का अन्तर की आँखों से अवलोकन करें और मन को प्रतिबुद्ध करें कि इस संसार भ्रमण से मुक्त कैसे होऊँ। संसार भावना की उपलब्धि यही है कि संसार के सुख-दुखों के स्मरण से मन उन भोगों से विरक्त बने।

(४) एकत्व भावना

एकत्व भावना में केन्द्रस्थ विचार यह है कि प्राणी आत्मा की दृष्टि से अकेला आया है और अकेला ही जायेगा। वह अपने कृत्यों का स्वतन्त्र कर्ता, हर्ता और भोक्ता है। इसलिये व्यक्ति को अकेले ही अपना स्थायी हित करना है। धर्म का आश्रय लेना है। उसे निज स्वभाव में मग्न होकर “एकोऽहम्” में अकेला हूँ। “नदिय भ्रम कोई” मेरा कोई नहीं है। यह बार-बार विचार कर नमि राजर्षि की भाँति परमानन्द को प्राप्त करना चाहिए।

(५) अन्यत्व भावना

अन्यत्व भावना का चिन्तन हमें यह सूत्र देता है—अन्नो जीवो अन्नं इमं सरीरं—अर्थात् यह जीव अन्य है, शरीर अन्य है। जो बाहर में है, दीख रहा है, वह मेरा नहीं है, जो काम-भोग प्राप्त हुए हैं, वे भी मेरे नहीं हैं। वे सब मुझसे भिन्न हैं। यदि मैं भिन्न वस्तु में, पर वस्तु में अपनत्व बुद्धि करूँगा तो वह मेरे लिये दुखों और चिन्ताओं का कारण होगा। इसलिये पर वस्तुओं

से आत्मा को भिन्न समझना चाहिए। आत्मगुणों को पहचानने के लिए भगवान् महावीर ने उत्तराध्वयन सूत्र में कहा है—

सकम्म बीओ अवसो पयाइ, परं भवं सुन्दर पावणं वा ॥

(उत्त० अ० १३, मा० २४)

अर्थात् यह पराधीन आत्मा द्विपद, दास-दासी, चतुष्पद-धोड़ा, हाथी, खेत, घर, धन, धान्य आदि सब कुछ छोड़कर केवल अपने किये हुए अच्छे या बुरे कर्मों को साथ लेकर परभव में जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये सब पदार्थ पर हैं अर्थात् साथ जाने वाले नहीं हैं, फिर इनमें आनन्द क्यों मनाना? इस शरीर से आत्मा को भिन्न मानना ही अन्यत्व भावना है।

(६) अशुचि भावना

यह शरीर अनित्य है, अशुचिमय है, मांस, रुधिर, चर्बी इसमें भरे हुए हैं। यह अनेक ध्याधियों का घर है, रोम व शोक का मूल कारण है। व्यक्ति सुन्दर कामिनियों पर मुग्ध हो जिन्दगी बर्बाद कर देते हैं किन्तु उस सुन्दर चर्म के भीतर ये घिनौने पदार्थ भरे पड़े हैं। ऐसा शरीर प्रीति के योग्य कैसे हो सकता है? इस प्रकार अशुचि भावना का चिन्तन कर शरीर की वास्तविकता समझ आत्मा पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

(७) आस्रव भावना

अज्ञान युक्त जीव कर्मों का कर्ता होता है। कर्मों के आगमन का मार्ग आस्रव कहलाता है। आस्रव यानि पुण्य-पाप रूप कर्मों के आने के द्वार जिसके माध्यम से शुभाशुभ कर्म आत्म-प्रदेशों में आते हैं, आत्मा के साथ बँधते हैं। यह संसार रूपी वृक्ष का मूल है। जो व्यक्ति इसके फलों को चखता है वह क्लेश का माजन बनता है। आस्रव भाव संसार परिभ्रमण का कारण है। इसके रहते प्राणी सद्-असद् के विवेक से शून्य रहता है।

आस्रव भावना के चिन्तन से आत्म-विकास होता है परिणामस्वरूप जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त हो आत्मा अक्षय अव्याबाध सुख मोक्ष प्राप्त करती है।

(८) संवर भावना

आस्रव का अवरोध संवर है। जैसे द्वार बन्द हो जाने पर कोई घर में प्रवेश नहीं कर सकता है वैसे ही आत्मपरिणामों में स्थिरता होने पर, आस्रव का निरोध होने पर आत्मा में शुभाशुभ कर्म नहीं आ सकते। आत्मशुद्धि के लिये कर्म के आने के मार्गों को रोकना आवश्यक है अतः ब्रत-प्रत्याख्यात रूप संवर को धारण करने की भावना आना ही संवर भावना है। संवर भावना से जीवन में संयम तथा निवृत्ति की वृद्धि होती है।

(९) निर्जरा भावना

तपस्या के द्वारा कर्मों को दूर करना निर्जरा है। निर्जरा दो प्रकार की होती है—अकाम और सकाम। अकाम निर्जरा एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के प्राणी कर सकते हैं। ज्ञानपूर्वक तपस्यादि के द्वारा कर्मों का क्षय करना सकाम निर्जरा है। अज्ञानपूर्वक दुखों का सहन करना अकाम निर्जरा है। दुष्ट वचन, परीषद्, उपसर्ग और क्रोधादि कषायों को सहन करना, मानापमान में समभाव रखना, अपने अद्विगुण की निन्दा करना, पाँचों इन्द्रियों को वश में रखना निर्जरा है। इसी प्रकार के शुद्ध विचार निर्जरा भावना है।

(१०) धर्म भावना

‘धर्म’ शब्द बड़ा व्यापक है। यह दूबते का सहारा, अनाथों का नाथ, सच्चा मित्र और परम में साथ जाने वाला सम्बन्धी है। इसके अनेक रूप हैं। जो उसे धारण करता है उसके दुःख सन्ताप दूर हो जाते हैं। “वस्तु सहायो धर्मो” वस्तु का स्वभाव धर्म है। अतः धर्म में दृढ़ श्रद्धा और आचरण में धर्म को साकार करते हुए हमें आत्मा को इहलोक और परलोक में सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(११) लोक भावना

लोक का अर्थ है—जीव समूह और उनके रहने का स्थान। जैसे एक घर में रहने वाला सदस्य अपने घर के सम्बन्ध में बातचीत करता है, उसके उत्थान आदि के बारे में चिन्तन करता है वैसे ही मनुष्य इस लोक गृह का एक सदस्य है। अन्य जीव समूहों के साथ उसका दायित्व है, सम्बन्ध है क्योंकि लोक में ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ जीव ने जन्म-मरण नहीं किया हो। ऐसे लोक स्वरूप का चिन्तन व्यक्ति को वैराग्य और निर्वेद की ओर उन्मुख करता है।

(१२) बोधिदुर्लभ भावना

अनन्त काल तक अनेक जीव योनियों में भ्रमण करते हुए यह मनुष्य भव मिला है। अनेक बार चक्रवर्ती के समान ऋद्धि प्राप्त की है। उत्तम कुल, आर्य क्षेत्र भी पाया, परन्तु चिन्तामणि के समान सम्यक्त्व रत्न प्राप्त करना बड़ा दुर्लभ है, ऐसा चिन्तन करना बोधिदुर्लभ भावना है।

शास्त्रों, विद्वानों और सन्तों ने व्यक्ति के जन्म-मरण को सुधारने और उसके व्यक्तित्व के विकास के लिये भावना की शुद्धि को जो महत्व दिया है वह सचमुच बड़ा प्रेरक है। आज व्यक्ति यदि अपने भावशुद्धि की ओर ध्यान दे तो उसके अन्तर्मन में छाया राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों का कुहरा एकदम समाप्त हो जायेगा और उसका जीवन स्वच्छ निर्मल जल की भाँति शुद्ध और शीतलतादायक बन जायेगा। शुद्ध भावना से न केवल व्यक्ति को व्यक्तिगत लाभ होगा वरन् इससे पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सौजन्य का वातावरण भी बनेगा।



जैनदर्शन में आचार

□ श्री रिषभदास जी रांका

जैनधर्म प्रधान रूप से आचारप्रधान है। मुख्यतः जन-जीवन के लिए है। फिर भी उसका अपना दर्शन है जो अनुभव पर आधारित है। आचारधर्म में हड़ता खाने के लिए है।

जैनदर्शन ने जीवन के अन्तिम ध्येय शाश्वत सुख और शांति के लिए गहराई और गहराई से विचार कर अनुभव से तथ्य प्रकट किए हैं। वह हैं 'धर्म' जीवन में उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा संयम और तप धर्म है। जो इसकी साधना ठीक से करते हैं उन्हें देवता भी नमन करते हैं।

जैनदर्शन आत्मवादी और मोक्षाकांक्षी है। धर्म मोक्ष-प्राप्ति का साधन है। सांसारिक सुख क्षणिक, अन्त में स्वयं तथा दूसरों के लिए भी दुःखदायी हैं और परावलम्बी होते हैं। जिनकी कभी तृप्ति नहीं होती। आत्म-सुख चिरंतन, अपने तथा दूसरों के लिए सुखकर है, स्वावलम्बी है। वह ही वांछनीय है।

जैनदर्शन के अनुसार संसार में जीव और अजीव दो मुख्य तत्त्व हैं।

जीव का लक्षण उपयोग अथवा चेतना का है, जिसके दो भेद हैं। एक दर्शन और दूसरा ज्ञान। दर्शन यानी स्व-संवेदन अर्थात् आत्म-चेतना। ज्ञान पर-संवेदन अर्थात् पर-पदार्थों की जानकारी कराता है। जीव में कर्तृत्व शक्ति और उसे भोगने की क्षमता है। ये जीव एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक हैं। सबमें मूलतः समानता है, विकास की दृष्टि से भेद है। प्रत्येक जीव में पूर्ण विकास की क्षमता है। अहिंसा के मूल में सब जीवों की समानता-आत्मोपम्य का सिद्धान्त है। जिसमें ऊँच-नीच के भेद को स्थान नहीं है।

अजीव के पाँच भेद हैं। पुद्गल यानी दृश्य पदार्थ, धर्म जीव और पुद्गल को गति देने वाला तत्त्व है। यहाँ धर्म और अधर्म नीति-अनीति के अर्थ में प्रयुक्त नहीं है। अधर्म यानी जीव और पुद्गल को स्थिरता प्रदान करने वाला तत्त्व, आकाश यानी पदार्थ को अवकाश देने वाला तत्त्व और काल—ये पाँच पदार्थ हैं। जैनदर्शन परमाणुवादी है। यह दृश्य जगत् परमाणुओं का समूह है। ये पाँच तत्त्व और जीव छट्ठा, छह द्रव्य हैं। द्रव्य का प्रधान लक्षण है—उत्पाद, व्यय और ध्रुव्य। द्रव्य नित्य होते हुए भी नये-नये पर्यायों में रूपांतरित होता है। नया रूप धारण करता है, पुराने पर्यायों का व्यय होता है, क्षीणता प्राप्त होती है, फिर भी उसमें स्थिरता है।

जैनदर्शन ने इस प्रकार वेदान्त की कूटस्थ नित्यता और बौद्धदर्शन के क्षणिकतावाद का समन्वय कर द्रव्य सत्ता नित्य किन्तु पर्याय परिणामी, परिवर्तनशील मानी है। यह अनेकान्त दृष्टि है।

देह और आत्मा के संयोग से मन, वचन और काया की क्रियाएँ होती हैं। राग-द्वेष, अहंता, समता, क्रोध, मान, माया, लोभ, वासनाओं और कामनाओं के कारण मन चंचल होता है। विविध क्रियाओं से आत्मा में परिस्पंदन होता है, जो कर्म-पुद्गल को अपनी ओर आकृष्ट करता है,

इस प्रकार आत्मा में कर्म का प्रवाह बहता रहता है, जिसे आस्रव कहा जाता है। इस चलने वाली प्रक्रिया से आत्मा को बंध होता है और उसके शुद्ध स्वरूप पर आवरण जमते जाते हैं। आत्मा और कर्म का सम्बन्ध अनादि माना गया है। प्रत्येक जीव अनेक प्रकार के कर्म लेकर जन्म लेता है, जिनका उसके क्रिया-कलापों पर प्रभाव होता है। वह जो कर्म करता है उससे फिर नये कर्मों का बंध होता जाता है। यह सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। इससे मुक्ति हो सकती है, मुक्ति का मार्ग है। कर्म के प्रवाह को बदला जा सकता है, रोका भी जा सकता है। नये कर्म बंध को रोकने की क्रिया संवर है और संचित कर्मों का भी क्षय हो सकता है, उसे निर्जरा कहते हैं। संपूर्ण कर्म क्षय होने पर आत्मा स्वयं सिद्ध स्वरूप को प्राप्त हो सकता है। आत्मा से परमात्मा बनता है। दुःख से मुक्ति पाता है, यही मोक्ष है।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष यह सात तत्त्व है। कई उनमें पुण्य और पाप को जोड़ते हैं। शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के फलस्वरूप शुभ और अशुभ कर्म ही पुण्य और पाप होते हैं। इस प्रकार नव तत्त्व और षड्द्रव्य में पूरा जैनदर्शन आजाता है।

जैनदर्शन बुद्धिगम्य है और व्यावहारिक है। उसका रहस्यवाद समझ आ सकने जैसा है, गूढ़ नहीं है। हर प्रबुद्ध व्यक्ति उसे समझ सकता है और उसमें बताई बातें जीवन में उतार सकता है।

जीव वासनाओं, कामनाओं तथा कषायों के कारण अनेक प्रकार के बंध बांधता है। इस मनो-व्यापार को अन्तर्निरीक्षण और विश्लेषण द्वारा देखा जा सकता है। ध्यान द्वारा देखा जा सकता है। ध्यान से चित्त की स्थिरता, निर्मलता आती है, अगला मार्ग स्पष्ट होता है।

संवर और निर्जरा के लिए आचारधर्म की उपयोगिता है। जीवन साधना का आरम्भ है और अन्तिम साध्य दुःख विमुक्ति है।

जैनदर्शन की विशेषता कर्म सिद्धान्त है। जिसकी नींव पुरुषार्थ है। जो जैसा करेगा, वैसा पावेगा। अपने भाग्य का विधाता वह स्वयं ही है। आत्मा ही कर्ता और भोक्ता है। जीव शिव हो सकता है, आत्मा परमात्मा बन सकता है, नर का नारायण हो सकता है। जैनदर्शन ईश्वर को कर्ता नहीं मानता, आत्मा ही शुद्ध-बुद्ध होकर परमात्म पद पा सकता है।

परमात्म पद पाने का उपाय है, सम्यक्श्रद्धा, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। सही दृष्टि यानी जीव और पुद्गल की भिन्नता, देह आत्मा की पृथकता का भान। यह सम्यक् दृष्टि ही जीव को चारित्र्य की ओर मोड़ती है। और सम्यक् चारित्र्य के मार्ग पर बढ़ने से सम्यक्दर्शन पर अधिक निष्ठा बढ़ती है। रागद्वेष और अहंता-ममता की संदता से सम्यक्ज्ञान की ओर रुचि बढ़ती है और सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनों का साथ होता है तब जीव शिव बनता है, दुःख से मुक्त होकर अपना साध्य प्राप्त करता है।

पदार्थ व बाह्य जगत् का ज्ञान ठीक से हो वह सम्यक्ज्ञान है। सम्यक्ज्ञान होने के लिए उदार दृष्टिकोण होना आवश्यक है, इसलिए इस मार्ग में अनेकांत सहायक होता है। हर वस्तु के अनेक गुण और पर्याय हैं। वाणी में उन सभी का समावेश नहीं होता। स्वयं कहता है वही ठीक ऐसा आग्रह संघर्ष पैदा करता है। जहाँ भी सत्य हो उसका आदर करना अनेकांत है। अंश को पूर्ण मानने का आग्रह नहीं रखना—इसमें अन्तर् की उदारता है। आचार में अहिंसा और विचार में अनेकांत में धर्म का सार आ जाता है।

अहिंसा :

जैनधर्म का आचारधर्म अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह से प्रारम्भ होता है तो भी उसमें अहिंसा को प्रधानता है। अहिंसा परमधर्म इसलिए है कि यह सभी जीवों की समानता

पर आधारित है। जीवों में ऊँच-नीच का भेद नहीं। सभी जीव समान हैं, किसी भी जीव की हिंसा करना पाप है। जैनियों पर यह आक्षेप है कि वे जीव-जन्तुओं की तो रक्षा करते हैं, पर मनुष्य की ओर ध्यान नहीं देने पर सच यह है कि मनुष्य की उपेक्षा कर जीव-जन्तुओं की रक्षा नहीं होती। अहिंसा की भूमिका है—सभी जीव सुख से जीना चाहते हैं, कोई मरना नहीं चाहता, दुःख किसी को अच्छा नहीं लगता। दूसरे हम अपने प्रति जिस तरह के व्यवहार की आशा रखते हैं, वैसा व्यवहार हम दूसरों के प्रति करें। हिंसा से हिंसा पैदा होती है। इसलिए उससे बचा जाय पर प्रकृति में 'जीवो जीवस्य जीवनम्' का क्रम है। शरीर की प्रत्येक क्रिया में हिंसा अपरिहार्य है। यह कम से कम की जाय क्योंकि अहिंसा आत्मा का गुण है अहिंसा के पालन का प्रयत्न होना चाहिए। हिंसा कम से कम हो यह कोशिश रहे। यदि शरीर की प्रत्येक क्रिया विवेकपूर्वक यतना के साथ करें तो बाह्य हिंसा के पाप से बचा जा सकता है। हिंसा मात्र बाह्य क्रिया नहीं है। उसका स्थान मन में है, भाव में है। मनुष्य सतत जाग्रत रहकर अप्रमत्त भाव से कर्म करे तो बाह्य हिंसा का परिमार्जन हो सकता है। जब जीवन में समता आवे तभी अहिंसा का ठीक से पालन हो सकता है। जो समदर्शी है उससे पाप नहीं होता।

पर इन पाँचों महाव्रतों का पालन सभी समान रूप से नहीं कर सकते। इसलिये श्रावकों को अणुव्रत और साधु मुनियों के लिये महाव्रत कहे गये हैं। श्रावक स्थूलप्राणातिपातविरमण करता है जिसमें अपराधी को दण्ड देना और जीवन निर्वाह के लिये सूक्ष्म हिंसा, जो अनिवार्य है, कर सकता है। वह निरपराध प्राणियों की हिंसा नहीं करता। वह पूरी सावधानी रखता है कि किसी के प्रति अन्याय न हो, किसी को कष्ट न हो, फिर भी हिंसा हो जाती हो तो वह क्षम्य है। अहिंसा के पालन के लिये विचारों की निमलता और व्यापकता आवश्यक है। किसी के प्रति दुर्भावना भी नहीं रखी जा सकती। हिंसा की व्याख्या आचार्य उमास्वाति ने 'प्रमत्तयोगाल प्राणात्परोपणं हिंसा' की है। मन, वचन, काया की प्रमादयुक्त अवस्था में होने वाली हिंसा ही हिंसा है।

सत्य :

सत्य को सभी घमों ने घम का आधार माना है। जैनदर्शन ने भी सत्य को भगवान कहा है। सत्य ही ससार का सारभूत तत्व है। प्रमादरहित होकर हितकारी हो वही बोला जाय। क्योंकि सत्य के बिना कोई व्यवहार नहीं चलता। असत्य में हिंसा है। स्वयं अथवा दूसरों को आघात लगे ऐसी भाषा सत्य हो तो भी न बोली जाय।

व्यावहारिक दृष्टि से भी निम्नलिखित प्रकार से सत्य के लिये सावधानी बरती जाय :—

(१) किसी पर झूठा आरोप न लगाया जाय। किसी के प्रति गलत धारणा पैदा न हो यह ध्यान में रखकर बोला जाय।

(२) किसी की गुप्त बात प्रकट न करना।

(३) पति-पत्नी की या घर के लोगों की गुप्त बात प्रकट न की जाय।

(४) किसी को झूठ की प्रेरणा न दे।

(५) झूठी लिखा-पढ़ी करना, झूठा सिक्का चलाना, आदि न किया जाय।

अदत्तादान :

किसी की वस्तु बिना मालिक की जानकारी के न ली जाय। चोरी न करना इतना ही नहीं पर चोरी की चीज खरीदना, या दूसरे से चोरी करवाना भी पाप ही है।

राज्य के नियमों का उल्लंघन करके कर न देना, अवैधानिक व्यापार, राज्य के नियमों के विरुद्ध निषिद्ध वस्तुओं का एक स्थान से दूसरी जगह पहुँचाना, नाप-तोल में कम या अधिक दे-लेकर

अप्रामाणिक व्यवहार करना, दूसरे के अज्ञान का स्वार्थ के लिये लाभ उठाना, मिलावट आदि सब अदत्तादान में दोष है, जिनसे बचना चाहिए।

ब्रह्मचर्य

सब प्रकार के कामभोगों का त्याग और संयम। पर गृहस्थों के लिये स्वदारसन्तोष की मर्यादा रखी गयी है जिसका पालन सामाजिक दृष्टि से भी हितकर है। स्वयं और दूसरे के लिये हितकारी है।

अपरिग्रह

परिग्रह को पाप का मूल माना है। परिग्रह ही अहिंसारत के पालन में सबसे बड़ी बाधा है। परिग्रह से विषमता बढ़ती है। आज की अशांति और संघर्ष का मूल ही संग्रह है। परिग्रह से छल, कपट और अनाचार पैदा होता है। कामभोग और परिग्रह के लिये हिंसा और अमत्याचरण किया जाता है। इसलिये परिग्रह परिमाण या उचित परिग्रह को अपनाना चाहिए। संग्रह पर सीमा बाँध लेनी चाहिए। यही जीवन में सुख और शांति निर्माण करता है। तृष्णा से छुटकारा दिलाता है और दूसरों में सद्भाव निर्माण करता है। आज की विषम समस्याओं का समाधान परिग्रह परिमाण है। जिसे आज की भाषा में गांधीजी ने ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त कहा है।

तीन गुणव्रत

इन सब व्रतों का पालन तभी संभव है जब मनुष्य तीन गुणव्रतों को अपनावे वह सादमी अपनावे। भोग-उपभोग की वस्तुओं पर नियन्त्रण रखे। वस्तुओं के भोग पर ही नहीं उसकी सभी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण हो। प्रवास भी इन दिनों इतना अधिक बढ़ गया है कि उस पर नियन्त्रण रखना अपने और दूसरों की दृष्टि से हितकर है। जिसे दिशा परिमाण व्रत तथा उपभोग परिभोग-परिमाण व्रत कहा है।

तीसरा गुणव्रत है अनर्थदण्डविरमण व्रत अनावश्यक पाप पूर्ण प्रवृत्तियों से अपने आपको बचाना। निरर्थक बातें, आत्म-प्रशंसा या निष्प्रयोजन कोई भी काम करना, समय को बर्बाद करके मन में मलिनता आती है, शक्ति का व्यय होता है।

शिक्षाव्रत

निरर्थक व्यय होने वाली शक्ति और समय को शिक्षाव्रतों के द्वारा आत्म-विकास में लगाया जाता है। जो चार हैं।

(१) सामायिक

सामायिक, समभाव की उपलब्धि के लिये सामायिक उत्तम उपाय है। जो हर रोज निश्चित समय करके की जाती है। उस समय में पूर्णरूप से समता रखी जाय, सभी प्रकार की दुष्प्रवृत्तियों से अपने आपको दूर रखा जाय।

सामायिक में यह ध्यान रखा जाय कि किसी प्रकार के मलिन विचार पैदा न हों, वाणी का दुरुपयोग न हो, कठोर या असत्य भाषण न हो, शरीर से कोई पापकारी प्रवृत्ति न हो। सामायिक प्रसन्न चित्त से और नियत समय तक करना आत्म-साधना में लाभदायक होता है।

(२) देशावकाशिकव्रत

इसमें दिशाओं के भ्रमण में मर्यादा बाँध ली जाती है। इसमें आवागमन ही नहीं अपितु उपभोग-परिभोग के लिए वस्तुओं के उपयोग पर भी मर्यादा करनी होती है। स्वयं मर्यादित क्षेत्र

के बाहर न जाना, दूसरों को न भेजना और बाहर से लाई हुई वस्तु का उपभोग नहीं करना और क्रय-विक्रय के ऊपर भी मर्यादा आती है।

जीवन में महारम्भ की प्रवृत्तियों को कम कर अल्पारम्भ को अपनाना होता है। जिसमें स्वदेशी व्रत को सहज प्रेरणा मिलती है और खादी ग्रामोद्योग को सहज सहयोग प्राप्त होता है। जो व्यक्तिगत सन्तोष के साथ-साथ दूसरे को रोजी-रोटी प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करता है। अल्पारम्भ को संरक्षण मिलता है।

(३) पोषध व्रत

आत्मा-विकास के साधक के लिए चिंतन, आत्मनिरीक्षण और अपने ध्येय की जागृति के लिए कुछ समय निकालना आवश्यक होता है। जिसमें आठ प्रहर तक श्रमणचर्या अपनाई जाती है।

(४) अतिथिसंविभाग व्रत

अतिथिसंविभाग में गृहस्थ द्वारा अपने यहाँ आने वाले सन्त सज्जनों की समुचित व्यवस्था करना, दीन-दुखियों की सहायता करना, कष्ट से पीड़ित या दुखियों के सहानुभूति सहयोग देना आदि है। गृहस्थी पास-पड़ोसी और जरूरतमन्द को मदद करता है, वह उसका सहज कर्तव्य है।

इन व्रतों के अतिरिक्त जैन गृहस्थ दान, शील, तप और भावना को अपने जीवन में महत्वपूर्ण स्थान देते आये हैं। खासकर दान की बड़ी महिमा गाई गई है। फलस्वरूप दान जैनियों के दैनिक जीवन का अंग ही बन गया है। फिर सभी दानों में अभयदान को श्रेष्ठ माना है और अभयदान की तरह ज्ञानदान, औषधिदान और अन्नदान को समता की साधना में उपयुक्त साधन माना है।

ईसाई, मुस्लिम और बौद्धों की तरह अन्य धर्मियों को अपने धर्म में दीक्षित करने वाले धर्मों की तरह जैनधर्म भी धर्मांतर को मानने वाला धर्म था और उसने कई भारतीय जातियों को अपने धर्म में दीक्षित किया था। दक्षिण में दो हजार वर्ष पूर्व धर्म-प्रचार किया था उसमें अन्नदान, औषधिदान, ज्ञानदान और अभयदान साधन के रूप में अपनाया था। दान ने जैनियों के दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान पा लिया है और आज भी जैनियों के जीवन में सहज रूप से दान का महत्वपूर्ण स्थान है। अनेकों अस्पताल, शिक्षा संस्थानों, पिजरापोल तथा राहत के काम उनके द्वारा चलते हैं।

कई लोगों का अनुमान है कि सेवा-कार्यों द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार जो दिखाई दे रहा है यह तरीका शायद अठारहवीं साल पहले मलाबार के किनारे से यह बात ईसाइयों ने अपनाई हो। जन शिक्षा का काम जैन गुरुओं ने संभाल रखा था और कुछ वर्ष पूर्व तक शिक्षा के प्रारम्भ में ओ३म् नमः सिद्धाय लिखा जाता था वह जैन संस्कृति का ही चिन्ह था। जैनधर्म में अन्धश्रद्धा को कतई स्थान नहीं था, वह पुरुषार्थ और बुद्धिवाद पर आधारित धर्म था और उसमें अपने भाग्य का विधाता अपने आप को ही मानकर स्वावलम्बन की शिक्षा दी जाती थी और आचार और नीति धर्म को प्राथमिकता दी जाती थी। धर्म जन-जीवन के आचार में उतरे इसलिए उसमें ऊँच-नीच का भेद नहीं था। जो भी इस धर्म का पालन करता वह जिन का अनुयायी बन सकता था। एक तरह से जैनधर्म जनधर्म है और जनधर्म होने से जनता के लिए उपयोगी हो ऐसी ही नीति की विधा उसमें पाई जाती है।

वह समता पर आधारित होने से उससे छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच सभी लाभान्वित हो सकें ऐसी व्यापकता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सबके लिए कल्याणकारी है, उसका सर्वोदयी रूप इसीलिए आज के युग में अधिक आकर्षक है। उसमें सभी समस्याओं को

सुलझाने की क्षमता है और सबसे बड़ी विशेषता यही है वह व्यक्ति की स्वाधीनता अक्षुण्ण रखता है। किसी को एक विशिष्ट विचार प्रणाली में या धर्म में शामिल होना अनिवार्य नहीं, किसी भी धर्म या साधना मार्ग को अपनाकर आत्म-कल्याण साधा जा सकता है और ऐसे अहंताओं की संख्या भी कम नहीं है जो अपने आपको अपनी परम्परा में रखकर समता की साधना कर अहंता बने थे।

भगवान महावीर परम अनाग्रही थे। उनकी उद्घोषणा थी कि वे जो कह रहे हैं वह समता धर्म ध्रुव है, नित्य है और शाश्वत है। मेरे पहले भी अनेक जिनों ने कहा, आज भी कह रहे हैं और भविष्य में भी कहेंगे।

यह धर्म चर्चा का विषय नहीं, निश्चित है, स्पष्ट है और आचरणीय है।

इसके पालन के लिए अपने आप पर नियन्त्रण करना होता है, सादगी लानी होती है, तप सहज बन जाता है। जिस आचार का पालन स्वयं से प्रारम्भ करना होता है, दूसरा क्या करता है यह देखने की जरूरत नहीं, फल की आशा नहीं, दूसरों से अपेक्षा नहीं, क्योंकि वह इस निष्ठा पर आधारित है कि शुभ का फल निश्चित ही शुभ ही होने वाला है। जिसके पास कल्पवृक्ष हो वह जितना सन्तुष्ट और तुष्ट रहता है उतना ही इस नीति धर्म का पालन करने वाला। यह निष्ठा कि शुभ का फल शुभ ही मिलने वाला है उसे धीरज बाँधाता है। वह यदि फल-प्राप्ति में विलम्ब हो तो भी क्षुब्ध नहीं होता। जैन परम्परा की नीति विद्या सार्वजनिक, सर्वकालीन और जनता की है इसलिए जन-नीति की पोषक है, जनता की है। क्योंकि उसके पीछे अनुभव है और उस अनुभव ने जैनधर्म को आचार धर्म बनाया है, जो स्व-पर-कल्याणकारी है।



निक्षेपवाद : एक अन्वीक्षण

□ श्री रमेश मुनि शास्त्री

विचार प्रवाह को प्रवाहित करने के लिए भाषा का माध्यम आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है। जब मानव के मानस सागर में भावों की लहरें लहराने लगती हैं, तब उन लहरों का प्रकटीकरण करने के लिए अमर भाषा का परिधान न पहनाया जाये तो वे लहरें अप्रकट दशा में संस्थित हो जाती हैं। अतः भावाभिव्यक्ति के लिए भाषा का माध्यम अत्यन्त अपेक्षित है।

भाषा शब्दों से बनती है। एक ही शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। कभी-कभी ऐसा भी बनाव बन जाता है—वक्ता के विवक्षित अर्थ को न समझने के कारण अनर्थ हो जाता है। एतदर्थ अनर्थ का निवारण करने के लिए निक्षेप का निरूपण है। यह अनेक अर्थों को प्रयोजनवशात् एवं प्रसंगवशात् अभिव्यक्त करने की सुन्दर प्रक्रिया प्रदान करता है।

निक्षेप की परिभाषा

अर्थ को अभिव्यक्ति देने के लिए शब्द में अर्थ का आरोप करना। निक्षेप का पर्यायवाचक शब्द न्यास है।^१ प्रकरणादिवश अप्रतिपत्ति आदि का निवारण कर यथास्थान नियुक्त करने के लिए शब्द और अर्थ की रचना विशेष को निक्षेप कहा है।^२

नामादि भेदों का निक्षेपण करना व्यवस्थापित करना निक्षेप है।^३ लक्षण व विधान से अधिगम अर्थ का विस्तार के साथ निरूपण करने को निक्षेप कहा है।^४ उपक्रम से समीप में लाए गये व्याचिरव्यासित शास्त्र में नाम आदि का न्यास करने को निक्षेप कहा है।^५

निक्षेपों का वर्गीकरण

जिस प्रकार आचार्यवर्य श्री सिद्धसेन ने नयों के लिए भेद-प्रभेद के सम्बन्ध में चिन्तन करते हुए कहा—जितने भी वचन मार्ग हो सकते हैं उतने ही नय हैं^६। कारण कि चेतन हो या अचेतन हो इस विराट विश्व का प्रत्येक पदार्थ अनन्त गुण-धर्मों का अखण्ड पिण्ड है।^७ प्रत्येक वस्तु

१ (क) न्यवसं न्यसत इति वा न्यासो निक्षेपः ।

—राजवार्तिक

(ख) न्यासो निक्षेपः ।

—तत्त्वार्थभाष्य १।५

२ प्रकरणादिवशेनाप्रतिपत्त्यादिव्यवच्छेदेक यथास्थानविनियोगाय शब्दार्थरचनाविशेषा निक्षेपाः ।

—जैनतर्क भाषा

३ निक्षिप्यते नामादि भेदैर्व्यवस्थाप्यते अनेनास्मिन्नस्मात् इति निक्षेपः ।

—अनुयोगद्वारवृत्ति

४ विस्तरेण लक्षणतो विधानतश्चाधिगमार्थो न्यासो निक्षेपः ।

—तत्त्वार्थभाष्य

५ उपक्रमानितव्याचिरव्यासित शास्त्रनामादि न्यसनं निक्षेपः ।

६ सन्मति तर्क ३, ४७ ।

७ अनन्तधर्मत्वकमेव तत्त्वम् ।

—त्याद्वाद मञ्जरी

में एक-दो नहीं किन्तु अनन्त धर्म गीण-मुख्य भाव से प्रगट-अप्रगट दशा में सदा-सर्वदा संस्थित हैं।^१ इसलिए नय भी अनन्त है पर उन सबका वर्गीकरण जैनागमों में सात नयों में किया गया है। उन सातों नयों के मूल में सिर्फ दो प्रकार के नय बताये गये हैं—द्रव्याधिक और पर्यायाधिक।^२ पर्यायाधिक के स्थान में भावाधिक शब्द का प्रयोग हुआ है। उसी प्रकार निक्षेपों के भेद अनन्त हो सकते हैं। पर निक्षेपों के समस्त भेद-प्रभेदों का समावेश चार प्रकारों में हो जाता है। अनुयोगद्वारसूत्र में बताया गया है—“वस्तु विन्यास के जितने क्रम हैं उतने ही निक्षेप के प्रकार हो सकते हैं। पर उक्त चार निक्षेपों को ही प्राधान्य दिया गया है। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव यह निक्षेपों का वर्गीकरण है।^३

अनुयोग या व्याख्या के द्वारों के वर्णन में इन चार निक्षेपों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। निक्षेप अपने नाम आदि भेदों के माध्यम से प्रतिपाद्य पदार्थ का स्वरूप समझाने के लिए स्पष्टतर विवेचन करता है। मिन्न-मिन्न शास्त्रों एवं ग्रन्थों में निक्षेपों के भेद दर्शाये गये हैं। स्थानांगसूत्र में^४ ‘सर्व’ के चार प्रकारों की परिगणना की गई है। वहाँ सर्व के चार निक्षेप बताए गए हैं। नाम-स्थापना इन दो निक्षेपों को शब्दतः बताया गया है और द्रव्य एवं भाव इनको अर्थतः बताया है। ‘पूर्व’ शब्द पर १३ निक्षेप का उल्लेख हुआ है जैसे—

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, दिग्, ताप, क्षेत्र, प्रज्ञापक, पूर्व, वस्तु, प्राभूत, अतिप्राभूत और भाव।

‘समय’ शब्द पर १२ निक्षेप मिलते हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, कृतीर्थ, संगार, कुल, गण, संकर, गंडी और भाव। ‘स्थान’ शब्द पर १५ निक्षेप किये गये हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, अद्द, ऊर्ध्व, उपरति, वसति, संयम, प्रग्रह, योध, अचल, गणना, सन्धान और भाव।

‘एक’ शब्द पर सात निक्षेपों का वर्णन मिलता है नाम, स्थापना, द्रव्य, मातृकपद, संग्रह, पर्यैव एवं भाव।

इस प्रकार “सामायिक” शब्द पर ६ निक्षेपों का वर्णन है। निक्षेपों के अनेक प्रकार आगम साहित्य में मिलते हैं। किन्तु नाम आदि चार निक्षेपों में अन्य निक्षेपों के अनेक प्रकारों का समावेश हो जाता है। इस कारण इन चारों की प्रधानता है।

नाम निक्षेप-निरूपण

नाम—गुण, जाति, द्रव्य और क्रिया इन चार की अपेक्षा न रखकर किसी का नामकरण

१ अनुयोगद्वारसूत्र—१५६; स्थानांग सूत्र ५५२

२ (क) भगवतीसूत्र—१८, १०

(ख) भगवतीसूत्र—१८, १०, २५, ३। २५, ४

३ (क) जत्थ य जं जाणैज्जा निक्खेवं निरवसेसं।

जत्थ वि य न जाणिज्जा चउक्कं निक्खिवे तत्थ ॥

—अनुयोगद्वार

(ख) नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्व्यासः।

—सत्त्वार्थसूत्र, अ० १, सू० ५

४ (क) चत्तारि सव्वा पन्नत्ता—नाम सव्वए, उवण सव्वए, आएस सव्वए निरवसेसव्वए

—स्थानांगसूत्र, २६६

(ख) दशवेकालिक हारिभद्रीयावृत्ति।

(ग) सूत्रकृतांग।

(घ) स्थानांगवृत्ति

करना नाम निक्षेप है। जैसे किसी का नाम मंगल रखा^१ प्रकृत अर्थ से निरपेक्ष अर्थ कि जहाँ अन्यतर परिणति होती है वहाँ नाम निक्षेप हो जाता है।^२

चेतन एवं अचेतन पदार्थों में स्थापना आदि से निरपेक्ष होकर अपने अभिप्रायकृत संज्ञा रखकर यथा किसी को 'इन्द्र' नाम से अभिहित किया जाता है।^३

निमित्तान्तरों की अनपेक्षा से वस्तु का नामकरण किया जाता है, वह नाम निक्षेप है।^४

जैसे किसी बालक का नाम इन्द्रराज रखा है परन्तु बालक में इन्द्र के सद्गुण, जाति, द्रव्य और क्रिया कुछ भी परिलक्षित नहीं हो रहा है^५ केवल व्यवहारार्थ नाम रख लिया है या दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि नाम निक्षेप गुण आदि की अपेक्षा नहीं रखता है।^६ यहाँ पर इन्द्रराज का व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ घटित नहीं हो रहा है। प्रत्येक शब्द का व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ होता है।^७ किन्तु नाम निक्षेप में व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ की विवक्षा नहीं होती है। अर्थ की अपेक्षा करके जो नाम रखे जाते हैं। वे अर्थबोध के लिये नहीं होते हैं केवल नाममात्र के लिये ही संकेत किये जाते हैं। अतः यह नाम निक्षेप कहा गया है।^८

स्थापना

प्रतिपाद्य पदार्थ के समान या असमान आकार वाली वस्तु में प्रतिपाद्य वस्तु की स्थापना जब की जाती है तब वह स्थापना निक्षेप होता है। जैसे—सूर्य के चित्र को सूर्य कहना, काण्टनिमित्त घोड़े को घोड़े नाम से कहना इत्यादि आकाररूप या बिना आकाररूप कल्पना कर लेना, इन्द्र की मूर्ति को देखकर इन्द्र कह देना, वहाँ पर मात्र नाम नहीं, किन्तु वह मूर्ति इन्द्र का प्रतिनिधित्व कर रही है। वक्ता को ऐसा ही भाव विवक्षित है। इसे स्थापना निक्षेप कहते हैं।

द्रव्य

किसी मनुष्य अथवा वस्तु में वर्तमान समय में गुण का अभाव होने पर भूत और भविष्यत कालिक पर्याय की मुख्यता लेकर वर्तमान में व्यवहार करना वह द्रव्य निक्षेप है।

जो भूतकाल में अध्यापक था किन्तु वर्तमान में नहीं है फिर भी अध्यापक कहना; किसी घड़े में किसी समय पानी मरा गया है वह घड़ा अब पानी से खाली है तदपि उसे पानी का घड़ा

- १ तत्थ णाम मंगलं णाम णिमित्तं तरिणरेक्खा मंगल सण्णा तत्थ णिमित्तं चउव्विहं जाह् दव्वगुण किरिया चेदि ।
—जयधवला टीका
- २ प्रकृतार्थ निरपेक्षानामार्थन्यतरपरिणतिनिमित्तनिक्षेपः ।
—जैनतर्कभाषा
- ३ अत्ताभिष्पायकयासन्ना चेषणमचेयणे वावि ।
उव्वणादीनिरविक्षा केवल सन्ना उ नामि दो ॥
—बृहत्कल्पभाष्य
- ४ निमित्तान्तरानपेक्षं संज्ञाकर्म नाम
—तत्त्वार्थवार्तिक
- ५ यद्वस्तुनोऽभिधानं स्थितमन्वार्थं तदर्थं निरपेक्षं पर्यायानाभिधेयं च नाम यादृच्छिकं च तथा ।
—अनुयोगद्वारसूत्र टीका, पृ० ११
- ६ यत्तु तदर्थं विद्युक्तं तदभिप्रायेण य च तत्करणि । लेप्यादिकर्म तत् स्थापनेति क्रियतेत्पकालं च ।
—अनुयोगद्वारसूत्र टीका, पृ० १२
- ७ भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यत्लोके ।
तत् द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितं ॥
—अनुयोगद्वारसूत्र टीका, पृ० १४
- ८ भावो विवक्षित क्रियाऽनुमाति युक्तो हि वै समाख्यातः ।
सर्वज्ञैरिन्द्रादिवदिहेन्दनादि क्रियानुभवात् ॥
—अनुयोगद्वार सूत्र टीका, पृ० २८

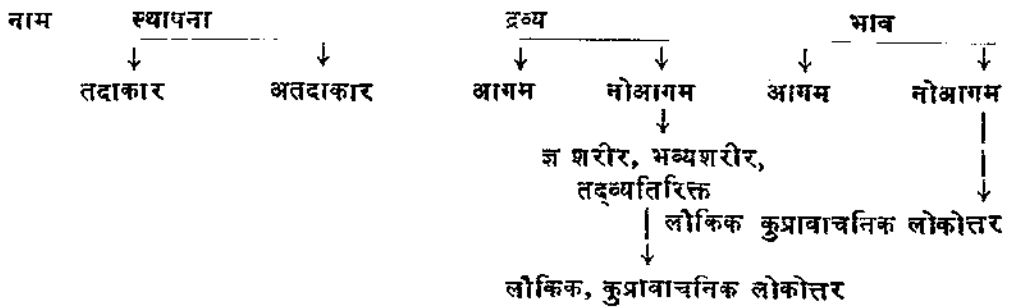
कहना अथवा पानी भरने के लिये घड़ा मँगवाया है, पर उसमें पानी नहीं भरा गया है तथापि उसे पानी का घड़ा है—इस प्रकार कहना, यह द्रव्य निक्षेप है।

नाम और स्थापना इन दोनों निक्षेपों में शब्द के उत्पत्तिलभ्य अर्थ की अपेक्षा की गई है। किन्तु द्रव्य निक्षेप का विषय द्रव्य ही होता है। भूत एवं भावी पर्यायों में जो द्रव्य है उसकी विवक्षा से जो व्यवहार किया जा रहा है जैसे कोई जीव इन्द्र होकर मनुष्य योनि में उत्पन्न हुआ है या मनुष्य योनि का जीव इन्द्र होगा तब वर्तमान मनुष्य पर्याय को इन्द्र कहना—यह द्रव्य निक्षेप है। व्यवहार में जो हम कार्य में कारण का उपचार करके जो औपचारिक प्रयोग करते हैं अथवा कारण में कार्य का उपचार करके जो औपचारिक प्रयोग किया करते हैं वे सभी द्रव्य निक्षेप की परिधि में आ जाते हैं।

भाव निक्षेप

किसी पदार्थ की वर्तमान पर्याय के अनुसार ही, उसको उसी रूप में कहना भाव-निक्षेप है। जिस शब्द का प्रयोग किया जाय उस शब्द का उत्पत्तिलभ्य अर्थ वस्तु में स्पष्टतया परिलक्षित होना चाहिए। परमेश्वर्य सम्पन्न जीव को इन्द्र कहना—कोयला होने पर कोयला, राख होने पर राख, पूजा करते समय पर पुजारी कहना—उसे भावनिक्षेप कहते हैं। भावनिक्षेप की अनेक परिभाषाएँ हैं। वर्तमान पर्याय उस विशिष्ट क्रिया से उपलक्षित हो रही है तो भाव निक्षेप है।^१ इन्द्र शब्द का ज्ञाता वर्तमान काल में उसके अर्थ में उपयुक्त हुआ है तो शुद्ध नय के दृष्टिकोण से वही भाव इन्द्र है अर्थात् यथार्थ इन्द्र है।^२

नाम स्थापना आदि के भेद इस प्रकार हैं—



संक्षेप में कहना चाहिए कि निक्षेप में शब्द और वाच्य की मधुर संगति है। अर्थ सूचक शब्द के पीछे अर्थ की स्थिति को छोटित करने वाला जो विशेषण प्रयुक्त होता है यही निक्षेप पद्धति की उपयोगिता है। चाहे विशेषण का प्रयोग न भी किया जाय तथापि वह विशेषण अन्तर्हित अवश्य रहता है।

१ वर्तमानपर्यायोपलक्षितं द्रव्यं भावः।

२ जो पुण जहत्थजुत्तो सुद्धनयाणं तु एस माविदो।

इंदस्स वि अहिगारं वियाणमाणोत्तुवजुत्तो ॥

जैनदर्शन में नैतिकता की सापेक्षता और निरपेक्षता

□ डा० सागरमल जैन
एम. ए., पी-एच. डी.

पाश्चात्य आचार दर्शन में यह प्रश्न सदैव विवादास्पद रहा कि नैतिकता सापेक्ष है या निरपेक्ष। नैतिकता को निरपेक्ष मानने वाले विचारकों में प्रमुख रूप से जर्मन दार्शनिक कांट का नाम आता है। कांट का कथन है कि “केवल उस सिद्धान्त के अनुसार आचरण करो जिसे तुम उसी समय एक सार्वभौम नियम बनाने का भी संकल्प कर सको।”^१ कांट यह मानते हैं कि “नैतिक नियम निरपेक्ष आदेश हैं अर्थात् नैतिक नियम ऐसे नियम हैं जो देश-काल अथवा व्यक्ति के आधार पर परिवर्तित नहीं होते। यदि सत्य बोलना नैतिकता है तो फिर किसी भी स्थिति में असत्य बोलना नैतिक नहीं हो सकता। हमें प्रत्येक परिस्थिति में सत्य ही बोलना चाहिए।” कांट की मान्यता को दृष्टिगत रखते हुए हम कह सकते हैं, जो आचरण नैतिक है वह सदैव नैतिक रहेगा और जो अनैतिक है वह सदैव अनैतिक रहेगा। देशकालगत अथवा व्यक्तिगत परिस्थितियों से वे प्रभावित नहीं होते हैं अर्थात् आचार के जो कर्म नैतिक हैं वे सदैव प्रत्येक परिस्थिति में नैतिक कर्म रहेंगे और आचार के जो कर्म अनैतिक हैं वे सदैव प्रत्येक परिस्थिति में अनैतिक कर्म रहेंगे। इस प्रकार जो विचारणा यह स्वीकार करती है कि नैतिकता निरपवाद एवं देशकाल और व्यक्तिगत तथ्यों से निरपेक्ष है उसे निरपेक्ष नैतिकता की विचारणा कहा जाता है। इसके विपरीत नैतिक दर्शन की जो विचारणाएं नैतिक कर्मों एवं आचरणों को अपवाद युक्त एवं देश, काल तथा व्यक्तिगत परिस्थितियों के आधार पर परिवर्तनशील मानती हैं, नैतिकता की सापेक्षवादी विचारणाएं कही जाती हैं। नैतिकता की सापेक्षवादी विचारणा यह स्वीकार करती है कि एक ही कर्म एक अवस्था में नैतिक हो सकता है और वही कर्म दूसरी अवस्था में अनैतिक हो सकता है। हाब्स, मिल तथा सिजविक प्रभृति सुखवादी विचारक इसी दृष्टिकोण को अपनाते हैं। नैतिक कर्मों के अपवाद के प्रश्न को लेकर इनका कांट से विरोध है। ये विचारक नैतिक जगत में अपवाद को स्वीकार करते हैं। हाब्स लिखते हैं कि “अकाल के समय जब अनाज क्रय करने पर भी न मिले, न दान में ही प्राप्त हो तब क्षुधातृप्ति के लिये कोई चौर्य कर्म का आचरण करे तो उसका वह अनैतिक कर्म क्षम्य ही माना जावेगा।”^२ मिल इसे अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, कि “ऐसे समय में चोरी करके जीवन की रक्षा करना केवल क्षम्य कर्म ही नहीं है अपितु अननुष्य का कर्तव्य

१ “Act only on that maxim (Principle) which thou canst at the same time will to become a Universal Law”

Fundamental Principles of the Metaphysics of Morals, Sec. II

२ Leviathan, Part II, Chapt. 27, p. 13 (Morley's Universal Library edition)

—Hobbes.

है।^१ इसी प्रकार सिजविक भी नैतिक जीवन के क्षेत्र में अपवाद को स्थान देते हैं, वे लिखते हैं— “यद्यपि यह कहा गया है कि सब लोगों को सच बोलना चाहिए तथापि हम यह नहीं कह सकते हैं कि जिन राजनीतिज्ञों को अपनी कार्रवाई गुप्त रखनी पड़ती है वे दूसरे व्यक्तियों के साथ हमेशा सच ही बोला करें।” फलवादी नैतिक विचारक जान ड्यूई लिखते हैं “वास्तव में ऐसे स्थान और समय—अर्थात् ऐसे सापेक्ष सम्बन्ध हो सकते हैं जिनमें सामान्य कृधाओं की पूर्ति भी जिन्हें साधारणतः भौतिक और ऐन्द्रिक कहा जाता है आदर्श हों।”^२ इन सभी के विपरीत कांट नैतिक कर्मों में किसी भी अपवाद को स्थान नहीं देते हैं। उनके बारे में यह घटना प्रसिद्ध है कि एक बार कांट के लिए किसी जहाज से फलों का पार्सल आ रहा था। रास्ते में जहाज विपत्ति में फँस गया और यात्री भूखों मरने लगे। ऐसी स्थिति में कांट का फलों का पार्सल भी खोल लिया गया। जब कांट के पास खुला हुआ पार्सल पहुँचा, तो कांट ने पार्सल का खोला जाना सर्वथा अनैतिक ठहराया। कांट बताते हैं कि नैतिक कभी अनैतिक नहीं बनता और अनैतिक कभी नैतिक नहीं बनता। देश-काल और परिस्थितियाँ अनैतिक को नैतिक नहीं बना सकतीं।

दूसरे स्पेन्सर आदि कुछ अन्य विकासवादी विचारक एवं समाजशास्त्रीय विचारक भी नैतिक कर्मों की नैतिकता को सापेक्ष मानते हैं। स्पेन्सर यद्यपि नैतिकता को सापेक्ष तथ्य स्वीकार करते हैं फिर भी वे उससे सन्तुष्ट नहीं होते हैं और निरपेक्ष नीति की कल्पना कर डालते हैं।

पश्चिम की तरह भारत में भी नैतिकता के सापेक्ष और निरपेक्ष पक्षों पर काफी गहन विचारणाएँ हुई हैं। नैतिक कर्मों की अपवादात्मकता और निरापवादिता की चर्चा के स्वर वेदों, स्मृति ग्रन्थों और पौराणिक साहित्य में काफी जोरों से सुनाई देते हैं।^३ जहाँ तक जैन विचारणा में नैतिकता के सापेक्ष और निरपेक्ष की मान्यता का प्रश्न है उसे एकांतिक रूप से न तो सापेक्ष कहा जा सकता है, न निरपेक्ष। यदि उसे सापेक्ष कहने का आग्रह ही रखा जावे तो वह इसीलिए सापेक्ष है क्योंकि वह निरपेक्ष भी है।^४ निरपेक्ष के अभाव में सापेक्ष भी सच्चा सापेक्ष नहीं है। वह निरपेक्ष इसलिये है क्योंकि वह सापेक्षता से ऊपर भी है। आइये जरा इस प्रश्न पर गहराई से विचार करें कि जैन नैतिकता किस अर्थ में सापेक्ष है और किस अर्थ में निरपेक्ष है।

जैन नैतिकता का सापेक्ष पक्ष

जैन तत्त्वज्ञान जिस अनेकांतवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करके चलता है उसके अनुसार सारा ज्ञान सापेक्ष ही होगा चाहे वह कितना ही विस्तृत क्यों नहीं हो। यदि हम अपूर्ण हैं तो सत् के अनन्त पक्षों को नहीं जान सकते, अतः जो भी कुछ भी जानेंगे वह अपूर्ण होगा, सपेक्ष होगा। यदि ज्ञान ही सापेक्ष रूप में होगा तो हमारे नैतिक निर्णय, जिन्हें हम प्राप्त ज्ञान के आधार पर करते हैं, सापेक्ष ही होंगे इस प्रकार अनेकांतवाद की धारणा से नैतिक निर्णयों की सापेक्षता फलित

१ Thus to save a life it may not only be allowable but a duty to steal... Mill—Utilitarianism, Chap. 5, p. 95 (15th Ed.)

२ नैतिक जीवन के सिद्धान्त (हिन्दी अनुवाद), पृ० ५६।

३ विशेष विवेचन के लिये देखिए—तिलक का गीता रहस्य, कर्म जिज्ञासा, अध्याय १।

४ अनेकान्तोप्यनेकान्तः प्रमाण-नय साधनात्।

अनेकान्तः प्रमाणात् ते तदेकान्तोऽपि तात् नयात् ॥

होती है। गीता भी स्वीकार करती है कि 'कि कर्तव्य' का निश्चय कर पाना अथवा कर्म की शुभाशुभता का निरपेक्ष रूप से निश्चय कर पाना अत्यन्त कठिन है।^१

आचरण के जिन तथ्यों को हम शुभ या अशुभ अथवा पुण्य या पाप के नाम से सम्बोधित करते हैं, उनके सन्दर्भ में साधारण व्यक्ति द्वारा दिए गए यह निर्णय सापेक्षिक ही हो सकते हैं। हमारे निर्णयों के देने में कम से कम कर्ता के प्रयोजन एवं कर्म के परिणाम के पक्ष तो उपस्थित होते ही हैं। दूसरे व्यक्ति के आचार के सम्बन्ध में दिये गये हमारे अधिकांश निर्णय परिणाम सापेक्ष होते हैं जब कि स्वयं के आचरण के बारे में लिए जाने वाले निर्णयों में हम प्रयोजन सापेक्ष होते हैं। कोई भी व्यक्ति पूर्णतया न तो यह जान सकता है कि कर्ता का प्रयोजन क्या था, न स्वयं के कर्मों का दूसरों पर क्या परिणाम हुआ, इसका पूरा ज्ञान रख सकता है। अतः जन साधारण के नैतिक निर्णय हमेशा सापेक्ष हो सकते हैं।

दूसरी ओर हमें जिस जगत में नैतिक आचरण करना है वह सारा जगत ही आपेक्षिकताओं से युक्त है क्योंकि उसकी प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। अतः इस सापेक्षिकता के जगत में नैतिक आचरण भी निरपेक्ष नहीं हो सकता। सभी कर्म देश-काल अथवा व्यक्ति से सम्बन्धित होते हैं और इसलिए वे निरपेक्ष नहीं हो सकते। बाह्य जागतिक परिस्थितियाँ और कर्म के पीछे रहा हुआ ब्यक्तिक अभिप्रयोजन (Intention) भी आचरण को नैतिक विचारणा की दृष्टि से सापेक्ष बना देते हैं। जैनदर्शन दार्शनिक दृष्टि से वस्तु की अनन्त धर्मात्मकता को स्वीकार करता है। आचार्य हेमचन्द्र के शब्दों में आदीपव्योम सभी वस्तुएँ स्याद्वाद की मुद्रा से अंकित हैं अर्थात् सभी जागतिक तथ्य अनेक गुण-धर्मों से युक्त है। नैतिक कर्म भी एक जागतिक तथ्य है वह भी अनेक पक्षों से युक्त है अतः उस पर किसी निरपेक्ष अथवा ऐकान्तिक दृष्टिकोण से विचार नहीं किया जा सकता। उसके देश-कालगत अनेक पक्षों की बिना समीक्षा किये उन्हें नैतिक अथवा अनैतिक नहीं कहा जा सकता। कोई भी कर्म देशकाल भाव आदि तथ्यों से भिन्न एकान्त रूप में न तो नैतिक कहा जा सकता है और न अनैतिक। पाश्चात्य दार्शनिक ब्रेडले इसी विचार के समर्थक है। वे लिखते हैं 'प्रत्येक कर्म के अनेक पक्ष होते हैं, अनेक रूपों से सम्बन्धित होता है, उस पर विचार करने के अनेक दृष्टिकोण होते हैं और वह अनेक गुणों से युक्त होता है, सदैव अनेक ऐसे सिद्धान्त हो सकते हैं जिनके अन्तर्गत उस पर विचार किया जा सकता है और इसलिए उसे (एकांत रूप में) नैतिक अथवा अनैतिक मानने में कुछ कम कठिनाई नहीं होती। एक कर्म एक दशा में नैतिक हो सकता है और दूसरी दशा में अनैतिक हो सकता है, वही कर्म एक व्यक्ति के लिए नैतिक हो सकता है दूसरे व्यक्ति के लिए अनैतिक हो सकता है। जैन विचारणा कर्मों की नैतिक दृष्टि से इस सापेक्षता को स्वीकार करती है। प्राचीनतम जैन आगम आचारंगसूत्र में कहा है कि "जो आस्रवा या बन्ध के कारण हैं वे सभी मोक्ष के हेतु हो जाते हैं और जो मोक्ष के हेतु हैं वे सभी बन्ध के हेतु हो जाते हैं।"^२ इस प्रकार कोई भी अनैतिक कर्म विशेष स्थिति में नैतिक बन जाता है और कोई भी नैतिक कर्म विशेष स्थिति में अनैतिक बन सकता है।^३ वस्तुतः समाचरण या क्रिया अपने आप में न तो नैतिक होती है और न अनैतिक वरन् परिस्थितियाँ एवं व्यक्ति का प्रयोजन उसे नैतिक अथवा अनैतिक बना

१ गहना कर्मणो गति

—गीता ४।१७

२ (क) जे आस्रवा ते परिस्सवा जे परिस्सवा ते आस्रवा ।

—आचारांग १-४-२-१३०

(ख) य एवास्रवा कर्मबन्ध स्थानानि त एव परिस्सवा कर्मनिज्जरा स्थानानि ।

—आचार्य श्रीलांक टीका

३ यस्मिन् देशे काले यो धर्मो भवति स निमित्तान्तरेषु अधर्मो भवत्येव ॥

—उद्धृत अमर भारती (मई १९६४) पृ० १५

देता है। दान देना नैतिक कर्म है लेकिन कुपात्र को अथवा यश प्राप्त के निमित्त दिया हुआ दान अनैतिक हो जाता है। अतः आचरण की शुभता अथवा अशुभता का निश्चय निरपेक्ष रूप से नहीं किया जा सकता है। उपाध्याय अमर मुनि जी लिखते हैं "त्रिभुवनोदर विवरवर्ती समस्त असंख्येय भाव अपने आप में न तो मोक्ष के कारण हैं और न संसार के कारण हैं। साधक की अपनी अन्तःस्थिति ही उन्हें अच्छे या बुरे का रूप दे देती है।"¹ लेकिन न केवल साधक की मनःस्थिति जिसे जैन शब्दावली में भाव कहते हैं आचरण के तथ्यों का मूल्यांकन करती है वरन् उसके साथ-साथ जैन विचारकों ने द्रव्य, क्षेत्र और काल को भी कर्मों की नैतिकता और अनैतिकता का निर्धारक तत्व स्वीकार किया है। आचार्य आत्मारामजी महाराज अपनी आचारांग सूत्र की व्याख्या में लिखते हैं बन्ध और निर्जरा (नैतिकता और अनैतिकता) में भावों की प्रमुखता है परन्तु भावों के साथ स्थान और क्रिया का भी मूल्य है।² आचार्य हरिभद्र के अष्टक प्रकरण की टीका में आचार्य जिनेश्वर ने चरक संहिता का एक श्लोक³ उद्धृत किया है जिसका अर्थ है कि देशकाल और रोगादि के कारण मानवजीवन में कभी-कभी ऐसी अवस्था भी आ जाती है जब अकार्य कार्य बन जाता है और कार्य अकार्य बन जाता है। जो विधान है, वह निषेध की कोटि में चला जाता है और जो निषेध है वह विधान की कोटि में चला जाता है। इस प्रकार जैन नैतिकता में चार सापेक्षिकाएँ नैतिक मूल्यों के निर्धारण में भाग लेती हैं। आचरण के तथ्य इन्हीं चार बातों के आधार पर नैतिक और अनैतिक बनते रहते हैं। दूसरे शब्दों में आचरण के तथ्य अपने आप में नैतिक अथवा अनैतिक नहीं होते वरन् वस्तुस्थिति, स्थान, समय और कर्ता के मनोभाव यह चारों मिलकर उसे नैतिक अथवा अनैतिक बना देते हैं। संक्षेप में एकान्त रूप से न तो कोई आचरण, कर्म या क्रिया नैतिक है और न अनैतिक वरन् देशकालगत बाह्य परिस्थितियाँ और द्रव्य तथा भावगत आन्तरिक परिस्थितियाँ उन्हें वैसा बना देती हैं। इस प्रकार जैन नैतिकता व्यक्ति के कर्तव्यों के सम्बन्ध में अनेकांतवादी या सापेक्षिक दृष्टिकोण अपनाती है। वह यह भी स्वीकार करती है कि जो दानादि एक गृहस्थ के नैतिक कर्तव्य हैं वे ही एक मुनि या संन्यासी के लिए अकर्तव्य होते हैं। कर्तव्याकर्तव्य मीमांसा में जैन विचारणा किसी भी एकांतिक दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करती। समदर्शी आचार्य हरिभद्र लिखते हैं कि भगवान तीर्थंकर देवों ने न किसी बात के लिए एकान्त विधान किया है और न किसी बात के लिए एकान्त निषेध ही किया है। भगवान तीर्थंकर देव का एक ही आदेश है, एक ही आज्ञा है कि जो कुछ भी कार्य तुम कर रहे हो उसे सत्यभूत होकर करो, उसे पूरी वफादारी के साथ करते रहो⁴। आचार्य उमास्वाति का कथन है नैतिक-अनैतिक, विधि (कर्तव्य) निषेध

1 Every act has of course, many sides, many relations, many points of view from which it may be regarded, and so many qualities there is not the smallest difficulty in exhibiting it as the realization of either right or wrong. No act in the world is without some side capable of being subsumed under a good rule.
—Ethical Studies (1962) P. 196.

२ आचारांग सूत्र हिन्दी टीका, प्रथम भाग, पृष्ठ ३७८ संस्करण १९६३

३ उत्पद्यते हि सावस्था देशकालामयान् प्रति।

यस्यामकार्यं कार्यं स्यात् कर्मं कार्यं च वर्जयेत् ॥

—अष्टक प्रकरण २७:५ टीका
(उद्धृत अमर भारती, फरवरी १९६५)

४ न वि किञ्चि अणुणातं पडिसिद्धं वावि जिणवरिदिहि ।

तिरथगराणं आणा कज्जे सच्चेण होयव्वं ॥

—उपदेशपद ७७९

(अकर्तव्य) अथवा आचरणीय या अनाचरणीय एकान्त रूप से नियत नहीं है। देशकाल, व्यक्ति, अवस्था, उपघात और विषुद्ध मनःस्थिति के आधार पर असमाचरणीय समाचरणीय और समाचरणीय असमाचरणीय बन जाता है।^१ वर्तमान युग के प्रसिद्ध जैन विचारक संत उपाध्याय अमर मुनि जी ने जैन नैतिकता के सापेक्षिक दृष्टिकोण को बड़े सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है, वे लिखते हैं “कुछ विचारक जीवन में उत्सर्ग (नैतिकता की निरपेक्ष या निरपवाद स्थिति) को पकड़ कर चलना चाहते हैं और जीवन में अपवाद का सर्वथा अपलाप करते हैं, उनकी दृष्टि में अपवाद धर्म नहीं अपितु एकं महत्तर पाप (अनैतिकता) है—दूसरी ओर कुछ साधक वे हैं जो उत्सर्ग को भूलकर केवल अपवाद का सहारा लेकर ही चलना चाहते हैं—ये दोनों विचार एकांगी होने से उपादेय की कोटि में नहीं आ सकते। जैनधर्म की साधना एकान्त की नहीं, अपितु अनेकान्त की सुन्दर और स्वस्थ साधना है।”^२ अन्यत्र वे पुनः लिखते हैं—“उसके (जैन दर्शन के) दर्शन कक्ष में मोक्ष के हेतुओं की कोई बँधी बँधाई नियत रूपरेखा नहीं है, इयत्ता नहीं है।”^३ पाश्चात्य विचारक ब्रेडले भी कर्तव्याकर्तव्य मीमांसा करते हुए स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि नैतिकता सापेक्ष होती है। वे लिखते हैं कि “मेरा स्थान और उसके कर्तव्य का सिद्धान्त स्वीकार करता है कि यदि नैतिक तथ्य सापेक्ष नहीं है तो कोई भी नैतिकता नहीं होगी। ऐसी नैतिकता जो सापेक्ष नहीं है, व्यर्थ है।”

जैन नैतिकता का निरपेक्ष पक्ष

हमने जैनदर्शन में नैतिकता के सापेक्ष पक्ष पर विचार किया लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि जैनदर्शन में नैतिकता का केवल सापेक्ष पक्ष ही स्वीकार किया गया है। जैन विचारक कहते हैं कि नैतिकता का एक दूसरा पहलू भी है जिसे हम निरपेक्ष कह सकते हैं। जैन तीर्थंकरों का उद्घोष था कि “धर्म शुद्ध है, नित्य है और शाश्वत है”।^४ यदि नैतिकता में कोई निरपेक्ष एवं शाश्वत तत्त्व नहीं है तो फिर धर्म की नित्यता और शाश्वतता का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। जैन नैतिकता यह स्वीकार करती है कि भूल, वर्तमान, भविष्य के सभी धर्म प्रवर्तकों (तीर्थंकरों) की धर्म प्रज्ञप्ति एक ही होती है लेकिन इसके साथ-साथ वह यह भी स्वीकार करती है सभी तीर्थंकरों की धर्म प्रज्ञप्ति एक होने पर भी तीर्थंकरों के द्वारा प्रतिपादित आचार नियमों में विभिन्नता हो सकती है जैसी महावीर और पार्श्वनाथ के द्वारा प्रतिपादित आचार नियमों में थी।^५ जैन विचारणा यह स्वीकार करती है कि नैतिक आचरण के आन्तर और बाह्य ऐसे दो पक्ष होते हैं जिन्हें जैन पारिभाषिक शब्दों में द्रव्य और भाव कहा जाता है। जैन विचारणा के अनुसार आचरण का यह बाह्य पक्ष देश एवं कालगत परिवर्तनों के आधार पर परिवर्तनशील होता है, सापेक्ष होता है। जबकि आचरण का आन्तर पक्ष सदैव-सदैव एक रूप होता है, अपरिवर्तनशील होता है दूसरे शब्दों में निरपेक्ष होता है। वैचारिक या भावहिंसा सदैव-सदैव अनैतिक होती है, कभी भी धर्म मार्ग अथवा नैतिक जीवन का नियम नहीं कहला सकती, लेकिन द्रव्यहिंसा या बाह्यरूप में परिलक्षित होने वाली हिंसा सदैव ही अनैतिक अथवा अनाचरणीय ही हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। आन्तर

१ देशं कालं पुरुषमवस्थामुपघातं शुद्ध परिणामान् ।

प्रसमीक्ष्य भवति कल्प्यं नैकास्तात्कल्प्यते कल्प्यम् ॥१४६

—प्रश्नमरति उमास्वाति—(अमर भारती, फरवरी १९६५)

२ अमर भारती, फरवरी १९६५ पृ० ५

३ अमर भारती, मार्च १९६५, पृ० ३८

४ एस धम्म सुद्धे तिचिए सासए ।

—आचारांग

५ विशेष द्रष्टव्य—उत्तराध्ययन सूत्र, अध्याय २३

परिग्रह अर्थात् तृष्णा या आसक्ति सदैव ही अनैतिक है लेकिन द्रव्य परिग्रह सदैव ही अनैतिक नहीं कहा जा सकता। संक्षेप में जैन विचारणा के अनुसार आचरण के बाह्य रूपों में नैतिकता सापेक्ष हो सकती है और होती है लेकिन आचरण के आन्तर रूपों या भावों या संकल्पों के रूप में वह सदैव निरपेक्ष ही है। सम्भव है कि बाह्य रूप में अशुभ दिखने वाला कोई कर्म अपने अन्तर में निहित किसी सदाशयता के कारण शुभ हो जाये लेकिन अन्तर का अशुभ संकल्प किसी भी स्थिति में नैतिक नहीं हो सकता।

जैन दृष्टि में नैतिकता अपने हेतु या संकल्प की दृष्टि से निरपेक्ष होती है। लेकिन परिणाम अथवा बाह्य आचरण की दृष्टि से सापेक्ष होती है। दूसरे शब्दों में नैतिक संकल्प निरपेक्ष होता है लेकिन नैतिक कर्म सापेक्ष होता है। इसी कथन को जैन पारिभाषिक शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यवहार नय (व्यवहार दृष्टि) से नैतिकता सापेक्ष है या व्यावहारिक नैतिकता सापेक्ष है लेकिन निश्चय नय (परिणामाधिक दृष्टि) से नैतिकता निरपेक्ष है या निश्चय नैतिकता निरपेक्ष है। जैन दृष्टि में व्यावहारिक नैतिकता वह है जो कर्म के परिणाम या फल पर दृष्टि रखती है जबकि निश्चय नैतिकता वह है जो कर्ता के प्रयोजन या संकल्प पर दृष्टि रखती है। युद्ध का संकल्प किसी भी स्थिति में नैतिक नहीं हो सकता लेकिन युद्ध का कर्म सदैव ही अनैतिक हो यह आवश्यक नहीं। आत्महत्या का संकल्प सदैव ही अनैतिक होता है लेकिन आत्महत्या का कर्म सदैव ही अनैतिक हो यह आवश्यक नहीं है वरन् कभी-कभी तो वह नैतिक ही हो जाता है।

नैतिकता के क्षेत्र में जब एक बार व्यक्ति के संकल्प स्वातन्त्र्य को स्वीकार कर लेते हैं तो फिर हमें यह कहने का अधिकार ही नहीं रह जाता है कि हमारा संकल्प सापेक्ष है। यदि संकल्प सापेक्ष नहीं है तो उसके सन्दर्भ में नैतिकता को भी सापेक्ष नहीं माना जा सकता है। यही कारण है कि जैन विचारणा संकल्प या विचारों की दृष्टि से नैतिकता को सापेक्ष नहीं मानती है। उसके अनुसार शुभ अद्यवसाय या संकल्प सदैव शुभ है, नैतिक है और कभी भी अनैतिक नहीं होता है। लेकिन निरपेक्ष नैतिकता की धारणा को व्यावहारिक आचरण के क्षेत्र पर पूरी तरह लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि व्यवहार सदैव सापेक्ष होता है। डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा लिखते हैं कि “यदि कोई नियम आचार का निरपेक्ष नियम बन सकता है तो वह बाह्यात्मक नहीं होकर अन्तरात्मक ही होना चाहिए। आचार का निरपेक्ष नियम वही नियम हो सकता है जो कि मनुष्य के अन्तस् में उपस्थित हो। यदि वह नियम बाह्यात्मक हो तो वह सापेक्ष ही सिद्ध होगा क्योंकि उसके पालन करने के लिए मनुष्य को बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर रहना पड़ेगा।”

जैन नैतिक विचारणा में नैतिकता को निरपेक्ष तो माना गया लेकिन केवल संकल्प के क्षेत्र तक। जैन-दर्शन ‘मानस कर्म’ के क्षेत्र में नैतिकता को विशुद्ध रूप में निरपेक्ष स्वीकार करता है। लेकिन जहाँ कायिक या वाचिक कर्मों के बाह्य आचरण का क्षेत्र आता है, वह उसे सापेक्ष स्वीकार करती है। वस्तुतः विचारणा का क्षेत्र, मानस का क्षेत्र आत्मा का अपना क्षेत्र है वहाँ वही सर्वोच्च शासक है अतः वहाँ तो नैतिकता को निरपेक्ष रूप में स्वीकार किया जा सकता है लेकिन आचरण के क्षेत्र में चेतन तत्त्व एक मात्र शासक नहीं, वहाँ तो अन्य परिस्थितियाँ भी शासन करती हैं, अतः उस क्षेत्र में नैतिकता के प्रत्यय को निरपेक्ष नहीं बनाया जा सकता।

- १ महावीर की प्रथम स्त्री शिष्या महासती चन्दनबाला की माता धारिणी के द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा के लिए की गई आत्महत्या को जैन विचारणा में अनुमोदित ही किया गया है। इसी प्रकार महाराजा चेटक के द्वारा न्याय की रक्षा के लिए लड़े गये युद्ध के आधार पर उनके अहिंसा के व्रत को खण्डित नहीं माना गया है।

जैन विचारणा के इतिहास में भी एक प्रसंग ऐसा आया है जब आचार्य भिक्षु जैसे कुछ जैन विचारकों ने नैतिकता के बाह्यात्मक नियमों को भी निरपेक्ष रूप में ही स्वीकार करने की कोशिश की। वस्तुतः जो नैतिक विचारणाएँ मात्र सापेक्षिक दृष्टि को ही स्वीकार करती हैं वे नैतिक जीवन के आचरण में उस यथार्थता (actuality) की भूमिका को महत्त्व देती हैं जिसमें साधक व्यक्ति खड़ा हुआ है। लेकिन वे उस यथार्थता से ऊपर स्थित आदर्श का समुचित मूल्यांकन करने में सफल नहीं हो पाती हैं वास्तविकता यह है कि वे 'जो है' उस पर तो ध्यान देती हैं लेकिन 'जो होना चाहिए' इस पर उनकी दृष्टि नहीं पहुँचती उनकी दृष्टि यथार्थ या वास्तविकता पर होती है आदर्श पर नहीं। नैतिकता की। एकात्मिक सापेक्षवादी मान्यता में नैतिक आदर्श की स्थापना जटिल हो जाती है। उसमें नैतिकता सदैव साधन वस्तु ही बनी रहती है। सापेक्षवादी नैतिकता आचरण की एक ऐसी कच्ची सामग्री प्रस्तुत करती है जिसका अपना कोई 'आकार' नहीं। (Relative morality gives us only matter of conduct not the form of conduct.) वह तो उस कुम्हार के चाक पर रखे हुए मृत्तिका पिण्ड के समान है जिसका क्या बनना है यह निश्चित नहीं। इसी प्रकार जो नैतिक विचारणाएँ मात्र निरपेक्ष दृष्टि को स्वीकार करती हैं, वे यथार्थ की भूमिका को भूलकर मात्र आदर्श की ओर देखती हैं, वे नैतिक आदर्श को तो प्रस्तुत कर देती हैं, लेकिन उसके साधना पथ का समुचित निर्धारण करने में असफल हो जाती हैं, उसमें नैतिकता मात्र साध्य बनकर रह जाती है।

नैतिकता की निरपेक्षवादी धारणा नैतिक जीवन प्रयोजन या लक्ष्य और दूसरे शब्दों में कर्म के पीछे रहे हुए कर्ता के अभिप्राय को ही सब कुछ मन लेती है। वे मात्र आदर्श की ओर ही देखती हैं लेकिन साधक की देशकालगत अवस्थाओं पर विचार नहीं करती हैं। नैतिक जीवन के आदर्श इस प्रकार प्रस्तुत किए जाने चाहिए कि उसमें निम्न से निम्नतर चरित्र वाले से लगाकर उच्चतम नैतिक विकास वाले प्राणियों के समाहित होने की संभावना बनी रहे। जैन नैतिकता अपने नैतिक आदर्श को इतने ही लचीले रूप में प्रस्तुत करती है, जिसमें पापी से पापी आत्मा भी क्रमिक विकास करता हुआ नैतिक साधना के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाता है।

सापेक्षवादी और निरपेक्षवादी दोनों ही विचारणाएँ अपने एकात्मिक रूप में अपूर्ण हैं। एक उस भूमि पर तो देखती है, जहाँ साधक खड़ा है, लेकिन उससे आगे नहीं। दूसरी उस आदर्श की ओर ही देखती है, जो सुदूर ऊँचाइयों में स्थित है। लेकिन इन दोनों दशाओं में नैतिक जीवन के लिए जिस गति की आवश्यकता है वह सम्यग् रूपेण सम्पन्न नहीं हो पाती। नैतिकता तो एक लक्ष्योन्मुख गति है। लेकिन उस गति में साधक की दृष्टि केवल उस भूमि पर ही स्थित है, जिस पर वह गति कर रहा है और अपने गन्तव्य मार्ग की ओर सामने नहीं देखता है, तो कभी भी लक्ष्य के मध्य स्थित बाधाओं से टकराकर पदच्युत हो सकता है। इसी प्रकार जो साधक मात्र आदर्श की ओर देखता है और उस भूमि की ओर नहीं देखता जिस पर चल रहा है तो वह भी अनेक ठोकरें खाता है और कण्टकों से पद विद्ध कर लेता है। नैतिक जीवन में भी हमारी गति का वही स्वरूप होता है जो हमारे दैनिक जीवन में होता है। जिस प्रकार दैनिक जीवन में चलने के उपक्रम में हमारा काम न तो मात्र सामने देखने से चलता है न मात्र नीचे देखने से। जो पथिक मात्र नीची दृष्टि रखता है और सामने नहीं देखता वह ठोकर तो नहीं खाता लेकिन टकरा जाता है। जो सामने तो देखता है लेकिन नीचे नहीं देखता वह टकराता तो नहीं लेकिन ठोकर खा जाता है। चलने की सम्यक् प्रक्रिया में पथिक को सामने और नीचे दोनों ओर दृष्टि रखनी होती है। इसी प्रकार नैतिक जीवन में साधक को यथार्थ और आदर्श दोनों पर दृष्टि रखनी होती है। साधक की एक आँख यथार्थ पर और दूसरी आदर्श

पर हो तभी वह नैतिक जीवन में सम्यक् प्रगति कर सकता है। सम्भवतः यह शंका हो सकती है कि हमें सामान्य जीवन में तो दो आँखें मिली हैं लेकिन नैतिक जीवन की दो आँखें कौन सी हैं। किसी अपेक्षा से ज्ञान और क्रिया को नैतिक जीवन की दो आँखें कहा जा सकता है। नैतिकता कहती है कि ज्ञान नामक आँख को आदर्श पर जमाओ और क्रिया नामक आँख को यथार्थ पर अर्थात् कर्म के आचरण में यथार्थता की ओर देखो और गन्तव्य की ओर प्रगति करने में आदर्श की ओर। जैन दर्शन ने नैतिकता के सापेक्ष और निरपेक्ष दोनों रूपों को स्वीकार किया है। लेकिन उसमें भी निरपेक्षता दो भिन्न-भिन्न अर्थों में रही हुई है। प्रथम प्रकार की निरपेक्षता जो कि वस्तुतः सापेक्ष ही है आचरण के सामान्य नियमों से सम्बन्धित है अर्थात् आचरण के जिन नियमों का विधि और निषेध सामान्य दशा में किया गया है, उस सामान्य दशा की अपेक्षा से आचरण के वे नियम उसी रूप में आचरणयोग्य हैं। व्यक्ति सामान्य स्थिति में उन नियमों के परिपालन में किसी अपवाद या छूट की अपेक्षा नहीं कर सकता है। वहाँ पर सामान्य दशा का विचार व्यक्ति तथा देशकालगत बाह्य परिस्थितियाँ दोनों के सन्दर्भ में किया गया है अर्थात् यदि व्यक्ति स्वस्थ है और देशकालगत परिस्थितियाँ भी वही हैं, जिनको ध्यान में रखकर विधि या निषेध किया गया था, तो व्यक्ति को उन नियमों तथा कर्तव्यों का पालन भी उसी रूप में करना होगा, जिस रूप में उनका प्रतिपादन किया गया है। जैन पारिभाषिक शब्दावली में इसे उत्सर्ग मार्ग कहा जाता है। नैतिकता के क्षेत्र में उत्सर्ग मार्ग वह मार्ग है जिसमें साधक को नैतिक आचरण उसी रूप में करना होता है जिस रूप में शास्त्रों में उसका प्रतिपादन किया गया है। उत्सर्ग नैतिक विधि-निषेधों का सामान्य कथन है। जैसे मन-वचन-काय से हिंसा न करना, न करवाना, न करने वाले का समर्थन करना; लेकिन जब इन्हीं सामान्य विधि-निषेधों के नियमों का किन्हीं विशेष परिस्थितियों में उसी रूप में किया जाना संभव नहीं होता तो उन्हें शिथिल कर दिया जाता है। नैतिक आचरण की यह अवस्था अपवाद मार्ग कही जाती है। उत्सर्ग मार्ग अपवाद मार्ग की अपेक्षा से सापेक्ष है लेकिन जिस परिस्थितिगत सामान्यता के तत्त्व को स्वीकार कर इसका निरूपण किया जाता है, उस सामान्यता के तत्त्व की दृष्टि से निरपेक्ष ही होता है। उत्सर्ग की निरपेक्षता देश-काल एवं व्यक्तिगत परिस्थितियों के अन्दर ही होती है, उससे बाहर नहीं है। उत्सर्ग नैतिक आचरण की विशेष पद्धति है। लेकिन दोनों ही किसी एक लक्ष्य के लिए हैं और इसलिए दोनों ही नैतिक हैं। जिस प्रकार एक नगर को जाने वाले दोनों मार्ग यदि उसी नगर को ही पहुँचाते हों तो दोनों ही मार्ग होंगे, अमार्ग नहीं। उसी प्रकार अपवादात्मक नैतिकता का सापेक्ष स्वरूप और उत्सर्गात्मक नैतिकता का निरपेक्ष स्वरूप दोनों ही नैतिकता के स्वरूप हैं और कोई भी अनैतिक नहीं है। लेकिन निरपेक्षता का एक रूप और है जिसमें वह सदैव ही देशकाल एवं व्यक्तिगत सीमाओं के अपर उठी होती है। नैतिकता का वह निरपेक्ष रूप अन्य कुछ नहीं “नैतिक आदर्श” स्वयं ही है। नैतिकता का लक्ष्य ऐसा निरपेक्ष तथ्य है, जो सारे नैतिक आचरणों के मूल्यांकन का आधार है। नैतिक आचरण की शुभाशुभता का अंकन का इसी पर आधारित है। कोई भी आचरण, चाहे वह उत्सर्ग मार्ग से या अपवाद मार्ग से, हमें इस लक्ष्य की ओर ले जाता है, शुभ है। इसके विपरीत जो भी आचरण हमें इस नैतिक आदर्श से विमुख करता है, अशुभ है, अनैतिक है। सम्यक् नैतिकता इसी के सन्दर्भ में है और इसलिए इसकी अपेक्षा से सापेक्ष है, यही मात्र अपने आप में निरपेक्ष कहा जा सकता है। नैतिक जीवन के उत्सर्ग और अपवाद नामक दोनों मार्ग इसी की अपेक्षा से सापेक्ष होते हैं और इसी के मार्ग होने से निरपेक्ष भी क्योंकि मार्ग के रूप में किसी स्थिति तक इससे अभिन्न भी होते हैं और यही अभिन्नता उनको निरपेक्षता का सच्चा तत्त्व प्रदान करती है। लक्ष्य रूपी जिस सामान्य तत्त्व के आधार पर नैतिक जीवन के उत्सर्ग और अपवाद के दोनों मार्गों का विधान किया गया है, वह मोक्ष की प्राप्ति है।

यदि नैतिक आचरण एक सापेक्ष तथ्य है और देशकाल तथा व्यक्तिगत परिस्थितियों से प्रभावित होता है तो प्रश्न उपस्थित होता है कि किस स्थिति में किस प्रकार का आचरण किया जाए, इसका निश्चय कैसे किया जाए ? जैन विचारणा कहती है नैतिक आचरण के क्षेत्र में उत्सर्ग मार्ग सामान्य मार्ग है, जिस पर सामान्य अवस्था में हर एक साधक को चलना होता है। जब तक देश काल और वैयक्तिक दृष्टि से कोई विशेष परिस्थिति उत्पन्न नहीं हो जाती है तब तक प्रत्येक व्यक्ति को इस सामान्य मार्ग पर ही चलना होता है, लेकिन विशेष अपरिहार्य परिस्थितियों में वह अपवाद मार्ग पर चल सकता है। लेकिन यहाँ भी यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इसका निर्णय कौन करे कि किस परिस्थिति में अपवाद मार्ग का सेवन किया जा सकता है। यदि इसके निर्णय करने का अधिकार व्यक्ति स्वयं को दे दिया जाता है तो फिर नैतिक जीवन में समरूपता और वस्तुनिष्ठता (Objectivity) का अभाव होगा, हर एक व्यक्ति अपनी इच्छाओं के वशीभूत हो अपवाद मार्ग का सहारा लेगा। जैन विचारणा इस क्षेत्र में व्यक्ति को अधिक स्वतन्त्र नहीं छोड़ती है। वह नैतिक प्रत्ययों को इतना अधिक व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) नहीं बना देना चाहती है कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उनको मनमाना रूप दिया जा सके। जैन विचारणा नैतिक मर्यादाओं को यद्यपि इतना कठोर भी नहीं बनाती कि व्यक्ति उनके अन्दर स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण नहीं कर सके लेकिन वे इतनी अधिक लचीली भी नहीं हैं कि व्यक्ति अपनी इच्छानुसार उन्हें मोड़ दे। उपाध्याय अमर मुनिजी के शब्दों में 'जैन विचारणा में नैतिक मर्यादाएँ उस खण्डहर दुर्ग के समान नहीं हैं जिसमें विचरण की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है लेकिन शत्रु के प्रविष्ट होने का सदा भय बना होता है, वरन् सुदृढ़ चार दीवारियों से युक्त उस दुर्ग के समान है जिसके अन्दर व्यक्ति को विचरण की स्वतन्त्रता है और विशेष परिस्थितियों में वह उससे बाहर भी आ जा सकता है लेकिन शर्त यही है कि ऐसी प्रत्येक स्थिति में उसे उस दुर्ग के द्वारपाल की अनुज्ञा लेनी होगी।' जैन विचारणा के अनुसार नैतिकता के इस दुर्ग में द्वारपाल के स्थान पर 'गीतार्थ' होता है जो देश, काल एवं वैयक्तिक परिस्थितियों को समुचित रूप से समझकर सामान्य व्यक्ति को अपवाद के क्षेत्र में प्रविष्ट होने की अनुज्ञा देता है। अपवाद की व्यवस्था के सम्बन्ध में निर्णय देने का समस्त उत्तरदायित्व गीतार्थ पर ही रहता है। गीतार्थ यह व्यक्ति होता है जो नैतिक विधि-निषेध के आचारांगी आचार संहिता और निशीथ आदि छेदसूत्रों का ममेज्ञ हो, साथ ही स्व-प्रज्ञा से देश-काल एवं वैयक्तिक परिस्थितियों को समझने में समर्थ हो। जैनागमों में गीतार्थ के सम्बन्ध में कहा गया है "गीतार्थ वह है जिसे कर्तव्य और अकर्तव्य के लक्षणों का यथार्थ रूपेण ज्ञान है"^१। जो आय-व्यय, कारण-अकारण, अगाढ़ (रोगी, वृद्ध) अनागाढ़, वस्तु-अवस्तु, युक्त-अयुक्त, समर्थ-असमर्थ, यतना-अयतना का सम्यग्ज्ञान रखता है, साथ ही समस्त कर्तव्य कर्म के परिणामों को भी जानता है वही विधिवान गीतार्थ है"^२ यद्यपि जैन नैतिक विचारणा के अनुसार परिस्थिति विशेष में कर्तव्याकर्तव्य का निर्धारण गीतार्थ करता है लेकिन उसके मार्ग निर्देशक के रूप में आगम ग्रन्थ ही होते हैं। यहाँ पर जैन नैतिकता की जी विशेषता हमें देखने को मिलता है वह यह है कि वह न तो एकान्त रूप से शास्त्रों को ही सारे विधि-निषेध का आधार बनाती है और न व्यक्ति को ही। उसमें शास्त्र मार्गदर्शक है लेकिन निर्णायक नहीं। व्यक्ति किसी परिस्थिति विशेष में क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है इसका निर्णय तो ले सकता है लेकिन उसके निर्णय में शास्त्र ही उसका मार्गदर्शक होता है।

१ (अ) अधिगत निशीथादि श्रुत सूत्रार्थ

(ब) गीतो-विज्ञात कृत्याकृत्य लक्षणोऽर्थो येन स गीतार्थः । —अभिधान राजेन्द्र कोप, खण्ड ३

२ आय कारण गाढं वत्थु जुत्तं संसक्ति जयणं च ।

सब्बं च पडिववस्सं फलं च विधिवं वियाणाह ॥

—बृहत्कल्प नियुक्तिभाष्य ६५१

अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान : स्याद्वाद

□ श्री अजित मुनिजी 'निर्मल'

एक दिन स्याद्वाद ने जगति के विचरण का निश्चय किया। प्रत्येक यात्रा किसी भी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति को लेकर की जाती है।

स्याद्वाद ने सोचा—

“क्यों न विश्व की एक परिक्रमा कर ली जाये? जिससे कि हर स्थान के व्यक्तियों की समस्या को निकट से देखने का सहज ही अवसर प्राप्त होगा एवं उनके आपसी व्यवहार को जानने का लाभप्रद परिचय भी मिलेगा। अतः घूमकूड़ी प्रारम्भ कर ही दूँ!”

“.....और स्याद्वाद का अनुभव विहार प्रारम्भ हो गया। जहाँ-जहाँ पर स्याद्वाद गया, उसने आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से देखा—

“पिता से पुत्र उलझ रहा है। भाई से भाई लड़ रहा है। सासू-बहू मार-पीट कर रही हैं। मुकदमे हो रहे हैं। हत्याओं का आतंक फैलाया जा रहा है। दैनंदिन विनाश-षड्यंत्र की योजनाएँ अट्टहास कर रही हैं। एक-दूसरे के अस्तित्व को जड़ से समाप्त करने के लिए निरंतर घातकतम शस्त्रास्त्रों का अंबार लगाया जा रहा है। केवल “मैं” और “मैं” की प्रमाणीकरण एवं साक्ष्य-साधन जुटाने में दिन-रात के श्रम की धोर उपासना चल रही है। काल पुरुष के रूप में भद्रता का मुखौटा लगाये भरमाने के लिए घमाचौकड़ी मची हुई है। एक दूसरे के अधिकार बलात् छीने जा रहे हैं। आकांक्षाओं को रौंदा जा रहा है। मार्ग से बरबस हटाकर फँका जा रहा है, मसला और तड़पाया जा रहा है, भड़काया जा रहा है.....”

घबराये से स्वर में स्याद्वाद के मन की पीड़ा कसमसाने लगी—“पर.....ये—ऐसा क्यों.....किसलिए किया जा रहा है? ये.....ये सर्वत्र यहाँ-वहाँ, इधर-उधर चहुँ ओर अराजकता का तांडव नृत्य क्यों हो रहा है? मेरी तो समझ में यह सब कुछ नहीं आ रहा है? मुझे..... हूँ!.....हूँ! मुझे क्या.....क्या करना चाहिये? मैं क्या कर सकता हूँ?” स्याद्वाद ने समाधान-दिशा के सन्दर्भ में शनैः-शनैः स्वस्थ एवं शांत चित्त लाभ किया। वाणी पुनः दृढ़ता के साथ गूँज उठी—“यह विश्व के मानव समझते क्यों नहीं हैं? ठीक है! अब मुझे ही कुछ करना पड़ेगा। मैं बताऊँगा इन्हें, कि समस्याएँ इस प्रकार निपटाई जाती हैं।”

विश्व की दुर्दशा स्याद्वाद के करुणा पूरित मन से देखी नहीं गयी। उसे संघर्ष कभी रूचता ही नहीं था। मतभेद से भी वह कोसों दूर रहा। विवाद किसे कहते हैं? यह कभी किसी ने उसे सिखाया ही नहीं और न उसने कभी सीखने का प्रयास किया।

संसार को स्वर्ग निर्माण करने की मधुर कल्पना के वशीभूत हो, मानवों की वीमत्स मनोवृत्तियों की श्रृंखला को तोड़ने के लिए समग्र मतभेदों और संघर्षों की जमात को साहस के साथ न्योता अंततः दे ही दिया। स्याद्वाद ने ललकारते हुए गम्भीर घोष किया—

“ओ संसार के तुफैलियो ! आओ ! आओ ! मेरे पास आओ ! मैं तुम सभी की भलाई के लिए फार्मूले बताता हूँ । अरे ! जरा ध्यान से सुनो तो सही । तनिक थमो, यूँ बेतहाशा कहाँ भागे जा रहे हो ? देखो ! मैं परस्पर बौद्धिक उपयोग की कला को आज उजागर करता हूँ । तुम यह तो जानना ही चाहोगे, कि दोनों में से कौन-कितना सच्चा या झूठा है ? क्यों, ठीक बात है न ? इसको तुम स्वयं पा सको । मैं ऐसा विवेक का जादुई पैमाना तुमको दे देता हूँ । अच्छा तो लो !

एक परिवार का एक महत्त्वपूर्ण-वरिष्ठ व्यक्ति अपने घर के आंगन में आकर खड़ा हुआ । उसका परिवार वास्तव में भरा-पूरा था । बहिन-बेटियाँ भी आई हुई थीं ।

एक बच्चा उस व्यक्ति को आया जानकर लिपटने को दौड़ा और बोला—

“ओ-हो-हो ! काका आये ।”

“अरे, चल, परे हट, मेरे मामा आये ।”

“नहीं—नहीं, ये मेरे नाना हैं ।”

“क्या कहा, नाना आये ? नहीं, यह तो मेरे माई हैं ।”

“अच्छा ! बेटा ! तू आ गया ?”

“ऊँहूँ ! अरे भई ! यह तो मेरे पिताजी हैं ।”

“तुम सब पागल हो । यह तो मेरे पतिदेव हैं ।”

“तुम सब झूठे हो । यह तो मेरा भातजा है ।”

सभी ने यह सुना और बस ! एक अच्छा खासा हंगामा भव गया । एक-दूसरे को गाली देने लगे । अपनी-अपनी आवाज में चिल्लाने लगे—

“नहीं-नहीं मामा !……नहीं काका !……हट, काका……बेटा !……नाना !……”

कोई किसी की नहीं सुनता, अपनी ही कहते जा रहे हैं ।

मैं वहाँ पहुँच गया और कड़कती आवाज में बोला—

“ठहरो ! यह क्या शोर मचा रखा है ? सब चुप हो जाओ !”

जान-लेवा तुफान थम गया । आँगन में एकदम निस्तब्धता छा गई । वातावरण सुन्दर-शांत हो गया ।

मैंने कहा—

“तुम सब व्यर्थ ही क्यों झगड़ रहे हो ? जरा अपनी बात के साथ ही दूसरे की बात की गहराई भी समझने का प्रयास करो । तुम्हारे इस अपने भताग्रह या मनाग्रह के स्वार्थ ने आपस में ही बलेडा खड़ा कर दिया । सत्याग्रह में विवेक का संगम है ।

……अच्छा ! अब तुम्हारे झगड़े की पहली सुलझा दें ।

हाँ ! तुमने कहा—मेरे काका हैं । ठीक है ! यह तुम्हारे तो काका 'ही' हैं, पर माई ! जरा सोचो ! इनके यह मामा 'भी' तो हैं । यह तुम्हारे पिता के भाई हैं, तो इनकी माता के भी माई हैं । यह तुम्हारे लिए काका हैं, सभी के लिए तो नहीं न । और हाँ ! यह पिता भी हैं तो इनके पुत्र के लिए, सभी के लिए नहीं । तुम इन्हें पिता नहीं कहोगे, क्योंकि यह तुम्हारे पिता नहीं ।……इन्होंने नाना कहा, तो यह इनकी माता के पिता हुए ।

……देखो ! इन्होंने इनको बेटा कहा । तो यह तुम्हारे काका के पिता हैं, और तुम्हारे नाना के पिता हैं । तुम्हारे तो पिता के पिता हैं और तुम्हारी माता के पिता हैं । बोलो ! तुम्हारे काका के पिता और पिता होने से तुम इन्हें दादा कहोगे न ! यह तुम्हारे काका हैं अर्थात् यह

तुम्हारे पिता के भाई हैं। तुम्हारे पिता ने ठीक ही तो कहा—यह तो मेरे भाई हैं। तुम्हारी काकी ने कहा—यह मेरे पतिदेव हैं। तुम्हारी काकी को तुम्हारे पिता भाभी कहते हैं। तो तुम्हारी काकी के लिए यह पति भी तो हैं। और.....इन्होंने कहा, यह मेरा भानजा है। तो यह तुम्हारी दादी के भाई हैं। अतः इनके मामा हैं, तभी तो इनको भानजा कहा।

—तो कहो ! कौन कहाँ झूठा है या सच्चा है ? तुम अपनी-अपनी दृष्टि से ही सच्चे-झूठे हो। दूसरे की दृष्टि को भी कृपा करके परखो। तुम्हारी 'ही' बात सत्य है तो दूसरे की 'भी' बात किसी अपेक्षा से सत्य है। अपनी बात को ही सत्य प्रमाणित करना और दूसरे को संसार का सबसे बड़ा झूठा कहना, इसमें मानवीय मर्यादा की शोभा नहीं है। तुम यह भी जान लो, कि तत्त्व तो अनन्त घर्म संयुक्त है। इस प्रकार व्यक्ति, घर, समाज, देश एवं अन्तर्राष्ट्रीय जटिल गुणधर्मों को यूँ पलक झपकते सहज ही हल किया जा सकता है।

बस ! मेरी इस 'ही' और 'भी' के मैत्री-सिद्धान्त को अपना लो, तो फिर सारे संघर्ष ही समाप्त हो जायेंगे।”

स्याद्वाद की इतनी गहनीय बात को सरलतम रूप से समझ सारा परिवार ठहाके लगाने लगा। सभी अपनी मनचीती बात के गम्भीर रहस्य को समझ चुके थे। स्याद्वाद अपनी समाधान कला के मुक्त-वितरण पर मन ही मन अतीव प्रसन्न था।

स्याद्वाद की बेलाग स्पष्टोक्ति पर मतभेदों एवं संघर्षों का समुदाय लज्जित साँ दृष्टिगत हुआ।

समग्र विश्व के सम्मुख दिशा-ज्योति की नवचेतना अँगड़ाइयाँ लेने लगी।



अनेकान्त दर्शन

□ प्रा० उ० भा० कोठारी

(प्रमुख, हिन्दी विभाग, प्रताप महाविद्यालय, अमलनेर (महाराष्ट्र))

जेण विणा वि लोगस्स, ववहारो सव्वहा न निव्वउई ।

तरस्स भुवणेक गुरुणो, णमो अणेगंतवायस्स ॥

—आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ।

अनेकान्त संसार का गुरु कहलाने योग्य है। इसके बिना इस दुनिया के व्यवहारों का निपटारा समुचित ढंग से नहीं हो सकता। इसलिए आचार्य सिद्धसेन दिवाकर उसे नमस्कार करते हैं।

अनेकान्त का सिद्धान्त दार्शनिक जगत को जैनदर्शन की मौलिक देन है। यह जैन चिन्तकों की विलक्षण सूझ है। वास्तविकतः यह सिद्धान्त विश्वमंगलकारक है, किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि उसे एक सम्प्रदाय की छाप लगाकर अलग रख दिया जाता है।

जैनागमों में उल्लेख है कि भगवान महावीर के समय ३६३ मत प्रचलित थे। भगवान के समकालीन सात व्यक्ति तो ऐसे थे कि वे स्वयं को तीर्थ का प्रवर्तक बतलाते थे। ऐसे अनेक मतवादों के कोलाहल में लोगों की बुद्धि कुण्ठित थी। वे जानना चाहते थे कि सत्य कहीं और किस रूप में उपस्थित है। प्रत्येक प्रचारक दूसरों के मत के खण्डन में ही अपना बड़प्पन मान रहा था। ऐसे मतवादों के कोलाहल में भगवान महावीर जैनदर्शन का यह मौलिक और समन्वयस्वरूप सिद्धान्त समझाने लगे। यह वही सिद्धान्त है जिसको अनेकान्त या स्याद्वाद के नाम से जाना जाता है।

जैनदर्शन के अनुसार इस विश्व की प्रत्येक वस्तु अनन्त घर्मात्मक है। रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि का विचार करते हुए दस पाँच गुण-धर्मों को तो हम सहज ही देख सकते हैं। इनके अलावा कितने ही ऐसे हैं जो सूक्ष्म रूप में हैं या गहराई में छुपे हैं। इतना ही नहीं एक अपेक्षा से कुछ गुण-धर्मों का आकलन होता है तो इससे भिन्न दूसरी अपेक्षा से भिन्न गुण समूह सामने आता है।

इतना ही नहीं वस्तु में परस्पर विरोधी गुण-धर्म भी हमें दिखलाई देते हैं। जैसे जो आम कच्चा है वह हरा है और खट्टा है, लेकिन चार दिनों बाद वह सुन्दर केसरिया रंग का और स्वाद में मधुर हो जायगा। यह रंग और यह मधुरता ऊपर से किसी ने सींची नहीं है। ये दोनों गुण-धर्म उसी में अंतर्भूत थे। कालान्तर से प्रगट हो गये। हम भी शरीर की अपेक्षा से अनित्य और जीव की दृष्टि से नित्य हैं। या और एक उदाहरण लीजिए—स्वामी दयानन्द सरस्वती से एक बार पूछा गया कि 'आप विद्वान हैं या अविद्वान' तो स्वामीजी ने उत्तर दिया था—'दार्शनिक क्षेत्र में विद्वान तथा व्यापारिक क्षेत्र में अविद्वान।' इससे सिद्ध है कि एक ही वस्तु में परस्पर विरोधी

भिन्न गुण-धर्मों का होना असम्भव बात नहीं है। वस्तु वस्तु में ऐसे परस्पर विरोधी गुण-धर्म भी अनन्त गुण-धर्मों में होते हैं। साथ-साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि एक नये विरोधी धर्म के प्रगट होने से पूर्वोक्त धर्म झूठा सिद्ध नहीं हो जाता। इस प्रकार की अनन्त धर्मात्मकता के कारण ही तो सम्बन्धित सिद्धान्त नामारोपित है अनेकान्त अर्थात् अनेक अन्तवाला।

अनेकान्तवादी दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक वस्तु नित्यानित्य है, क्योंकि वस्तु द्रव्य और पर्याय का सम्मिलित रूप है। पर्यायों के अभाव में द्रव्य का और द्रव्य के अभाव में पर्यायों का कोई अस्तित्व संभव नहीं और ऐसी यह वस्तु द्रव्य की अपेक्षा से नित्य और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है। यह नित्यानित्य वस्तु 'उत्पाद-व्यय-धीव्य' के नियम से बँधी है। क्योंकि यह सारा विश्व शाश्वत है, अनादि है। अनन्त काल से इसका अस्तित्व है। इसका कभी भी कुछ भी पूर्ण नष्ट नहीं होता। हर वस्तु का सत् ध्रुव है। हम देखते हैं कि नयी वस्तु बनी, पुरानी नष्ट हुई। यह परिवर्तन सत् का नहीं पर्याय का है। एक पर्याय का व्यय, दूसरी पर्याय का उत्पाद हुआ। सोने के कंगन गलाये, हार बना लिया, सुवर्णत्व वैसा ही है। पर्याय बदली। कंगन ध्वय हुए, हार का उत्पाद हुआ।

अनन्त धर्मात्मक वस्तु का विचार सापेक्ष दृष्टि से ही करना इष्ट है—आवश्यक है। इस दुनिया में ऐसा कुछ नहीं है जो सापेक्षता से बँधा नहीं है। एक विद्वान किसी एक क्षेत्र में तज्ञ तो किसी दूसरे क्षेत्र में अज्ञ होता है। एक छात्र अपने विद्यालय में पहला, लेकिन उस परीक्षा केन्द्र में पाँचवाँ होगा तो वही जिले में पच्चीसवाँ होगा। एक मनुष्य ने एक घर दिन में देखा। उसकी दीवारें सफेद थीं। दूसरे ने उस घर को रात को देखा। उस घर में हरा बल्ब लगा था। वह दूसरा कहने लगा उस घर की दीवारें हरी हैं। रात और दिन के सापेक्ष काल में दोनों का कथन सही था।

भिन्न अपेक्षा से भिन्न धर्मों को अभिव्यक्त करने वाली अनन्त धर्मात्मक वस्तु के स्वरूप का निर्णय करने के लिए जैन शास्त्रज्ञों ने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ऐसे चार आधार माने हैं। इनको चतुष्टय कहते हैं। वस्तु का निरीक्षण-परीक्षण करते समय इन चतुष्टयों के सन्दर्भ में वस्तु को देखना होता है। प्रत्येक वस्तु स्व-द्रव्य, स्व-क्षेत्र, स्व-काल और स्व-भाव से सत्य है। पर-द्रव्य, पर-क्षेत्र, पर-काल और पर-भाव से असत्य है।

जैसे एक महोदय पेन्सिल से लिख रहे हैं। पेन्सिल का ग्राफाइट द्रव्य, लिखने वाले की उँगलियाँ पेन्सिल का क्षेत्र, दोपहर के तीन बजे का समय पेन्सिल का काल और लिखने के लिए पेन्सिल अच्छी है यह पेन्सिल का भाव है। महोदय ने कहा—'पेन्सिल है।' तो पास में बँठी उनकी लड़की कहती है—'पेन्सिल नहीं है।' महोदय के हाथ में पेन्सिल है, लड़की के हाथ में नहीं है। महोदय कहते हैं—'(लिखने के लिए) पेन्सिल अच्छी है।' लड़की कहती है—'(चित्रकारी के लिए) पेन्सिल अच्छी नहीं है।' सवा तीन बजे गये। महोदय चाय पीने के लिए भीतर चले गये। अब टेबिल पर पेन्सिल है। भीतर पेन्सिल नहीं है। तीन बजे पेन्सिल उनके हाथ में थी, अब सवा तीन बजे पेन्सिल उनके हाथ में नहीं है। इस प्रकार भिन्न अपेक्षाओं से भिन्न गुणधर्म सामने आते हैं। वस्तु के अनन्त धर्मों का विचार सापेक्ष ढंग से करना ही स्याद्वाद है। स्याद्वाद में दो पक्ष हैं—स्यात् और वाद। 'स्यात्' एक अव्यय है जो कथंचित्, किसी अपेक्षा से, अमुक दृष्टि से इस अर्थ का द्योतक है और 'वाद' मतलब सिद्धान्त, मत या प्रतिपादन। इस प्रकार 'स्याद्वाद' पद का अर्थ हुआ सापेक्ष-सिद्धान्त, अपेक्षावाद, कथंचित्वाद या वह सिद्धान्त जो विविध दृष्टि बिन्दुओं से वस्तु-तत्त्व का निरीक्षण-परीक्षण करता है।

साधारणतः स्याद्वाद को अनेकान्त कह दिया जाता है। लेकिन दोनों में प्रतिपाद्य, प्रति-

पादक सम्बन्ध है। अनेकान्तात्मक वस्तु का जाँच-पड़ताल के आधार पर जो स्वरूप सामने आवे उसको भाषा द्वारा प्रतिपादित करने वाला सिद्धान्त स्याद्वाद कहलाता है।

स्याद्वाद पद्धति से संसार की किसी भी वस्तु के स्वरूप कथन में सात प्रकार के वचनों का प्रयोग किया जाता है। यही सप्तभंगी है। ये वचन सात ही प्रकार के हो सकते हैं। (१) अस्तित्व है। (२) अस्तित्व नहीं है। (३) अस्तित्व अवक्तव्यम् है। ऐसे तीन मूल वचन अस्तित्व के सन्दर्भ में होंगे। गणित-शास्त्र के अनुसार भी तीन मूल वचनों के संयोगी असंयोगी और अपुन-रुक्त ये सात ही भंग हो सकते हैं, अधिक हो ही नहीं सकते। माना कि कोई सेठ तीर्थयात्रा करने गये हैं। उन्हें दूर के किसी स्थान पर अपने शहर का आदमी मिला। उसने खबर दी कि आजकल हमारे प्रदेश में चोरियाँ बहुत हो रही हैं। सेठ विचार करने लगेंगे—

१. क्या मेरे मकान में चोरी हुई होगी ?
२. क्या न हुई होगी ?
३. चोरी हुई होगी या न हुई होगी ?
४. निश्चित क्या कह सकते हैं ?
५. हुई होगी। निश्चित क्या कह सकते हैं ?
६. न हुई होगी। निश्चित क्या कह सकते हैं ?
७. हुई होगी या न हुई होगी। निश्चित क्या कह सकते हैं ?

इस प्रकार के सात प्रश्न और उनके सात उत्तर उस सेठ के मन में आयेंगे। किसी वस्तु के सम्बन्ध में उसके अस्तित्व विषयक जाँच-पड़ताल को गृहीत मानकर अपेक्षा-भाव सूचक 'स्यात्' तथा निश्चितता का सूचक 'एव' जोड़कर सप्तभंगी का शास्त्रीय ढंग का ढाँचा इस प्रकार बनेगा—

१. स्यादस्त्येव ।
२. स्यान्नस्त्येव ।
३. स्यादस्तिनास्तिचैव ।
४. स्यादवक्तव्य एव ।
५. स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यश्चैव ।
६. स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यश्चैव ।
७. स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्यश्चैव ।

सप्तभंगी द्वारा जाँच-पड़ताल करने के बाद जो निर्णय आते हैं वे स्पष्ट, निश्चित और स्वतन्त्र होते हैं और वस्तु में प्रत्येक घर्म की संगति एकदम निर्विवाद हो जाती है।

सप्तभंगी के अलावा वस्तु के सात अलग-अलग या भिन्न स्वरूपों को समझने के लिए जैन न्याय में 'नय' की योजना की गयी है। ये नय भी सात हैं। प्रथम तीन द्रव्याधिक नय और शेष चार पर्यायाधिक नय हैं। द्रव्याधिक नय द्रव्य के सामान्य-विशेष, सामान्य तथा विशेष घर्मों का प्रतिपादन करते हैं। पर्यायाधिक नय पर्याय की वर्तमान अवस्था, लिंग, वचन काल आदि व्याकरण भेद के आधार पर शब्दों के ठीक अर्थ का प्रतिपादन करना, शब्द भेदों के आधार पर ठीक अर्थ का प्रतिपादन करना तथा क्रियामेदार्यक प्रतिपादन करना आदि कार्य करते हैं।

स्याद्वाद में निक्षेप का भी एक विशेष कार्य है। निक्षेप चार हैं। निक्षेप का कार्य है स्वरूप कथन में प्रयुक्त शब्दों के अर्थों की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करना। निक्षेप जानकारों देते हैं कि अमुक शब्द अमुक अर्थ से नाम है, अमुक अर्थ से आकृति है, अमुक अर्थ से द्रव्य है एवं अमुक अर्थ से भाव है। निक्षेप से प्रयुक्त शब्दों के अर्थ में स्पष्टता आ जाती है।

किसी द्रव्य या जीव के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल करके निर्णय करने का जब प्रसंग आता है तो ध्यान में रखना चाहिए कि प्रारम्भ में हमें जो जैसा दीखता है, वैसा नहीं होता। हर एक के भिन्न-भिन्न पक्ष ध्यान में लेकर निर्णय करना आवश्यक है। इसलिए नय और निक्षेप अत्यन्त उपयुक्त हैं।

इस प्रकार हमें स्पष्ट होगा कि प्रमाण, चतुष्टय, नय, निक्षेप, सप्तमंगी आदि शास्त्रीय पद्धतियों द्वारा अनन्त धर्मात्मक वस्तु का स्वरूप समझने के लिए स्याद्वाद यह एक उपयोगी वाद है। सर्वोपरि जैन न्याय है। वह संशयवाद नहीं है। वह एक ही समय अस्तित्व नास्तित्व कहता है। लेकिन यह कथन स्व-चतुष्टय और पर-चतुष्टय की सापेक्ष दृष्टि से होता है। संशय को इसमें कतई स्थान नहीं है। वह एक सत्यवाद है। समन्वयवाद है।

स्याद्वाद वस्तु के विविध पक्षों पर ध्यान देता है। सापेक्ष विचार करता है। हमें एकांगी विचार से बचाता है। वह समस्त दार्शनिक समस्याओं, उलझनों और भ्रमणाओं के निवारण का समाधान प्रस्तुत करता है।

स्याद्वाद हठाग्रही नहीं है। पर-मतसहिष्णुता सीखने का वह सर्वश्रेष्ठ मंत्र है। यह मंत्र 'ही' का नहीं 'भी' का प्रयोग करने को कहता है। उसका कहना है कि यह मत कहो कि 'यह ही सत्य है।' कहो कि 'वह सत्य होगा साथ-साथ यह भी सत्य है।' जो अपने मत के प्रति अथवा एकान्त के प्रति आग्रहशील है, दूसरे के सत्यांश को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं वह तत्त्व रूपो नवनीत पा नहीं सकता। भ० महावीर ने सूत्रकृतंग में कहा है—

सयं सयं पसंसता परहंता परं वयं ।

जोउ तत्थ विउस्सन्ति संसारे विउत्तिसया ॥

—जो अपने मन की प्रशंसा और दूसरे के मत की निन्दा करने में ही अपना पांडित्य दिखाते हैं, वे एकान्तवादी संसार चक्र में भटकते ही रहते हैं।

यह उक्ति बिल्कुल सत्य है। क्योंकि आग्रह राग है और जहाँ राग है वहाँ न आत्मशुद्धि सम्भव है न सम्पूर्ण सत्य का दर्शन।

और सत्य कभी मेरा या तेरा नहीं होता। अगर सत्य को पाना है तो आग्रह या मतवादों से ऊपर उठना जरूरी है। यही स्याद्वाद का मुख्य संदेश है।

निश्चित ही स्याद्वाद या अनेकान्त एक नयी विशाल प्रेममयी दृष्टि देने वाला एक सर्वोपरि मंत्र है। किसी ने ठीक ही कहा है—“विश्व शान्ति की स्थापना के लिए जैनों की अहिंसा की अपेक्षा स्याद्वाद सिद्धान्त का अत्यधिक प्रचार करना उचित है।” इस कथन में काफी वजन है। क्योंकि जहाँ सही-सही अनेकान्त दृष्टि आ जाती है, वहाँ अहिंसा अपने आप जीवन में उतर ही आती है। □

प्राकृत भाषा के ध्वनि परिवर्तनों की भाषा वैज्ञानिक व्याख्या

डा० देवेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर

विचार दो : भाषा एक

वैचारिक मतभेद के बावजूद श्रमण-ब्राह्मणों की अभिव्यक्ति की भाषा एक रही है। संस्कृत और प्राकृत एक ही आर्य भाषा रूपी सिक्के के दो पहलू हैं। आर्यों के पहले भारत के मूल निवासी कौन थे, या आर्य ही इस देश के मूल निवासी थे, जहाँ से वे बाहर फँसे या बाहर से आकर यहाँ बसे ? यह लम्बे विवाद का विषय है। लेकिन यह तथ्य है कि—आर्य भाषा का प्राचीनतम साहित्य 'ऋग्वेद' में सुरक्षित है। अतः उसके भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की कहानी 'ऋग्वेद' की भाषा से शुरू होती है। उसके बाद संस्कृत आती है और उसके समान्तर प्राकृत। भाषा सामाजिक वस्तु है, जो व्यक्तिगत उद्देश्य की पूर्ति भी करती है। भाषा सामाजिक आवश्यकता, एकरूपता और स्थिरता की माँग करती है, जब कि—व्यक्तिगत आवश्यकता लचीलेपन की। एक उसे स्थिरता प्रदान करना चाहती है, दूसरी परिवर्तन के लिए मजबूर करती है। एक संस्कार चाहती है, दूसरी सहजता। संस्कृत और प्राकृत आर्य भाषा के इन्हीं दो तत्वों का प्रतिनिधित्व करती है, और उसके विकास की कहानी भी इन्हीं तत्वों की प्रतिद्वन्द्विता की कहानी है।

परिवर्तन प्रक्रिया

प्राकृत (जिसमें शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृत दोनों हैं) का विश्लेषण करते समय प्राकृत वैयाकरण भी पाणिनि द्वारा निर्धारित मानदण्ड का ही प्रयोग करते हैं। अतः वे प्राकृत में होने वाले ध्वनि परिवर्तनों का उल्लेख विभिन्न नियमों के द्वारा करते हैं। यह एक मान्य तथ्य है कि ध्वनि परिवर्तन के बीज उसकी उत्पादन प्रक्रिया में पड़े रहते हैं, इस परिवर्तन के निश्चित कारण और दिशाएँ होती हैं, अतः प्राकृत वैयाकरणों द्वारा निदिष्ट ध्वनि परिवर्तनों की भाषा वैज्ञानिक व्याख्या कर उन्हें निश्चित प्रवृत्तियों में विभाजित किया जा सकता है। चूँकि ध्वनि-भाषा की महत्त्वपूर्ण इकाई है, अतः उसमें होने वाला परिवर्तन भाषा की समूची रचनात्मकता को प्रभावित करता है। ध्वनि से सम्बन्धित ये परिवर्तन कुछ तो सार्वभौम सार्वकालिक होते हैं और कुछ देश-काल द्वारा नियन्त्रित।

परिवर्तन का पहला कारण

परिवर्तन का पहला कारण—संस्कृत की कुछ ध्वनियों का प्राकृत में न होना है, ये हैं—ऋ-ऐ और श, ष आदि। इससे सिद्ध है कि प्राकृत ध्वनि का विचार प्राकृत वैयाकरण संस्कृत ध्वनि के आधार पर करते हैं। प्राकृत वैयाकरण ध्वनि की सिद्धि लोक से मानते हैं। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि लोक किसी ध्वनि का उच्चारण सब समय और सब क्षेत्रों में एक-सा करे। अतः आगे चलकर एकरूपता के लिए उसका भी संस्कार करना पड़ता है। संस्कृत के वृद्धि स्वर

‘ऐ’ और ‘ओ’ के स्थान पर प्राकृत में दो परिवर्तन हुए। ए ओ (गुण स्वर) अथवा ‘अय’ और ‘अव’ जो उन्हीं के दूसरे रूप हैं। ‘ए’ और ‘ओ’ क्रमशः ‘अइ’ और अउ के गुण रूप हैं। ‘इ’ और ‘उ’ का अर्ध स्वर ‘य’ और ‘व’ में विनिमय सम्भव है।

लेकिन एक दो शब्दों में ‘आव’ सुरक्षित है, जैसे—गौरव का गाव और ‘नी’ का ‘नाव’ जो वस्तुतः गौ और नी के ही वृद्धि रूप हैं। अर्थात् संस्कृत के वृद्धि स्वरों के भग्नावशेष कहीं-कहीं प्राकृत में सुरक्षित हैं—‘ऐ’, अइ, । वैर=वइर । कँलाश=कइलास । कँरव=कइरव । दैत्य=दइच्च । यथार्थ में वृद्धि स्वर ‘ऐ’ ‘ओ’ ‘ए’ ‘ओ’ के अ से मिलकर वृद्धि रूप बनते हैं, प्राकृत उन्हें गुण या मूल अइ, अउ के रूप में लिखने के पक्ष में है। क्योंकि उनका उच्चारण इसी रूप में है।

ऋ के विकल्प

ऋ ने अपनी अनुपस्थिति से प्राकृत शब्दों को सबसे अधिक प्रभावित किया। प्राकृत वैयाकरण ऋ की जगह निम्नलिखित ध्वनियों का विधान करते हैं—

- (१) अ और उ—ऋषभ=उसहो-वसहो ।
- (२) इ—मातृका=माइआ ।
- (३) ओ—उ=मृषा=मोसा—मुसा । वृत्त—वोट ।
- (४) रि-री=ऋच्छ—रिच्छ । ऋण—रिण ।

आहत और दृप्त शब्दों के लिए प्राकृत वैयाकरण क्रमशः आदि ‘अ’ और ‘दरि’ शब्द का आदेश करते हैं। जबकि इन्हें साधारण ध्वनि प्रक्रिया में होने वाले परिवर्तनों के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। जैसे—आहत—आदृअ—आदिअ—आदिअ यहाँ ऋ के योग से ‘द’ का महाप्राण मूर्धन्य भाव और ‘ऋ’ ‘इ’ के रूप बन गई। इसी प्रकार दृप्त से दत्त=दरित—दरिअ ‘दृ’ का ढरि और मध्य के ‘त’ का लोप। इनके लिए अलग से नियम निर्देश करने की आवश्यकता नहीं।

स्वर विनिमय

प्राकृतों में परिवर्तन का दूसरा कारण है एक स्वर के स्थान पर दूसरे स्वर का आ जाना। प्रारोह=पारोह—परोह । स्वप्न=सिबिण—सिमिण । व्यलीक=विलिअ । व्यञ्जन=विञ्जन=विअण । इन उदाहरणों में लोप (र) दीर्घ का ह्रस्व स्वरगम और व्यंजनागम से काम चल जाता है। पक्व=पक्क=पिक्क । पुष्कर=पुक्कर । मुद्गर=मुग्गर । नूपुर=णैउर में पूर्ण सावर्ण्य भाव पर सावर्ण्य भाव और मूर्धन्य भाव से उक्त रूपों का विकास हुआ।

स्थूण के स्थान पर थूणा=थोण=थूणा भी। प्राकृत में आदि संयुक्त व्यंजन में एक के लोप की प्रवृत्ति व्यापक है। स्थाणु में प्राकृत वैयाकरणों के अनुसार ‘स्थ’ को ‘ख’ होता है। स्थाणु=खाणु। जिससे वर्ण प्रत्यय के द्वारा खूणा खूँटी बना।

मुकुल=मउल । भुकुटी=भिउडी । आदि असावर्ण्य भाव के उदाहरण हैं। इसका अर्थ है कि जब दो समीपवर्ती समान ध्वनियों में से एक बदल जाती है तो असावर्ण्य भाव कहलाता है। लेकिन जब दो समीपवर्ती असमान ध्वनियों में एक-दूसरी को अपने अनुरूप बना लेती है तो यह सावर्ण्य भाव की प्रवृत्ति कहलाती है। व्यलीक और स्वप्न में जो क्रमशः ‘य’=इ और व=उ होता है। वह संप्रसारण के नियम के द्वारा। क-ख-ग-घ, च-ज-त-द-य और प आदि मध्यम व्यंजनों के लोप के कारण भी काफी ध्वनि परिवर्तन संभव है। जैसे—पवन=पअन—पउन । गमन=गअन=गउन ।

महाप्राण ध्वनि

महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर केवल ‘ह’ महाप्राण ध्वनि के शेष रहने की प्रवृत्ति भी बहुत व्यापक है।

जैसे—श्लाघा=सलाह । स्वभाव=सहाव । नाथ=नाह । साधु=साहु । स्पर्श महाप्राण का नाद महाप्राण रह जाता है । पुच्छ=पिछं । कभी-कभी महाप्राण ही रहता है—पिहं ।

स्पर्श का नाद होता है—

जटिल=झडिल । नट=नड । घट=घड । प्रति=पडि ।

'उ' के स्थान पर 'ल' (उलयोरभेदः) गुल=गुड । वाडिस=वलिस । फाड=फाल ।

'ट' के स्थान पर महाप्राण नाद ढ का होना—कैटभ=केढव । सहा=सडा । पिठर=पिट्टर । सकट=सअड । कुठार=कुठार ।

र और ल में विनिमय की आम प्रवृत्ति थी ।

कातर=काइल । गरुड=गरुल । हरिद्र=हलिद्र । द का मूर्धन्य भाव 'ड' जैसे—

दर=डर । दंश=डंस । दइ=डइह । दम्भ=डम्भ । दर्भ=डम्भ (डाभ) पृथ्वी=पुढवी ।

निशीथ=निसीठ । प्रथम=पडम । डोला=डोला । दंड=डंड । य और व के अतिरिक्त महाप्राण ध्वनि भी है ।

भरत=भरअ=भरहि । वसती=वसई=वसही ।

'ध' और 'ष' का महाप्राण होता है । कभी-कभी महाप्राण 'ह' से भी विनिमय संभव है—
पाषाण=पाहान । प्रत्युष=पच्चूह । पथ=पइ । शब्द के आदि का 'व' के 'छ' बनने के उदाहरण हैं—

षट्पद=छप्पअ । षठी=छट्ठी ।

विशेष ध्वनि परिवर्तन

प्राकृत वैयाकरण, गृह और दुहिता के स्थान पर 'घर' और 'धुअ' आदेश करते हैं । परन्तु इन्हें ध्वनि परिवर्तन की प्रक्रिया से सिद्ध किया जा सकता है । जैसे—गृह=गरह (ऋ=अर=गृ=गह) वर्ण्य प्रत्यय से 'ग' में 'र' मिलकर महाप्राण घर । दुहिता से मध्यम 'त' का लोप और 'द' का महाप्राण और दीर्घ होने से धुआ बनता है । एक ही शब्द के पूर्व सावर्ण्य और पर सावर्ण्य भाव दोनों प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं, जैसे—रक्त=रक्क=रग्ग=रत्त । शक्त=सत्त=सक्क । पर्यस्त=पर्याण और पर्यक से बनने वाले पल्लस्त=पल्लाण और पल्लक में (रलयोरभेदः) का प्रभाव है ।

सूक्ष्म से सुणह बनने में यह ध्यान रखना उचित होगा कि सूक्ष्म के क्ष में क+ष पड़ा हुआ है, उससे—सुमह=सूणह=सुणह बना ।

मध्यस्वरागम के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

हर्ष=हरिस । अमर्ष=अमरिस । श्री=सिरी, ह्री=हिरि । क्रिया=किरिया । महाराष्ट्र से मरहट्ट बनने में वर्ण प्रत्यय की प्रवृत्ति सक्रिय है ।

निष्कर्ष

इस प्रकार प्राकृत वैयाकरणों का सबसे बड़ा प्रदेय यह है कि उन्होंने प्राकृतों के साहित्य को सुरक्षित रखा, जिससे प्राचीन और आधुनिक भाषाओं का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन हो सका । इन उदाहरणों से भारतीय आर्य भाषाओं में होने वाली ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी रिक्तता को भरा जा सकता है और उन प्रवृत्तियों का वर्गीकरण किया जा सकता है कि जो उसके परिवर्तन में हीनाधिक मात्रा में होती रहती हैं ।

आदर्श गृहस्थ बनाम श्रावकधर्म

□ कु० राजल बोथरा, रतलाम

आज चारों ओर अशांति का वातावरण फैला दृष्टिगोचर होता है यद्यपि आज विज्ञान ने हमारे लिए ऐसे विविध साधन उपलब्ध किये हैं जिनके द्वारा मानव अपने सुख-शान्ति-उन्नति आदि विकास का चरमोत्कर्ष प्राप्त कर सकता है फिर भी मानव मन को इतनी अशांति क्यों है ?

अगर इस प्रश्न का गहराई के साथ कारणों सहित अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि मानव दृष्टि “स्व” की ओर न होकर “पर” की ओर आकृष्ट है क्योंकि वह दूसरों की सुख-सुविधाओं की सामग्री को देखकर उन्हें स्वयं के लिए प्राप्त करने हेतु लालायित रहता है। तब वह यह नहीं सोचता है कि मेरी आर्थिक स्थिति उस व्यक्ति के समान है या नहीं जितनी मैं समानता करना चाह रहा हूँ, जिस प्रकार नदी जब अपनी सीमा का परित्याग कर देती है तो उसका विकरालस्वरूप प्रलय रूप धारण कर लेता है। उस समय समस्त प्राणी जगत के लिये एक विषम परिस्थिति निमित्त हो जाती है, ठीक वही दशा आज मानव की है। अगर मानव पराकृष्ट रहेगा तो उसके जीवन में संघर्ष अशांतिमय वातावरण उत्पन्न होता रहेगा। जिसका परिणाम मानव जगत के लिए शोचनीय होगा। जब तक मानव स्व की ओर आकृष्ट न होगा, तब तक वह सुख, प्रगति एवं शांति की प्राप्ति नहीं कर सकता।

आज का मानव स्व की ओर आकृष्ट न होकर पराकृष्ट है और यही कारण है कि आज विश्व में शस्त्रों की होड़, युद्ध, खाद्य समस्या, डकैती आदि कई माँति की समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। आज का मानव भगवान महावीर द्वारा बताये गये श्रावकधर्म का दैनिक जीवन में पालन और आचरण करे तो उसके जीवन यापन में जितनी भी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, उनका निराकरण सम्भव है।

भगवान महावीर ने ५ व्रत—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह अर्थात् झूठ मत बोलो, हिंसा मत करो, चोरी मत करो, असंयम से मत रहो, संग्रह न करो—बतलाये हैं अगर इनका गहराई के साथ अध्ययन करें तो स्पष्ट होता है कि मानव को उन प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करने का प्रयास किया गया है जिनके द्वारा देश या समाज में अराजकता, द्वेष, अशांति निमित्त हो। हिंसा चोरी, अति कुत्सित जीवन, झूठ, संग्रह ये सामाजिक पाप ही हैं। गृहस्थ इनका जितना अधिक परित्याग करेगा उतना अधिक सन्ध व समाज हितैषी माना जायेगा। मानव की आवश्यकता को ध्यान में रखकर इनका अणुव्रत रूप से पालन कर आदर्श गृहस्थ या श्रावक का स्वरूप स्थापित करने का सभी तीर्थंकरों द्वारा उपदेश दिया गया। इन व्रतों द्वारा किस प्रकार अपने जीवन को उत्कृष्ट बनाया जाये जिससे जीवन की वैधानिकता स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो सके।

संक्षेप में आदर्श गृहस्थ की आचरण संहिता इस प्रकार आंकी जा सकती है—

अहिंसा

प्रमाद के वश होकर प्राणघात करना हिंसा है। प्रमाद यानि मन का द्वेष, ईर्ष्यात्मक

प्रवृत्ति एवं प्राणघात से तात्पर्य न केवल किसी प्राणी को मार डालना किन्तु उसे किसी प्रकार का कष्ट देना भी है। हिंसा के दो भेद हैं :—

(१) भाव हिंसा एवं (२) द्रव्य हिंसा।

१. भावहिंसा

अपने मन में किसी प्राणी के प्रति हिंसा का विचार करना।

२. द्रव्यहिंसा

अपनी शारीरिक क्रिया द्वारा किसी प्राणी को प्राणरहित करना, वध-बंधन आदि से पीड़ा पहुँचाना। अधिक पाप भावहिंसा में ही है, क्योंकि उसके द्वारा हिंसा हो या न हो लेकिन विचारक के विषुद्ध अन्तरंग का घात होता है। द्विन्द्रिय आदि त्रस जीवहिंसा के चार भेद बताये हैं— (१) मारम्भी—यह हिंसा गृहस्थी से सम्बन्धित हिंसा कहलाती है यह अनिवार्यतः होने वाली हिंसा है। (२) उद्योगी—यह कृषि-व्यापार, दुकानदारी, वाणिज्य, उद्योग-धन्धों में होने वाली हिंसा है। (३) विरोधी—इस प्रकार की हिंसा के अन्तर्गत स्वजन, परिजन, देश, समाज एवं धर्म के लिए होने वाली हिंसा आती है। (४) संकल्पी हिंसा—इस प्रकार की हिंसा स्वार्थवश की जाने वाली हिंसा है। यद्यपि इनमें से गृहस्थी संकल्पी हिंसा का त्यागी हो सकता है लेकिन बाकी की तीन प्रकार की हिंसाओं में वह व्यापक विवेक के अनुसार संयम रखे।

अतिचार

प्राणी को किसी प्रकार की पीड़ा पहुँचाना आदि अनेक प्रकार की हिंसा से एक आदर्श श्रावक बनने के लिए बचना आवश्यक है। श्रावक के परिजनों व तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के प्रति ५ प्रकार के अतिचार कहकर निषेध किया गया है जैसे—किसी भी प्राणी को बाँधकर रखना, समय पर भोजन पानी न देना, पीटना, अवयवों का छेदन-भेदन करना, उनकी शक्ति से अधिक भार लादना। इनसे बचने के अलावा अहिंसा को दृढ़ रूप देने के लिए भगवान ने ५ प्रकार की भावनाओं की गृहस्थ को मन के विचारों, वचन के प्रयोग, चलने फिरने और वस्तुओं को खुला न रखने, भोजन सम्बन्धी क्रियाओं के प्रति जागरूक रहने को कहा है।

इस प्रकार जैन शास्त्रों में हिंसा के स्वरूप और अहिंसा व्रत के विवेचन को सुरक्षा रूप से प्रस्तुत किया है। इससे स्पष्ट है कि इस व्रत का पालन श्रावक को सुशील, सम्म, समाज, देश एवं धर्म हितैषी बनाने और अनिष्टकारी प्रवृत्ति को रोकने में सहायक है। आज इसकी संसार में अति आवश्यकता है। ये व्यक्ति के आचरण का शौघन करता है। इसी प्रकार देश-समाज की नीति का अंग बनकर देश में सुख शांति-एकता स्थापित करने में सहायक है इन्हीं गुणों के कारण अहिंसा जैनधर्म में ही नहीं अन्य सभी धर्मों में मान्य है। जैसे बाइबिल के पाँचवें अध्याय में लिखा है कि—

Thou shalt not kill any body then who cause you.

इसी प्रकार कुरान के चौथे तुक्के में कहा गया है कि—

“खुद जिओ और दूसरों को भी जीने दो।”

अहिंसा के प्रचार के लिए आवश्यक है कि जाति-पाँति का भेदभाव लुप्त हो, अन्याय व हिंसा न बढ़े एवं बालक को ऐसा संस्कारयुक्त शिक्षण दिया जाए कि जिससे बालक को अन्याय, हिंसा, अत्याचार आदि के प्रति घृणा उत्पन्न हो ताकि वह आगे चलकर आदर्श जीवन बिता सके।

सत्य

असत्य वचन बोलना ही झूठ कहलाता है। असत्य या वह सत्य जो वस्तु स्थिति के अनुकूल और हितकारी नहीं हो, झूठ है। इसलिए शास्त्र में कहा गया है कि "सत्य बोलो, प्रिय बोलो और सत्य का प्रयोग इस तरह न करो जो दूसरों को अप्रिय हो।" इसका मूल भाव गृहस्थ या व्यक्ति के आत्म-परिणामों की शुद्धि, स्व अथवा दूसरों का अहित एवं हिंसा का निवारण है। इसका पालन करने के लिए श्रावक को इस अणुव्रत की सीमा यह है कि स्वयं या दूसरों की रक्षा निमित्त किये गये कार्यों में असत्य के प्रयोग में आंशिक पाप का भागी है। क्योंकि उनकी मूल भावना दूषित नहीं होना यही उसका कारण है। द्रव्यहिंसा से भावहिंसा का महत्त्व पाप-पुण्य के विचार से अधिक है।

अतिचार

द्रव्य व भावहिंसा के अतिरिक्त "झूठा उपदेश देना, किसी का रहस्य प्रगट करना, झूठे लेख तैयार करना, किसी की अमानत को वापस न लौटाना या कम देना या भूल जाना, किसी का मन्त्र भेद खोल देना" ये भी इसके ५ मूल अतिचार हैं जो कि स्पष्ट रूप से सामाजिक जीवन में हानिकारक सिद्ध हुए हैं, जिनके द्वारा मानव जीवन संघर्षमय होता है। इसके परिपालन के लिए क्रोध, लोभ, भ्रष्टता, हँसी-मजाक का परित्याग और भाषण में औचित्य का ध्यान रखने का अभ्यास व आवश्यक रूप से ध्यान रखना अनिवार्य है। जैनधर्म के अलावा वैदिक धर्म में भी "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" को ही अधिक महत्त्व दिया है।

अस्तेय

किसी भी व्यक्ति को बिना आज्ञा के कोई वस्तु लेना भी चोरी है। आदर्श गृहस्थ के लिए उस वस्तु को लेने का अधिकार है जिस पर स्पष्ट रूप से किसी का अधिकार एवं रोक न हो एवं चोरी न करना और दूसरों के द्वारा करवाना चोरी के सामान या धन का उपयोग करना या रखना, स्मगलिंग द्वारा वस्तुओं का आयात-निर्यात करना, निश्चित माप-तोल से कम या अधिक तोलना, असली के बदले नकली देना ये अस्तेय के अतिचार हैं। इनका आदर्श गृहस्थ को परित्याग करना चाहिए। इस व्रत के द्वारा व्यापार में सचाई व ईमानदारी को स्थापित करने का प्रयत्न प्रस्तुत किया है। जिनका पालन इस समय अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि आज चारों ओर भ्रष्टाचार एवं मिलावट, कम देना, असली के बदले नकली देना आदि का प्रचलन उच्च स्तर पर है जो कि भयंकर सिद्ध हो रहा है। मिलावट के कारण अनेकों प्रकार की बीमारियाँ पैदा हो रही हैं। जिसके कारण आज मानव समाज व देश में अशांति फैल रही है। इन सब बातों के निवारण के लिए आज अस्तेय व्रत के पालन की आचार संहिता की परम आवश्यकता है, आदर्श गृहस्थ के लिए अति आवश्यक है।

ब्रह्मचर्य

प्रत्येक इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है किन्तु अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा स्पर्श इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना कठिन है अतः साधारण बोलचाल की भाषा में स्पर्शनेन्द्रिय को वश में करना, वीर्य की रक्षा करना या स्त्री के संसर्ग का त्याग करना ही ब्रह्मचर्य का अर्थ है। किन्तु सूक्ष्मता से अर्थ पर विचार किया जाय तो स्पष्ट है कि प्रत्येक इन्द्रिय को जीतना और आत्मनिष्ठ बन जाना ही ब्रह्मचर्य का अर्थ है। इसके अन्तर्गत चाहे स्त्री हो या पुरुष उसे स्व-स्त्री या स्व-पति के अलावा समस्त पुरुषों को भाई, पिता व पुत्र मानना व सभी स्त्रियों को माता, बहन पुत्री सहस्र विचार एवं व्यवहार रखना श्रावक पूर्ण रूप से अंगीकार करता है तो उसे सर्वथा ही विषय-भोगों का परित्याग नहीं करना पड़ता है।

अतिचार

दूसरों का विवाह कराना, पर-स्त्री या पर-पुरुष-गमन करना, तथा विषय-मोम की तीव्र अभिलाषा करना ये इसके प्रमुख अतिचार हैं। रागात्मक कहानियाँ या अश्लील साहित्य के अध्ययन का परित्याग करना ब्रह्मचर्य को दृढ़ता प्रदान करता है। इसके द्वारा मानव को sex भावना को मर्यादित तथा समाज से तत्सम्बन्धी दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

आज वैज्ञानिक विकास की ओर बढ़ने के साथ-साथ मानव अपना चारित्रिक पतन स्तर तेजी से नीचे गिराता जा रहा है। आज नवयुवकों एवं नवयुवतियों में मादक द्रव्यों का सेवन जैसे—सिगरेट, शराब, अफीम आदि एवं डेटिंग प्रथा अत्यधिक रूप से प्रचलित हो रही है। यद्यपि आज वैज्ञानिकों ने खोज द्वारा स्पष्ट कर दिया कि मादक द्रव्यों के सेवन से कैंसर, क्षय, रक्तचाप, आदि भांति-भांति की बीमारियाँ फैल रही हैं जो कि प्राणघातक सिद्ध हो रही हैं। आज व्यक्ति फीसल में इतना आगे बढ़ चुका है कि उन्हें अपनी संस्कृति एवं सभ्यता का ख्याल नहीं है और पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति को अपनाकर उसे भूलता जा रहा है यद्यपि आज पाश्चात्य लोग भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति अपना रहे हैं और आध्यात्मिक शान्ति की खोज हेतु उनका भारत आगमन जारी है। आज वर्तमान में उत्पन्न इन समस्याओं का समाधान इस व्रत में अन्तर्निहित है। अतः आज इस व्रत का पालन विश्व के सभी मानवों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके पालन से अनेकों समस्याओं का निराकरण सम्भव होने के साथ-साथ मानव को आत्मिक-मानसिक शान्ति अवश्यमेव प्राप्त होगी और नैतिक स्तर उन्नति पर होगा। साथ-साथ शारीरिक आरोग्य और शारीरिक शक्ति प्राप्त कराने में सहायक सिद्ध होगा।

परिग्रह

संग्रह का दूसरा नाम परिग्रह है। ज्ञातपुत्र भगवान महावीर ने मूर्च्छाभाव अर्थात् ममत्व भावना को ही परिग्रह का नाम दिया है। तात्पर्य यह है कि जहाँ राग है, भयता है, लोलुपता है वहाँ बाह्य वस्तु का संसर्ग चाहे न हो पर परिग्रह अवश्य है।

आज मानव में संग्रह वृत्ति व्यापक रूप से फैल गई है और यही कारण है कि आज मानव को अपने जीवन यापन की वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए अनेक कठिनाई उत्पन्न हो रही है। यह समस्या हमारे देश में ही नहीं अपितु विश्व के अनेक देशों में व्यक्त है। वैसे अगर देखा जाय तो हमारे देश में यह समस्या आंशिक रूप से जरूर है लेकिन इसको विरुद्ध रूप देने का श्रेय पूंजीपति, काले धन का व्यापार करने वाले, स्मलिंग का व्यापार करने वालों को है। क्योंकि अनावश्यक रूप से संग्रह, बाहरी देशों को निर्यात कर अधिक धन कमाने के लालच में व्यापार करने वाले लोगों ने संग्रह कर रखा है और दूसरी तरफ गरीब मजदूर जो कि रोज मजदूरी करके रोज अन्न खरीदता है उसे अन्न प्राप्ति के लिए अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

आज देश में अनेकों लोग ऐसे हैं जिन्हें पेट भर भोजन नहीं मिलता है दूसरी ओर संग्रह किया गया अन्न सड़ रहा है, तब क्या यह संग्रह वृत्ति उचित है? परिग्रह रूप लोभ का पारावार नहीं है। इस वृत्ति या लोभ के कारण आज समाज एवं देशों में अनेकों अतिरिक्त विषमताएँ, विरोध, अशांति, आंदोलन, संघर्ष आदि उत्पन्न हो रहे हैं। इसके निवारण एवं नियन्त्रणों पर अधिक जोर दिया जा रहा है। कानूनों के माध्यम से अनेक प्रयत्न किए जा रहे हैं जो असफल होते जा रहे हैं क्योंकि उनसे मानव की मनोवृत्ति शुद्ध नहीं होती और कानूनों से उसकी मानसिक वृत्ति छलकपट और अनाचार की ओर बढ़ने लगती है। जैनधर्म में अदर्शन गृहस्थ के नैतिक विधान के अन्तर्गत संग्रह वृत्ति को अग्रस्तर चेतना द्वारा नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया गया है और अपने कुटुम्ब पालन आदि के विचार को ध्यान रख अपने स्वयं परिग्रह की सीमा निर्धारित करने

को कहा है। नियत सीमा से अधिक धन-धान्य का संचय न करना और अधिक होने पर उसे दवाइयाँ, वस्त्र, अन्न आदि दान करना, विद्यालयों की स्थापना, जीव रक्षा आदि हितकारी कार्य करना चाहिए।

अतिचार

मूमि, सोना, चाँदी, बर्तन, अधिक धनधान्य का संग्रह ये इसके प्रमुख अतिचार हैं। इनको ध्यान में रखते हुए प्रत्येक गृहस्थ पालन करे। विश्व की बड़ी से बड़ी समस्या करोड़ों लोगों के सामने रोटी का सवाल है। दूसरी ओर धन एवं साम्राज्यवाद अमर्यादित इच्छाओं की विषमता के कारण आज सारा विश्व विषम परिस्थितियों से गुजर रहा है। इन उत्पन्न समस्याओं का निराकरण भगवान महावीर के अपरिग्रहवाद के पालन में है। यही उसे सच्ची शाश्वत शांति प्रदान कर सकता है।

इस प्रकार भगवान महावीर द्वारा गृहस्थ धर्म में जिन व्रतों का उल्लेख प्रस्तुत किया है उनको जीवन में अनुसरण योग्य बनाने के लिए उन भावनाओं का विधान बताया है जिनके द्वारा पापों के प्रति अरुचि और सदाचार के प्रति रुचि उत्पन्न हो। जो पाप है उनके द्वारा जीवन में अनेक प्रकार के सुखों के बजाय दुखों का ही निर्माण होता है। प्रत्येक जीवित प्राणी के प्रति मंत्री भाव, गुणी व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा प्रेम, दुखी दान प्राणी के प्रति कारुण्य प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति राग द्वेष व ईर्ष्या भावना रहित माध्यस्थ भाव हो। इन समस्त भावों के प्रति मन को सदैव जागरूक रखना चाहिए जिससे तीव्र अनिष्टकारी भावना जाग्रत न हो। कृत-कारित-अनुमोदित तीनों रूपों से परित्याग करना। इस प्रकार नैतिक सदाचार द्वारा जीवन को शुद्ध और समाज को सुसंस्कृत बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया है।

तीन गुणव्रत

इन ५ मूल व्रतों के अलावा कुछ ऐसे नियम भी गृहस्थ या श्रावक या मानव के बताए हैं जिनके द्वारा मानव की तृष्णा व संग्रह वृत्ति पर नियन्त्रण हो, इन्द्रियलिप्सा का दमन हो और दानशीलता की भावना हो। चारों दिशाओं में गमन मार्ग आयात-निर्यात की सीमा बाँध लेना चाहिए। अतप मर्यादा सहित जल थल में दूरी सीमाओं के अनुसार निर्धारण कर व्यापार आदि करना। हिंसक चिन्तन अस्त्र शस्त्र और अनर्थकारी वस्तुओं का दूसरों को दान न देना जिसका वह स्वयं उपयोग नहीं करना चाहता है। इनका आदर्श गृहस्थ को परित्याग करना आवश्यक है। इनके द्वारा मूल व्रतों के गुणों में वृद्धि होती है अतः इन्हें गुणव्रत कहा गया है।

चार शिक्षा व्रत

(१) सामायिक—

गृहस्थ को इसकी आवश्यकता पर जोर दिया है। सामायिक यानि समता भाव यह मन की साम्य अवस्था है जिसके द्वारा हिंसादि समस्त अनाचारी प्रवृत्तियों का दमन हो। भगवान महावीर ने श्रावक को अधिक समय शांति और शुद्ध वातावरण में मन को सांसारिकता से निवृत्त कर शुद्ध ध्यान धर्म चिन्तन में लगाने को कहा है।

(२) पोषधोपवास

गृहस्थ या श्रावक इसमें अपने गृह, व्यापार, खाना-पीना छोड़कर अपना दिन का पूर्ण समय धार्मिक क्रियाएँ व स्वाध्याय, गुरुदर्शन, वंदन में पूर्ण करे जिससे उसे भूख-ध्यास की वेदना पर विजय प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त हो।

(३) उपभोग-परिभोग परिमाण—

विशेष प्रकार के पेय, द्रव्य, वनस्पति, अन्नादि, वस्त्र, आभूषण, शयनासन, वाहन आदि का त्याग व निश्चित सीमा का निर्धारण करना ।

(४) अतिथि संविभाग—

साधु-साध्वियों को श्रद्धापूर्वक आहार, पानी, वस्त्र औषधि का दान करना, योग्य पात्रों की यथोचित सहायता करना आदि । इसके द्वारा मानव अपने को सुशिक्षित व सभ्य बना सकता है ।

संलेखना

महान् संकट, दुर्मिष, असाध्य रोग, वृद्धावस्था में जब मानव व श्रावक को यह प्रतीत होता है कि अब वह इस विपत्ति से बच नहीं सकता तो कष्टमय व्याकुलतापूर्वक देह त्याग करने की अपेक्षा यही श्रेयष्कर है कि वह अपना आहार-पान घटाता जाये जिससे चित्त में बलेश, व्याकुलता उत्पन्न न हो और शान्त भाव से वह प्राणत्याग करे इसे ही संलेखना कहा गया है ।

आत्मघात की संज्ञा इसे प्रदान नहीं कर सकते । क्योंकि आत्मघात तीव्र राग द्वेष या कलहपूर्ण वृत्ति का परिणाम है । इसमें मानव प्राणघात, शस्त्र, विष के प्रयोग आदि घातक क्रियाओं द्वारा करता है ।

श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ

उपरोक्त समस्त गृहस्थधर्म के व्रतों पर ध्यान देने से स्पष्ट दिखाई देगा कि पूर्णरूपेण श्रावकधर्म ग्रहस्थों या व्यक्तियों द्वारा पालन संभव नहीं है इसलिए गृहस्थ की परिस्थितियों और सुविधाओं एवम् शारीरिक-मानसिक प्रवृत्तियों के आधार पर श्रावकधर्म के साधना के स्वरूप की ११ श्रेणियाँ नियत की गई हैं ।

(१) प्रथम प्रतिमा : सम्यक् दृष्टि—भले ही परिस्थितिवश व्यक्ति अहिंसादिक व्रतों का पालन न कर सके, परन्तु जब उसकी दृष्टि सुधर चुकी होती है तो वह भव्यसिद्ध हो जाता है और कभी न कभी वह चारित्रिक शुद्धि प्राप्त कर मोक्ष का अधिकारी बन सकता है ।

(२) दूसरी प्रतिमा व्रत—पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों का निरतिचार रूप से पालन करने का अभ्यास होना आवश्यक है ।

(३) तीसरी प्रतिमा : सामायिक—इसका स्वरूप शिक्षाव्रतों में विस्तृत रूप से वर्णित है ।

(४) पोषधोषवास प्रतिमा—इसमें गृहस्थ उपवास विधि का पालन करने में समर्थ होता है जिसका स्वरूप ऊपर वर्णित है ।

(५) सचित्त ध्यान—इसमें श्रावक को स्थावर जीवों की हिंसा वृत्ति को विशेष रूप से नियन्त्रित करना व शाक कन्दमूल आदि, वनस्पति और अप्रासुक जल का परित्याग करना आवश्यक होता है ।

(६) रात्रि-भोजन का त्याग—इसमें रात्रि भोजन का त्याग करना; क्योंकि रात्रि भोजन में कीट पतंग आदि अनेक सूक्ष्म जन्तु आहार के साथ खाने या उनके द्वारा आहार अणुद होने का भय बना रहता है । उनसे अनेकों रोग फैलने का भय रहता है ।

(७) ब्रह्मचर्य—इसमें श्रावक को स्व-स्त्री संसर्ग भी त्याग देना व मनोविकार उत्पन्न करने वाले कथा साहित्य पढ़ना-सुनना और तत् सम्बन्धी वार्तालाप का भी परित्याग करना आवश्यक होता है ।

(८) आरम्भ त्याग—श्रावक की सांसारिक आसक्ति घटना आवश्यक है। वह घर-गृहस्थी सम्बन्धी भार भी जैसे काम, धन्धे व व्यापार सम्बन्धी भार भी पुत्र आदि को दे देता है।

(९) परिग्रह त्याग—यहाँ तक आते-आते श्रावक ऐसे उत्कर्ष को पहुँच जाता है कि उसको घन सम्पत्ति आदि से मोह नहीं रहता है और भोजन-वस्त्र का नाम मात्र का परिग्रह रखता है।

(१०) अनुमति प्रदान न करना—इसमें श्रावक अपने पुत्र-पुत्री आदि को काम-धन्धों या अन्य किसी प्रकार की अनुमति प्रदान नहीं करता है।

(११) उद्दिष्ट त्याग—यहाँ पर श्रावकधर्म का पालन करने वाला श्रावक अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। इसमें श्रावक अपने निमित्त बना भोजन ग्रहण नहीं करता और भिक्षा वृत्ति अंगीकार कर लेता है। सांसारिकता में रहकर ही या कभी-कभी सांसारिकता को त्याग कर मुनिधर्म भी अंगीकार कर लेता है।

उपरोक्त आदर्श गृहस्थ वनाम श्रावकधर्म का स्पष्ट एवम् सूक्ष्मतम विवेचन से स्पष्ट होता है कि इन विधान सूत्रों के आधार पर संसार का कोई भी प्राणी अर्थात् मानव अपने जीवन का सुखी पूर्ण तरीके से व्यवस्थित कर सकता है एवम् उसे जीवन का सर्वोच्च वैभव प्राप्त हो सकता है। जैन परिभाषा के अनुसार उसे हम आदर्श श्रावक के रूप में सम्बोधित कर सकते हैं, साथ ही सामान्य भाषा में उसे हम आदर्श गृहस्थ के सर्वोच्च सम्मान शिखर पर विभूषित कर सकते हैं।



भगवान् अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता

□ श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

भगवान् अरिष्टनेमि बाईसवें तीर्थंकर हैं। आधुनिक इतिहासकारों ने जो कि साम्प्रदायिक संकीर्णता से मुक्त एवं शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पन्न हैं, उनको ऐतिहासिक पुरुषों की पंक्ति में स्थान दिया है। किन्तु साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से इतिहास को भी अन्यथा रूप देने वाले लोग इस तथ्य को स्वीकार नहीं करना चाहते। मगर जब वे कर्मयोगी श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं तो अरिष्टनेमि भी उसी युग में हुए हैं और दोनों में अत्यन्त निकट के पारिवारिक सम्बन्ध थे, अर्थात् श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव और अरिष्टनेमि के पिता समुद्रविजय दोनों सहोदर भाई थे, अतः उन्हें ऐतिहासिक पुरुष मानने में संकोच नहीं होना चाहिए।

वैदिक साहित्य के आलोक में :

ऋग्वेद में 'अरिष्टनेमि' शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ है।^१ 'स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः' (ऋग्वेद १।१४।८।६) यहाँ पर अरिष्टनेमि शब्द भगवान् अरिष्टनेमि के लिए आया है। कितने ही विद्वानों की मान्यता है कि छान्दोग्योपनिषद् में भगवान् अरिष्टनेमि का नाम 'घोर आंगिरस ऋषि' आया है। घोर आंगिरस ऋषि ने श्रीकृष्ण को आत्मयज्ञ की शिक्षा प्रदान की थी। उनकी दक्षिणा तपश्चर्या, दान, ऋजुभाव, अहिंसा, सत्यवचन रूप थी।^२ धर्मानन्द कीशाम्बी का मानना है कि आंगिरस भगवान् नेमिनाथ का ही नाम था।^३ घोर शब्द भी जैन श्रमणों के आचार और तपस्या की उग्रता बताने के लिए आगम साहित्य में अनेक स्थलों पर व्यवहृत हुआ है।^४

छान्दोग्योपनिषद् में देवकीपुत्र श्रीकृष्ण को घोर आंगिरस ऋषि उपदेश देते हुए कहते हैं— अरे कृष्ण ! जब मानव का अन्त समय सन्निकट आये तब उसे तीन वाक्यों का स्मरण करना चाहिए—

- (१) त्वं अक्षतमसि—तू अविनश्वर है।
- (२) त्वं अच्युतमसि—तू एक रस में रहने वाला है।
- (३) त्वं प्राणसंशितमसि—तू प्राणियों का जीवनदाता है।^५

१ (क) ऋग्वेद १।१४।८।६

(ख) ऋग्वेद १।२४।१८०।१०

(ग) ऋग्वेद ३।४।५३।१७

(घ) ऋग्वेद १०।१२।१७८।१

२ अतः यत् तपोदानमाजं वमहिंसासत्यवचनमितिता अस्य दक्षिणा।

—छान्दोग्य उपनिषद् ३।१७।४

३ भारतीय संस्कृति और अहिंसा, पृ० ५७

४ घोरतवे, घोरे, घोरगुणे, घोर तवस्ती, घोरबंभचेरवासी।

—भगवती १।१

५ तद्धेतद् घोरं आंगिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचाऽपिपास एव स बभूव, सोऽन्तवेलाया-
मेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षतमस्यच्युतमसि प्राणसंशितमसीति।—छान्दोग्योपनिषद् प्र० ३, खण्ड १८

श्रीकृष्ण इस उपदेश को श्रवण कर अपिपास हो गये, उन्हें अब किसी भी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं रही। वे अपने आपको धन्य अनुभव करने लगे।

प्रस्तुत कथन की तुलना हम जैन आगमों में आये हुए भगवान् अरिष्टनेमि के मविष्य कथन से कर सकते हैं। द्वारिका का विनाश और श्रीकृष्ण की जरत्कुमार के हाथ से मृत्यु होगी, यह सुनकर श्रीकृष्ण चिन्तित होते हैं। तब उन्हें भगवान् उपदेश सुनाते हैं। जिसे सुनकर श्रीकृष्ण सन्तुष्ट एवं खेदरहित होते हैं।^१

ऋग्वेद^२, यजुर्वेद^३ और सामवेद^४ में भगवान् अरिष्टनेमि को ताक्ष्य अरिष्टनेमि भी लिखा है—

स्वस्ति न इन्दो वृद्ध श्रवाः स्वति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्तिनस्ताक्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिदधातु ॥^५

विज्ञों की धारणा है कि अरिष्टनेमि शब्द का प्रयोग जो वेदों में हुआ है वह भगवान् अरिष्टनेमि के लिए है।^६

महामारत में भी 'ताक्ष्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। जो भगवान् अरिष्टनेमि का ही अपर नाम होना चाहिए।^७ उन्होंने राजा सगर को जो मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है वह जैनधर्म के मोक्षमन्तव्यों से अत्यधिक मिलता-जुलता है। उसे पढ़ते समय सहज ही ज्ञात होता है कि हम मोक्ष सम्बन्धी जैनागमिक वर्णन पढ़ रहे हैं। उन्होंने कहा—

सगर ! मोक्ष का सुख ही वस्तुतः समीचीन सुख है। जो अहर्निश घन-धान्य आदि के उपार्जन में व्यस्त है, पुत्र और पशुओं में ही अनुरक्त है वह मूर्ख है, उसे यथार्थ ज्ञान नहीं होता। जिसकी बुद्धि विषयों में आसक्त है, जिसका मन अशान्त है, ऐसे मानव का उपचार कठिन है, क्योंकि जो राग के बंधन में बंधा हुआ है वह मूढ़ है तथा मोक्ष पाने के लिए अयोग्य है।^८

ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्पष्ट है कि सगर के समय में वैदिक लोग मोक्ष में विश्वास नहीं करते थे। अतः यह उपदेश किसी वैदिक ऋषि का नहीं हो सकता। उसका सम्बन्ध श्रमण संस्कृति से है।

यजुर्वेद में अरिष्टनेमि का उल्लेख एक स्थान पर इस प्रकार आया है—अध्यात्मयज्ञ की

१ अन्तकृद्दशा, वर्ग ५, अ० १

२ (क) त्वमू पु वाजिन देवजुतं सहावानं तस्तारं रथानाम् ।

अरिष्टनेमि पृतनाजमाणुं स्वस्तये ताक्ष्यमिहा हुवेम ॥ —ऋग्वेद १०।१२।१७।१

(ख) ऋग्वेद १।१।१६

३ यजुर्वेद २५।१६

४ सामवेद ३।६

५ ऋग्वेद १।१।१६

६ उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० ७

७ एवमुक्तस्तदा ताक्ष्यैः सर्वशास्त्र विदोवरः ।

बिबुध्य संपदं चाग्र्यां सद्वाक्यमिदमब्रवीत् ॥

—महामारत शान्तिपर्व २८।४

८ महामारत, शान्तिपर्व २८।५, ६

प्रगट करने वाले, संसार के भव्य जीवों को सब प्रकार से यथार्थ उपदेश देने वाले और जिनके उपदेश से जीवों की आत्मा बलवान् होती है उन सर्वज्ञ नेमिनाथ के लिए आहुति समर्पित करता हूँ ।^१

डॉक्टर राधाकृष्णन ने लिखा है—यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है ।^२

स्कंदपुराण के प्रभासखण्ड में वर्णन है—अपने जन्म के पिछले भाग में वामन ने तप किया—उस तप के प्रभाव से शिव ने वामन को दर्शन दिये । वे शिव श्यामवर्ण, अचेल तथा पद्मासन से स्थित थे । वामन ने उनका नाम नेमिनाथ रखा । यह नेमिनाथ इस घोर कलिकाल में सब पापों का नाश करने वाले हैं । उनके दर्शन और स्पर्श से करोड़ों यज्ञों का फल प्राप्त होता है ।^३

प्रभासपुराण में भी अरिष्टनेमि की स्तुति की गई है ।^४

महाभारत के अनुशासन पर्व, अध्याय १४६ में विष्णुसहस्रनाम में दो स्थानों पर 'शूरः शोरिर्जनिश्वरः' पद व्यवहृत हुआ है । जैसे—

अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनिश्वरः ।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षण ॥५०॥
कालनेमि महावीरः शौरिः शूरजनेश्वरः ।
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहाहरिः ॥८२॥

१ वाजस्य नु प्रसव आवसूवेमात्र विश्वा भुवनावि सर्वतः ।
स नेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजा पुष्टि वद्धमानोऽस्मै स्वाहा ॥

—वाजसनेयि—माध्यंदिन शुक्लयजुर्वेद, अध्याय ६, मंत्र २५
सातवलेकर संस्करण (विक्रम संवत् १९८४)

२ The Yajurveda mentions the names of three Tirthankaras—Rishabha, Ajitnath, and Arishthanemi.

—Indian Philosophy, Vol. 1, p. 287.

३ भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपः कृतम् ।
तेनैवतपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः ॥
पद्मासनः समासीनः श्याममूर्ति दिगम्बरः ।
नेमिनाथः शिवोऽर्थैवं नाम चक्रेऽस्य वामन ॥
कलिकाले महाघोरे सर्वपापप्रणाशकः ।
दर्शनात् स्पर्शानादेव कोटियज्ञफलप्रद ॥

—स्कंदपुराण, प्रभास खण्ड

४ कैलाशे विमले रस्ये वृषभोऽयं जिनेश्वरः ।
चकार स्वावतारं च सर्वज्ञः सर्वगः शिवः ॥
देवताद्री धिनो नेमिर्युगादिविमलाचले ।
ऋषीणां यश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥

—प्रभासपुराण ४६-५०

इन श्लोकों में 'शूरः शौरिर्जनेश्वरः' शब्दों के स्थान में 'शूरः शौरिर्जनेश्वरः' पाठ मानकर अरिष्टनेमि अर्थ किया गया है ।^१

स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ पर श्रीकृष्ण के लिए 'शौरि' शब्द का प्रयोग हुआ है । वर्तमान में आगरा जिले के बटेश्वर के सन्निकट शौरिपुर नामक स्थान है । वही प्राचीन युग में यादवों की राजधानी थी । जरासंध के भय से यादव वहाँ से भागकर द्वारिका में जा बसे । शौरि-पुर में ही भगवान् अरिष्टनेमि का जन्म हुआ था, एतदर्थ उन्हें 'शौरि' भी कहा गया है । वे जिनेश्वर तो थे ही अतः यहाँ 'शूरः शौरिर्जनेश्वरः' पाठ अधिक तर्कसंगत लगता है । क्योंकि वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में कहीं पर भी शौरिपुर के साथ यादवों का सम्बन्ध नहीं बताया, अतः महाभारत में श्रीकृष्ण को 'शौरि' लिखना विचारणीय अवश्य है ।

भगवान अरिष्टनेमि का नाम अहिंसा की अखण्ड ज्योति जगाने के कारण इतना अत्यधिक लोकप्रिय हुआ कि महात्मा बुद्ध के नामों की सूची में एक नाम अरिष्टनेमि का भी है । लंकावतार के तृतीय परिवर्तन में बुद्ध के अनेक नाम दिये हैं । वहाँ लिखा है—जिस प्रकार एक ही वस्तु के अनेक नाम प्रयुक्त होते हैं उसी प्रकार बुद्ध के असंख्य नाम हैं । कोई उन्हें तथागत कहते हैं तो कोई उन्हें स्वयंभू, नायक, विनायक, परिणायक, बुद्ध, ऋषि, वृषभ, ब्राह्मण, विष्णु, ईश्वर, प्रधान, कपिल, मूतानत, भास्कर, अरिष्टनेमि, राम, व्यास, शुक, इन्द्र, बलि, वरुण आदि नामों से पुकारते हैं ।^२

—इतिहासकारों की दृष्टि में

नन्दीसूत्र में ऋषि-भाषित (इसिभासियं) का उल्लेख है ।^३ उसमें पैंतालीस प्रत्येक बुद्धों के द्वारा निरूपित पैंतालीस अध्ययन हैं । उनमें बीस प्रत्येकबुद्ध भगवान अरिष्टनेमि के समय में हुए ।^४ उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) नारद	(११) मंखलिपुत्र
(२) वज्जियपुत्र	(१२) याज्ञवल्क्य
(३) असित दविक	(१३) मंत्रय भयाली
(४) मारद्वाज अंगिरस	(१४) बाहुक
(५) पुष्पसालपुत्र	(१५) मधुरायण
(६) वत्कलचौरि	(१६) सोरियायण
(७) कुर्मापुत्र	(१७) विद्रु
(८) केवलीपुत्र	(१८) वर्षपकृष्ण
(९) महाकश्यप	(१९) आरियायण
(१०) तैतलिपुत्र	(२०) उत्कलवादी

उनके द्वारा प्ररूपित अध्ययन अरिष्टनेमि के अस्तित्व के स्वयंभूत प्रमाण है ।

प्रसिद्ध इतिहासकार डाक्टर राय चौधरी ने अपने वैष्णवधर्म के प्राचीन इतिहास में भगवान अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) को श्रीकृष्ण का चचेरा भाई लिखा है ।

१ मोक्षमार्ग प्रकाश—पं० टोडरमल

२ बौद्धधर्म दर्शन, पृ० १६२

३ नन्दीसूत्र

४ नारद-वज्जिय-पुत्रे आसिते अंगरिसि-पुष्पसाले य ।

वत्कलकुम्मा केवलि कासब तह तैतलिसुते य ॥

मंखलि जण्ण भयालि बाहुय महु सोरियाणा विद्रु विपू ।

वरिसकण्हे आरिय उत्कल-वादी य तरुणे य ॥ इसिभासियाइं पढम संगहणी, गा० २-३

पी० सी० दीवान ने लिखा है 'जैन ग्रन्थों के अनुसार नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के बीच में ८४००० वर्ष का अन्तर है। हिन्दू पुराणों में इस बात का निर्देश नहीं है कि वसुदेव के समुद्रविजय बड़े भाई थे और उनके अरिष्टनेमि नामक कोई पुत्र था।' प्रथम कारण के सम्बन्ध में दीवान का कहना है कि हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमारे वर्तमान ज्ञान के लिए यह सम्भव नहीं है कि जैन ग्रन्थकारों के द्वारा एक तीर्थंकर से दूसरे तीर्थंकर के बीच में सुदीर्घकाल का अन्तराल कहने में उनका क्या अभिप्राय है, इसका विश्लेषण कर सकें; किन्तु केवल इसी कारण से जैनग्रन्थों में वर्णित अरिष्टनेमि के जीवनवृत्तान्त को, जो अतिप्राचीन प्राकृत ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है, दृष्टि से ओझल कर देना युक्तियुक्त नहीं है।

दूसरे कारण का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि भागवत संप्रदाय के ग्रन्थकारों ने अपने परम्परागत ज्ञान का उतना ही उपयोग किया है जितना श्रीकृष्ण को परमात्मा सिद्ध करने के लिए आवश्यक था। जैनग्रन्थों में ऐसे अनेक ऐतिहासिक तथ्य हैं जो भागवत साहित्य में उपलब्ध नहीं हैं।^१

कनॉल टॉड ने अरिष्टनेमि के सम्बन्ध में लिखा है 'मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में चार बुद्ध या मेघावी महापुरुष हुए हैं। उनमें पहले आदिनाथ और दूसरे नेमिनाथ थे। नेमिनाथ ही स्केन्डीनेविया निवासियों के प्रथम ओडिन तथा चीनियों के प्रथम 'फो' देवता थे।'^२

प्रसिद्ध कोषकार डाक्टर नगेन्द्रनाथ वसु, पुरातत्ववेत्ता डाक्टर फुहरे, प्रोफेसर बारनेट, मिस्टर करवा, डाक्टर हरिदत्त, डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार प्रभृति अन्य अनेक विद्वानों का स्पष्ट मन्तव्य है कि भगवान् अरिष्टनेमि एक प्रभावशाली पुरुष हुए थे, उन्हें ऐतिहासिक पुरुष मानने में कोई बाधा नहीं है।

साम्प्रदायिक अभिनिवेश के कारण वैदिक ग्रन्थों में स्पष्ट नाम का निर्देश होने पर भी टीकाकारों ने अर्थ में परिवर्तन किया है, अतः आज आवश्यकता है तटस्थ दृष्टि से उस पर चिन्तन करने की। जब हम तटस्थ दृष्टि से चिन्तन करेंगे तो सूर्य के उजाले की भाँति स्पष्ट ज्ञात होगा कि भगवान् अरिष्टनेमि एक ऐतिहासिक पुरुष थे। □

१ जैन साहित्य का इतिहास—पूर्व पीठिका—ले० पं० कैलाशचन्द्रजी, पृ० १७०-१७१

२ अग्नल्स आफ दी भग्गारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट-पत्रिका, जिल्द २३, पृ० १२२

हमारे ज्योतिर्धर आचार्य

□ श्री प्रतापमलजी महाराज (मेवाड़भूषण)

वीर निर्वाण के पश्चात् क्रमशः सुधर्मा प्रभृति देवद्विगणी क्षमाश्रमण तक २७ ज्योतिर्वर आचार्य हुए हैं। जिनके द्वारा शासन की अपूर्व प्रभावना हुई। वीर सं० १८० में सर्वप्रथम देवद्विगणी क्षमाश्रमण ने भव्य-हितार्थ वीर-वाणी को लिपिबद्ध करके एक महत्वपूर्ण सेवा कार्य पूरा किया। तत्पश्चात् गच्छ-परम्पराओं का विस्तार होने लगा। विक्रम सं० १५३१ में “लोकामच्छ” की निर्मल कीर्ति देश के कोने-कोने में प्रसारित हुई। तत्सम्बन्धित आठ पाटानुपाठ परम्पराओं का संक्षिप्त नामोल्लेख यहाँ किया गया है।

भाणजी ऋषि

भद्रा ऋषि

लूना ऋषि

भीमा ऋषि

जगमाल ऋषि

सखा ऋषि

रूपजी ऋषि

जीवाजी ऋषि

तत्पश्चात् अनेक साधक बन्द ने क्रियोद्धार किया। जिनमें श्री जीवराजजी म० एवं हरजी मुनि विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके विषय में कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्रसिद्ध हैं, जो नीचे अंकित किये गये हैं।

मह प्रदेश (मारवाड़) के पीपाड़ नगर में वि० सं० १६६६ में यति तेजपालजी एवं कुंवरपालजी के ६ शिष्यों ने क्रियोद्धार किया। जिनके नाम—अमीपालजी, महीपालजी, हीराजा, जीवराजजी, गिरधारीलालजी एवं हरजी हैं। इनमें जीवराजजी, गिरधारीलालजी और हरजी स्वामी की शिष्य परम्परा आगे बढ़ी।

वि० सं० १६६६ में श्री जीवराजजी म० आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। उनके सात शिष्य हुए जो सभी आचार्य पद से अलंकृत थे जिनके नाम इस प्रकार हैं—

पूज्यश्री पूनमचन्दजी म०

पूज्यश्री नानकरामजी म०

पूज्यश्री शीतलदासजी म०

पूज्यश्री स्वामीदासजी म०

पूज्यश्री कुन्दनमलजी म०

पूज्यश्री नाथूरामजी म०

पूज्यश्री दीलतरामजी म०

कोटा सम्प्रदाय आगे चलकर कई शाखाओं में विभक्त हुआ। जिनमें से एक शाखा के अग्र-गण्य मुनि एवं आचार्यों की शुभ नामावली निम्न है—

- श्री हरजी म० एवं जीवराजजी म०
 पूज्यश्री गुलाबचन्दजी म० (गोदाजी म०)
 पूज्यश्री फरसुरामजी म०
 पूज्यश्री लोकपालजी म०
 पूज्यश्री मयारामजी म० (महारामजी म०)
 पूज्यश्री दौलतरामजी म०
 पूज्यश्री लालचन्दजी म०
 पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म०
 पूज्यश्री शिवलालजी म०
 पूज्यश्री उदयसागरजी म०
 पूज्यश्री चौधमलजी म०
 पूज्यश्री लालजी म०
 पूज्यश्री भन्नालालजी म०
 पूज्यश्री खूबचन्दजी म०
 पूज्यश्री सहस्रमलजी म०

पूज्यश्री दौलतरामजी म० से पूर्व के पाँचों आचार्यों के विषय में प्रामाणिक तथ्य प्राप्त नहीं है। परन्तु आचार्य श्री दौलतरामजी म० से लेकर पूज्यश्री सहस्रमलजी म० सा० तक के आचार्यों की जो हमें ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है, वह क्रमशः दी जायगी।

आचार्य श्री दौलतरामजी म० सा०

जन्म—वि० सं० १८०१ कालापीपल गाँव में।

दीक्षा— ,, १८१४ फाल्गुन शुक्ला ५।

दीक्षागुरु—आ० श्री मयारामजी म०।

स्वर्गवास—वि० सं० १८६० पीष शुक्ला ६ रविवार उणियारा ग्राम में।

कोटा राज्य के अन्तर्गत “काला पीपल” गाँव व वगैरवाल जाति में आपका जन्म हुआ था। शैशव काल धार्मिक संस्कारों में बीता। विक्रम सं० १८१४ फाल्गुन शुक्ला ५ की मंगल वेला में क्रियानिष्ठ श्रद्धेय आचार्य श्री मयारामजी म० सा० के सान्निध्य में आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। प्रखर बुद्धि के कारण नव दीक्षित मुनि ने स्वल्प समय में ही रत्नत्रय की आशातीत अभिवृद्धि की। ज्ञान और क्रिया के सुन्दर संगम से जीवन उत्तरोत्तर उन्नतिशील होता रहा। फलस्वरूप संयमी-गुणों से प्रभावित होकर चतुर्विध संघ ने आप को आचार्य पद से शुभालंकृत किया।

मुख्य रूप से कोटा एवं पार्श्ववर्ती क्षेत्र आपकी विहार स्थली रही है। कारण कि—इन क्षेत्रों में धर्म-प्रचार की पूर्णतः कमी थी। भारी कठिनाईयों को सहन करके आपने उस कमी को दूर किया। खास कोटा में श्री अत्यधिक परीषह सहन करने पड़े तथापि आप अपने प्रचार कार्य में संलग्न रहे। उच्चतम आचार-विचार के प्रभाव से काफी सफलता मिली। अतः सरावगी, माहेष्वरी अग्रवाल, पोरवाल, वगैरवाल एवं ओसवाल, इस प्रकार लगभग तीन सौ घरवालों ने आपके मुखारविन्द से गुह्र आम्नाएँ स्वीकार कीं। इसी प्रकार बून्दी, बारा आदि क्षेत्र भी अत्यधिक प्रभावित हुए। फलस्वरूप आचार्यदेव का व्यक्तित्व और चमक उठा। बस मुख्य विहारस्थली होने के कारण कोटा सम्प्रदाय के नाम से प्रख्यात हुए।

एकदा शिष्य मण्डली सहित आचार्य प्रवर का दिल्ली में शुभागमन हुआ। उस वक्त वहाँ आगम मर्मज्ञ सुश्रावक दलपतसिंहजी ने केवल दशवैकालिक सूत्र के माध्यम से पूज्य प्रवर के समक्ष २२ आगमों का निष्कर्ष प्रस्तुत किया। जिस पर पूज्य प्रवर अत्यधिक प्रभावित हुए। लाभ यह हुआ कि पूज्यश्री का आगमिक अनुभव अधिक परिपुष्ट बना।

रत्नत्रय की प्रख्याति से प्रभावित होकर काठियावाड़ प्रान्त में विचरने वाले महा मनस्वी मुनिश्री अजरामलजी म० ने दर्शन एवं अध्ययनार्थ आपको याद किया। तदनुसार मार्गवर्ती क्षेत्रों में शासन की प्रभावना करते हुए आप लीमड़ी (गुजरात) पधारे।

शुभागमन की सूचना पाकर समकितसार के लेखक विद्वद्बर्ष मुनिश्री जेठमलजी म० सा० का भी लीमड़ी पदार्पण हुआ। मुनित्रय की त्रिवेणी के पावन संगम से लीमड़ी तीर्थस्थली बन चुकी थी। जनता में हर्षोल्लास भक्ति की गंगा फूट पड़ी। पारस्परिक अनुभूतियों का मुनि मण्डल में काफी आदान-प्रदान हुआ। इस प्रकार शासन की श्लाघनीय प्रभावना करते हुए आचार्यदेव सात चालुमार्ग उधर बिताकर पुनः राजस्थान में पधार गये।

जयपुर राज्य के अन्तर्गत “रावजी का उणियारा” ग्राम में आप घर्मोपदेश द्वारा जनता को लाभान्वित कर रहे थे।

उन्हीं दिनों दिल्ली निवासी सुश्रावक दलपतसिंहजी की रात्रि में स्वप्न के माध्यम से ऐसी ध्वनि सुनाई दी कि—“अब शीघ्र ही सूर्य ओझल होने जा रहा है।” निद्रा भंग हुई। तत्क्षण उन्होंने ज्योतिष-ज्ञान में देखा तो पता लगा कि—पूज्यप्रवर का आयुष्य केवल सात दिन का शेष है। अस्तु शीघ्र सेवा में पहुँचकर सचेत करना मेरा कर्तव्य है। ऐसा विचार का अविलम्ब उस गाँव पहुँचे, जहाँ आचार्यदेव विराज रहे थे।

शिष्यों ने आचार्यदेव की सेवा में निवेदन किया कि—दिल्ली के श्रावक चले आ रहे हैं।

पूज्यप्रवर ने सोचा—एकाएक श्रावकजी का यहाँ आना, सचमुच ही महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। मनोविज्ञान में पूज्य प्रवर ने देखा तो मालूम हुआ कि—इस पाथिव देह का आयुष्य केवल सात दिन का शेष है। “शुभस्य शीघ्रम्” के अनुसार उस समय आचार्यदेव संथारा स्वीकार कर लेते हैं।

श्रावक दलपतसिंहजी उपस्थित हुए। “मत्थएण वंदामि” के पश्चात् कुछ शब्दोच्चारण करने लगे कि पूज्य प्रवर ने फरमा दिया—पुण्यला ! आप मुझे सावधान करने के लिये यहाँ आये हो। वह कार्य अर्थात् जीवन पर्यन्त के लिये मैंने संथारा कर लिया है।

इस प्रकार काफी वर्षों तक शुद्ध संयमी जीवन के माध्यम से चतुर्विध संघ की खूब अभिवृद्धि करने के पश्चात् समाधिपूर्वक सं० १८६० पौष शुक्ला ६ रविवार के दिन आप स्वर्गस्थ हुए।

आचार्य श्री लालचंदजी महाराज

जन्म गाँव—अंतड़ी (अंतरड़ा) १८वीं सदी में।

दीक्षा गुरु—आ० श्री दौलतरामजी म०।

स्वर्गवास—१८वीं सदी के अन्तिम वर्षों में।

आपकी जन्मस्थली बून्दी राज्य में स्थित “अन्तरड़ी” गाँव एवं जाति के आप सोनी थे। चित्रकला करने में आप निष्णात थे और चित्रकला ही आपके वैराग्य का कारण बनी।

एकदा अन्तरड़ा ग्राम के ठाकुर सा० ने रामायण सम्बन्धित चित्र भित्तियों पर बनाने के लिये आपको बुलाया। तदनुसार रंग-रोगन लगाकर चित्र अधिकाधिक चमकीले बनाये गये। पूरी

तीर से रोगन सूख नहीं पाया था और बिना कपड़ा ढके वे चले गये। वापस आ करके देखा तो बहुत सी मक्खियाँ रोगन के साथ चिपककर प्राणों की आहुतियाँ दे चुकी थीं।

बस मन में ग्लानि उत्पन्न हुई। अन्तर्हृदय में वैराग्य की गंगा फूट पड़ी। विचारों की धारा में डूब गये—हाय ! मेरी थोड़ी असावधानी के कारण भारी अकाज हो गया। अब मुझे दया ही पालना है। खोज करते हुए आचार्य श्री दौलतरामजी म० की सेवा में आये और उत्तमोत्तम भावों से जैन दीक्षा स्वीकार कर ली।

गुरु भगवन्त की पर्युपासना करते हुए आगमिक ठोस ज्ञान का सम्पादन किया। सबल एवं सफल शासक मान करके संघ ने आपको आचार्य पद पर आसीन किया। आपको उपस्थिति में कोटा सम्प्रदाय में सत्तावीस पण्डित एवं कुल साधु-सांख्यियों की संख्या २७५ तक पहुँच चुकी थी। इस प्रकार कोटा सम्प्रदाय के विस्तार में आपका श्लाघनीय योगदान रहा।

युगाचार्य श्री हुकमीचंदजी महाराज

जन्म गाँव—टोडा (जयपुर) १८वीं सदी में।

दीक्षाकाल—वि० १८७६ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की सातम।

दीक्षागुरु—आ० श्री लालचन्दजी म०।

स्वर्गवास—वि० सं० १९१७ वैशाख शुक्ला ५ मंगलवार।

आपका जन्म जयपुर राज्य के अन्तर्गत “टोडा” ग्राम में ओमवाल भोव में हुआ था। पूर्व धार्मिक संस्कारों के प्रभाव से तथा यदा-कदा मुनि, महासती आदि के वैराग्योत्पादक उपदेशों के प्रभाव से आपका जीवन आत्म-चिन्तन में लीन रहा करता था।

एकदा पू० श्री लालचन्दजी म० सा० का बून्दी में शुभागमन हुआ और मुमुक्षु हुकमीचन्द जी का भी उन्हीं दिनों घरेलू कार्य वशात् बून्दी में आना हुआ था। वैराग्य वाहिनी वाणी का पान करके सम्बत् १८७६ मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में विशाल जनसमूह के समक्ष आचार्य श्री लालचन्दजी म० के पवित्र चरणों में दीक्षित हुए और बलिष्ठ थोड़ा की भाँति नव दीक्षित मुनि रत्नत्रय की साधना में जुट गये। वस्तुतः आचार-विचार-व्यवहार के प्रभाव से संयमी जीवन सबल बना। व्याख्यान शैली शब्दाडम्बर से रहित सीधी-सादी सरल एवं वैराग्य से ओत-प्रोत भव्यों के मानस-स्थली को सीधी छूने वाली थी। आपके हस्ताक्षर अति सुन्दर आते थे। आज भी आप द्वारा लिखित शास्त्र निम्बाहेड़ा के पुस्तकालय की शोभा में अभिवृद्धि कर रहे हैं।

“ज्ञानाय, दानाय, रक्षणाय” तदनुसार स्वपर-कल्याण की भावना को लेकर आपने मालव घरती को पावन किया। शासन प्रभावना में आशातीत अभिवृद्धि हुई। सांघिक सुप्त शक्तियों में नई चेतना अंगड़ाई लेने लगी, नये वातावरण का सर्जन हुआ। जहाँ-तहाँ दया धर्म का नारा गूँज उठा और बिखरी हुई संघ शक्ति में पुनः एकता की प्रतिष्ठा हुई।

पूज्य प्रवर के शुभागमन से श्री संघों में काफी घर्षोन्नति हुई। जन-जन का अन्तर्मानस पूज्य प्रवर के प्रति सश्रद्धा नतमस्तक हो उठा चूँकि पूज्यश्री का जीवन तपोमय था। निरन्तर २१ वर्ष तक बेले-बेले की तपाराधना, ओढ़ने के लिये एक ही चट्टर का उपयोग, प्रतिदिन दो सी “नमोत्थुण” का स्मरण करना, जीवन पर्यन्त सर्व प्रकार के मिष्ठानों का परित्याग और स्वयं के अधिकार में शिष्य नहीं बनाना आदि महान् प्रतिज्ञाओं के घनी पूज्यप्रवर का जीवन अन्य नर-नारियों के लिये प्रेरणादायक रहे, उसमें आश्चर्य ही क्या है? उसी उच्चकोटि की साधना के कारण चित्तौड़गढ़ में आपके स्पर्श से एक कुष्ठ रोगी के रोग का अन्त होना, रामपुरा में आपकी मौजूदगी में एक वैरागिन बहिन के हाथों में पड़ी हथकड़ियों का टूटना और नाथद्वारा के व्याख्यान समवशरण

में नभमाणं से विचित्र ढंग के रूपों की बरसात आदि-आदि चमत्कार पूज्यप्रवर के उच्चातिउच्च-कोटि के संयम का संस्मरण करवा रहे हैं।

अपनी प्रखर प्रतिभा, उत्कृष्ट चारित्र्य और असरकारक वाणी के कारण जनता के इतने प्रिय हो गये कि—भविष्य में आपके आज्ञानुगामी सन्त-सती समूह को जनता “पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म० सा० के सम्प्रदाय के” नाम से पुकारने लगी। इस प्रकार लगभग अड़तीस वर्ष पाँच मास तक शुद्ध संयम का परिपालन कर चारित्र्य चूडामणि श्रमण श्रेष्ठ पूज्य श्री हुकमीचन्दजी म० सा० का वैशाख शुक्ला ५ संवत् १९१७ मंगलवार को जावद शहर में समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ।

तत्पश्चात् सांघिक सर्वे उत्तरदायित्व आपके गुरु भ्राता पूज्य श्री शिवलालजी म० को संभालना जरूरी हुआ, जिनका परिचय इस प्रकार है।

आचार्य श्री शिवलालजी महाराज साहब

जन्म गाँव—धामनिया (नीमच) १८वीं सदी में।

दीक्षा संवत्—१८९१।

दीक्षागुरु—आचार्य श्री लालचन्दजी म०।

स्वर्गवास—सं० १९३३ पौष शुक्ला ६ रविवार।

आपकी पावन जन्मस्थली मालवा प्रान्त में धामनिया (नीमच) ग्राम था। संवत् १८९१ में आपने दीक्षा अंगीकार की थी। स्व० पूज्य श्री हुकमीचन्दजी म० की तरह ही आप भी शास्त्रमर्मज्ञ, स्वाध्यायी व आचार-विचार में महान् निष्ठावान्-श्रद्धावान् थे। न्याय एवं व्याकरण विषय के अच्छे ज्ञाता के साथ-साथ स्व-मत पर-मत मीमांसा में भी आप कुशल कोविद माने जाते थे। आप यदा-कदा भक्ति भरे व जीवन स्पर्शी, उपदेशी कवित्त भजन लावणिया भी रचवा करते थे। जो सम्प्रति पूर्ण साधनाभाव के कारण अप्रकाशित अवस्था में ही रह गये हैं।

आपके प्रवचन तात्त्विक विचारों से ओल-प्रोल जनसाधारण की भाव भाषा में ही हुआ करते थे। और सरल भाषा के माध्यम से ही आप अपने विचारों को जन-मन तक पहुँचाने में सफल भी हुए हैं। जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान भी आप शास्त्रीय मान्यतानुसार अनीखे ढंग से किया करते थे। निरन्तर छत्तीस वर्ष तक एकान्तर तपाराधना कर कर्म कीट को घोलने में प्रयत्नशील रहे थे। वे पारणे में कभी-कभी दूध, घी आदि विगयों का परित्याग भी किया करते थे। इस प्रकार काफी वर्षों तक शुद्ध संयम का परिपालन कर व चतुर्विध संघ की खूब अभिवृद्धि कर सं० १९३३ पौष शुक्ला ६ रविवार के दिन आप दिवंगत हुए। कुलाचार्य के रूप में भी आप विख्यात थे।

पूज्यप्रवर श्री उदयसागरजी महाराज

जन्म गाँव—जोधपुर सं० १८७६ पौष मास।

दीक्षा संवत्—१८९८ वैश्र शुक्ला ११।

दीक्षागुरु—मुनि श्री हर्षचन्दजी म०।

स्वर्गवास—सं० १९५४ माघ शुक्ला १३ रतलाम।

पूज्यश्री शिवलालजी म० सा० के दिवंगत होने के पश्चात् सम्प्रदाय की बागडोर आपके कर-कमलों में शोभित हुई।

आपका जन्म स्थान जोधपुर है। खिवेंसरा गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठी श्री नथमलजी की धर्म-पत्नी श्रीमती जीवाबाई की कुक्षि से सं० १८७६ के पौष मास में आपका जन्म हुआ। समयानुसार जानाम्यास, कुच्छ अंशों में घन्धा, रोजगार भी सिखाया गया और साथ ही साथ लघु वय में ही आपका सगपण भी कर दिया गया था। वस्तुतः कुछ नैमित्तिक कारणों से और विकासोन्मुखी

जीवन हो जाने के विवाह योजना को वहीं ठण्डी करके संयम ग्रहण करने का निश्चय कर लिया । दिनों-दिन वैराग्य भाव-सरिता में तल्लीन रहने लगे । येन-केन-प्रकारेण दीक्षा भावों की मन्द-मन्द महक उनके माता-पिता तक पहुँची । काफी विघ्न भी आये लेकिन आप अपने निश्चय पर सुदृढ़ रहे । काफी दिनों तक घर पर ही साध्वोचित आचार-विचार पालते रहे । अन्ततः खूब परीक्षा जच पड़ताल कर लेने के पश्चात् माता-पिता व न्याती-मोती सभी वर्ग ने दीक्षा की अनुमति प्रदान की ।

महा मनोरथ-सिद्धि की उपलब्धि के पश्चात् पू० प्रवर श्री शिवलालजी म० के आज्ञानु-गामी मुनि श्री हर्षचन्द्रजी म० के सान्निध्य में सं० १८६८ चैत्र शुक्ला ११ गुरुवार की शुभ बेला में दीक्षित हुए ।

दीक्षा व्रत स्वीकार करने के पश्चात् पूज्य श्री शिवलालजी म० की सेवा में रहकर जैन सिद्धान्त का गहन अभ्यास किया । बुद्धि की तीक्ष्णता के कारण स्वल्प समय में व्याख्यान-वाणी व पठन-पाठन में श्लाघनीय योग्यता प्राप्त कर ली । सदैव आप आत्म-भाव में रमण किया करते थे । प्रमाद-आलस्य में समय को खोना; आपको अप्रिय था । सरल एवं स्पष्टवादिता के आप घनी थे । अतएव सदैव आचार-विचार में सावधान रहा करते थे व अन्य सन्त महन्तों को भी उसी प्रकार प्रेरित किया करते थे ।

आपकी विहार स्थली मुख्यरूपेण मालवा और राजस्थान ही थी । किन्तु भारत में सुदूर तक आपके संयमी जीवन की महक व्याप्त थी । आपके ओजस्वी भाषणों से व ज्योतिर्मय जीवन के प्रभाव से अनेक इतर जनों ने मद्य, मांस व पशुबलि का जीवन पर्यन्त के लिये त्याग किया था और कई बड़े-बड़े राजा-महाराजा जागीरदार आपकी विद्वत्ता से व चमकते-दमकते चेहरे से आकृष्ट होकर यदा-कदा दर्शनों के लिये व व्याख्यानामृत-पात हेतु आया ही करते थे ।

अन्य अनेक ग्राम नगरों को प्रतिलाभ देते हुए आप शिष्य समुदाय सहित रतलाम पधारे । पार्थिव देह की स्थिति दिनों-दिन दबती जा रही थी । बस द्रुतगत्या मुख्य-मुख्य सन्त व श्रावकों की सलाह लेकर पूज्यप्रवर ने अपनी पैनी सूझ-बूझ से भावी आचार्य श्री चौथमलजी म० सा० का नाम घोषित कर दिया । चतुर्विध संघ ने इस महान् योजना का मुक्त कंठ से स्वागत किया । आपके शासनकाल में चतुर्विध संघ में आशातीत जागृति आई । इस प्रकार सम्बत् १६५४ माघ शुक्ला १३ के दिन रतलाम में पूज्य श्री उदयसागरजी म० सा० का स्वर्गवास हो गया ।

पूज्यप्रवर श्री चौथमलजी महाराज

जन्म गाँव—पाली (मारवाड़, राजस्थान) ।

दीक्षा संघत्—१६०६ चैत्र शुक्ला १२ ।

दीक्षागुरु—आ० श्री शिवलालजी म० ।

स्वर्गवास—१६५७ कार्तिक मास, रतलाम ।

पूज्यप्रवर श्री उदयसागर जी म० के पश्चात् सम्प्रदाय की सर्व व्यवस्था आपके बलिष्ठ कंधों पर आ खड़ी हुई । आप पाली मारवाड़ के रहने वाले एक सुसम्पन्न ओसवाल परिवार के रत्न थे । आपकी दीक्षा तिथि १६०६ चैत्र शुक्ला १२ रविवार और आचार्य पदवी सम्बत् १६५४ मानी जाती है । पू० श्री उदयसागर जी म० को तरह आप भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र के महान् घनी और उग्र विहारी तपस्वी सन्त थे । यद्यपि शरीर में यदा-कदा असाता का उदय हुआ ही करता था तथापि तप-जप स्वाध्याय व्याख्यान में रत रहा करते थे । अनेकानेक गुण-रत्नों से अलंकृत आपका जीवन अन्य भव्यों के लिए मार्गदर्शक था । आपकी मौजूदगी में भी शासन की समुचित सुव्यवस्था थी और पारस्परिक संगठन स्नेहभाव पूर्ववत् ही था ।

इस प्रकार केवल तीन वर्ष और कुछ महीनों तक ही आप समाज को मार्ग-दर्शन देते रहे और संवत् १९५७ कातिक शुक्ला ६वीं के दिन आपश्री का रतलाम में देहावसान हुआ ।

आगमोदधि आचार्य श्री मन्नालालजी म० सा०

जन्म मीढ—रतलाम वि० सं० १९२६ ।

दीक्षा संवत्—१९३८ आषाढ़ शुक्ला ६ मंगलवार रतलाम में ।

दीक्षा गुरु—श्री रतनचन्दजी म० (लोद वाले) ।

स्वर्गवास—१९६० आषाढ़ कृष्णा १२ सोमवार व्यावर में ।

संवत् १९२६ में पूज्यप्रवर का जन्म रतलाम में हुआ था । आपके पिताश्री का नाम अमरचन्दजी, मातेश्वरी का नाम नानीबाई था । आप बोहरा गोत्रीय ओसवाल थे । शैशव काल अति सुख भ्रान्तिमय बीता ।

पूज्यप्रवर श्री उदयसागरजी म० का पीयूषवर्षी उपदेश सुनकर श्रेष्ठी अमरचन्दजी और सुपुत्र श्री मन्नालालजी दोनों ही वैराग्य में प्लावित हो उठे । संवत् १९३८ आषाढ़ शुक्ला ६वीं मंगलवार को पूज्यप्रवर के कमनीय कर-कमलों द्वारा दीक्षित हुए और लोद वाले श्री रतनचन्दजी म० के नेत्राय में आप दोनों घोषित किये गये । दीक्षा के पश्चात् सुष्ठुरीत्या अभ्यास करने में लग गये । पूज्यश्री मन्नालालजी म० की बुद्धि अति शुद्ध-विशुद्ध-निर्मल थी । कहते हैं कि एक दिन मैं लगभग पचास गाथा अथवा श्लोक कंठस्थ करके सुना दिया करते थे । विनय, अनुभव, नम्रता और अनुशासन का परिपालन आदि-आदि गुणों से आपका जीवन आबालवृद्ध सन्तों के लिये प्रिय था । एतदर्थ पूज्य श्री उदयसागरजी म० ने दिल खोलकर पात्र को शास्त्रों का अध्ययन करवाया, गूढ़ातिगूढ़ शास्त्र कुंजियों से अवगत कराया और अपना अनुभव भी सिखाया । इस प्रकार शनैः शनैः गांभीर्यता, समता, सहिष्णुता, क्षमता आदि अनेकानेक गुणों के कारण आपका जीवन चमकता, दमकता, दीपता हुआ समाज के सम्मुख आया । आचार्य पद योग्य गुणों से सम्पन्न समझकर चतुर्विध संघ ने संवत् १९७५ वैशाख शुक्ला १० के दिन जम्मू (काश्मीर) नगर में चारित्र्य चूडामणि पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० के 'सम्प्रदाय' के 'आचार्य' पद से आप (५० श्री मन्नालालजी म०) श्री को विभूषित किया गया ।

तत्पश्चात् व्याख्यान वाचस्पति पं० रत्न श्री देवीलालजी म०, प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म०, भावी आचार्य श्री खूबचन्दजी म० आदि अनेक सन्त शिरोमणि आपके स्वागत सेवा में पहुँचे और पुनः सर्व मुनि मण्डल का मालवा में शुभाश्रमण हुआ । अनेक स्थानों पर आपके यशस्वी चातुर्मास हुए और जहाँ-जहाँ आचार्य प्रवर पधारे, वहाँ-वहाँ आशातीत घर्मोन्नति व दान, शील, तप, भावाराधना हुआ ही करती थी । अनेक मुमुक्षु आपके वैराग्योत्पादक उपदेशों को श्रवणगत कर आपके चारु-चरण सरोज में दीक्षित भी हुए हैं ।

मालवा-राजस्थान व पंजाब प्रान्त के कई भागों में आपका परिभ्रमण हुआ । आपके तल-स्पर्शीज्ञान गरिमा की महक सुदूर तक फैली हुई थी । कई भावुक जन यदा-कदा सेवा में आ-आकर शंका समाधान पाया ही करते थे । श्रमण संघीय उपाध्याय श्री हस्तीमल जी म० सा० भी आपकी सेवा में रहकर शास्त्रीय अध्ययन कर चुके हैं ।

इस प्रकार आप जहाँ तक आचार्य पद को सुशोभित करते रहे; वहाँ तक चतुर्विध संघ की चौमुखी उन्नति होती रही । संघ में नई जागृति और नई चेतना ने अंगड़ाई ली । सं० १९६० अजमेर का बृहद् साधु-सम्मेलन सम्पन्न कर आचार्य प्रवर वर्षावास व्यतीत करने हेतु व्यावर नगर को घन्य बनाया । सहसा शरीर में रोग ने आतंक खड़ा कर दिया । तत्काल आसपास के अनेक

वरिष्ठ सन्त सेवा में पधार गये । अन्ततोगत्वा सं० १९९० आषाढ़ वदी १२ सोमवार के दिन आप स्वर्गवासी हुए ।

आपके रिक्त पाठ पर चारित्र-जूड़ाभणि-त्यागी-तपोधनी पूज्य प्रवर श्री खूबचन्दजी म० सा० आसीन किये गये ।

आदर्श त्यागी आचार्य प्रवर श्री खूबचन्दजी म० सा०

जन्म गांव—निम्बाहेड़ा (राजस्थान) १९३० कार्तिक शुक्ला ८ गुरुवार ।

दीक्षा संवत्—१९५२ आषाढ़ शुक्ला ३ ।

दीक्षा गुरु—वादीमान मर्दक श्री नन्दलालजी म० ।

स्वर्गवास—सं० २००२ चैत्र शुक्ला ३ ब्यावर नगर में ।

वि० सं० १९३० कार्तिक शुक्ला अष्टमी गुरुवार के दिन निम्बाहेड़ा (चित्तौड़गढ़) के निवासी श्रीमान टेकचन्दजी की धर्मपत्नी गेन्दीवाई की कुमि से आपका जन्म हुआ था । शैशवकाल सुखमय बीता, विद्याध्ययन हुआ और हो ही रहा था कि पारिवारिक सदस्यों ने अति शीघ्रता कर सं० १९४६ मार्गशीर्ष शुक्ला १५ के दिन विवाह भी कर दिया । बालक खूबचन्द शर्म के वजह से न नहीं कर सके । समयानुसार वास्तविक बातों का ज्यों-ज्यों ज्ञान हुआ, त्यों-त्यों खूबचन्द अपने जीवन को धार्मिक क्रियाकाण्ड अनुष्ठानों से पूरित करने लगे और उसी प्रकार सांसारिक क्रियाकलापों से भी दूर रहने लगे—जैसा कि—

वर्षों तक कनक रहे जल में, पर कायी कभी नहीं आती है ।

यों शुद्धात्म जीव रहे विश्व में, नहीं मञ्जिनता छाती है ॥

वस विवाह के छह वर्ष पश्चात् अर्थात् १९५२ आषाढ़ शुक्ला ३ की शुभ बेला में वादीमान मर्दक गुरु प्रवर श्री नन्दलालजी म० सा० के नेत्राय में उदयपुर की रंगस्थली ने आप दीक्षित हुए ।

दीक्षा के पश्चात्, गुरु भगवंत श्री नन्दलाल जी म० सा० ने स्वयं आपको शास्त्रीय तल-स्पर्शी अध्ययन करवाया, अपना निजी अनुभव और भी अनेकानेक उपयोगी सिखावनों से आपको हीनहार बनाया । फलस्वरूप आपका जीवन दिनोंदिन सहानता व विनय गुण से सहक उठा । कई बार गुरु प्रवर श्री नन्दलालजी म० सा० अन्य मुमुक्षुओं के समक्ष फरमाया भी करते थे कि— श्री उत्तराध्ययनसूत्र के प्रथमाध्याय के अनुरूप खूबचन्द जी मुनि का जीवन विनय गुण गौरव से ओत-प्रोत है । यह कोई दर्पोक्ति नहीं है । क्योंकि—आप द्वारा रचित मजन, लावणियों में आपने अपना नाम सर्वथा गोपनीय रखा है । और गुरु भगवंत के नाम की ही मुद्रा लगाई है, जैसाकि— “महा मुनि नन्दलाल तणांशिष्य” यह विशेषता आपके नम्रीमूत जीवन की ओर संकेत कर रही है ।

आपका जीवन त्याग-वैराग्य से लवालब परिपूर्ण-सम्पूर्ण था । व्याख्यान वाणी में वैराग्य रस प्रधान था । स्वर-अति मधुर व गायन कला सांगोपांग और आकर्षक थी । अतएव उपदेशामृत पान हेतु इतर जन भी उमड़-धुमड़ के आया करते थे । असरकारक वाणी प्रभावेण कई मुमुक्षु आपके नेत्राय में दीक्षित हुए थे । वर्तमान काल में स्वविर पद विभूषित ज्योतिर्वर पं० रत्न श्री कस्तूरचन्द जी म० सा० आपके ही शिष्यरत्न हैं । और हमारे चरित्रनायक आपके गुरु भ्राता व प्रवर्तक श्री हीरालाल जी म० सा० व तपस्वी श्री लामचन्द जी म० सा० आपके प्रशिष्य हैं ।

आपके अक्षर अति सुन्दर आते थे । इस कारण आपकी लेखन कला भी स्तुत्य थी । आप अपने अमूल्य समय में कुछ न कुछ लिखा ही करते थे । चित्रकला में भी आप निपुण थे । आज भी आपके हस्तलिखित अनेकों पन्ने सन्त मण्डली के पास मौजूद हैं । जो समय-समय पर काम में लिया करते हैं । आप कवि के रूप में भी समाज के सम्मुख आये थे । आप द्वारा रचित अनेक

भजन, दोहे व लावणियाँ आज भी साधक जिह्वा पर ताजे हैं। आपकी रचना सरल-सुबोध व भाव प्रधान मानी जाती है। शब्दों की दुरुहता से परे है। कहीं-कहीं आपकी कविताओं में अपने आप ही अनुप्रास अलंकार इतना रोचक बन पड़ा है कि गायकों को अति आनन्द की अनुभूति होती है और पुनः पुनः गाने पर भी मन अघाता नहीं है। जैसा कि—

यह प्रजम कुंवर जी प्रगट सुनो पुण्याई,
महाराज, मात रुक्मीणि का जाया जी।
जान भोग छोड़ लिया योग, रोग कर्मों का मिटाया जी ॥”

सर्वगुणसम्पन्न प्रवर प्रतिभा के धनी समक्षकर चतुर्विध संघ ने सं० १९९० माघ शुक्ला १३ शनिवार की शुभ घड़ी मन्दसौर की पावन स्थली में पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म० के सम्प्रदाय के आप आचार्य बनाये गये। आचार्य पद पर आसीन होने पर “यथानाम तथागुण” के अनुसार चतुर्विध संघ समाज में श्रीमुखी तरक्की प्रगति होती रही और आपके अनुशासन की परिपालना बिना दबाव के सर्वत्र-सश्रद्धा-भक्ति प्रेमपूर्वक हुआ करती थी। अतएव आचार्य पद पर आपके विराजने से सकल संघ को स्वाभिमान का भारी गर्व था।

आपके सर्व कार्य सन्तुलित हुआ करते थे। शास्त्रीय मर्यादा को आत्मसात करने में सदैव आप कटिबद्ध रहते थे। महिमा सम्पन्न विमल व्यक्तित्व समाज के लिए ही नहीं, अपितु जन-जन के लिए मार्ग दर्शक व प्रेरणादायी था। समतारस में रमण करना ही आपको अभीष्ट था। यही कारण था कि विरोधी तत्त्व भी आपके प्रति पूर्ण पूज्य भाव रखते थे।

मालवा, मेवाड़, मारवाड़, पंजाब व खानदेश आदि अनेक प्रान्तों में आपने पर्यटन किया था। जहाँ भी आप चरण-सरोज घरते थे, वहाँ काफी धर्माद्योत हुआ ही करता था। चाँदनी चौक दिल्ली के भक्तमण आपके प्रति अट्ट-श्रद्धा-भक्ति रखते थे।

इस प्रकार सं० २००२ चंद्र शुक्ला ३ के दिन व्यावर नगर में आपका देहावसान हुआ और आपके पश्चात् सम्प्रदाय के कर्णधार के रूप में पूज्य प्रवर श्री सहस्रमल जी म० सा० चुने गये।

आचार्य प्रवर श्री सहस्रमलजी महाराज साहब

जन्म गाँव—टाटगढ़ (मेवाड़) १९५२।

बीक्षा संवत्—१९७४ भादवा सुदी ५।

दीक्षा गुरु—श्री देवीलाल जी म०।

स्वर्गवास—२०१५ माघ सुदी १५।

आपका जन्म संवत् १९५२ टाटगढ़ (मेवाड़) में हुआ था। पीतलिया गोत्रीय ओसवाल परिवार के रत्न थे। अति लघुवय में वैराग्य हुआ और तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य कालुराम जी के पास दीक्षित भी हो गये। साधु बनने के पश्चात् सिद्धान्तों की तह तक पहुँचे, जिज्ञासु बुद्धि के आप धनी थे ही और तेरापंथ की मूल मान्यताएँ भी सामने आई—“मरते हुए को बचाने में पाप, मूखे को रोटी कपड़े देने में पाप, अन्य की सेवा-सुश्रवा करना पाप” अर्थात्—दयादान के विपरीत मान्यताओं को सुनकर-समक्षकर आप ताजुब में पड़ गये। अरे ! यह क्या ? सारी दुनिया के धर्म मत पंथों की मान्यता दयादान के मण्डन में है और हमारे तेरापंथ सम्प्रदाय की मनगढ़न्त उपरोक्त मान्यता अजब-गजब की ? कई वार आचार्य कालुजी आदि साधकों से सम्यक् समाधान भी माँगा लेकिन सांघोपांग शास्त्रीय समाधान करने में कोई सफल नहीं हुए। अतएव विचार किया कि इस सम्प्रदाय का परित्याग करना ही अपने लिए अच्छा रहेगा। चूँकि जिसकी मान्यता रूपी जड़ें दूषित होती हैं उसकी शाखा, प्रशाखा आदि सर्व दूषित ही मानी जाती हैं। बस सात वर्ष

तक आप इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत रहे; फिर सदैव के लिए इस सम्प्रदाय को बिसरा कर आप सीधे दिल्ली पहुँचे ।

उस समय स्थानकवासी सम्प्रदाय के महान् क्रियापात्र विद्वद्वर्य मुनि श्री देवीलालजी म०, पं० रत्न श्री केशरीमलजी म० आदि सन्त मण्डली चाँदनी चौक दिल्ली में विराज रहे थे । श्री सहस्रमलजी मुमुक्षु ने दर्शन किये व दयादान विषयक अपनी वही पूर्व जिज्ञासा, शंका, ज्यों की त्यों वहाँ विराजित मुनि प्रवर के सामने रखी और बोले—“यदि मेरा सम्यक् समाधान हो जाएगा, तो मैं निश्चयमेव आपका शिष्यत्व स्वीकार कर लूँगा ।” अविलम्ब मुनिद्वय ने शास्त्रीय प्रमाणोपेत सांगोपांग स्पष्ट सही समाधान कह सुनाया । आपको पूर्णतः आत्म-सन्तोष हुआ । उचित समाधान होने पर अति हर्ष सहित सं० १९७४ भाद्रपदा सुदी ४ की शुभ मंगल वेला में शुद्ध मान्यता और शुद्ध सम्प्रदाय के अनुयायी बने, दीक्षित हुए ।

तत्त्वखोजी के साथ-साथ आपकी ज्ञान संग्रह की वृत्ति स्तुत्य थी । पठन-पाठन में भी आप सदैव तैयार रहते थे । ज्ञान को कंठस्थ करना आपकी अधिक अभीष्ट था इसलिए ढेरों सर्वेये, लावणियाँ, श्लोक, गाथा व दोहे वगैरह आपकी स्मृति में ताजे थे । यदा-कदा भजन स्तवन भी आप रचा करते थे । जो धरोहर रूप में उपलब्ध होते हैं ।

व्याख्यान शैली अति मधुर, आकर्षक, हृदयस्पर्शी व तात्त्विकता से ओत-प्रोत थी । चर्चा करने में भी आप अति पटु व हाज़िर-जबाबी के साथ-साथ प्रतिवादी को झुकाना भी जानते थे । जनता के अभिप्रायों को आप मिनटों में भाँप जाते थे । व्यवहार घर्म में आप अति कुशल और अनुशासक (Controller) भी पूरे थे ।

सं० २००६ चैत्र शुक्ला १३ की शुभ घड़ी में नाथद्वारा के भव्य रम्य प्रांगण में आप “आचार्य” बनाये गये । कुछेक वर्षों तक आप आचार्य पद को सुशोभित करते रहे । तत्पश्चात् संघैक्य योजना के अन्तर्गत आचार्य पदवी का परित्याग किया और श्रमण संघ के मंत्री पद पर आसीन हुए । इसके पहिले भी आप सम्प्रदाय के “उपाध्याय” पद पर रह चुके हैं । इस प्रकार रत्नत्रय की खूब आराधना कर सं० २०१५ माघ सुदी १५ के दिन रूपनगढ़ में आपका स्वर्गवास हुआ ।

पाठक वृन्द के समक्ष पूज्य प्रवर श्री हुक्मीचन्द जी म० सा० के सम्प्रदाय के महान् प्रतापी पूर्वाचार्यों की विविध विशेषताओं से ओत-प्रोत एक नन्हीं सी झाँकी प्रस्तुत की है जिनकी तपाराधना, ज्ञान-साधना एवं संयम-पालना अद्वितीय थी । □

गुरु-परम्परा की गौरव गाथा

□ श्री प्रकाश मुनि

(मेवाड़भूषण श्री प्रतापमलजी महाराज के शिष्य)

उन दिनों स्थानकवासी समाज के अन्तर्गत कोटा संप्रदाय की ख्याति भारत के काफी भू-भाग में परिव्याप्त थी। आज भी स्थानकवासी जैन समाज में कोटा सम्प्रदाय का नामोल्लेख गरिमा के साथ लिया जाता है। कारण कि स्था० जैन समाज की प्रगति में इस संप्रदाय का अत्यधिक योगदान रहा है। वस्तुतः अन्य शाखा प्रशाखाओं की तरह इस शाखा का महत्त्व भी प्रभावपूर्ण रहा है।

श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री दौलतरामजी म० के पदानुगामी आ० श्री लालचन्दजी म० और आपके पट्टानुपट्ट आचार्य श्री शिवलाल जी म० हुए। जिनकी विस्तृत जानकारी 'हमारे ज्योतिधर आचार्य' नामक लेख में अंकित की गई है। आपके समोज्ज्वल धर्म शासन में कोटा संप्रदाय का चहुँमुखी विकास हुआ। इस कारण आप (आ० श्री शिवलालजी म०) को कुलाचार्य के नाम से विभूषित किया गया।

आ० श्री शिवलालजी म० के अनेक शिष्यरत्न हुए जिनकी नामावली निम्न है—

आ० श्री उदयसागरजी म०

पं० रत्न श्री भगनीरामजी म०

पं० रत्न श्री गणेशलालजी म०

पं० रत्न श्री घन्नाजी म०

पं० रत्न श्री अनोपचन्दजी म०

आ० श्री चौधमलजी म०

तपस्वी श्री राजमलजी म०

श्री रतनचन्द जी का वैराग्य और दीक्षा

वि० सं० १९१४ के दिनों में तपोवनी श्री राजमलजी म० का कंजाडा (रामपुरा, मध्य प्रदेश) में पदार्पण हुआ। स्थानीय संघ ने शुभागत मुनिमण्डल का भावभीना स्वागत किया। जन मन की सुप्त भावना पुनः आनन्द विभोर हो उठी। वैराग्यपूर्ण व्याख्यानों से जनता लाभान्वित होने लगी। यद्यपि गाँव छोटा था, और घर स्वल्प संख्या में थे। फिर भी धर्मादायना की दृष्टि से पर्व जैसा ठाट रहा।

उपदेशामृत का पान कर वहाँ के निवासी श्रीमान् रतनचन्दजी मण्डारी की भावना संसार के प्रति उदासीन हो उठी। तपस्वी महाराज बिल्कुल ठीक फरमाते हैं—“आयु के अमूल्य क्षण बीतते हुए चले जा रहे हैं। गया यौवन वापिस आता नहीं है। एक दिन शरीर सूखे पत्तों की तरह पीला पड़कर काल के गाल में समा जाता है। इसलिए तपस्वी म० के चरणों में मैं दीक्षा ग्रहण कर जीवन सफल करूँ तो अच्छा है। कहते हैं कि 'बेलारा बाया मोती निपजे' ऐसा अवसर फिर मुझे कब मिलेगा?”

घर आकर अपनी धर्मपत्नी राजकुंवर से बोले—प्रिये ! मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ । अनुमति के सम्बन्ध में तेरी क्या इच्छा है ? मैं जानना चाहता हूँ ।

‘आपने बहुत बढ़िया सोचा । मैं भी सोचती हूँ कि ऐसा अवसर मिला नहीं करता है । साध्वी बनकर जीवन बिताऊँ । इस अनित्य-अशाश्वत संसार में कौन अमर रहा है ? परन्तु इन नन्हें-नन्हें बच्चों की ओर देखती हूँ तो फिर विचार आता है कि इनका क्या होगा ? कौन संभालेगा ? माता-पिता के बिना यह स्वार्थी संसार इन्हें क्या पालेगा, और क्या पढ़ायेगा ? अतएव मैं आपको इन्कार तो नहीं करती पर जवाहरलाल का विवाह हो जाय, उसके बाद आप और मैं दीक्षित हो जायेंगे ।’

रात्रि में सभी सो रहे थे । अनायास पड़ोसी के यहाँ एक नवजात शिशु की मृत्यु हो गई । घरवाले रो रहे थे । रतनचन्दजी की निद्रा टूट गई । अपनी धर्मपत्नी से बोले—‘कौन गुजर गया है अचानक ?’

‘नाथ ! छह दिन का बालक, आज दुपहर के समय बीमार पड़ा था । वही शायद मर गया है । इलाज भी किया, पर कारी नहीं लगी । काफी वर्षों के पश्चात् घर का आंगन पुत्र से भन्य हुआ था । पर काल ने उसे भी छीन लिया । काल के सामने किस का वश चलता है ।’

‘अब तू ही बता, दीक्षा के लिए देर करना क्या उचित है ? तू बच्चों को बड़ा करके सभी को रास्ते लगा देना । मुझे जाने दे । भविष्य में तेरे माग्य में होगा तो देखा जायेगा ।’ इस अवसर पर आपके साले श्री देवीलाल जी बहन-बहनोई से मिलने के लिए आए हुए थे । दीक्षा सम्बन्धी बहनोई के विचार सुनकर बोले—

‘बहनोई साहब ! आप दीक्षा लेना चाहते हैं । बहुत खुशी की बात है । मैं भी आपके साथ होता हूँ ।’ धन्ना-शालिभद्र की तरह श्रीमान रतनचन्दजी और देवीलालजी, साला-बहनोई दोनों वि० सं० १९१४ ज्येष्ठ शुक्ला ५ की शुभ धेला में तपस्वी महाराज के चरण कमलों में दीक्षित हुए ।

पाँच वर्ष के पश्चात् अर्थात् १९१९वें वर्ष में अपने शिष्य परिवार के साथ भावी आचार्य प्रवर श्री चौथमलजी म० का कंजार्डी की कठोर धरती पर भ्रमागमन हुआ । उपदेशों की अमृत धाराओं से भव्यात्माओं की मानस स्वली प्लावित होने लगी । दर्शनाधियों के सतत आवागमन से कंजार्डी तीर्थ-भूमि सा प्रतिभासित हो रहा था ।

असरकार घर्मोपदेश श्रवण कर श्री रतनचन्दजी म० के ज्येष्ठ पुत्र श्री जवाहरलालजी की सुप्त चेतना जाग उठी । अन्तरात्मा में वैराग्य के स्रोत फूट पड़े । दीक्षा लेने की प्रबल इच्छा से प्रेरित होकर अपनी माता राजकुंवर से बोले—‘माता ! जिस महान धर्म मार्ग की पिताजी आराधना कर रहे हैं, मैं भी उसी मार्ग का अनुसरण करना चाहता हूँ । दीक्षा के लिए जल्दी मुझे आज्ञा दीजिए ।’

‘बेटा ! असो नन्दा छोटा है । एक वर्ष ठहर जा, उसके बाद तू, हीरा, नन्दा और मैं चारों दीक्षित तो जायेंगे । एक साथ दीक्षा लेना अच्छा रहेगा ।’

विनीत पुत्र जवाहरलाल ने माता की बात मान्य की । मुनि मण्डल ने मारवाड़ की ओर बिहार किया । सं० १९२० का चौमासा फलोदी (मारवाड़) में हुआ । इस चौमासे में कंजार्डी का श्री संघ आचार्यदेव के सान्निध्य में विनती पत्र लेकर फलोदी पहुँचा—चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् मुनि मण्डल कंजार्डी पधारे । वहाँ अखण्ड सोभायवती राजकुंवर बाई अपने तीन पुत्रों के साथ प्रबल वैराग्य से प्रेरित होकर दीक्षा लेने की भावना रखती हैं । यह महान महोत्सव आचार्य प्रवर के हाथों से सम्पन्न हो, ऐसी कंजार्डी श्री संघ की भावना है । इसलिए हमारी विनती मान्य की जाय ।’

समयानुसार आचार्य प्रवर श्री शिवलालजी म०, त० श्री राजमलजी, भावी भा० श्री चौथमलजी म०, श्री रतनचन्दजी म०, श्री देवीचन्दजी म०, आदि मुनि आठ और महासती श्री रंगूजी, त० श्री नवलाजी महासती एवं श्री वृजूजी महासती आदि का कंजाडा में शुभागमन हुआ। हजारों दर्शनार्थियों की उपस्थिति में वि० सं० १९२० पौष शुक्ला ६ की पवित्र वेला में श्री राजकुंवर बाई (श्री रतनचन्दजी म. की धर्मपत्नी) ने संघ हित व आत्म कल्याण को दृष्टि से अपने पंद्रह वर्षीय पुत्र श्री जवाहरलाल को, बारह वर्षीय श्री हीरालाल को और आठ वर्षीय लघुपुत्र नन्दलाल को दीक्षित करने के पश्चात् आप स्वयं राजकुंवर बाई महासती नवलाजी की शिष्या बन गई।

चराचर सम्पत्ति को ज्यों की त्यों खुली छोड़कर सारा परिवार त्याग-वैराग्य की पवित्र परम्परा का पथिक बन जाना, कोई मामूली काम नहीं है। अपितु एक आदर्श त्याग और धीर-वीर इतिहास का आविर्भाव ही माना जायगा। जो सचमुच ही स्वामिमान का प्रतीक है।

श्री रतनचन्दजी म० के नेत्राय में बड़े पुत्र श्री जवाहरलालजी म० को और श्री जवाहरलालजी म० के नेत्राय में श्री हीरालालजी म० को एवं श्री नन्दलालजी म० को दीक्षित किया गया। उपस्थित विशाल जनसमूह ने उनके महान् त्याग की मुग्ध कण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहा— 'आज हमें चौथे आरे का दृश्य देखने को मिला।'

इस प्रकार श्रद्धेय श्री रतनचन्दजी म० ३६ वर्ष पर्यंत शुद्ध संयम धर्म की आराधना कर संघारा सहित वि० सं० १९५० के वर्ष में जावरा नगर में सद्गति को प्राप्त हुए। ३६ वर्ष आप संसारावस्था में रहे और ३६ वर्ष संयम में, इस प्रकार आपकी कुल आयु ७२ वर्ष की थी। आप के विषय में पूज्य श्री खूबचन्दजी म० द्वारा निमित्त गीतिका इस प्रकार है—

श्री रतनचन्दजी महाराज का गुणानुवाद

(तर्ज — ते गुरु चरणा रे नमिये)

रतन मुनि गुणीजन रे पूरा, हुआ तप संयम में शूरा ॥१॥
गाँव कंजाडा रे गिरि में, तिहा जन्म लियो शुभ घड़ी में।
जीवन की वय जद रे आया, मन वैराग मजीठ का छाया ॥१॥
गुरु राजमलजी के पासे, लियो संजम आप हुलासे।
साथे दीवी चंदजी रे साला, ते तो निकल्या दोनू लारा ॥२॥
निज घर नारी रे छोड़ी, ममता तीन पुत्र से तोड़ी।
छः वर्ष पीछे रे ते पिण, सब निकल गया तज सगपण ॥३॥
छत्तीस वर्ष संजम रे पाल्यो, जाने नरभव लाभ निकाल्यो।
अठारा से अठोतर में जाया, उन्नीसे पचास में स्वर्ग सिधायो ॥४॥
उगणी से इकातर के माँही, जाँ की जश कीति सुख गाई।
कभी तो होगा रे तिरना, मुझे नंदलाल गुरुजी का शरना ॥५॥

गुरुजी श्री जवाहरलालजी महाराज

आपका जन्म वि० सं० १९०३ वसन्त ऋतु के दिनों में और दीक्षा सं० १९२० पौष शुक्ला ६ के दिन हुई। शंशव काल से ही आप शीतल प्रकृति के धनी थे। कोई बालक आपको माली देता तो भी प्रत्युत्तर में आप शांत रहते। दीक्षित होने के पश्चात् कुछ ही समय में काफी ज्ञान एवं अनेक द्रव्यानुयोग के बोल कंडस्थ किये। धीरे-धीरे काफी आगमिक अनुभव प्राप्त किया। प्रकृति के आप अशिवत् शीतल, शांत, दांत, सरल, स्वाध्यायरत एवं सागर सदृश गम्भीर आदि अनेक गुणों से

सुशोभित होते हुए आप एक प्रकार के असली आध्यात्मिक जवाहर के रूप में निखरे। सभी साधु साध्वी आपको गुरुजी के नाम से पुकारते थे।

आपका वि० सं० १६७२ का वर्षावास मंदसौर था। शरीर में व्याधि का फैलाव अधिक होने के कारण आपने संघारा स्वीकार किया। उधर मंदसौर निवासी जीतमल जी लोढा को स्वप्न दर्शन हुआ कि—“गुरुजी जवाहरलाल जी म० का कार्तिक शुक्ला ६ के दिन १२ बजकर १५ मिनट पर स्वर्गवास होगा और तीसरे देवलोक में जायेंगे।”

वह दिन आया। प्रातःकाल श्री छोटे मझालाल जी म० ने गुरुजी से पूछा—“भगवन् ! कुछ ज्ञान का आभास हुआ है ?”

“हाँ मुने ! ‘क्षयोपशम परमाणे’ अर्थात् कुछ अंश मात्रा में अवधिज्ञान का आभास हुआ है।” तत्पश्चात् उनकी रसना रुक गई। वस, लोढाजी के स्वप्नानुसार उसी समय आपश्री का स्वर्गवास हुआ। वस्तुतः पूर्ण विश्वास किया जाता है कि निश्चयमेव वह भद्र आत्मा तीसरे स्वर्ग में पहुँची है। इस प्रकार कार्तिक शुक्ला में ५१ वर्ष १० मास का संयम पाल कर कुल ६८ वर्ष का आयुष्य पूर्ण कर मंदसौर भूमि में स्वर्गस्थ हुए।

आपका शिष्य परिवार—

- (१) कवि श्री हीरालालजी महाराज,
- (२) पं० श्री नन्दलालजी महाराज,
- (३) मुनिश्री माणकचन्दजी महाराज।

पं० रत्न कवि श्री हीरालालजी महाराज

वि० सं० १६०६ आषाढ़ शुक्ला ४ के दिन कंजाडी ग्राम में आपका जन्म हुआ और ११ वर्ष की लघु वय में अर्थात् संवत् १६२० पौष मास में अपनी जन्म भूमि में आप दीक्षित हुए।

स्वभाव की दृष्टि से आप अपने ज्येष्ठ भ्राता गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म० की तरह सरल-शांत समता-संतोष आदि गुणों में सम्पन्न थे। बुद्धि तीक्ष्ण थी। स्वल्प समय में ही पर्याप्त शास्त्रीय ज्ञान के साथ-साथ व्याकरण, छन्द, पिगल आदि विषयों का अच्छा ज्ञान और अनुभव संपादन किया। उस समय आपका व्यक्तित्व सफल वक्ता और सफल कवि के रूप में समाज में उभरा। आपकी रुचि कविता, रत्न, गीतिका एवं लावणियाँ रचने में व गाने में अधिक थी। वस्तुतः आपने अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न विषयों को लेकर भक्ति, वैराग्य एवं उपदेशात्मक, भावभाषा की दृष्टि से सरल, सुबोध, प्रेरणादायक विविध कविताएँ, रत्न, सवैया और चौपाइयाँ आदि की सुन्दरतम रचना करके साहित्य भण्डार के विकास में सराहनीय योगदान प्रदान किया है।

कंठ माधुर्य का आकर्षण इतना था कि आपके व्याख्यान में श्रोताओं के अतिरिक्त चलते-फिरते राहगीरों की खासी भीड़ स्वर लहरियों को सुनने के लिए खड़ी हो जाया करती थी। अद्यावधि आपकी अनेकों कविताएँ भजन और सवैया जनजिह्वा पर गुनगुनाते सुनाई देते हैं। पशुपण पर्व के दिनों ‘एवंता मुनिवर नाव तोरई बहता तीर में’ इस लावणी को जब भावुक मन गाते हैं, तब गायक और श्रोतागण भक्ति रस में क्षुभ जाते हैं।

वि० सं० १६७४ का वर्षावास अजमेर था। ‘इदं शरीरं व्याधि मंदिरम्’ के अनुसार शरीर व्याधिग्रस्त हुआ। काफी उपचार के बावजूद भी व्याधि उपशांत नहीं हुई। अन्त में आपने संघारा स्वीकार किया। गुरुदेव श्री नन्दलालजी म० एवं जैन दिवाकर श्री चौधमल जी म० आदि संतों की उपस्थिति में ६५ वर्ष की आयु में लगभग ५४ वर्ष की संयमाराधना करके अजमेर शहर में आप स्वर्गवासी हुए। प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर श्री चौधमलजी म० आपके ही शिष्यरत्न थे। वर्तमान काल में आपका शिष्य-प्रशिष्य परिवार इस प्रकार है—

- (१) कवि एवं वाचस्पति श्री केवल मुनि जी म०
- (२) तपस्वी श्री इन्दर मुनिजी म० (ताम्र वाले)
- (३) तपस्वी एवं वक्ता श्री बिमल मुनिजी म०
- (४) त० श्री मेघराजजी म०,
- (५) मधुर वक्ता श्री मूलचन्दजी म०,
- (६) अवधानी श्री अशोक मुनिजी म०,
- (७) शास्त्री श्री गणेश मुनिजी म०,
- (८) तपस्वी श्री मोहनलाल जी म०,
- (९) वक्ता श्री मंगल मुनिजी म०,
- (१०) तपस्वी श्री पन्नालालजी म०,
- (११) संस्कृत विशारद श्री भगवती मुनि म०
- (१२) प्र० श्री उदय मुनिजी म० (सिद्धान्त-प्राचार्य),
- (१३) तपस्वी श्री बुद्धिचन्दजी म०,
- (१४) श्री सुदर्शन मुनिजी म०,
- (१५) सेवाभावी श्री प्रदीप मुनिजी म०,
- (१६) सफल वक्ता श्री अजीत मुनिजी म०,
- (१७) वक्ता श्री चन्दन मुनिजी म०,
- (१८) वि० श्री वीरेन्द्र मुनिजी म०,
- (१९) कवि श्री सुभाष मुनिजी म०,
- (२०) श्री रिषभ मुनिजी म०,
- (२१) मधुर गायक श्री प्रमोद मुनिजी म०,
- (२२) सेवाभावी श्री मेरुलालजी म०,
- (२३) तपस्वी श्री वर्धमानजी म०,
- (२४) श्री पीयूष मुनिजी म० ।

वादीमानमर्दक गुरु श्री नन्दलाल जी महाराज

वि० सं० १९१२ भाद्रवा सुदी ६ की शुभ वेला में आपका जन्म कजार्डा गाँव में हुआ । परम्परागत सुसंस्कारों से प्रेरित होकर आठ वर्ष की उम्र में लघुवय में अर्थात् सं० १९२० पौष मास में आप अपने ज्येष्ठ युगल ज्ञाताओं (गुरु श्री जवाहरलालजी म०, श्री हीरालालजी म०) के साथ दीक्षा जैसे महान् मार्ग पर चल पड़े । शैशव काल से आप प्रज्ञावान थे । कुछ ही समय में पाँच-सात शास्त्रीय गाथा कंठस्थ कर लिया करते थे । विद्याव्ययन की रुचि देखकर एकदा भावी आचार्य प्रवर श्री चौधमलजी म० ने रतनचन्दजी महाराज से कहा कि—‘नन्दलाल मुनि को कुछ वर्षों तक पढ़ाई के लिए मेरी सेवा में रहने दो । क्योंकि इस बालक मुनि की बुद्धि बड़ी तेजस्विनी है । सुन्दर ढंग से मैं नन्दलाल मुनि को आगमों की वाचना और धारणा करवाने की भावना रखता हूँ । आशा है यह मुनि भविष्य में आगमों के महान् ज्ञाता के रूप में उभरेगा ।’

श्री रतनचन्दजी म० ने आचार्यदेव की आज्ञा शिरोधार्य की । सं० १९२२ का वर्षावास आचार्यदेव का जावद शहर में था । उन दिनों तेरापंथी सम्प्रदाय के तीन मुनियों का वर्षावास भी वहीं था । एक दिन मुनियों का पारस्परिक मिलना हुआ तो आचार्यदेव ने सहज में पूछा—‘आजकल आप व्याख्यान में कौनसा शास्त्र पढ़ते हैं ?’

‘भगवती सूत्र’ प्रमुख मुनि ने उत्तर दिया ।

पुनः आचार्य प्रवर ने पूछा—‘तो बताइए, शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र के वज्र को ऊर्ध्व लोक में

जाने में कितना समय लगता है और नीचे लोक में आने में कितना समय ? यह प्रश्न भगवती सूत्र का ही है ।”

“इस समय हमारे ध्यान में नहीं है ।” प्रमुख तेरापंथी मुनिजी ने कहा ।

तब आचार्य प्रवर श्री ने लघुमुनि नन्दलालजी म० की तरफ संकेत किया कि—“मेरे प्रश्न का उत्तर देओ ।”

आचार्य प्रवर की ओर से आज्ञा मिलते ही श्री नन्दलालजी म० उत्तर देने के रूप में सविस्तार कहने लगे—“ऊर्ध्व लोक में जाने के लिए शक्रेन्द्र को जितना समय लगता है, उससे दुगुना उनके वज्र को और तीन गुना चमरेन्द्र को लगता है । इसी प्रकार अधोलोक में जाने के लिए चमरेन्द्र को जितना समय लगता है, उससे दुगुना शक्रेन्द्र को और तीन गुना शक्रेन्द्र के वज्र को लगता है ।”

ठीक उत्तर श्रवण कर सभी मुनिवृन्द काफी प्रभावित हुए । तेरापंथी मुनियों को कहना पड़ा कि—आपके ये लघुमुनि काफी प्रभावशाली निकलेंगे । अभी तो काफी छोटी उम्र है फिर भी विकास सराहनीय है ।

भविष्य में आपने जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनों का भी अच्छा अध्ययन सम्पन्न किया । शास्त्रार्थ करने में आप काफी कुशल थे । कई बार उस युग में मन्दिरमार्गी आचार्यों के साथ आपको शास्त्रार्थ करना पड़ा था । निम्बाहेड़ा, नीमच, मंदतौर और जावरा शास्त्रार्थ के स्थल प्रसिद्ध हैं, जहाँ अनेक बार मूर्तिपूजक मुनियों के साथ खुलकर चर्चाएँ हुई हैं । गुरुदेव के शुभाशीर्वाद के प्रताप से सभी स्थानों पर आपने स्थानकवासी जैन समाज की गरिमा में चार चाँद लगाये । तब चतुर्विध श्री संध ने आपको ‘वादकोविद वादीमानमर्दक’ पदवी से विभूषित कर गौरवानुभव किया था ।

वृद्धावस्था के कारण कुछ वर्षों से आप नीम चौक जैन स्थानक रत्नलाम स्थिरवास के रूप में विराज रहे थे । श्रावण कृष्णा ३ सं० १९६३ के मध्याह्न के समय शास्त्र पठन-पाठन कार्य पूरा हुआ । अनायास आपश्री का जी मचलाने लगा । अंतकाल निकट आया जानकर संथारा स्वीकार किया और ‘नमोत्थुण’ की स्तुति करते-करते आप स्वर्गवासी हो गये । ७३ वर्ष पर्यंत संयमाराधना पालकर कुल ८१ वर्ष की आयु में परलोक पधारे ।

आचार्य प्रवर श्री खूबचन्दजी म०, पं० श्री हजारीमलजी म० (जावरा वाले); श्री लक्ष्मीचन्दजी म० एवं मेवाड़ भूषण श्री प्रतापमलजी म०, आदि-आदि गुरुदेव श्री नन्दलालजी म० की शिष्य-प्रशिष्य परम्परा में उल्लेखनीय हैं । जिनकी शिष्य-प्रशिष्य परम्परा इस प्रकार है—

- | | |
|---------------------------------------|--|
| (१) उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी म० | (१३) आत्मार्थी श्री मन्ना मुनिजी म० |
| (२) मेवाड़भूषण श्री प्रतापमलजी म० | (१४) वि० श्री वसन्त मुनिजी म० (उज्जैन) |
| (३) प्रवर्तक श्री हीरालालजी म० | (१५) तपस्वी श्री प्रकाश मुनिजी म० |
| (४) त० वक्ता श्री लाभचन्दजी म० | (१६) वि० श्री कान्ति मुनिजी म० |
| (५) तपस्वी श्री दीपचन्दजी म० | (१७) श्री सुदर्शन मुनिजी म० (पंजाबी) |
| (६) तपस्वी श्री वसन्त मुनिजी म० | (१८) श्री महेन्द्र मुनिजी म० (पंजाबी) |
| (७) शास्त्री श्री राजेन्द्र मुनिजी म० | (१९) श्री नवीन मुनिजी म० |
| (८) सुलोचक श्री रमेश मुनिजी म० | (२०) श्री अरुण मुनिजी म० |
| (९) शास्त्री श्री सुरेश मुनिजी म० | (२१) वि० श्री भास्कर मुनिजी म० |
| (१०) वि० श्री नरेन्द्र मुनिजी म० | (२२) श्री सुरेश मुनिजी म० |
| (११) तपस्वी श्री अभय मुनिजी म० | (२३) सेवाभावी श्री रतन मुनिजी म० |
| (१२) कवि श्री विजय मुनिजी म० | (२४) श्री गौतम मुनिजी म० |

पंडितवर्य श्री माकचन्दजी महाराज

आपका निवास स्थान केरी है ! जाति के आप ओसवाल थे । सं० १९३५ में आपने दीक्षा ग्रहण की । आपके दो पुत्र देवीलालजी और भीमराजजी भी अपने पिताश्री के साथ दीक्षित हुए । आपके जीवन सम्बन्धी विशेष जानकारी त्रिमुनि चरित्र में देखें ।

पंडितवर्य श्री देवीलालजी महाराज

सं० १९३५ बड़ी सादड़ी में दीक्षित हुए । अपने पिताश्री माणकचन्दजी म० के शिष्य हुए । आपका अध्ययन सुचारु रूप से ठोस हुआ । प्रत्येक विषय को आपने मन्त्र कर हृदयंगम किया था । जैनेतर ग्रन्थों का भी आपने अच्छा अवलोकन किया था । व्याख्यान शैली भी आपकी प्रभावपूर्ण थी । प्रश्नोत्तर में आप सदैव विजयी रहते । मालव-मेवाड़-मारवाड़-पंजाब आदि प्रान्तों में विहार कर जिन-शासन की खूब प्रभावना की । आपका विस्तृत जीवन-चरित्र देहली चांदनी चौक श्री संघ की ओर से प्रकाशित हो चुका है । आचार्य प्रवर श्री सहस्रमल जी म० आपके शिष्यरत्न थे । जिनकी परम्परा में स्व० श्री मिश्री मुनिजी म० 'सुधाकर' हुए । आपके शिष्यरत्न मधुर व्याख्यानी श्री ईश्वर मुनिजी म० एवं कवि श्री रंग मुनिजी म० इन दिनों जैन शासन की श्लाघनीय प्रभावना कर रहे हैं ।

पंचम खंड



जैन ज्योतिष साहित्य : एक दृष्टि

डा० तेजासिंह गौड़, एम० ए०, पी-एच० डी०
(उन्हेल—जिला उज्जैन, म० प्र०)

[हमारे अभिनन्दनीय ज्योतिषविद श्री कस्तूरचन्द जी म० का ज्योतिष प्रिय विषय रहा है। आपश्री का ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान शास्त्र तथा अनुभव की कसौटी पर कसा हुआ है। अतः आपश्री के अभिनन्दन ग्रन्थ में ज्योतिष से सम्बन्धित कुछ सामग्री देना भी प्रासंगिक एवं वाञ्छनीय है। पाठक पढ़ें ज्योतिष विषयक ज्ञानपूर्ण लेख। —संपादक]

मानव स्वभाव से जिज्ञासु है। क्यों? क्या? कैसे? कब? कहाँ? आदि प्रश्नों की जानकारी वह अधिक-से-अधिक प्राप्त कर रखना चाहता है। आदिम मानव भी प्रकृति के विभिन्न परिवर्तनों को आश्चर्य से देखता होगा। दिन के बाद रात और रात में असंख्य तारागण। कोई तारा अधिक प्रकाशमान तो कोई मध्यम प्रकाश वाला। कभी आकाश में चन्द्रमा अपनी छटा बिखेरता हुआ दिखाई देता है तो कभी घोर अँधेरा। चन्द्रमा का घटना और बढ़ना उस मानव के लिए एक अजीब रहस्य रहा होगा। आकाश की ओर तारागणों की छटा निहारते-निहारते एकाएक किसी गिरते तारे को देख वह चौंक उठता होगा। इन सब के विषय में उसकी जानने की जिज्ञासा ने इस ओर उसे प्रवृत्त किया होगा। फिर दिन-रात दिन में समय नापने की समस्या भी आई होगी। दिन के बाद पक्ष, पक्ष के बाद मास और वर्ष की गणना का विकास हुआ होगा। ऋतुचक्रों के ज्ञान से महीनों के नामों को जन्म मिला। फिर भी इन सबका ज्ञान और जन्म कब और किस प्रकार बोध-गम्य हुआ, निश्चयात्मक रूप से कहना कठिन है। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि ज्योतिष का इतिहास सुदूर भूतकाल के गर्भ में छिपा हुआ है और जैसे-जैसे सभ्यता और संस्कृति का विकास होता गया ज्योतिष का भी विकास होता गया। आज तो स्थिति ऐसी है कि प्राचीन मानव ने जिन्हें देवता माना उनके रहस्यों को उजागर कर दिया गया है तथा आज का वैज्ञानिक मानव विभिन्न ग्रह नक्षत्रों के रहस्यों को उजागर करने में संलग्न है। इसकी कल्पना तो प्राचीन मानव ने की भी नहीं होगी।

ज्योतिषशास्त्र की व्युत्पत्ति “ज्योतिषां सूर्यादि ग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्” से की गई है, अर्थात् सूर्यादि ग्रह और काल का बोध कराने वाले शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र कहा जाता है।^१ ज्योतिषशास्त्र के दो रूप माने जाते हैं—(१) बाह्य (२) आभ्यन्तरिक। बाह्य रूप में ग्रह, नक्षत्र, घूमकेतु आदि ज्योतिष पदार्थों का निरूपण एवं ग्रह, नक्षत्रों की गति, स्थिति और उनके संचारानुसार शुभाशुभ फलों का कथन किया जाता है। आभ्यन्तरिक रूप में समस्त भारतीय दर्शन आ जाता है। प्रायः सभी भारतीय दार्शनिकों ने आत्मा को अमर माना है। उनके मतानुसार उसका कभी नाश नहीं होता है। कर्मों के अनादि प्रवाह के कारण केवल उसके पर्यायों में परिवर्तन होता रहता है।^२ कुछ मनीषियों का अभिमत है कि नभोमण्डल में स्थित ज्योतिष सम्बन्धी विविध

१ भारतीय ज्योतिष—नेमिचन्द्र शास्त्री, पृ० २

२ बाबू छोटेला जैन स्मृति ग्रन्थ, पृ० २२१

विषयक विद्या को ज्योतिषविद्या कहते हैं, जिस शास्त्र में इस विद्या का सांगोपांग वर्णन रहता है, वह ज्योतिषशास्त्र है। इस लक्षण और पहले वाले^१ ज्योतिषशास्त्र के व्युत्पत्त्यर्थ में केवल इतना ही अन्तर है कि पहले में गणित और फलित दोनों प्रकार के विज्ञानों का समन्वय किया गया है, पर दूसरे में खगोल ज्ञान पर ही दृष्टिविन्दु रखा गया है।^२

भारतीय ज्योतिष की परिभाषा स्कन्धत्रय सिद्धान्त, होरा, और संहिता अथवा स्कन्धपञ्च सिद्धान्त, होरा, संहिता, प्रश्न और शकुन ये अंग माने गये हैं। यदि विराट पञ्चस्कन्धात्मक परिभाषा का विश्लेषण किया जाय तो आज का मनोविज्ञान, जीवविज्ञान, पदार्थविज्ञान, रसायन-विज्ञान, चिकित्साशास्त्र, इत्यादि भी इसी के अन्तर्भूत हो जाते हैं।^३

जहाँ तक इस विज्ञान के इतिहास का प्रश्न है, जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि वह सुदूर भूतकाल के गर्भ में छिपा हुआ है। यद्यपि इसका शृंखलाबद्ध इतिहास हमें आर्यभट्ट के समय से मिलता है तथापि इसके पूर्व के ग्रन्थ वेद, अंग साहित्य, ब्राह्मण साहित्य, सूर्यप्रज्ञप्ति, गर्ग-संहिता, ज्योतिषकरण्डक एवं ज्योतिषवेदांग आदि ग्रन्थों में ज्योतिषशास्त्र विषयक अनेक महत्वपूर्ण बातों का विवरण मिलता है।

वैदिककाल में ज्योतिष का अध्ययन होता था। यजुर्वेद में 'नक्षत्रदर्श' की चर्चा इसका प्रमाण है।^४ छान्दोग्य उपनिषद् में नक्षत्र विद्या का उल्लेख है।^५ प्राचीनकाल से ज्योतिष वेद के छः अंगों में गिना जाता रहा है।^६ ऋग्वेद के समय वर्ष में बारह मास और मास में तीस दिन माने जाते थे।^७ अधिक मास विषयक जानकारी भी ऋग्वेद में मिलती है। इसके अतिरिक्त कुछ नक्षत्रों के नाम भी आते हैं जिससे पता चलता है कि उस समय भी चन्द्रमा की गति पर ध्यान दिया जाता था।^८ यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि ऋग्वेद कोई ज्योतिष विषयक ग्रन्थ नहीं है। उसमें प्रसंगवश ऐसी बातें आ गई हैं जिससे हमें उस समय के ज्योतिष विज्ञान विषयक ज्ञान की जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय संहिता में सत्ताइस नक्षत्रों की सूची है, अथर्ववेद में ग्रहणों की चर्चा है और कौषीतकी ब्राह्मण भी ज्योतिष विषयक जानकारी उपलब्ध कराता है।^९

लगध-मुनि का 'ज्योतिष वेदांग' हिन्दी ज्योतिष विज्ञान का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है। उसमें केवल सूर्य और चन्द्रमा की गतियों का ही विचार किया गया है। उसमें अन्यान्य ग्रहों की चर्चा भी नहीं की गई है।^{१०} ज्योतिष वेदांग या वेदांग ज्योतिष एक छोटी-सी पुस्तक है जिसके दो पाठ मिलते हैं—एक ऋग्वेद ज्योतिष, दूसरा यजुर्वेद ज्योतिष। दोनों के विषय और अधिकांश

१ ज्योतिषां सूर्यादि ग्रहाणां बोधकं शास्त्रम् ।

२ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ २

३ वही, पृ० २

४ ३०।१०

५ ७।१।२; ७।१।४; ७।२।१; ७।७।१

६ आपस्तम्बधर्मसूत्र ४।२।८।१०

७ विक्रम स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ७५४-५५

८ वही, पृष्ठ ७५६-५७

९ वही, पृष्ठ ७५७

१० बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ २२४

श्लोक एक ही हैं। परन्तु ऋग्वेद ज्योतिष में कुल ३६ श्लोक हैं और दूसरे में ४४।^१ वेदांग ज्योतिष में पञ्चवर्षीय युग पर से उत्तरायण और दक्षिणायन के तिथि, नक्षत्र एवं दिनमान आदि का साधन किया गया है। इसके अनुसार युग का आरम्भ माघ शुक्ल प्रतिपदा के दिन सूर्य और चन्द्रमा के घनिष्ठा नक्षत्र सहित क्रांतिवृत्त में पहुँचने पर माना गया है। वेदांग ज्योतिष का रचनाकाल कई शती ईस्वी पूर्व माना जाता है। इसके रचनाकाल का पता लगाने के लिए विद्वानों ने जैन ज्योतिष को ही पृष्ठभूमि स्वीकार किया है।^२ वेदांग ज्योतिष पर अन्य ग्रंथों के प्रभाव की चर्चा करते हुए पं० नेमिचन्द्र शास्त्री ने लिखा है, “वेदांग ज्योतिष पर उसके समकालीन षट्खण्डागम में उपलब्ध ज्योतिष चर्चा, सूर्यप्रज्ञप्ति एवं ज्योतिषकरण्डक आदि जैन ज्योतिष ग्रंथों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।”^३

जैन ग्रन्थ यतिवृषभ का तिलोयपण्णत्ती, सूर्यप्रज्ञप्ति और चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों में जो वैदिक ग्रन्थों के समय से अवश्य कुछ बाद के हैं, उनमें सामान्य जगत स्वरूप, नारक लोक, भवन-वासी लोक, मनुष्य लोक, व्यंतर लोक, ज्योतिर्लोक, सुरलोक और सिद्धलोक आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। यदि जैन ‘करणानुयोग’ ग्रन्थ या प्राकृत ‘लोक विभाग’ ग्रन्थ उपलब्ध हो जाते तो इनकी प्राचीनता सिद्ध हो सकती थी। क्योंकि यतिवृषभ के ‘तिलोयपण्णत्ती’ का आधार वही था और उस ग्रन्थ समाप्ति के समय उत्तराषाढ़ नक्षत्र में शनैश्चर, वृषभ में बृहस्पति और उत्तरा-फाल्गुनी में चन्द्रमा था तथा शुक्ल-पक्ष था। इससे यह तो पूर्णतः सिद्ध हो जाता है कि यति-वृषभ के समय नक्षत्रों, राशियों और ग्रहों का पूर्ण विकास हो चुका था और मनुष्य शुभाशुभ के फल को ज्ञात कर दैनिक कार्यों के उपयोग में लेने लग गये थे।^४

सूर्यप्रज्ञप्ति में २० पाहुड हैं, जिनके अन्तर्गत १०८ सूत्रों में सूर्य तथा चन्द्र व नक्षत्रों की गतियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्राचीन भारतीय ज्योतिष सम्बन्धी मान्यताओं के अध्ययन के लिए यह रचना विशेष महत्त्वपूर्ण है।^५ सूर्यप्रज्ञप्ति में पंचवर्षात्मक युग का उल्लेख करते हुए लिखा है, “श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन सूर्य जिस समय अभिजित नक्षत्र पर पहुँच जाता था उसी समय पंचवर्षीय युग प्रारम्भ होता है।”^६ सूर्यप्रज्ञप्ति की भाषा प्राकृत है और मलयगिरिसूरि ने संस्कृत टीका लिखी है। इस ग्रन्थ में प्रधान रूप से सूर्य के गमन, आयु, परिवार और संख्या का निरूपण किया गया है। इसमें जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा बताये हैं तथा प्रत्येक सूर्य के अट्टाइस-अट्टाइस नक्षत्र अलग कहे गये हैं। इन सूर्यों का भ्रमण एकान्तर रूप से होता है, जिससे दर्शकों को एक ही सूर्य दृष्टिगोचर होता है। इसमें दिन, पक्ष, मास, अयन आदि का विवरण मिलता है।^७ इसमें वर्णित यह दिनमान सब जगह एक नहीं होगा, क्योंकि हमारे निवास रूपी पृथ्वी, जो कि जम्बूद्वीप का एक भाग है, समतल नहीं है। यद्यपि जैन मान्यता में जम्बूद्वीप को समतल माना गया है, लेकिन सूर्य-प्रज्ञप्ति में बताया गया है कि पृथ्वी के बीच में हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रक्मि और शिखरिणी इन छः पर्वतों के आ जाने से यह कहीं ऊँची और कहीं नीची हो गई है।^८

- १ विक्रम स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ७५८
- २ वर्षी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ४६६-७०
- ३ वही, पृष्ठ ४७०
- ४ बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ २२४
- ५ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ६६
- ६ वर्षी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ४७०
- ७ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ ६०
- ८ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ ६१

चन्द्रप्रज्ञप्ति अपने विषय विभाजन व प्रतिपादन में सूर्यप्रज्ञप्ति से अभिन्न है। मूलतः ये दोनों अवश्य अपने-अपने विषय में भिन्न रहे होंगे, किन्तु उनका मिश्रण होकर वे प्रायः एक से ही हो गये हैं।^१ श्री पं० नेमिचन्द्र शास्त्री^२ ने लिखा है कि इसका विषय सूर्यप्रज्ञप्ति की अपेक्षा परिष्कृत है। इसमें सूर्य की प्रतिदिन की योजनात्मिका गति निकाली है तथा उत्तरायण और दक्षिणायन की वीथियों का अलग-अलग विस्तार निकाल कर सूर्य और चन्द्रमा की गति निश्चित की है। इसके चतुर्थ प्राभृत में चन्द्र और सूर्य का संस्थान तथा तापक्षेत्र का संस्थान विस्तार से बताया है। ग्रन्थकर्ता ने समचतुस्र, विषमचतुस्र आदि विभिन्न आकारों का खण्डन कर सोलह वीथियों में चन्द्रमा का समचतुस्र गोल आकार बताया है। इसका कारण यह है कि सुषमा-सुषमा काल के आदि में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन जम्बूद्वीप का प्रथम सूर्य पूर्वदक्षिण (अग्निकोण) में और द्वितीय सूर्य पश्चिमोत्तर (वायव्यकोण) में चला। इसी प्रकार प्रथम चन्द्रमा पूर्वोत्तर (ईशानकोण) में और द्वितीय चन्द्रमा पश्चिम दक्षिण (नेऋत्यकोण) में चला। अतएव युगादि में सूर्य और चन्द्रमा का समचतुस्र संस्थान था, पर उदय होते समय ये ग्रह वर्तुलाकार से निकले, अतः चन्द्र और सूर्य का आकार अर्द्धपीठ अर्धसमचतुस्र गोल बताया है।

चन्द्रप्रज्ञप्ति में छाया साधन किया है; तथा छाया प्रमाण पर दिनमान का भी प्रमाण निकाला है। ज्योतिष की दृष्टि से यह विषय महत्त्वपूर्ण है।^३ चन्द्रप्रज्ञप्ति के १६वें प्राभृत में चन्द्रमा को स्वतः प्रकाशमान बतलाया तथा इसके घटने-बढ़ने का कारण भी स्पष्ट किया है। १८वें प्राभृत में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं की ऊँचाई का कथन किया है। इस प्रकरण के प्रारम्भ में अन्य मान्यताओं की भीमांसा की गई है और अन्त में जैन मान्यता के अनुसार ७६० योजन से लेकर ६०० योजन की ऊँचाई के बीच ग्रह नक्षत्रों की स्थिति बतायी है। २०वें प्राभृत में सूर्य और चन्द्र ग्रहणों का वर्णन किया गया है तथा राहु और केतु के पर्यायवाची शब्द भी गिनाये गये हैं, जो आजकल के प्रचलित नामों से भिन्न हैं।^४ चन्द्रमा को स्वतः प्रकाशमान बतलाना वर्तमान युग की खोजों के सन्दर्भ में कितना सत्य है, यह विद्वान पाठक स्वयं विचार कर लें। क्योंकि वर्तमान मान्यता ठीक इसके विपरीत है।

‘ज्योतिषकरण्डक’ नामक एक प्राचीन ग्रन्थ है जिसे मुद्रित प्रति में ‘पूर्वभृद् बालभ्य प्राचीनतराचार्य कृत’ कहा गया है। इस पर पादलिप्तसूरिकृत टीका का भी उल्लेख मिलता है।^५ इस टीका के अवतरण मलयगिरि ने इस ग्रन्थ पर लिखी हुई अपनी संस्कृत टीका में दये हैं।^६ उपलभ्य ‘ज्योतिष-करण्डक’—प्रकीर्णक में ३७६ गाथाएँ हैं, जिनकी भाषा व शैली जैन महाराष्ट्री प्राकृत रचनाओं से मिलती है। ग्रन्थ के आदि में कहा गया है कि सूर्यप्रज्ञप्ति में जो विषय विस्तार से वर्णित है उसको यहाँ संक्षेप से पृथक् उद्धृत किया जाता है। ग्रन्थ में कालप्रमाण, मान, अधिक मास निष्पत्ति, तिथि निष्पत्ति, नक्षत्र, चन्द्र-सूर्य गति, नक्षत्र योग, मण्डल विभाग, अयन आवृत्ति, मुहूर्त, गति, ऋतु, विषुवत (अहोरात्रि समत्व), व्यतिपात, ताप, दिवस शुद्धि, अमावस, पूर्णमासी,

१ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ६६

२ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ ६२-६३

३ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ ६३

४ वही, पृष्ठ ६४

५ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ६८

६ प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १३१

प्रनष्टपर्व और पौरुषी ये इक्कीस पाहुड है।^१ पं० नेमिचन्द्र शास्त्री^२ ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में लिखा है कि यह प्राचीन ज्योतिष का मौलिक ग्रन्थ है। इसका विषय वेदांग ज्योतिष के समान अविकसित अवस्था में है। इसमें भी नक्षत्र लगन का प्रतिपादन किया गया है। भाषा एवं रचना गौली आदि के परीक्षण से पता लगता है कि यह ग्रन्थ ई० पू० ३००-४०० का है। इसमें लगन के सम्बन्ध में बताया गया है—

लग्नं च दक्खिणाय विमुवे सुवि अस्स उत्तरं अयणे ।

लग्नं साई विमुवेसु पञ्चसु वि दक्खिणे अयणे ॥

अर्थात्—अस्स यानि अश्विनी और साई यानि स्वाति ये नक्षत्र विषुव के लगन बताये गये हैं। यहाँ विशिष्ट अवस्था की राशि के समान विशिष्ट अवस्था के नक्षत्रों को लगन माना है।

इस ग्रन्थ में कृत्तिकादि, धनिष्ठादि, भरण्यादि, श्रवणादि एवं अभिजितादि नक्षत्र गणनाओं की समालोचना की गई है।

इसके समकालीन एवं बाद के जैनतर साहित्य में ज्योतिष की चर्चा है तथा स्वतन्त्र ज्योतिष के ग्रन्थ भी लिखे गये, जो रचयिता के नाम पर उन सिद्धान्तों के नाम से प्रसिद्ध हुए। बराहमिहिर ने अपने पंचसिद्धान्तिका नामक संग्रह ग्रंथ में पितामह सिद्धान्त, वसिष्ठ सिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त, पौलिश सिद्धान्त और सूर्य सिद्धान्त इन पाँच सिद्धान्तों का संग्रह किया है। डा० श्रीबो ने पंचसिद्धान्तिका की अंग्रेजी भूमिका में पितामह सिद्धान्त को सूर्यप्रजपति और ऋक्ज्योतिष के समान प्राचीन बताया है, लेकिन परीक्षण करने पर इसकी इतनी प्राचीनता मान्य नहीं पड़ती है। ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने पितामह सिद्धान्त को आधार माना है।

प्रस्तुत निबन्ध में इन पाँचों सिद्धान्तों की तथा ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुटिक सिद्धान्त की चर्चा करना विषयेतर ही होगा। अस्तु, यहाँ उनका नामोल्लेख ही पर्याप्त है। इसके साथ ही एक बात और स्पष्ट कर देना उचित होगा कि यह एक निबन्ध है, पुस्तक नहीं। अतः समस्त जैन ज्योतिष साहित्य का विवेचन सम्भव नहीं होगा। प्रमुख जैन ज्योतिषाचार्यों एवं उनके द्वारा रचित साहित्य का विवरण ही दिया जा सकेगा।

ऋषिपुत्र—ये जैन धर्मावलम्बी थे तथा ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान थे। इनके वंश आदि के सम्बन्ध में सम्यक् परिचय नहीं मिलता है। लेकिन Catalogue Catalogorum में इन्हें आचार्य गर्ग का पुत्र बताया है।^३ गर्ग मुनि ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। आर्यभट्ट के पहले हुए ज्योतिषियों में से गर्ग की चर्चा कई स्थानों पर आती है। महाभारत में लिखा है कि गर्ग महर्षि राजा पृथु के ज्योतिषी थे। उनको काल का ज्ञान विशेष रूप से अच्छा था। उनका मार्गी संहिता अब लुप्त हो गयी है, परन्तु सम्भव है गणित ज्योतिष के बदले इसमें फलित ज्योतिष की बातें ही अधिक रही हों। बराहमिहिर ने अपने फलित ज्योतिष के ग्रन्थ बृहत्संहिता में गर्ग से कई अवतरण दिये हैं।^४ श्री प्रकाशचन्द्र पाण्ड्या इनका समय ई० पू० १८० या १०० बताते हुए लिखते हैं, “भेरे ह्याल से ये गर्गमुनि के पुत्र नहीं बल्कि शिष्य हो सकते हैं।”^५ श्री नेमिचन्द्र शास्त्री लिखते हैं कि इनका (ऋषिपुत्र का) नाम भी इस बात का साक्षी है कि यह

१ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ६८

२ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ ६४-६५

३ पृष्ठ, ७३

४ विक्रम स्मृति ग्रंथ, पृष्ठ ७६०

५ बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रंथ, पृष्ठ २२७

६ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ १०४

किसी मुनि के पुत्र थे। ऋषिपुत्र का वर्तमान में एक 'निमित्तशास्त्र' उपलब्ध है। इनके द्वारा रची गई एक संहिता का भी मदनरत्न नामक ग्रंथ में उल्लेख मिलता है। इन आचार्यों के उद्धरण बृहत्संहिता की भट्टोत्पली टीका में मिलते हैं। इससे इनका समय बराहमिहिर के पूर्व में है। इन्होंने अपने बृहज्जातक के २६वें अध्याय के ५वें पद्य में कहा है, "मुनिमत्तान्यबलोक्य सम्यग्धोरा बराह-मिहिरो रुचिरांचकारा" इससे स्पष्ट है कि बराहमिहिर के पूर्व होरा सम्बन्धी परम्परा विद्यमान थी। इसी परम्परा में ऋषिपुत्र हुए। ऋषिपुत्र का प्रभाव बराहमिहिर की रचनाओं पर स्पष्ट लक्षित होता है।

संहिता विषय की प्रारम्भिक रचना होने के कारण ऋषिपुत्र की रचनाओं में विषय की गम्भीरता नहीं है। किसी एक ही विषय पर विस्तार से नहीं लिखा है; सूत्ररूप में प्रायः संहिता के प्रतिपाद्य सभी विषयों का निरूपण किया है। शकुनशास्त्र का निर्माण इन्होंने किया है। अपने निमित्तशास्त्र में इन्होंने पृथ्वी पर दिखाई देने वाले, आकाश में दृष्टिगोचर होने वाले और विभिन्न प्रकार के शब्द श्रवण द्वारा फलाफल का अच्छा निरूपण किया है। वर्षोत्पात, देवोत्पात, तेजोत्पात उल्कोत्पात, गन्धर्वोत्पात इत्यादि अनेक उत्पातों द्वारा शुभाशुभत्व की मीमांसा बड़े सुन्दर ढंग से इनके निमित्तशास्त्र में मिलती है।^१

कालकाचार्य—ये निमित्त और ज्योतिष के विद्वान् थे। ये मध्य देशान्तर्गत थे और यवन देशादि में गये थे तथा उस देश से रमल विद्या यहाँ लाये थे। इसका उल्लेख भोजसागरगणि नामक विद्वान् ने अपने संस्कृत भाषा के "रमलशास्त्र" विषयक ग्रंथ में किया है।^२ जैन परम्परा में ज्योतिष के प्रवर्तकों में इनका मुख्य स्थान है। यदि यह आचार्य निमित्त और संहिता निर्माण न करते तो उत्तरवर्ती जैन लेखक ज्योतिष को पापश्रुत समझकर अछूता ही छोड़ देते।^३

इसके बाद ज्योतिष के विकास की धारा आगे बढ़ती है। कुछ लोग ईस्वी सन् ६००-७०० के आसपास भारत में प्रश्न अंग का ग्रीक और अरबों के सम्पर्क से विकास हुआ बतलाते हैं तथा इस अंग का मूलाधार भी उक्त देशों के ज्योतिष को मानते हैं पर यह गलत मालूम पड़ता है। क्योंकि जैन ज्योतिष जिसका महत्वपूर्ण अंग प्रश्नशास्त्र है, ईस्वी सन् की चौथी और पाँचवीं शताब्दी में पूर्ण विकसित था। इस मान्यता में भद्रबाहु विरचित "अहं च्चूडामणिसार" प्रश्नग्रंथ प्राचीन और मौलिक माना गया है। आगे के प्रश्नग्रन्थों का विकास इसी ग्रंथ की मूलभूत पर हुआ प्रतीत होता है। जैन मान्यता में प्रचलित प्रश्नशास्त्र का विश्लेषण करने से प्रतीत होता है कि इसका बहुत कुछ अंश मनोविज्ञान के अन्तर्गत ही आता है। ग्रीकों से जिस प्रश्नशास्त्र को भारत ने ग्रहण किया है, वह उपर्युक्त प्रश्नशास्त्र से विलक्षण है।^४

ईसा की पाँचवीं सदी के उपरांत जैन ज्योतिष साहित्य में पर्याप्त अभिवृद्धि हुई। जैन ज्योतिषाचार्यों ने भी मुक्तहस्त से इस विषय पर अपनी कलम चलाई और यही कारण है कि आज जैन ज्योतिष ग्रंथों का विपुल भण्डार भरा पड़ा है। अब तो मात्र उनकी खोज, अध्ययन और प्रकाशन की आवश्यकता है। विस्तारभय के कारण मैं उन सबका यहाँ विवरण न देकर कुछ विशिष्ट जैन ज्योतिष साहित्य रचयिता और उनके ग्रंथों का नामोल्लेख ही करूँगा। यथा—

१ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ १०५

२ बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ २२७-२२८

३ भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ १०७

४ वही, पृष्ठ ११५

(१) महावीराचार्य—ये जैनधर्मावलम्बी थे एवं गणित के धुरन्धर विद्वान् थे। इनके द्वारा रचे गये ज्योतिषपटल एवं गणितसार नामक ग्रंथ मिलते हैं।

(२) चन्द्रसेन—इनके द्वारा रचित 'केवलज्ञान होरा' नामक एक विशालकाय महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

(३) श्रीधराचार्य—ये कर्णाटक प्रांत के निवासी थे। इनके ग्रंथों के नाम इस प्रकार मिलते हैं—(१) जातकतिलक या होराशास्त्र (२) ज्योतिर्ज्ञानविधि या श्रीकरण (३) गणितसार या त्रिशतिका इनके द्वारा बीजगणित एवं लीलावती नामक ग्रंथों की रचना का भी उल्लेख मिलता है।

(४) दुर्गदेव—ये उत्तर भारत में कुम्भनगर के रहने वाले थे। इन्होंने अपने रिष्टसमुच्चय की रचना सं० १०८६ में की। अन्य रचनाओं में अर्द्धकरण और मंत्रमहोदधि है जो कि प्राकृत में है।

(५) मल्लिषेण—इनका ग्रंथ 'आयसद्भाव' प्रश्नशास्त्र फलित ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

(६) नरचन्द्र उपाध्याय—इन्होंने ज्योतिषशास्त्र के अनेक ग्रन्थों की रचना की है। वर्तमान में इनके (१) वेडाजातकवृत्ति, (२) प्रश्नशतक, (३) प्रश्न चतुर्विंशतिका, (४) जन्म समुद्र-सटीक, (५) लग्नविचार और (६) ज्योतिष प्रकाश नामक ग्रंथ उपलब्ध हैं।

(७) समन्तभद्र—इनके द्वारा लिखा हुआ ग्रंथ 'केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि' है। रचना शैली की दृष्टि से ग्रंथ का रचनाकाल १२वीं-१३वीं सदी प्रतीत होता है।

(८) हेमप्रभसूरि—इनके द्वारा रचित ग्रंथ त्रैलोक्य प्रकाश है। 'मेघमाला' नामक ग्रंथ भी आपने ही लिखा है।

(९) हरिकलश—ये खरतरगच्छ के थे। इन्होंने ई० सन् १५६४ में नागौर में ज्योतिषसार नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना प्राकृत में की है।

(१०) मेघविजयगणि—ये ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनका समय वि० सं० १७३७ के आसपास माना जाता है। इनके द्वारा रचित मेघमहोदय या वर्ष प्रबोध, उदय दीपिका, रमलशास्त्र और हस्तीसंजीवन आदि मुख्य हैं। प्रश्नमुन्दरी और विशायंत्रविधि भी इनके द्वारा रचे गये।

(११) महिमोदय—इनका समय वि० सं० १७२२ के आसपास बताया जाता है। ये गणित और फलित दोनों प्रकार के ज्योतिष के विद्वान् थे। इनके द्वारा रचित ज्योतिष रत्नाकर, गणित साठ सौ, पंचाङ्गानयनविधि ग्रंथ कहे जाते हैं।

(१२) उभयकुशल—इनका समय सं० १७३७ के लगभग माना जाता है। ये फलित ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने विवाह पटल, चमत्कार चितामणि टवा नामक दो ज्योतिष ग्रंथों की रचना की है।

(१३) लब्धिचन्द्रगणि—ये खरतरगच्छीय कल्याणनिधान के शिष्य थे। इन्होंने वि० सं० १७५१ के कार्तिक मास में जन्मपत्री पद्धति नामक एक व्यवहारोपयोगी ज्योतिष का ग्रंथ बनाया है।

(१४) बाघजी मुनि—ये पार्श्वचन्द्र गच्छीय शाखा के मुनि थे। इनका समय वि० सं० १७८३ माना जाता है। इन्होंने 'तिथि सारिणी' नामक एक ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखा है, इसके अतिरिक्त इनके दो तीन फलित ज्योतिष के भी मुहूर्त्त सम्बन्धी ग्रंथों का पता लगता है।

(१५) यशस्वतसागर—इनका दूसरा नाम जसवन्तसागर भी बताया जाता है। ये ज्योतिष, न्याय, व्याकरण और दर्शनशास्त्र के धुरन्धर विद्वान् थे। इन्होंने ग्रहलाघव के ऊपर

वार्तिक नाम की टीका लिखी है। वि० सं० १७६२ में जन्म कुण्डली विषय को लेकर 'यशोराज पद्धति' नामक एक व्यवहारोपयोगी ग्रंथ लिखा है।^१

इसी प्रकार और भी अनेकों जैन ज्योतिषाचार्य हो चुके हैं जिन्होंने जैन ज्योतिष साहित्य में अभिवृद्धि की है। एक बात स्पष्ट है कि प्राचीनकाल से ही जैन ज्योतिषाचार्य इस विज्ञान में रुचि लेते रहे हैं। इसकी प्राचीनता पर डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने लिखा है, "जैन ज्योतिष की प्राचीनता का एक प्रमाण पंचवर्षात्मक युग में व्यतीपात आनयन की प्रक्रिया है। वेदांग ज्योतिष से भी पहले इस प्रक्रिया का प्रचार भारत में था।"^२ डा० शास्त्री ने आगे लिखा, "नक्षत्रों के सम्बन्ध में जितना ऊहापोह जैनाचार्यों ने किया है, उतना अन्य लोगों ने नहीं। प्रथमव्याकरणांग में नक्षत्र योगों का वर्णन विस्तार के साथ किया है। इसमें नक्षत्रों के कुल, उपकुल और कुलोपकुल का निरूपण बताया है।"^३ जैनाचार्यों ने ज्योतिष के विविध अंगों पर प्रकाश डाला है। डॉ० शास्त्री कहते हैं, "विषय विचार की दृष्टि से जैन ज्योतिष को प्रधानतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—एक गणित और दूसरा फलित। गणित ज्योतिष में सैद्धांतिक दृष्टि से गणित का महत्वपूर्ण स्थान है, ग्रहों की गति, स्थिति, वक्री, मार्गी, मध्यफल, मन्दफल, सूक्ष्मफल, कुज्या, त्रिज्या, बाण, चाप, व्यास, परिधिफल, एवं केन्द्रफल आदि का प्रतिपादन बिना गणित ज्योतिष के नहीं हो सकता है। आकाश मंडल में विकीर्णित तारिकाओं का ग्रहों के साथ कब कैसा सम्बन्ध है, इसका ज्ञान भी गणित प्रक्रिया से ही सम्भव है जैनाचार्यों ने गणित ज्योतिष सम्बन्धी विषय का प्रतिपादन करने के लिए पाटीगणित, वीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, गोलीय रेखागणित, चापीय एवं वक्रीय त्रिकोणमिति, प्रतिभागणित, श्रृंगोल्लतिगणित, पंचांगनिर्माण गणित, जन्मपत्रनिर्माण गणित, ग्रहयुति, उदयास्त सम्बन्धी गणित एवं मन्वादि साधन सम्बन्धी गणित प्रतिपादन किया है।"^४

१ क्रमांक १ से १५ तक ज्योतिषाचार्यों के द्वारा रचित ज्योतिष साहित्य के विशेष अध्ययन हेतु देखें—

- (१) भारतीय ज्योतिष—श्री नेमिचन्द्र शास्त्री
- (२) जैन साहित्य और इतिहास - पं० नाथूराम प्रेमी
- (३) गणितसार संग्रह - सं० डा० ए० एन० उपाध्ये व अन्य
- (४) Ganitatilak by Sripati—Edt. H. R. Kapadia.
- (५) जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १४, कि० १, २, भाग १३ कि० २
- (६) दुर्गादेवाचार्यकृत शिष्टसमुच्चय—सं० अ० स० गोपाणी
- (७) Jainism in Rajasthan—Dr. K. C. Jain
- (८) केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि—सं० डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री
- (९) जैन वाङ्मय का प्रामाणिक सर्वेक्षण—सोहनी
- (१०) Trailokya Prakash—Edt. आचार्य रामस्वरूप शर्मा
- (११) जिनरत्नकोश - प्रो० एच० डी० बेलणकर
- (१२) ज्योतिषसार संग्रह—सं० पं० भगवानदास जैन
- (१३) हीरकलश जैन ज्योतिष—सं० शास्त्री दि० म० जानी
- (१४) प्राकृत साहित्य का इतिहास—डा० जगदीशचन्द्र जैन
- (१५) History of Classical Sanskrit Literature—N. Krishnamachariar.

२ केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि, प्रस्तावना, पृष्ठ ३

३ वही, पृष्ठ ४

४ वही, पृष्ठ ६

उपर्युक्त विवरण को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैनाचार्यों ने ज्योतिष पर पर्याप्त रूप से साहित्य सृजन कर दिशादान दिया है। अब यदि उनके द्वारा दिये गये मार्गदर्शन का लाभ हम नहीं उठाते हैं, तो यह हमारा दुर्भाग्य ही है। आज भी जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत अनेकानेक ग्रंथ छिपे हुए पड़े हैं। ऐसे छिपे हुए ग्रंथों में अन्य विषयों के साथ-साथ ज्योतिष के ग्रंथों की भी उपलब्धि सम्भव है।

जैनाचार्यों ने ज्योतिष साहित्य की अपनी गंगा को न केवल उत्तरी भारत में ही बहाया वरन् उसका प्रसार हमें दक्षिण भारत में भी मिलता है। इससे स्पष्ट है कि जैन ज्योतिष साहित्य जितना प्राचीन है, उतने ही व्यापक रूप से लिखा भी गया है। अब तो केवल उसको प्रकाश में लाने की आवश्यकता है जिससे जैन मान्यताओं का उद्घाटन हो सके। विश्वास है कि जिज्ञासु विद्वान एवं अनुसन्धानकर्ता इस दिशा में कुछ करेंगे।



जैनधर्म में ज्योतिष

□ मदनमोहन जन 'पवि'

जैनधर्म अत्यन्त विशद, प्राचीनतम है। ज्योतिष का अभिन्न सम्बन्ध धर्मान्तर्गत रहा है। ज्योतिष प्रदान करने वाले सूर्य चन्द्रादि ग्रहों का असर अनादिकाल से होता रहा है। पृथ्वी स्वयं सूर्य का एक टुकड़ा है। सदियों के बाद शीतल बना। ज्वार, भाटा आदि ग्रहों के ही परिणाम हैं। वर्षागमन सूर्य के पूर्ण तपित होने पर होता है। जैन मतानुसार ३२ सूत्र, महावीर स्वामी की वाणी का सार है। इनमें चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि मुख्य ग्रहादि विवेचनात्मक सूत्र हैं। सूर्य-चन्द्र का विस्तृत वर्णन है। गति, संख्या प्रभावादि का वर्णन है।

जैनधर्म में अनेक सूर्य-चन्द्रों, नक्षत्रों, तारों की प्रामाणिकता है। जम्बूद्वीप भरतक्षेत्र में दो सूर्य व दो चन्द्रों की कल्पना की गई है। दोनों चर ग्रह हैं। वैज्ञानिकों के हिसाब से पृथ्वी चर है। चन्द्र-सूर्य स्थिर हैं। वैज्ञानिकों ने पृथ्वी को गोल माना है। जैनधर्म में धाती के समान चपटी माना गया है। सूर्य उदयास्त के समय सूर्य की गति ६ हजार योजन की होती है। एक मुहूर्त में सूर्य ५००० योजन से कुछ अधिक चलता है। दो सूर्य सम्पूर्ण मंडल पर एक अहोरात्रि में घूमते हैं। नक्षत्रादि के तारे, आकार, गोत्रादि निम्न प्रकार हैं—

नक्षत्र नाम	तारे	आकार	गोत्र
१ अश्विनी	३	अश्व स्कंधाकार	अस्वायन
२ भरणी	३	स्त्री योनि आकार	भगवेश
३ कृत्तिका	६	गृहाकार	अग्निवेषायन
४ रोहिणी	५	रथाकार	गौतम गोत्र
५ मृगशिर	३	मृगमस्तकाकार	भारद गोत्र
६ आर्द्रा	१	रुधिर बिन्दुवत्	लोहियाणस
७ पुनर्वसु	५	चूलाकार	वसिष्ठ
८ पुष्य	३	वर्धमानाकार	उपचायणस
९ आश्लेषा	६	ध्वजाकार	मांडवायस
१० मघा	७	नक्षत्राकार	पिगला
११ हस्त	५	हथेली आकार	कोसिय
१२ चित्रा	१	महुए के फूल	दभियायण
१३ स्वाति	१	खीलाकार	चामर छत्र
१४ विशाखा	५	सादपिणी	अंगायणस
१५ अनुराधा	४	एकावली	गोवालयाणस
१६ ज्येष्ठा	३	गजदंताकार	तिगच्छायस
१७ मूल	११	बिच्छु आकार	कात्यायणस

१८ पूर्वाषाढा	४	हस्तीचालवत्	विषायणस
१९ उत्तराषाढा	४	बैठे सिंहवत्	वाघ्रवचायणस
२० अभिजित्	३	गोशृंगाकार	मोगलायन
२१ श्रवण	३	कावड़ाकार	संखायण
२२ धनिष्ठा	५	पक्षी पिजराकार	अग्निवेसायण
२३ शतभिषा	१००	पुष्पराशि आकृति	कुण्डली लायण
२४ पूर्वभाद्रपद	२	अर्ध वापिकाकार	कनियस
२५ उत्तराभाद्रपद	२	अर्ध वापिकाकार	धनंजयस
२६ रेवती	३२	नावाकार	पुष्यायन
२७ पूर्वाफाल्गुनी	२	अर्ध पत्यंकाकार	गोलवायण
२८ उत्तराफाल्गुनी	२	अर्ध पत्यंकाकार	काश्यप

लवण समुद्र वर्तुलाकार माना गया है। शास्त्रों राहु के निम्न नाम प्रचलित हैं— सिधाष्टक, जटिल, क्षुल्लक, खर, ददुर, मगर, मच्छ, कच्छप, कृष्ण सर्प, आदि। राहु का विमान ५ वर्ण वाला माना है। वे क्रमशः निम्न हैं—कृष्ण, नील, रक्त, पित्त, शुक्लादि।

स्वप्न संसार की भी विवेचना जैन ज्योतिष में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। तीर्थंकर भगवान् जब गर्भ में आते हैं तो उनकी माता को निम्न प्रकार के १४ स्वप्न आते हैं—

हस्ति, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, फूलमाला, चन्द्र, सूर्य, ध्वजा, कलश, सरोवर पद्मयुक्त, क्षीर समुद्र, देव विमान, रत्न राशि, निर्धूम ज्वालादि। राजगृही के पुण्यपाल को ६ स्वप्न आये थे। उनका विशद् वर्णन भगवान् महावीर ने फरमाया था। जैनधर्मानुयायी राजा चन्द्रगुप्त को १६ स्वप्न आये थे। भद्रबाहुजी ने उनका फलित कथन किया था।

जैनाचार्य जयमलजी महाराज साहब की माता ने हँसता हुआ चन्द्र देखा। बाद में एक दिव्याकृति दिखाई दी। वह मुँह में प्रवेश कर गई। जयमल जी के पिता की माता ने स्वप्न कहा। जयमलजी के पिताजी ने स्वप्न शुभ है, बताया। कुछ दिन बाद महिमा देवी के गर्भ से जयमलजी महाराज साहब का जन्म हुआ। जम्बू राजकुमार की माता ने स्वप्न में गर्भावस्था में जामुन देखे। पुत्र जन्म हुआ। नाम जम्बूकुमार रक्खा। वे बड़े होकर संत बन गये।

वीतशोका नगरी की महारानी धारिणी ने स्वप्न में सिंह देखा। गर्भ से महाबलकुमार का जन्म हुआ, जो संतात्मा बने।

पूज्य जैनाचार्य स्वर्गीय चौथमलजी की माता ने गर्भावस्था में एक आम्रवृक्ष फलों से लदा देखा। कुक्षि से जैनाचार्य जैसे महान् आत्मा का जन्म हुआ। मेवाड़ पूज्य स्वर्गीय मोतीलाल जी महाराज साहब की माता ने स्वप्न में मोतियों की मालाएँ देखीं। पुत्र रत्न का जन्म हुआ। नामकरण श्री मोतीलाल किया। ये मेवाड़ पूज्य महान् संत बने।

जैनधर्म में ज्योतिष का मर्म विद्यमान है। स्वप्न पूर्वजन्मकृत संस्कारों के अनुसार आते हैं। चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति नामक ग्रन्थ में दोनों ग्रहों का विस्तृत विवेचन है। जैनधर्म में ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

नोट :— मघा नक्षत्र के बाद पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी क्रम से पढ़े जायें।

(१) नक्षत्र गोत्रादि—सप्तदश चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्र, षष्ठ उपांग, पृ० २३०

(२) नक्षत्र के तारे व आकृति अष्टादश सूर्य-प्रज्ञप्ति, सप्तम उपांग, पृ० १६२

(३) राहु वर्णन—सूर्यप्रज्ञप्ति, पृ० ३८७

जैन ज्योतिष एवं ज्योतिषशास्त्री

□ लक्ष्मीचन्द्र जैन

गणित प्राध्यापक, गवर्नमेंट कॉलेज, खंडवा (म० प्र०)

जैन श्रुति में ज्योतिष ज्ञान का प्रारम्भ कर्मभूमि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम सूर्य एवं चन्द्रमा के उदय होने पर प्रथम कुलकर द्वारा मनुष्यों की उत्कंठा दूर करने हेतु होना प्रतीत होता है। किन्तु युग तथा कल्पकालों की अवधारणाएँ उक्त ज्ञान की परम्परा को सुदूर अनादि की ओर इंगित करती हैं। आज के सांख्यिकी सिद्धान्त पर आधारित ज्योतिष की खोजें युग सिद्धान्त को पुष्ट कर रही हैं। रोजर्स बिलियर्ड द्वारा प्रस्तुत फ्रेंच भाषा के शोध-निबन्ध में इसका विश्लेषण किया गया है।^१

ऐसा प्रतीत होता है कि वर्द्धमान महावीर युग में विद्यानुवाद पूर्व तथा परिकर्मों का संकलन अथवा निर्माण बड़े पैमाने पर हुआ होगा और इस कार्य में वेबिलन तथा सुमेरु की हजारों वर्ष प्राचीन अभिलेखबद्ध सामग्री एक स्रोत रूप में उपयोगी सिद्ध हुई होगी। आधुनिक पामीर एवं रूस के दक्षिणी कोरों के निवासी भारतीयों के सम्पर्क में जो इस ज्ञान का आदान-प्रदान करते रहे वह इतिहास की वस्तु नहीं बरन् मैत्री के अंचल का आभार बन कर रह गयी।^२

गणित ज्योतिष का सम्पूर्ण रूप निखारने वाले भारतीय ग्रंथ आर्यभट्ट से पूर्व के अनुपलब्ध हैं। केवल जैन साहित्य के करणानुयोग सम्बन्धी परम्परा से चले आये ग्रंथों में यत्र-तत्र कुछ ऐसे तत्त्व बिखरे प्राप्त हो जाते हैं जिनसे ऐसे सूत्रों का बोध हो जाता है जो जैन ज्योतिष के अतुलनीय वैभव के परिचायक सिद्ध होते हैं। वे सर्वथा मौलिक प्रतीत होते हैं और उन कड़ियों को जोड़ते प्रतीत होते हैं जिनके टूट जाने से ज्योतिष इतिहास अंधकार में डूबता चला गया। इस सम्बन्ध में कुछ शोध लेख प्रकाशित हो चुके हैं और शोध-प्रबन्ध निर्मित किये जा रहे हैं जिनके आधार पर भविष्य इतिहास के अनेक पहलू जैन आचार्यों के अभूतपूर्व अंशदानों को प्रकाश में लाने का उद्देश्य पूरा कर सकेंगे।^३

१ Roger Billiard, L' Astronomie Indienne, Paris, 1971.

२ देखिये—

Neugebauer, O., The Exact Science in Antiquity, Providence, 1957.

३ देखिये—

(अ) Das, S. R., The Jaina Calendar, The Jaina Antiquary, Arrah, Vol. 3. No. ii, Sept. 1973, pp. 31-36.

(ब) Agrawal, M. B., Part III, Jaina Jyotisa, Thesis on "Ganita evam Jyotisa ke Vikasa men Jainacaryon Ka Yogadana." University of Agra, August, 1972, pp. 314-341.

(स) Jain L. C. Tiloyapannatti ka Ganita, Jivaraj Granthmala, Sholapur, 1958, 1-109.

प्राकृत ग्रंथों के निर्माण एवं निर्माणकर्त्ताओं के काल निर्णय की समस्या अत्यधिक गम्भीर है तथापि परम्परा का काल निर्णय कठिन वस्तु नहीं है। तिलोयपण्णत्ती तथा त्रिलोकसार विषयक ज्योतिष अधिकारों पर लेखक द्वारा प्रकाश डाला जा चुका है।^४ इतर ग्रंथों सम्बन्धी यह सामग्री उनकी यथायोग्य रूप में पूरक सिद्ध हो सकेगी।

ज्योतिष ज्ञान हेतु काल विषयक सामग्री वीरसेनाचार्य कृत धवला में उपलब्ध है जो पृष्ठ ३१३ से अगले पृष्ठों में सुविस्तररूप में वर्णित है। यह कालानुयोगद्वारा से अवतरित है।^५ (धवला, पृ० ४)। समय, निमिष, काष्ठा, कला, नाली तथा दिन, रात्रि, मास, ऋतु, अयन और संवत्सर, इत्यादि काल को जीव, पुद्गल एवं धर्मादिक द्रव्यों के परिवर्तनाधीन माना है। यहाँ परमाणु से लेकर सूर्य चन्द्रादि के व्यवहार सम्मिलित हैं।

उपर्युक्त के सिवाय युग, पूर्व, पर्व, पत्योपम, सागरोपम तथा सूर्य के अनन्तानन्त प्रक्षेपों का भी वर्णन महत्त्वपूर्ण है। (तिलोयपण्णत्ती १, २)। पन्द्रह मुहूर्तों के नाम पूर्व परम्परागत प्रतीत होते हैं : रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, दैत्य, वैरोचन, वैश्वदेव, अभिजित, रोहण, बल, विजय, नैऋत्य, वारुण, अर्यमन् और भाग्य। ये मुहूर्त दिन सम्बन्धी हैं। रात्रि सम्बन्धी मुहूर्त ये हैं : सावित्र, धुर्य, वात्रक, यम, वायु, हुताशन, भानु, वैजयन्त, सिद्धार्थ, सिद्धसेन, विशोभ, योग्य, पुष्पदन्त, सुगन्धर्व तथा अरुण। कभी दिन को छह मुहूर्त जाते हैं और कदाचित् रात्रि में छह मुहूर्त जाते हैं (धवला, पृ० ४, पृ० ३१६)। नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा तिथियाँ होती हैं। इन पंच दिवसों से पंचदश दिवस वाला पक्ष बनता है। इन तिथियों के देवता क्रम से चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, आकाश और धर्म होते हैं। नन्दा आदि तिथियों का नाम प्रतिपदा से प्रारम्भ किया जाता है। द्वितीया—भद्रा, तृतीया—जया है, इत्यादि यह चक्र चलता रहता है। इनका आधार चन्द्र स्पष्ट प्रतीत होता है। पाँच वर्षों के युग के चक्र कल्प तक ले जाते हैं। काल का आधार मनुष्यक्षेत्र सम्बन्धी सूर्यमण्डल किया गया है (वही, पृ० ३२०)। अतीत, अनागत और वर्तमान रूप काल के अतिरिक्त गुणस्थिति काल, भवस्थिति काल, कर्मस्थिति काल, कायस्थिति काल, उपवाद काल और भावस्थिति काल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और आधुनिक विज्ञान के काल विषयक ज्ञान में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकते हैं (वही, पृ० ३२२)। द्रव्य (कर्म पुद्गल एवं नोकर्म पुद्गल) परिवर्तन, क्षेत्र परिवर्तन, काल परिवर्तन, भव परिवर्तन और भाव परिवर्तन काल आधुनिक काल अवधारणाओं में क्रान्ति

- (द) नाहटा, अ० चं०, जैन ज्योतिष और वैद्यक ग्रंथ, श्री जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा, ४२, सितम्बर १९३७, पृ० ११०-११८
 (इ) शास्त्री, ने० चं०, ग्रीकपूर्व जैन ज्योतिष विचारधारा, ब्र० चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, आरा, १९५४, पृ० ४६२-४६६
 (फ) शास्त्री, ने० चं०, भारतीय ज्योतिष का पोषक जैन ज्योतिष, वर्षी अभिनन्दन ग्रन्थ, सागर, १९६२, पृ० ४७८-४८४
 (क) जैन, ने० चं०, जैन ज्योतिष साहित्य, आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, खण्ड ii, १९६१, पृ० २१०-२२१

४. तिलोयपण्णत्ती—यतिवृषभ, भाग (१) १९४३, भाग (२) १९५१; त्रिलोकसार—नेमिचन्द्र, बम्बई (१९२०) सं०, बम्बई, (१९१८) हिन्दी; जम्बूद्वीप-पण्णत्तिसंग्रहो—पडमण्दि, शोलापुर, १९५८; सूरपण्णत्ति, सूरत, १९१६; जम्बूद्वीपपण्णत्ति, बम्बई १९२०, गणितानुयोग, सांडेराव, १९७१; इत्यादि ग्रंथ अवलोकनीय हैं।

५. पुष्पदंत एवं भूतबलि, षट्खण्डागम, धवला टीका(वीरसेनाचार्य कृत) पृ० ४, अमरावती, १९४२

ला सकते हैं। ये काम्प्यूटर के कार्य को अधिक विस्तृत कर सकते हैं। आबाधा काल सम्बन्धी सामग्री नाभि-विज्ञान के टाइम-लेग सम्बन्धी ज्ञान को प्रस्फुटित कर सकती है।

प्रश्नव्याकरण (१०.५) में समस्त नक्षत्रों को कुल, उपकुल और कुलोपकुलों में विभाजित किया गया है। यह प्रणाली महत्त्वपूर्ण है। कुल संज्ञा धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, मूल और उत्तराषाढा को दी गयी है। उपकुल संज्ञा वाले श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, ज्येष्ठा और पूर्वाषाढा हैं। कुलोपकुल संज्ञक अभिजित्, शतभिष, आर्द्रा एवं अनुराधा हैं। यह विभाजन पूर्णमासी को होने वाले नक्षत्रों के आधार पर किया गया प्रतीत होता है। प्रत्येक मास की पूर्णमासी को उस मास का प्रथम नक्षत्र कुल संज्ञक, दूसरा उपकुल संज्ञक और तीसरा कुलोपकुल संज्ञक होता है। श्रावण (धनिष्ठा, श्रवण और अभिजित्), भाद्रपद (उत्तराभाद्रपद, पूर्वाभाद्रपद, शतभिष), आश्विन (अश्विनी, रेवती), कार्तिक (कृत्तिका, भरणी), अगहन या मार्गशीर्ष (मृगशिरा, रोहिणी), पौष (पुष्य, पुनर्वसु, आर्द्रा), माघ (मघा, आश्लेषा), फाल्गुन (उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाफाल्गुनी), चैत्र (चित्रा, हस्त), वैशाख (विशाखा, स्वाति), ज्येष्ठ (ज्येष्ठा, मूल, अनुराधा), आसाढ़ (उत्तराषाढा, पूर्वाषाढा) ये १२ माह निर्मित हुए। ध्यान रहे कि नक्षत्र पद्धति विश्व में भारतीय अंशदान के रूप में अप्रतिम है। इन १२ मासों के आधार पर १२ राशियों का निर्माण कठिन नहीं रहा होगा। जैन ज्योतिष में १०६८०० गगनखण्डों के दोनों ओर वास्तविक तथा कल्पित सूर्य चन्द्र, जम्बूद्वीप में स्थापित कर, प्रक्षेपों में उनकी गलियों का निर्धारण अद्वितीय है। सूर्य का ३० मुहूर्त विषयक गमन १८३० गगनखण्डों में प्रति-मुहूर्त तो सरल है। किन्तु त्रिलोक-सार में नवीन काल्पनिक सूर्य को ऋतुराहु रूप में लेकर उसका गमन १८२६ $\frac{३३}{३}$ गगनखण्ड प्रति-मुहूर्त लेकर जो खोज हुई होगी वह राशि सम्बन्धी विषय खोज को जैन खोज निरूपित करती है। इनके आधार पर फलित ज्योतिष के विकास की बेबिलन, ग्रीक परम्परा ईस्वी पूर्व ३०० से ३०० पश्चात् दृष्टिगत होती है।^६

समवायाङ्ग (स० ७, सू० ५) के नक्षत्रों की ताराएँ और उनके दिशाद्वार का वर्णन मिलता है। यथा : पूर्वद्वार (कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा); दक्षिणद्वार (मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा); पश्चिमद्वार (अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित् और श्रवण); उत्तरद्वार (धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी) चार द्वार हैं। इनके सिवाय ज्योतिष विषयक सन्दर्भ १.६, २.४, ३.२, ४.३ तथा ५.६ में उपलब्ध हैं। ठाणांग में चन्द्रमा के साथ स्पर्शयोग करने वाले नक्षत्रों में कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा हैं। इस योग का फल तिथियों के अनुसार विभिन्न प्रकार का होता है। नक्षत्रों की अन्य संज्ञाएँ तथा विभिन्न दिशाओं से चन्द्रमा के साथ योग करने वाले नक्षत्रों के नाम और उनके फल विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। इसमें ८८ ग्रहों के नाम भी उपलब्ध हैं जो तिलोयपण्णत्ती की सामग्री से तुलनीय हैं। प्रश्नव्याकरण में नौ ग्रहों का वर्णन है पर गमन सम्बन्धी विवरण यहाँ भी नष्ट गया है। (ठाणांग; पृ० ६८-१००, समवायांग, स० ८८.१)। समवायांग आदि सभी ग्रंथों में ग्रहण का कारण पर्वराहु चन्द्र के लिए और केतु सूर्यग्रहण का कारण माना गया है (समवायांग, स० १५.३)। निश्चित ही, राहु एवं केतु काल्पनिक गणितीय साधन की वस्तु रहे हैं जैसा कि ऋतुराहु के सम्बन्ध में पूर्वोल्लेख है। दिनवृद्धि और दिनह्रास सम्बन्धी सामग्री बेबिलन और सुमेरुवर्ती स्थलों के लिए प्रयुक्त मानी गयी है जो

६ Jain, L. C., The Kinematic Motion of Astral Real and Counter Bodies in Trilokasara, I. J. H. S., 11.1, 1976, pp. 58-74.

समवायांग तथा अन्य प्राकृत करणानुयोग सम्बन्धी ग्रंथों में उपलब्ध है। (वही, स० ८८४)। इस प्रकार जैनागम में जो विवरण मिलता है वह गगनखण्ड तथा योजन के कोणीय माप तथा दूरीय माप के सम्बन्ध में गणितीयरूपेण प्रक्षिप्त है तथा रहस्यमय होते हुए सर्वथा यकता है। फलित ज्योतिष में तिथि, नक्षत्र, योग, करण, वार, समयशुद्धि, दिनशुद्धि की चर्चाएँ किस प्रकार विकसित हुई होंगी—इस हेतु अनेक ग्रंथों का अनुवाद कार्य लाभदायक सिद्ध हो सकेगा। इस ओर अभी ध्यान नहीं गया है तथा शोधकेन्द्रों में ज्योतिष एवं गणित का संचालन अब अत्यन्त आवश्यक है।

प्रायः ई० पू० ३०० से ई० पू० ६०० (आदिकाल) सम्बन्धी रचनाओं में तिलोय-पण्णत्ती, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, अंगविज्जा, लोकविजययन्त्र, एवं ज्योतिषकरण्डक^७ उल्लेखनीय हैं। इन सभी में पंचवर्षात्मक युग मानकर तिथि, नक्षत्रादि का साधन किया गया है। यह युग श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से, जत्र चन्द्रमा अभिजित नक्षत्र पर रहता है, प्रारम्भ होता है। सूर्यप्रज्ञप्ति में सूर्य के गमनमार्ग, परिवार, आयु के विवरण के साथ पंचवर्षात्मक युग के अयनों के नक्षत्र, तिथि और मास का विवरण दिया गया है। चन्द्रप्रज्ञप्ति में सूर्य की प्रतिदिन की योजनात्मक गति निकाली गयी है, तथा उत्तरायण और दक्षिणायन की वीथियों का अलग-अलग विस्तार निकाल कर सूर्य चन्द्र की गतियाँ निश्चित की गयी हैं। यही विवरण तिलोयपण्णत्ती में भी मिलता है। चन्द्रप्रज्ञप्ति में चन्द्र और सूर्य का संस्थान और तापक्षेत्र का संस्थान तिलोयपण्णत्ती सदृश वर्णित है। सोलहो वीथियों में चन्द्रमा का अकार समचतुर्ष गोल बतलाया गया है। उन्हें युगारंभ में समचतुरस्र और उदय होने पर वर्तुल बतलाया है। ये अर्धगोलीय हैं। यह दृष्टिगत प्रक्षेप है। वेदांग ज्योतिष की अयन पद्धति भिन्न है।

छायासाधन विधि से दिनमान निकालने की विधि का वर्णन चन्द्रप्रज्ञप्ति (प्र० ६५) में मिलता है। अर्धपुरुष प्रमाण छाया होने पर दिनमान का तृतीयांश व्यतीत हो जाता है। दोपहर के पूर्व यही छायाप्रमाण ३ दिन अवशेष और दोपहर बाद ३ दिन अवशेष बतलाया है। पुरुष प्रमाण छाया होने पर ३ दिन शेष, तथा डेढ़ पुरुष प्रमाण छाया ३ दिन शेष बतलाती है। पुरुष छाया के सिवाय गोल, त्रिकोण, लम्बी-चौकोर आदि वस्तुओं की छाया से दिनमान को निकाला जाता है। यह त्रिकोणमिति सम्बन्धी आकलन है। इसमें चन्द्रमा के साथ तीस मुहूर्त तक योग करने वाले नक्षत्र श्रवण, घनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, कुसिका, मृगशिर, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढा है। पैंतालीस मुहूर्त तक उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराषाढा योग करते हैं तथा पन्द्रह मुहूर्त तक का योग चन्द्र के साथ शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा करते हैं। चन्द्रप्रज्ञप्ति (१६वाँ प्राभृत) में चन्द्र को स्वप्रकाशित बतलाकर इसके घटने-बढ़ने का कारण स्पष्ट किया है। यह आधुनिक सिद्धान्त नहीं है। त्रिलोकसार में उसका गमन ही कलाओं का कारण बतलाया गया है। १८वाँ प्राभृत सूर्यादि ग्रहों की चित्रा पृथ्वीतल से ऊँचाई प्रदर्शित करता है जो उदय रूप से ली गई है।

ज्योतिषकरण्डक में अयन तथा नक्षत्र लग्न का विवरण है। यह लग्न निकालने की प्रणाली मौलिक है :

लग्नं च दक्षिणाय विमुवे सुत्रि अस्स उत्तरं अयणे ।

लग्नं साई विमुवेसु पंचसु चि दक्षिणे अयणे ॥

अर्थात् अश्विनी और स्वाति ये नक्षत्र विषुव लग्नं बताये गये हैं। जिस प्रकार नक्षत्रों के विशेष विभाजन समूहों को राशि कहा जा सकता है, उसी प्रकार नक्षत्रों की इस विशिष्ट अवस्था को लग्न बतलाया गया है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल सम्भवतः ई० पूर्वं हो सकता है।

अष्टांग निमित्त का संक्षिप्त विवरण अंगविज्ञा का विषय है जो कुषाण-गुप्त युग के संधिकाल में निर्मित हुआ प्रतीत होता है। शरीर के लक्षणों से अथवा अन्य निमित्त या चिह्नों से शुभाशुभ फल का कथन है। इसमें साठ अध्याय हैं। ग्रह प्रवेश, यात्रारंभ, वस्त्र, यान, धान्य, चर्या चेष्टा, प्रवास, आदि का विवरण ४५वें अध्याय में मिलता है। ५२वें अध्याय में ज्योतिष पिंडों, इन्द्र धनुष, विद्युत् काल आदि के निमित्तों के शुभाशुभ दिये गये हैं (अंगविज्ञा पृ० २०६-२०६)।

लोकविजयग्रन्थ में ३० गाथाएँ हैं। लोक में सुभिक्ष, दुभिक्ष का भविष्य निर्णय किया गया है। १४५ से १५३ तक के ध्रुवांकों द्वारा स्वस्थान का शुभाशुभ फल का वर्णन मिलता है।

गर्दभिल्ल के समकालीन, ईस्वी पूर्व में हुए कालकाचार्य का उल्लेख वराहमिहिर द्वारा बृहज्जातक में किया गया है। यह ग्रन्थ कालक संहिता है। निशोथचूर्णि तथा आवश्यकचूर्णि से भी इनके ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान पर प्रकाश पड़ता है। (भारतीय ज्योतिष, पृ० १०७)। उनके आस-पास हुए उमास्वामी (स्वाति), द्वारा तत्त्वार्थसूत्र में मेरु की 'ख' अक्ष मान कर प्रक्षेपों में सूर्य चन्द्रादि का गमन और चौथे अध्याय में ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक तथा तारों का उल्लेख किया है। चक्र सद्दश ये नक्षत्र बेबिलन तथा अन्य देशों में २५०० ई० पूर्व से प्रचलित अभिलेखबद्ध सामग्री में पाये गये हैं।^{१५}

पूर्वमध्यकाल प्रायः ई० प० ६०० से १००० ई० तक माना जा सकता है। इस काल में ऋषिपुत्र, महावीर (ज्योतिषपटल ?), चन्द्रसेन, श्रीधर आदि ज्योतिषियों ने विशेष अंशदान दिये। अहंजूडामणिसार ७४ प्राकृत गाथाओं में निबद्ध है। वराहमिहिर के भाई सम्भवतः भद्रबाहु द्वितीय की यह कृति प्रतीत होती है (डा० नेमिचन्द्र, जैन ज्योतिष साहित्य, आ० भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, १९६१, पृ० २१०-२२१)। सारांश में फलित इस प्रकार वर्णित है :

आलिङ्गित संज्ञक स्वर व्यंजन अ, इ, ए, ओ; क, च, ट, त, प, य, श, ग, ज, ड, द, ब, ल, स (सुभंग, उत्तर, संकट) इतर नाम हैं।

अभिधूमित स्वर व्यंजन आ, ई, ऐ, औ; ख, छ, ठ, थ, फ, र, ष, घ, झ, ढ, ध, भ, व, (मध्य, उत्तराधर, विकट) इतर नाम हैं।

दग्ध संज्ञक स्वर व्यंजन : उ, ऊ, अं, अः, ङ, ज, ण, न, म इतर नाम (विकट, संकट, अधर, अशुभ) भी हैं।

कार्य सिद्धि सभी आलिङ्गित अक्षर होने पर होती है। प्रश्नाक्षर दग्ध होने पर कार्य सिद्धि नहीं होती। मिश्राक्षरों के शुभाशुभ फल, जय-पराजय, लाभालाभ, जीवित-मरण आदि के विवेचन भी दर्शनीय हैं।

यतियों के लिए करलक्षण छोटा ग्रन्थ पठनीय है।

सम्भवतः ऋषिपुत्र का प्रभाव वराहमिहिर पर पड़ा। ये गर्ग वंश में हुए। इनका एक निमित्तशास्त्र उपलब्ध है। एक संहिता का भी मदनरत्न नामक ग्रंथ में उल्लेख है। बृहत्संहिता की महोत्पली टीका में ऋषिपुत्र के उद्धरण मिलते हैं। वृष्ट, श्रवणित, उत्पात आदि द्वारा प्रकट निमित्तों से शुभाशुभ फल प्रकट किया गया है।

हरिभद्र की प्रायः ८८ रचनाओं का पता मुनि जिनविजय द्वारा लगाया गया है। इनकी प्रायः २६ रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। ये सम्भवतः आठवीं शती के ज्योतिष मर्मज्ञ थे। इन्होंने १४४०

८ Needham, J. & Wang, L., Science and Civilization in China, Vol. III, Cambridge, 1959, pp. 529, 546, 561, 562, 563, 566, 568 & 587. for Concept of Meru, see 531 (d) 563, 568 and 589.

प्रकरण-ग्रंथ रचे हैं। जातकशास्त्र या होराशास्त्र विषयक इनका लम्बे शुद्धि ग्रंथ प्राकृत में है। लग्न और ग्रहों के बल, द्वादश भाव आदि का विवरण उल्लेखनीय है।

महावीराचार्य के ज्योतिषपटल में सम्भवतः ग्रहों के चार क्षेत्र, सूर्य के मण्डल, नक्षत्र और ताराओं के संस्थान गति, स्थिति और संख्या आदि का विवरण हुआ प्रतीत होता है—ऐसा डा० नेमिचन्द्र ने लिखा है।

कल्याण वर्मा के पश्चात् हुए चन्द्रसेन द्वारा केवलज्ञान होरा रचित हुआ। इसके प्रकरण सारावली से मिलते-जुलते हैं किन्तु इस पर कर्नाटक के ज्योतिष का प्रभाव दृष्टिगत होता है। यह संहिता विषयक ग्रंथ है जो ४००० श्लोकों में पूर्ण हुआ है।

मर्मज्ञ ज्योतिषियों में दशवीं शती के श्रीधराचार्य हैं। ये कर्णाटक प्रान्त के थे जो प्रारम्भ में शैव थे और बाद में जैनधर्मानुयायी हो गये थे। ज्योतिषज्ञानविधि संस्कृत में तथा जातकतिलकादि रचनाएँ कन्नड़ में हैं। संस्कृत ग्रंथ में व्यवहारोपयोगी मुहूर्त है। संवत्सर, नक्षत्र, योग, करणादि के शुभाशुभ फल हैं। इसमें मासशेष, मासाधिपतिशेष और दिनशेष, दिनाधिपतिशेष की गणितीय प्रक्रियाएँ उल्लेखनीय हैं। जातक तिलक होरा या जातकशास्त्र है। इसमें लग्न, ग्रह, ग्रहयोग, जन्मकुण्डली सम्बन्धी फलादेश मिलता है।

एक अज्ञात लेखक की रचना प्रश्नशास्त्र सम्बन्धी चन्द्रोन्मीलन है। इसमें प्रश्नवर्णों का विभिन्न संज्ञाओं में विभाजन का उत्तर दिया गया है। केरलीय प्रश्नसंग्रह में चन्द्रोन्मीलन का खण्डन किया गया है। इसकी प्रणाली लोकप्रिय थी।

१००१ ई० से १७०० ईस्वी तक का उत्तर मध्यकाल है। इस काल में भारत में फलित ज्योतिष का अत्यधिक विकास हुआ। इस युग के सर्वप्रथम ज्योतिषी दुर्गदेव हैं। इनकी दो रचनाएँ रिट्ट समुच्चय और अर्द्धकाण्ड प्रमुख हैं। इनका समय प्रायः १०३२ ई० है। रिट्टसमुच्चय शौरसेनी प्राकृत की २६१ प्राकृत गाथाओं में रचित हुआ है। मृत्यु सम्बन्धी विविध निमित्तों का वर्णन इसमें है। अर्द्धकाण्ड में व्यावसायिक ग्रह-योग का विचार है। इसमें १४६ प्राकृत गाथाएँ हैं।

ईस्वी सन् १०४३ के लगभग का समय मल्लिसेन का है जिनका आय-सद्भाव ग्रंथ उपलब्ध है। इसमें १६५ आयाएँ और एक गाथा है। इसमें ध्वज, धूम, सिंह, मण्डल, वृष, खर, गज और वायस इन आठों आयों के स्वरूप और फलदेश दिये गये हैं।

विक्रम संवत् की ११वीं शती के दिगम्बराचार्य दामनन्दी के शिष्य भट्टवोसरि हैं जिन्होंने २५ प्रकरण और ४१५ गाथाओं में आयज्ञान तिलक की रचना की है। इसमें भी आठ आयों द्वारा प्रश्नों के फलादेश का विस्तृत विवेचन है। प्रश्नशास्त्र के रूप में इसमें कार्य-अकार्य, हानि-लाभ, जय-पराजयादि का वर्णन है।

उदयप्रभदेव (१२२० ई०) द्वारा आरम्भ सिद्धि नामक व्यवहार चर्या पर ज्योतिष ग्रन्थ है जो मुहूर्त विषयक मुहूर्त चिन्तामणि जैसा है।

राजादित्य (११२० ई०) भी ज्योतिषी थे। इनके ग्रन्थ कन्नड़ में रचित हुए।

पद्मप्रभसूरि (वि० सं० १२६४) का प्रमुख ग्रन्थ भुवनदीपक या ग्रहभावप्रकाश है। इसमें ३६ द्वार प्रकरण हैं। इसमें कुल १७० श्लोक संस्कृत में हैं।

नरचन्द्र उपाध्याय (सं० १३२४) के विविध ग्रंथों में वेड़ा जातक वृत्ति, प्रश्नशतक, प्रश्न चतुर्विंशतिका, जन्म समुद्र टीका, लग्न विचार और ज्योतिष प्रकाश हैं तथा उपलब्ध हैं। ज्ञान दीपिका तथा ज्योतिष प्रकाश (संहिता तथा जातक) महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

अट्टकवि (१३०० ई०) का अट्टमत नामक ज्योतिष ग्रन्थ है। इसमें वर्षा, आकस्मिक लक्षण, वायु, गृह प्रवेश, भूकम्प, विद्युत्, इन्द्रधनुष, ध्वनि, मेघादि के निमित्तों से फलादेश दिया गया है।

महेन्द्रसूरि (१२६२ शक) द्वारा यन्त्रराज रचित हुआ। इसमें नाड़ीवृत्त के धरातल में गोल पृष्ठ पर खींचे गये सभी वृत्तों का परिणमन कर ग्रहगणित किया गया है। इसकी टीका मल-येन्दु सूरि द्वारा रचित हुई। इसमें परमाकृति २३ अंश ३५ कला मानी गई है। इसमें पाँच अध्याय हैं जिनमें विभिन्न ग्रह गणितों का साधन किया गया है। इसमें पंचांग निर्माण करने की विधि भी दी गयी है।

सम्भवतः इसी युग की ९वीं शती के बाद की एक रचना भद्रवाहु संहिता है जिसमें अष्टांग निमित्त का वर्णन है। इसमें २७ अध्यायों में निमित्त तथा संहिता के विषय है और ३०वें अध्याय में अरिष्टों का विवरण है। लोकोपयोग को ध्यान में रखते हुए इसकी रचना हुई। यह सांख्यिकी की आधुनिक प्रणाली का द्योतक है।

समन्तभद्र (१३वीं शती) की रचना केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि है। इसमें अक्षरों को पाँच वर्गों में विभाजित कर प्रश्नकर्ता के वाक्य के आधार पर प्रश्नों के फलाफल का विचार किया गया है।

हेमप्रभ (सम्बत् १३०४) प्रायः चौदहवीं शती के प्रथम चरण में इन्होंने दो ग्रन्थ—त्रैलोक्य प्रकाश तथा मेघमाला रचे। त्रैलोक्यप्रकाश फलित ज्योतिष का ११६० श्लोक वाला ग्रन्थ है। मेघमाला में श्लोक संख्या १०० है। (प्रो० एच० डी० देलकर—जैन ग्रन्थावली, पृ० ३५६)

रत्नशेखर (१५वीं शती) द्वारा १४४ गाथाओं वाला दिनशुद्धिदीपिका रचित हुआ। यह व्यवहार की दृष्टि से लिखा गया ग्रन्थ है।

टक्करफेरु (१४वीं शताब्दी) के दो ग्रन्थ गणितसार और जोइससार हैं।

इस युग के अन्य ज्योतिषियों में हर्षकीर्ति (जन्मपत्र पद्धति), जिनवल्लभ (स्वप्न संहितका) जय विजय (शकुन दीपिका), पुण्यतिलक (ग्रहायु साधन), गर्गमुनि (पासावली), समुद्र कवि (सामुद्रिकशास्त्र), मानसागर (मानसागरी पद्धति), जिनसेन (निमित्तदीपक) आदि उल्लेखनीय हैं। अनेक ज्योतिष ग्रन्थों के कर्ताओं का पता नहीं चलता है।

१३०१ ई० से १६७६ ई० तक अर्वाचीन काल माना जा सकता है। इस युग के प्रमुख ज्योतिषी मेघविजयगणि (प्रायः वि० सं० १७३७) हैं। इनके मुख्य ग्रन्थ मेघ महोदय या वर्ष प्रबोध, उदय दीपिका, रमलशास्त्र और हस्त संजीवन हैं। वर्ष प्रबोध से ज्योतिष विषय की जानकारी मिलती है। हस्त संजीवन सामुद्रिकशास्त्र की महत्वपूर्ण कृति है।

इनके अतिरिक्त उभयकुशल (१८वीं शती पूर्वार्द्ध) के फलित ज्योतिष सम्बन्धी विवाह पटल और चमत्कार चिन्तामणि; लब्धचन्द्रगणि (वि० सं० १७५१) का व्यवहार ज्योतिष सम्बन्धी जन्मपत्री पद्धति; वाघती मुनि (वि० सं० १७८३) के तिथि सारणी ग्रन्थ आदि; यज्ञस्वतसागर (वि० सं० १७६२) के व्यवहारोपयोगी यज्ञोराजपद्धति उल्लेखनीय हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त विनयकुशल, हीरकुशल, मेघराज, जिनपाल, जयरत्न, सूरचन्द्र आदि अनेक ज्योतिषियों की रचनाएँ उपलब्ध हैं। अभी तक प्रायः ५०० जैन ज्योतिष ग्रन्थों का पता चला है। (वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४७८-४८४)

आशा है कि २५००वाँ वीर निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित समितियाँ जैन विद्या के केन्द्रों पर ज्योतिष एवं गणित की शोधों को प्रोत्साहित करने हेतु उपयुक्त प्राध्यापकों की

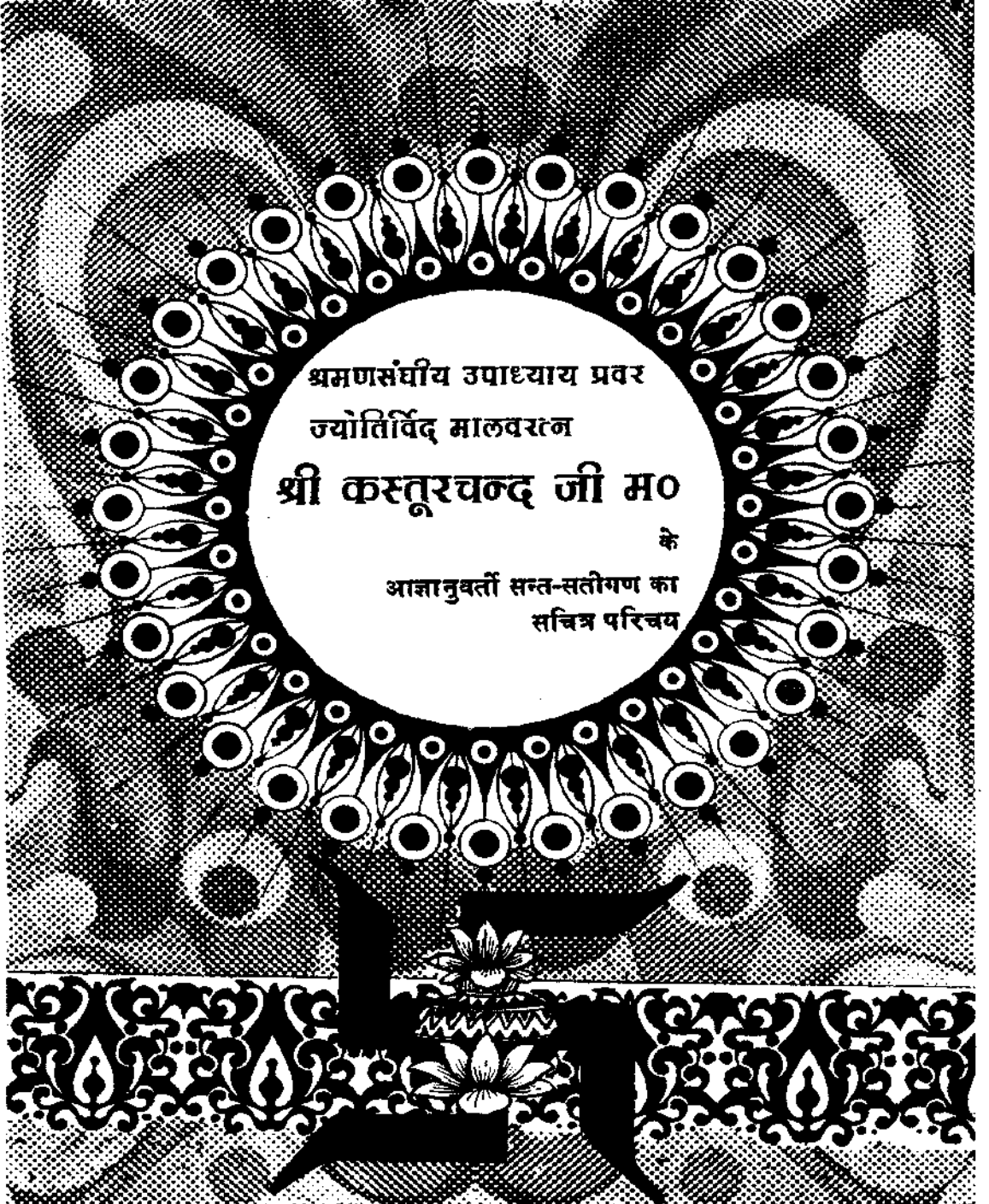
नियुक्ति का प्रावधान अपनी योजनाओं तथा विविध शर्तों में करने का प्रयत्न करेगी।^६ गणित जैन संस्कृति का अविच्छिन्न तथा आधारभूत पाया है जिस पर अनेक बौद्धिक तथा मौलिक रचनाएँ सम्भव हुई तथा भारत की संस्कृति को सर्वोन्नत एवं उज्ज्वल रखा गया। जैनाचार्यों ने जो सामग्री निर्मित की वह मात्र इतिहास की वस्तु नहीं है वरन् उन आधारों को प्रस्तुत करती है, जिन पर नवीनतम खोजों के आगे बढ़ा जा सकता है। वे आधार सैद्धान्तिक हैं तथा प्रयोगों द्वारा अनुभूत-योग्य भी। सिद्धान्तों की रचना को सूक्ष्मतर बनाया जा सकता है—वह भी गणितीय आधार लेकर। अस्तु !



- ६ इस वर्ष अक्टूबर में आर्यभट्ट ज्योतिषी का १५००वाँ जयन्ती समारोह मनाया जा रहा है। यतिवृषभ सम्भवतः इनके समकालीन थे। इस अवसर यतिवृषभ की स्मृति में शोध केन्द्रों पर पर जैन ज्योतिष के अध्ययन की बुनियादें डालना श्रेयस्कर होगा। कम से कम वैशाली, उज्जैन तथा पूना की जैन पीठों में यह अध्ययन प्रारम्भ कराना सम्भव हो सकेगा।

जैन धर्म, दर्शन संस्कृति का
हुआ विवेचन रम्य ।
ज्योतिष के गम्भीर ज्ञान का
किया बुद्धि से गम्य ।
मुनिद्वय के अभिनन्दन ग्रन्थ का
खंड पाँचवा पूर्ण ।
षष्ठ खंड में संत - सतीजन
का परिचय है तूर्ण ।

षष्ठ खंड





महान तपस्वीराज श्री भेरूलाळजी म०



जैनागम तत्वविशारद प्रवर्तक श्री हीरालाल जी० म०

हमारे अभिनन्दनीय



उपाध्याय श्रद्धेय मालवरल्ल श्री कस्तूरचन्दजी म०

वन्दनीय मुनिगण



मेवाडभूषण पं० श्री प्रतापमल जी म०



गायननिधि श्री रामनिवास जी म०



प्रखरवक्ता कवि श्री केवलमुनि जी



पं० रत्न व्या० श्री इन्दरमलजी म०



मधुर व्या० मस्तयोगी श्रीमनोहरलाल जी म०



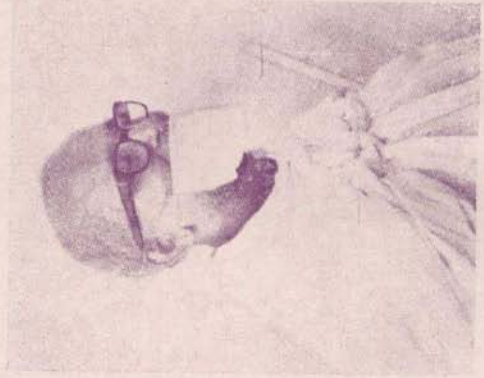
त० प्रवक्ता श्री लाभचन्द्र जी म०



त० श्री दीपचन्द्रजी म०



तपस्वी व्या० श्री विमलमुनिजी म०



तपस्वी श्री मेघराजजी म०



मधुरवक्ता श्री मूलचन्द्रजी म०

मु नि च र णों में श त - श त व ङ्द न



ओशुक्वी वक्ता कवि श्री अशोकभुजिजी म०



त० श्री बसन्तीलालजी म०



संघ सेवाभावी घोर त० श्री मोहनलालजी म०



त० श्री मंगलचन्द्र जी म०

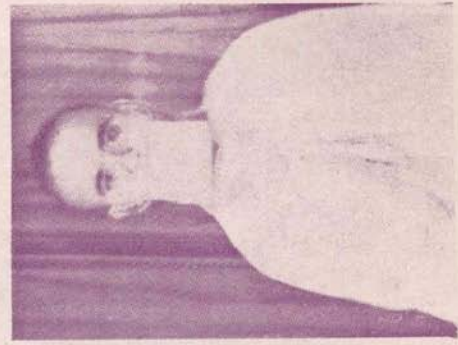
व ण्ढ नी य मु णि ज न



शिद्धान्ताचार्य श्री गणेशमुनिजी



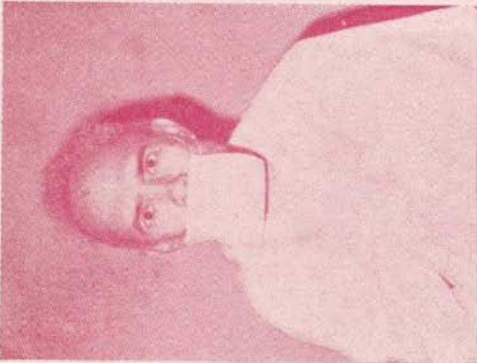
घोरतपस्वी श्री पन्नालालजी म०



मधुर द्या० श्री ईश्वरमुनिजी



संस्कृत विशारद श्री भगवतो मुनिजी



सिद्धान्ताचार्य प्र० श्री उदयमुनिजी म०



पं० श्री राजेन्द्रमुनिजी म०



श्री रमेशमुनि [सम्पादक]

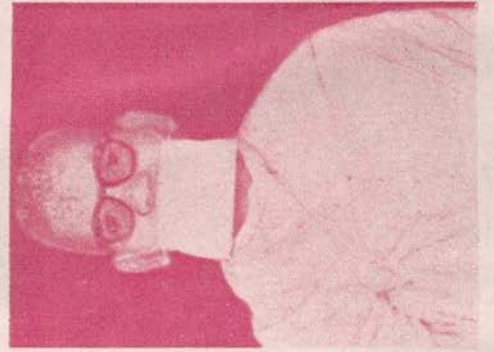


त० श्री वृद्धिचन्द जी म०

व न्द नी य मु नि ज न



सेवाभावी श्री सुदर्शनमुनिजी



कवि श्री रंगमुनि जी



प्रियदर्शी श्री सुरेशमुनिजी



मुनि श्री प्रदीपकुमार जी 'शाशांक'



मधुर ब्या० श्री चन्दनमुनिजी म०



त० श्री सोहनमुनिजी



सफलवक्ता श्रीअजीतमुनिजी 'निर्मल'



ब्या० श्री नरेन्द्रमुनि जी 'विशारद'



तरुण त० श्री अशय मुनि



सेवाभावी विद्यार्थी श्री विरेन्द्रमुनिजी

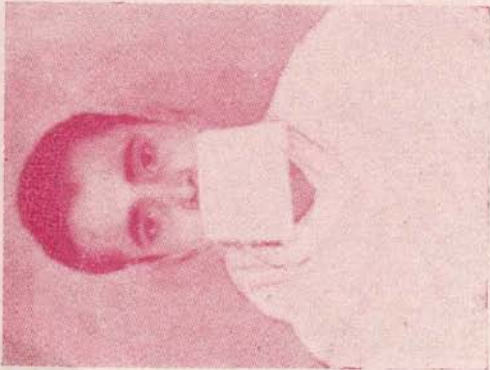


कवि-वक्ता श्री विजयमुनिजी



आत्मार्थी श्री मन्नामुनिजी

व न्द नी य मु नि ज न



विद्यार्थी श्री बसन्तमुनिजी



त० त० प्रकाशमुनिजी 'विशारद'

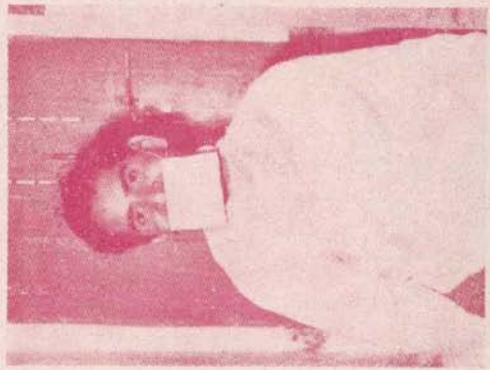


सेवाभावी श्री प्यारचन्द जी स०

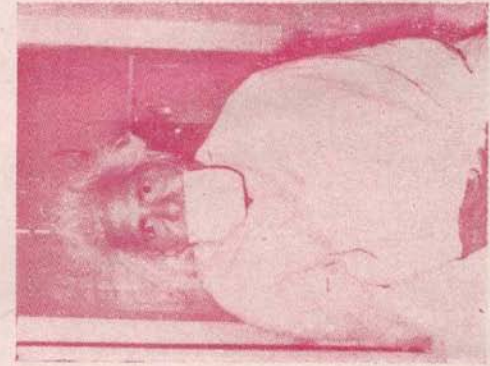


व्या० श्री कर्निमुनि जी

व न्द नी य मु नि ग ण



व्या० श्री श्रृषभमुनिजी



सेवाभावी श्री प्रमोदमुनिजी



बालकवि श्री सुभाषमुनिजी



सेवाभावी श्री नवीनमुनिजी



श्री पीयूष मुनिजी



श्री पेरूलालजी म०



श्री अरुणमुनिजी



श्री भास्कर मुनिजी

व ण्द नी य मु णि ग ण



श्री पीयूष मुनिजी



श्री रतनमुनिजी



श्री शान्तिमुनिजी



श्री देवमुनिजी

आदरणीया

वन्दनीया

सतीगण



विद्याभ्यासी गौतमसुमनिजी



महासती श्री गुलाबकंवर जी

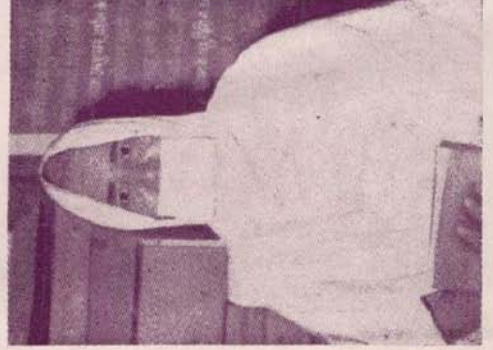


महासती श्री हगामकुंवर जी

आदरणीया वन्दनीया सतीगण



महासती प्रकाशवती जी



महासती श्री हेमकुंवर जी



महासती श्री कमलावती जी



तपस्वती महासती मानकंवर जी



महासती श्री प्रभावती जी



महासती श्री विजयकुंवर जी



महासती श्री कंचनकुंवर जी



महासती श्री बदामकुंवर जी



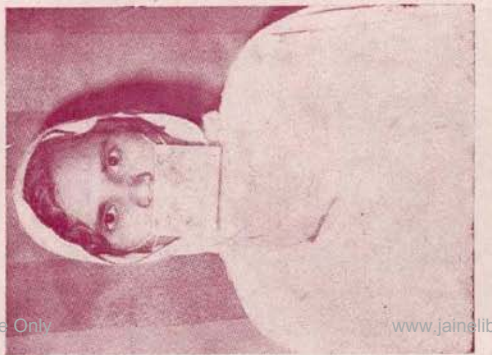
महासती श्री सोहनकुंवर जी



महासती श्री चंचलकुंवर जी



महासती श्री पानकुंवर जी



महासती श्री शांता जी

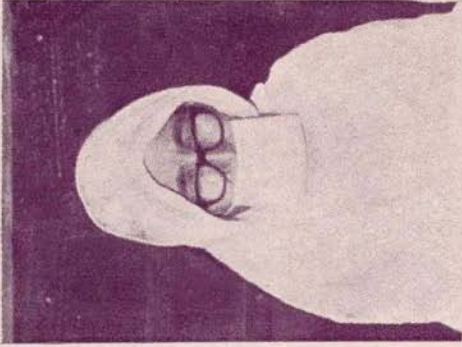
आदरणीया वन्दनीया सतीगण



महासती श्री छोगकुंवर जी



महासती श्री कुसुमा जी



महासती विदुषी श्री सज्जनकुंवर जी म०



महासती बदामकुंवर जी

आदरणीया वन्दनीया सतीगण



महासती सज्जनकुंवर जी जी शिष्या



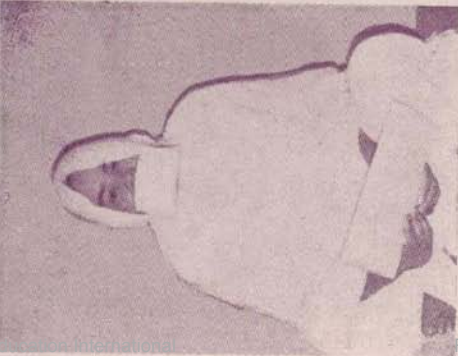
विदुषी महासती श्री केशरकुंवर जी म०



महासती श्री कंचकुंवर जी



महासती श्री रमणीकुंवर जी (जावरा वाले)



महासती श्री नानकुंवर जी



महासती श्री चन्दना जी



महासती श्री गुणवती जी



महासती श्री मदनकुंवर जी

आदरणीया वन्दनीया सतीगण



महासती श्री मधुबाला जी



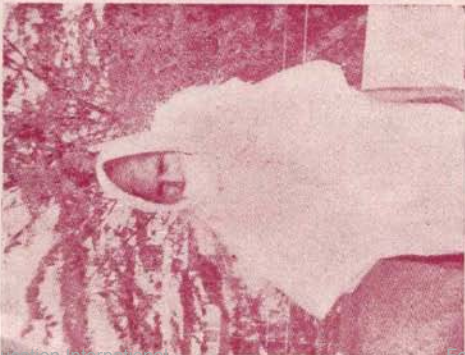
महासती छोटे श्री रमणीक कुंवर जी



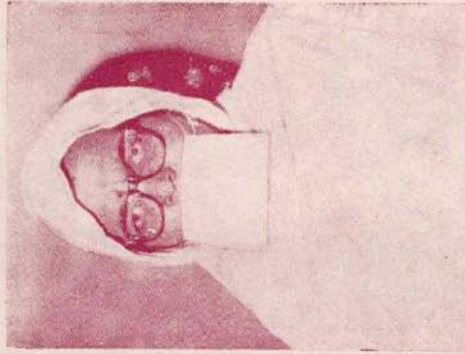
महासती श्री अक्षय ज्योति



महासती श्री ज्ञानवती जी



तपस्वनि म० श्री कलावती जी



श्री रमणीककुंवर जी महाराज (बाई)



महासती शारदा जी

आदरणीया वन्दनीया सतीगिण



क्षमा याचना



—स्नाक वर्क्स की असावधानी के कारण पांच चित्रों के मूल फोटो गुम हो गये हैं, अतः हम चाहते हुए भी महासतीजी गण का परिचय न छाप सके। इनमें तीन चित्र तो हैं-महासती अन्तरसाधना जी, सत्यसाधना जी, एवं दिव्यसाधना जी। उक्त परिचय में भी अगर कोई नाम आगे पोछे हुआ हो तो हम सविनय क्षमा चाहते हैं।



—प्रबन्ध सम्पादक





श्रीमान फकीरचन्दजी मेहता
(इन्वॉर-भुसावल)



श्रीमान विनेशभाई बेकर
सिकन्दराबाद (आं. प्र.)



श्रीमान संचालालजी बाफना
धुलिया

प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन में सहयोगी



श्रीमान नथमलजी लूंकड़
जलगांव (महा.)



श्रीमान बेरुलालजी रांका
सिकन्दराबाद (आं. प्र.)

श्री जैन दिवाकर संगठन समिति के अधिकारी व सदस्य गण



श्रीमान चांदमलजी माहू
मन्सौर (म. प्र.)



श्रीमान जीवनसिंहजी नलवाया
उदयपुर



श्रीमान गेहरीलालजी मेहता
(उदयपुर)



श्रीमान कन्हैयालालजी नागौरी
(उदयपुर)



श्रीमान सौभाग्यमलजी कोचेद्रा
(जावरा)



श्रीमान बापूलालजी बोथरा
रतलाम (म.प्र.)



श्रीमान कचरमलजी चौधरा
(जावद)



श्रीमान सुखलाल जी बाफना
(मन्सौर)



श्रीमान सुजानमलजी मेहता
जावरा (म० प्र०)

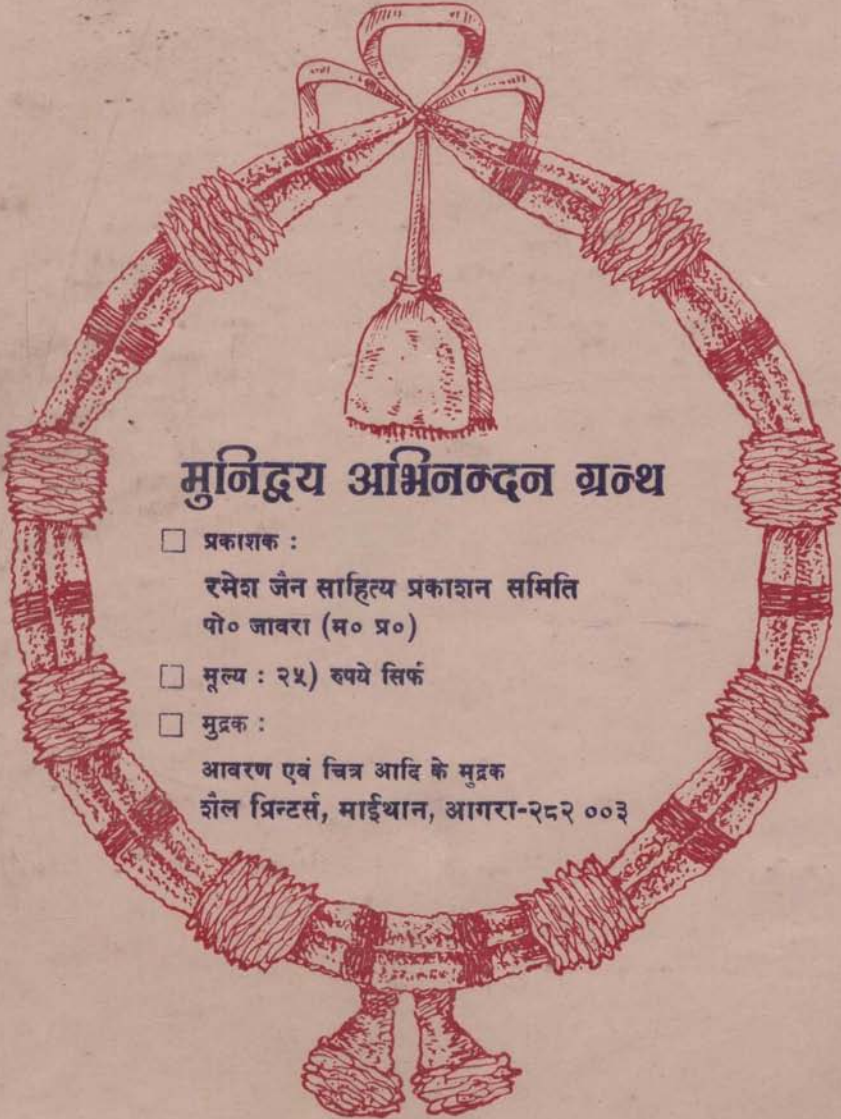


श्रीमान नाथूलालजी चडालिया
कपासन (राज०)



श्रीमान मनोहरलालजी नागौरी
(उदयपुर)

श्री जैन दिवाकर संगठन समिति के अधिकारी व सदस्य गण
प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन में सहयोगी



मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ

□ प्रकाशक :

रमेश जैन साहित्य प्रकाशन समिति
पो० जावरा (म० प्र०)

□ मूल्य : २५) रुपये सिर्फ

□ मुद्रक :

आवरण एवं चित्र आदि के मुद्रक
शैल प्रिन्टर्स, माईथान, आगरा-२८२ ००३